बी.ए., तृतीय वर्ष

हिन्दी साहित्य, द्वितीय प्रश्नपत्र

(अ, ब, स)

हिन्दी नाटक, निबंध तथा स्फुट गद्य विधाएं एवं मालवी, बघेली, बुंदेली भाषा साहित्य

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Anjali Singh
   Director, Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr Sudhir Shrama
   Professor
   Govt MLB College, Bhopal
3. Dr Sharda Singh
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr Anjali Singh
   Director, Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
4. Dr Sharda Singh
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal
5. Dr Sudhir Shrama
   Professor
   Govt MLB College, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr Rashmi Mishra, Former Visiting Faculty, Department of Hindi, M.P.Bhoj (Open) University, Bhopal
Units ((Block A: 4.0-4.1, 4.2-4.4, 4.5-4.9), 5.11)

Dr Pankaj Sharma, Lecturer, Dept of Hindi, College of Vocational Studies, University of Delhi, Delhi
Units (1.0-1.1, 1.4, 1.5, 1.8, 1.9-1.13, 2.0-2.1, 2.4-2.5, 2.8, 2.9-2.13, (Block C: 4.0-4.1, 4.2-4.4, 4.5-4.9), 5.0-5.1, 5.6, , 5.7, 5.8, 5.9, 5.12-5.16)

Vijay Nath Jayasawal, Former Visiting Faculty, Department of Hindi, M. P. Bhoj (Open) University, Bhopal
Units ((Block B: 4.0-4.1, 4.2-4.44.5-4.9), 5.10)

Dr Urvija Sharma, Associate Professor, Department of Hindi, S.D.P.G. College, Ghaziabad (UP)
Unit (3.0-3.1, 3.2-3.9, 3.10-3.14)

Dr Archana Arya, Assistant Professor, C.C.A.S.Girls College, Ganaur, Sonepat, Haryana
Units (1.2, 2.2, 5.2, 5.3, 5.4, 5.5)

Dr Aishwarya Jha, Assistant Professor, Swami Shraddhanand, College of Delhi
Units (1.3, 1.6, 2.3, 2.6)

Dr Mohammad Erfan, Assistant Professor, Department of Hindi, Moradabad Muslim Degree College, Moradabad U.P.
Units (1.7, 2.7)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिन्दी नाटक, निबंध तथा स्फुट गद्य विधाएं एवं मालवी, बघेली, बुंदेली भाषा साहित्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र (व्याख्यांश); ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद (व्याख्यांश); दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा (व्याख्यांश); वापसी : विष्णु प्रभाकर (व्याख्यांश); करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल (व्याख्यांश); नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी (व्याख्यांश); उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल (आरंभ के दो दृश्य व्याख्यांश)	**इकाई 1** : व्याख्यांश : अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी (नाटक), दीपदान और वापसी (एकांकी) करुणा, नाखून क्यों बढ़ते हैं (निबंध), उत्तिष्ठ भारत (नाटक) **(पृष्ठ 3–64)**
इकाई–2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र; ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद; दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा; वापसी : विष्णु प्रभाकर; करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल; नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी; उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल से आलोचनात्मक प्रश्न	**इकाई 2** : अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी और निर्धारित एकांकी तथा निबंधों की आलोचनात्मक समीक्षा **(पृष्ठ 65–148)**
इकाई–3 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास; नाटक : इतिहास एवं प्रवृत्तियां; एकांकी : इतिहास एवं प्रवृत्तियां; निबंध; रेखाचित्र; संस्मरण; आत्मकथा; यात्रा वृत्तांत	**इकाई 3** : हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास (नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा वृत्तांत) **(पृष्ठ 149–221)**
इकाई–4 मालवी, बघेली और बुंदेली भाषा साहित्य	
इकाई 4 भाग (अ) : मालवी भाषा : परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन हिंदी साहित्य की जनपदीय बोलियों का परिचय (मालवी, बघेली, बुंदेली); मालवी भाषा का परिचय– मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय, मालवी साहित्य का इतिहास, मालवी भाषा का सीमा–क्षेत्र; मालवी भाषा के कवियों का परिचय, रचनाओं का मूलपाठ एवं व्याख्या– सन्त पीपा, आनन्दराव दुबे, बालकवि बैरागी, नरहरि पटेल; मालवी भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन	**इकाई 4 खंड (अ)**: मालवी भाषा : परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **(पृष्ठ 225–330)**
इकाई 4 भाग (ब) : बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं विकास– बघेली भाषा का परिचय एवं इतिहास, बघेली भाषा का व्याकरणिक स्वरूप, बघेली साहित्य का विकास; बघेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या– सैफुद्दीन सिद्दीकी सैफू, अमोल बटरोही, शिवशंकर मिश्र 'सरस'; बघेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन	**इकाई 4 खंड (ब)**: बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **(पृष्ठ 331–394)**
इकाई 4 भाग (स) : बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं सीमा क्षेत्र– बुंदेली भाषा और उसकी उपबोलियों का परिचय, बुंदेली भाषा का इतिहास, बुंदेली भाषा : सीमा क्षेत्र; बुंदेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या– ईसुरी, जगनिक,	**इकाई 4 खंड (स)**: बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **(पृष्ठ 395–476)**

माधव शुक्ल 'मनोज', संतोष सिंह बुंदेला; बुंदेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

इकाई–5

लक्ष्मीनारायण मिश्र; डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल; मोहन राकेश; भारतेंदु हरिश्चंद्र; सुरेश शुक्ल 'चंद्र'; बाबू गुलाब राय; महादेवी वर्मा; बुंदेली भाषा के रचनाकार– गोरेलाल, गंगाधर व्यास, पं. भैयालाल व्यास, डॉ. दुर्गेश दीक्षित; बघेली भाषा के रचनाकार– रामनाथ प्रधान, बाबूलाल दाहिया, मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली", सुदामा शरद; मालवी भाषा के रचनाकार– मदनमोहन व्यास, हरीश निगम, मोहन सोनी, शिव चौरसिया, श्रीनिवास जोशी

इकाई 5 : द्रुत पाठ
(पृष्ठ 477–511)

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 व्याख्यांश : अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी (नाटक), दीपदान और वापसी (एकांकी) करुणा, नाखून क्यों बढ़ते हैं (निबंध), उत्तिष्ठ भारत (नाटक) **3–64**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र (व्याख्यांश)
1.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद (व्याख्यांश)
1.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा (व्याख्यांश)
1.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर (व्याख्यांश)
1.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल (व्याख्यांश)
1.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी (व्याख्यांश)
1.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल (व्याख्यांश)
1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी और निर्धारित एकांकी तथा निबंधों की आलोचनात्मक समीक्षा **65–148**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र
2.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद
2.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा
2.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर
2.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल
2.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी
2.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल
2.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.10 सारांश
2.11 मुख्य शब्दावली
2.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास (नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा वृत्तांत) **149–221**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास
3.3 नाटक : इतिहास एवं प्रवृत्तियां
3.4 एकांकी : इतिहास एवं प्रवृत्तियां
3.5 निबंध
3.6 रेखाचित्र
3.7 संस्मरण
3.8 आत्मकथा
3.9 यात्रा वृत्तांत
3.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.11 सारांश
3.12 मुख्य शब्दावली
3.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.14 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 : मालवी, बघेली और बुंदेली भाषा साहित्य

इकाई 4 भाग (अ) : मालवी भाषा : परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **225–330**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 हिंदी साहित्य की जनपदीय बोलियों का परिचय (मालवी, बघेली, बुंदेली)
  4.2.1 मालवी भाषा का परिचय
  4.2.2 मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय
  4.2.3 मालवी साहित्य का इतिहास
  4.2.4 मालवी भाषा का सीमा–क्षेत्र
4.3 मालवी भाषा के कवियों का परिचय, रचनाओं का मूलपाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 सन्त पीपा
  4.3.2 आनन्दराव दुबे
  4.3.3 बालकवि बैरागी
  4.3.4 नरहरि पटेल
4.4 मालवी भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.1 संत पीपा
  4.4.2 आनन्दराव दुबे
  4.4.3 बालकवि बैरागी
  4.4.4 नरहरि पटेल
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 भाग (ब) : बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **331–394**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं विकास
  4.2.1 बघेली भाषा का परिचय एवं इतिहास
  4.2.2 बघेली भाषा का व्याकरणिक स्वरूप
  4.2.3 बघेली साहित्य का विकास
4.3 बघेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी सैफू
  4.3.2 अमोल बटरोही
  4.3.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'
4.4 बघेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी
  4.4.2 डॉ. अमोल बटरोही
  4.4.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 भाग (स) : बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन **395–476**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं सीमा क्षेत्र
  4.2.1 बुंदेली भाषा और उसकी उपबोलियों का परिचय
  4.2.2 बुंदेली भाषा का इतिहास
  4.2.3 बुंदेली भाषा : सीमा क्षेत्र
4.3 बुंदेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 ईसुरी
  4.3.2 जगनिक
  4.3.3 माधव शुक्ल 'मनोज'
  4.3.4 संतोष सिंह बुंदेला
4.4 बुंदेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.2 जगनिक
  4.4.3 माधव शुक्ल 'मनोज'
  4.4.4 संतोष सिंह बुंदेला
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 द्रुत पाठ 477–511

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 लक्ष्मीनारायण मिश्र
5.3 डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
5.4 मोहन राकेश
5.5 भारतेंदु हरिश्चंद्र
5.6 सुरेश शुक्ल 'चंद्र'
5.7 बाबू गुलाब राय
5.8 महादेवी वर्मा
5.9 बुंदेली भाषा के रचनाकार
5.9.1 गोरेलाल
5.9.2 गंगाधर व्यास
5.9.3 पं. भैयालाल व्यास
5.9.4 डॉ. दुर्गेश दीक्षित
5.10 बघेली भाषा के रचनाकार
5.10.1 रामनाथ प्रधान
5.10.2 बाबूलाल दाहिया
5.10.3 मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली"
5.10.4 सुदामा शरद
5.11 मालवी भाषा के रचनाकार
5.11.1 मदनमोहन व्यास
5.11.2 हरीश निगम
5.11.3 मोहन सोनी
5.11.4 शिव चौरसिया
5.11.5 श्रीनिवास जोशी
5.12 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.13 सारांश
5.14 मुख्य शब्दावली
5.15 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.16 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी नाटक, निबंध तथा स्फुट गद्य विधाएं एवं मालवी, बघेली, बुंदेली भाषा साहित्य' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. हिन्दी (तृतीय वर्ष) के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

गद्य एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने भावों को प्रस्तुत करने के लिए सहज रूप से, बातचीत की शैली अथवा अलंकृत शैली में अपनी बात कहता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य लिखा गया। आधुनिक युग में गद्य लेखन की कई पद्धतियां विकसित हुईं। उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज आदि अनेकानेक विधाओं के माध्यम से साहित्य लिखा गया।

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में अनेक नई गद्य विधाओं का उदय और विकास हुआ तथा कई कालजयी रचनाओं का प्रणयन हुआ। यहां विभिन्न गद्य विधाओं में रचित चुनिंदा रचनाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में हिन्दी के साथ–साथ मालवी, बघेली एवं बुंदेली भाषा साहित्य की ऐसी रचनाएं चुनकर संकलित करने का प्रयास किया गया है, जो हमारे गौरवशाली इतिहास, परंपरा और संस्कृति से न केवल परिचित कराएंगी बल्कि मूल्यपरक संस्कारों का बीजारोपण भी विद्यार्थियों में कर सकेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक में हिंदी गद्य साहित्य के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में नाटककार भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी', जयशंकर प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी', डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'दीपदान', विष्णु प्रभाकर के 'वापसी', पं. रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'करुणा', हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' तथा त्रिभुवननाथ शुक्ल के 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के आरंभ के दो दृश्यों सहित सभी रचनाओं के प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

दूसरी इकाई में उपर्युक्त रचनाकारों (प्रथम इकाई के अनुसार) की रचनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा की गई है।

तीसरी इकाई हिंदी गद्य विधाओं के उद्भव एवं विकास पर आधारित है। इसमें नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा–वृत्तांत आदि विधाओं के इतिहास एवं प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

चौथी इकाई मालवी, बघेली और बुंदेली भाषा साहित्य पर आधारित है। इस इकाई को तीन भागों में विभाजित किया गया है। भाग (अ) में मालवी भाषा के परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों संत पीपा, आनंदराव दुबे, बालकवि बैरागी तथा

टिप्पणी

नरहरि पटेल की रचनाओं का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। भाग (ब) में बघेली भाषा का परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों, सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', अमोल बटरोही एवं शिवशंकर मिश्र 'सरस' की रचनाओं का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भाग (स) में बुंदेली भाषा का परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों ईसुरी, जगनिक, माधव शुक्ल 'मनोज' व संतोष सिंह बुंदेला की रचनाओं का व्याख्यात्मक विश्लेषण किया गया है।

पांचवीं इकाई द्रुत पाठ पर आधारित है। इसमें हिन्दी भाषा साहित्य के साथ मालवी, बघेली, बुंदेली भाषा साहित्य के प्रमुख रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी नाटक, निबंध तथा स्फुट गद्य विधाएं एवं मालवी, बघेली, बुंदेली भाषा साहित्य' को सरलतम एवं रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि गद्य विधाओं के उद्‌भव एवं विकास को समझने में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 व्याख्यांश : अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी (नाटक), दीपदान और वापसी (एकांकी) करुणा, नाखून क्यों बढ़ते हैं (निबंध), उत्तिष्ठ भारत (नाटक)

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र (व्याख्यांश)
1.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद (व्याख्यांश)
1.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा (व्याख्यांश)
1.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर (व्याख्यांश)
1.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल (व्याख्यांश)
1.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी (व्याख्यांश)
1.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल (व्याख्यांश)
1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.10 सारांश
1.11 मुख्य शब्दावली
1.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

हिन्दी साहित्य में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उन्हें हिन्दी नाटकों का जनक भी माना गया है। साहित्य की अन्य विधाओं की भांति ही नाटक का प्रमुख उद्देश्य जीवन एवं जगत संबंधी यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति है। नाटक साहित्य का वह कथात्मक रूप है, जो पात्रों द्वारा दर्शकों के सम्मुख रंगमंच पर प्रदर्शन के लिए होता है। सामाजिक यथार्थ घटनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण दर्शकों को शीघ्र प्रभावित करता है। साहित्य की अन्य विधाएं नाटक की दृश्यत्व प्रधानता की सफलता के कारण गौण हो जाती हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'अंधेर नगरी' अत्यंत संक्षिप्त कलेवर का हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण एक नाटक है जिसमें सामाजिक और राजनीतिक परिवेश पर तीखे कटाक्ष किए गए हैं। ये कटाक्ष समय के साथ पुराने नहीं पड़े बल्कि आज की परिस्थितियों में भी अनुकूल और सटीक हैं। अंधेर नगरी नाटक में मूल्यहीन अमानवीय और अराजक व्यवस्था प्रणाली को इस प्रकार प्रकट किया गया है कि शासन की अंधव्यवस्था सामने आ जाती है। विवेकहीन और मूर्ख राजा अपनी पूरी प्रजा के लिए कष्ट का कारण ही नहीं बनता बल्कि उसके नाश का आधार भी बन सकता है।

जयशंकर प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक एक स्त्री प्रधान नाटक है जिसमें ऐतिहासिक कथावस्तु का प्रयोग कर नारी शोषण, अनादर, अपमान और दयनीय

अवस्था का चित्रण किया गया है। प्रसाद नारी मुक्ति के जटिल प्रश्न का समाधान करने के साथ ही नारी से भी विश्व कल्याण के लिए त्याग, सेवा और करुणा की आशा करते हैं।

दीपदान एकांकी की कथा चित्तौड़ राजवंश के उत्तराधिकारी के प्राणों की रक्षा पर आधारित है। मातृभूमि के लिए अपने पुत्र को कुर्बान कर देना ही दीपदान एकांकी का वास्तविक उद्देश्य है।

विष्णु प्रभाकर का एकांकी 'वापसी' असगर नामक पाकिस्तानी सैनिक की कहानी पर आधारित है। भारत के विभाजन के पूर्व भारत उसका अपना गांव था जिस पर उसे आक्रमण करने का आदेश दिया गया। पूरे एकांकी में असगर का अंतर्द्वंद्व मुखर रूप से उभरकर सामने आया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध 'करुणा' मनोविकार विषयक निबंधों में उत्कृष्ट है। इस निबंध में उन्होंने करुणा जैसे मनोभाव पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। शुक्ल जी के निबंध अपनी गंभीरता, विचारशीलता और व्यापक विश्लेषण क्षमता के लिए अलग से पहचाने जाते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विषय की गंभीरता तथा मानवतावादी भावबोध मिलता है। उनके निबंध उनकी विद्वत्ता, गंभीर व्यक्तित्व तथा वैचारिकता को दर्शाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' निबंध में उन्होंने जिज्ञासा, मानव की मूलभूत आवश्यकता, ऐतिहासिक संदर्भ, संस्कृति की छटा, मानव व पशु का अंतर, भौतिकवादी भावना तथा मनुष्य के स्वभाव का वर्णन किया है।

नाटककार त्रिभुवननाथ शुक्ल 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के माध्यम से समाज में गरीबी उन्मूलन तथा स्त्री शिक्षा के महत्व को स्थापित करना चाहते हैं। उन्होंने नाटक के माध्यम से यह संदेश दिया है कि गरीब घर की लड़की यदि शिक्षा प्राप्त कर ले तो वह समाज को बदल सकने की ताकत रख सकती है। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाना है।

इस इकाई में अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी (नाटक), दीपदान और वापसी (एकांकी), करुणा, नाखून क्यों बढ़ते हैं (निबंध), उत्तिष्ठ भारत (नाटक) आदि रचनाओं के सार को समझाते हुए प्रमुख व्याख्याओं का वर्णन किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' के पदों की व्याख्या कर पाएंगे;
- जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' की व्याख्या कर पाएंगे;
- डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकी 'दीपदान' के मुख्य अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- विष्णु प्रभाकर के एकांकी 'वापसी' का व्याख्यात्मक विवेचन कर पाएंगे;
- पं. रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'करुणा' की व्याख्या को समझ पाएंगे;
- हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' के प्रमुख अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- त्रिभुवननाथ शुक्ल के नाटक की व्याख्यात्मक समीक्षा कर पाएंगे।

1.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र (व्याख्यांश)

'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है। इसलिए इसमें आद्योपान्त व्यंग्य की मारक लीला चलती हुई दिखाई पड़ती है। प्रहसन अपने सामान्य रूप में लोगों को हँसाकर, उनका मनोरंजन कर अपना कार्य सम्पन्न कर सकता है। वहां व्यंग्य के स्थान पर हास्य की प्रधानता हो सकती है किन्तु अपने गंभीर अर्थ में प्रहसन व्यंग्यात्मक होता है और उसके व्यंग्य सत्ता व्यवस्था और अनेक अपशक्तियों की विसंगतियों और क्रूरताओं पर गहरी चोट करते हैं। प्रहसन हमें हँसाते हुए भीतर–ही–भीतर एक गहरे अर्थ से जोड़ता है। हमें सच्चाई के बोध से जोड़कर संघर्ष के लिए प्रस्तुत करता है।

यह छोटा सा प्रहसन एक कल्पित राजकथा के माध्यम से अंग्रेजी शासन की दुर्व्यवस्था और न्याय के ढोंग का पर्दाफाश करता है। दुर्व्यवस्था के छोटे–छोटे संदर्भों से गुजरती हुई कथा न्याय की विसंगति तक पहुंचती है। कथा बीच–बीच में अनेक तरह के माल बेचने वालों के संवादों और माल विज्ञापनों के जरिए व्यवस्था की कुरूपता के विविध आयामों को खोलती चलती है। इस प्रकार यह छोटी सी कथा अपने लक्ष्य में तो अत्यंत मारक प्रभाव वाली है ही, अपनी व्याप्ति में अर्थ–संकुल भी है।

'अंधेर नगरी' में तत्कालीन राजा जो अंग्रेजी शासन का प्रतीक है, को नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह प्रमुख पात्र अविवेकी, अन्यायी, अज्ञानी ही नहीं, निर्दयी भी है। उसकी कथनी और करनी दोनों ही दर्शकों को हँसा–हँसा कर दिशाबोध कराती है। राज सभा में एक समस्या के समाधान पर चल रही चर्चा नायक की विशेष भूमिका के रूप में सामने आई है। राजा कहता है– अच्छा, चुन्नी लाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूने वाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती! गंगा जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई। नायक का चरित्र एक ओर युगीन शासन की प्रवृत्तियों का बोध कराता है, तो दूसरी ओर प्रहसन के अनुरूप कथानक को गतिशील बनाता है।

इस नाटक का चरित्र विधान अपनी तरह का है। वास्तव में इसमें किसी केन्द्रीय पात्र नायक का विधान करना उद्देश्य नहीं था, उद्देश्य था अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करना। इसलिए अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करने के लिए जिन–जिन पात्रों की आवश्यकता हुई है, लेखक ने बहुत थोड़े–थोड़े में उनकी उपस्थिति दर्ज की है। यहां पारम्परिक पात्रों जैसा कोई पात्र नहीं है। ये सारे के सारे पात्र अपने–अपने व्यावसायिक चरित्र की छोटी–छोटी निजी ध्वनियों के साथ एक लय होकर एक साथ ही मुखरित होते हैं और एक साथ मुखरित होकर उस नगरी की सामूहिक वास्तविकता के उद्‌घाटन के उपकरण बन जाते हैं।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) *राम भजो राम भजो राम भजो भाई*
राम के भजे से गनिका तर गई
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब
राम के भजन बिनु सबहि नसाई।।

राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
सूरदास भये कवि कुल राई।
राम के नाम से घास जंगल की
तुलसी दास भये भजि रघुराई।।

प्रसंग– हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र की नाट्य कृति 'अंधेर नगरी' श्रेष्ठ प्रहसन है। इसमें साहित्यकार ने समकालीन यथार्थ बोध कराने का सफल प्रयत्न किया है। 'अंधेर नगरी' प्रहसन में प्रथम दृश्य भूमिका के रूप में दिया गया है, जिसमें गुरु व शिष्य के मधुर संबंधों के आधार पर शांत रस संचार की भावना है। दोनों ही पात्र भारतीय संस्कृति और आदर्श के प्रतीक स्वरूप हैं। इनकी समस्त गतिविधियां जीवनोपयोगी दिखाई देती हैं। यहां यह तथ्य सामने आता है कि ईश्वर भक्ति के आधार पर लक्ष्य प्राप्त करना सफल हो जाता है।

व्याख्या– राम का भजन निरन्तर करना चाहिए। राम का सच्चा भजन तभी होता है जब व्यक्ति अनेक बार अर्थात सतत राम के नाम को भजता है, स्मरण करता है। उदाहरणार्थ, सच्चा राही तभी हो सकता है जब वह व्यक्ति केवल एक ही कदम नहीं चलता बल्कि अनेक कदम एक के बाद एक बढ़ाता चलता है। वही व्यक्ति सन्मार्गी कहलाता है और उसे ही लक्ष्य प्राप्त होता है। राम का भजन करने से निम्न स्तर की वेश्या गणिका भी तर गई। निश्चय ही आदर्श चिन्तन और ईश्वर की भक्ति के आधार पर निम्न विचारों वाली गणिका को भी अपनी समस्याओं से मुक्ति मिली है। श्रेष्ठ कार्य सदा प्राणियों को सन्मार्ग प्रदान करता है और अनुकूल गति मिलती है। राम के परम पुनीत कार्य, सीता को बचाने के प्रयत्न में जटायु के पंख कट गए, घायल अवश्य हो गया, किन्तु उसका नाम अमर हो गया। राम का नाम जब हम स्वस्थ और एक चित्त मन से जपते हैं तो ईश्वर के गुण मनुष्य में आ जाते हैं और दूषित मन पावन हो जाता है, जिससे जीवन की समस्त इच्छाएं और कार्य सरलता से सम्पन्न हो जाते हैं। यदि मनुष्य सृष्टि के रचयिता ईश्वर के प्रति भक्ति भाव नहीं रखता तो उसके मन में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और कुटिलता आदि भर जाती है, जिसके कारण समस्त कार्यों में विघ्न बाधाएं आती हैं। जीवन का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और जीवन निरर्थक ही रह जाता है। राम के नाम में इतनी शक्ति है कि छोटी से छोटी वस्तु वृहदाकार हो जाती है। अच्छे मनुष्य को बाह्य चक्षु ही नहीं वरन् अन्तःचक्षु भी मिल जाते हैं जिसके माध्यम से व्यक्ति में सत्य, असत्य के निर्णय करने की शक्ति आ जाती है। सूरदास ने ऐसे काव्य की रचना की है जो हिन्दी साहित्य की अनुपम धरोहर स्वरूप है। सूरदास को इन्हीं विशेषताओं के कारण कवि कुलगुरु कहा गया है। राम के नाम की महिमा के आधार पर जंगल का निरर्थक घास क्षेत्र भी पुण्य स्थली बन जाता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि तुलसीदास का नाम, राम–गाथा लिखकर और उनकी भक्ति करके अमर हुआ है। उनका रामचरितमानस उनके यश का गौरव गान करता है।

ईश्वर की भक्ति में मानव जाति के लिए परम शक्ति है, जिसे पाकर मनुष्य सरलता से सफलता का वर्णन कर सकता है।

विशेष

1. राम नाम की महिमा का आकर्षक गान।
2. भक्ति भाव का सुन्दर स्वरूप।

3. शान्त रस का मनोहारी परिपाक।
4. 'तर जाना', 'गति पाना', 'काम बनना', 'कवि कुल राई होना' आदि मुहावरों का सहज प्रयोग।
5. सरल और बोधगम्य भाषा का अनुकरणीय स्वरूप।
6. आकर्षक गेय पदावली।
7. 'गीध गति', 'भए भजि' में अनुप्रास अलंकार।

(2) *लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।*
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।

प्रसंग– हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेंदु हरि8श्चंद्र की नाट्य कृति 'अंधेर नगरी' श्रेष्ठ प्रहसन है। इसमें साहित्यकार ने समकालीन यथार्थ बोध कराने का सफल प्रयत्न किया है। 'अंधेर नगरी' प्रहसन में प्रथम दृश्य भूमिका के रूप में दिया गया है, जिसमें गुरु व शिष्य के मधुर संबंधों के आधार पर शांत रस संचार की भावना है। दोनों ही पात्र भारतीय संस्कृति और आदर्श के प्रतीक स्वरूप हैं। इनकी समस्त प्रक्रियाएं जीवनोपयोगी दिखाई देती हैं। यहां यह तथ्य सामने आता है कि ईश्वर भक्ति के आधार पर लक्ष्य प्राप्त करना सफल हो जाता है।

व्याख्या– मानव मन में जिस प्रकार तर्क–वितर्क का स्वरूप होता है उसी प्रकार अनुकूल और प्रतिकूल दो विचार सदा अल्पाधिक रूप में प्रसुप्त (सोए) अथवा जागृत (जागे) होते हैं। एक ओर त्याग की भावना मनुष्य को उच्च स्थान पर ले जाती है तो दूसरी ओर लालच का निम्न भाव अनेक निम्नताओं के जन्म का कारण बनता है। इसके ही आधार से ईर्ष्या, द्वेष और वैमनस्य आदि उत्पन्न होकर जीवन के लिए कंटक सिद्ध होते हैं। मनुष्य मान–सम्मान के लिए जीता है और उसका अस्तित्व भी इन्हीं गुणों के कारण बनता है। लेकिन लोभ की निम्नता मान और सम्मान को पूरी तरह समाप्त कर घृणित और असभ्य प्राणी बना देती है। इसीलिए मनुष्य को जीवन में लोभ नहीं करना चाहिए। लोभ मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति है जिसके कारण उसका मार्ग अन्धकार में विलुप्त हो जाता है, चिन्तन में निम्नता आ जाती है और हर्ष के स्थान पर विषाद भर जाता है। इस प्रकार जीवन नरक के समान कष्टदायी, यातना देने वाला बन जाता है और उदासी से भर जाता है।

विशेष

1. जीवनोपयोगी आदर्श भाव–प्रस्तुतीकरण।
2. उपदेशात्मक, लयात्मक भाषा प्रयोग।
3. दोहा छन्द की योजना।
4. शान्त रस का आदर्श परिपाक।
5. सरल बोध गम्य शब्द चयन।

(3) *चने बनावैं घासीराम। जिन की झोली में दूकान।।*
चना चुरमुर चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुंह खोलै।।
चना खावै तौकी मैना। बोलै अच्छा बना चबैना।।
चना खाय गफूरन मुन्ना। बोलै और नहीं कुछ सुन्ना।।

चना खाते सब बंगाली। जिन की धोती ढीली ढाली।।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाह बगाहे।।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।।
चने जोर गरम–टके सेर।

प्रसंग– भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत प्रहसन 'अंधेर नगरी' के द्वितीय दृश्य में मध्य बाजार में विभिन्न प्रकार की दुकानें सजाई गई हैं। प्रत्येक दुकानदार अपने सामानों की बिक्री में तत्पर दिखाई देता है। कितना अनूठा हास्य प्रचार है घासीराम का। वह अपने स्वादिष्ट चने का महत्व बताता हुआ कह रहा है–

व्याख्या– घासीराम अपने स्वादिष्ट चने को बेचने के लिए बार–बार 'चने जोर गरम' की आवाज लगाता है। उसका कहना है कि मैंने अनोखा और आकर्षक चना बनाया है और झोली में चना रखता हूं, यह झोली ही मेरी चलती–फिरती दुकान है। चना पूरी तरह गर्म है। इसका अनुभव तो इसकी आवाज से ही समझ सकते हैं। इसको देखकर और इसकी चरमुराहट को सुनकर सब के मुंह में पानी भर आता है। मेरे चने को सर्वश्रेष्ठ मधुभाषी प्राणी भी खाकर धन्य हो जाते हैं और फिर इसकी बड़ाई किए बिना नहीं रह पाते हैं। उनके मुंह से चने की श्रेष्ठता का गुणगान सुना जा सकता है। इस मनमोहक चने को खाने वाला इसके स्वाद में इतना खो जाता है कि अन्य सभी स्वाद भूल जाता है। यह चना और उसका स्वाद उसके दिमाग पर छा जाता है। यह चना भारत के सभी क्षेत्रों में चर्चित है। बंगालवासी एक ओर ढीली धोती पहिनने और विनम्रता के लिए प्रसिद्ध हैं तो दूसरी ओर जायकेदार चनाप्रिय होते हैं। मुसलमान अपनी कट्टरता और दृढ़ता के लिए सुविख्यात हैं। वे भी चने के स्वाद के लिए लालायित रहते हैं। चने का रंग उन पर उभरता है तो वे भी झूम उठते हैं।

अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए आए और धीरे–धीरे शासक बन गए। उनकी विषम प्रक्रिया लगातार चलती रही। भारतीयों पर टैक्स का बोझा बढ़ाते रहे। यह उनकी लूट का प्रमुख आधार था। इतने निरंकुश और विषम गति चलने वाले अंग्रेज भी चने की ओर खिंचे आते थे। क्या विचित्र बात थी कि चने हमारे खाते थे और हम पर ही दिन प्रतिदन टैक्स बढ़ाते जाते थे।

विशेष

1. छन्दबद्ध लयात्मक काव्य रूप।
2. स्वादिष्ट चने का मनोहारी प्रभाव
3. चना चुरमुर–चुरमुर में वृत्यानुप्रास अलंकार
4. चुरमुर–चुरमुर अनुकरणात्मक शब्द का सुन्दर प्रयोग
5. टैक्स (Tax) अंग्रेजी शब्द का सहज प्रयोग।

(4) *"ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैरा"*

प्रसंग– प्रस्तुत वाक्य भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'अंधेर नगरी' के द्वितीय दृश्य की प्रमुख पात्रा कुंजड़िन के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। बाजार की पात्रा साग, फूल और फल बेचती हुई भारत की यथार्थ स्थिति का बोध कराती है।

व्याख्या– हिन्दुस्तान के फलों में ककड़ी (फूट) और बैर जगतप्रसिद्ध हैं। इसका स्वाद चतुर्दिक आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। इसी प्रकार भारतवर्ष की आपसी फूट भी बहुचर्चित है। भारत की आपसी लड़ाई अंग्रेजों के लिए मेवा सिद्ध हुई, अंग्रेज हमारे शासक बन गए और हम दास बन गए। इस फूट और बैर ने देश को पराधीनता की बेड़ी में जकड़ दिया और चारों ओर अंधकार छा गया।

विशेष

1. व्यंग्य प्रधान शैली।
2. भावात्मक गम्भीरता।
3. फूट और बैर में दो–दो अर्थ (फूट = मतभेद, ककड़ी, बैर = बैर, दुश्मनी)।
4. संवादात्मक तथा लयात्मक सुन्दर भाषा का प्रयोग।
5. आकर्षक और हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना।
6. सूक्ष्म भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति।

(5) *चूरन अमल वेद का भारी। जिस को खाते कृष्ण मुरारी।*
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना।।

प्रसंग– पाचक वाला बाजार का एक पात्र है जो चूर्ण बेचने के माध्यम से समाज, राजनीति, अर्थ आदि सभी संदर्भों का चित्रण करता हुआ उस पर करारा व्यंग्य करता है।

व्याख्या– चूरन में इतनी अपार शक्ति है कि इसको खाकर व्यक्ति वैद्य बन सकता है अर्थात समस्त ज्ञान–विज्ञान में पारंगत हो सकता है। कृष्ण में जो सोलह कलाओं की प्रवीणता आई है वह इसी चूरण की देन है अन्यथा चक्र सुदर्शन धारण करना, नृत्य में प्रवीण होना और उसके साथ ही वीर्य कर्म में प्रवीण होना संभव न होता। यह चूरन इतना स्वादिष्ट और मधुर है कि विषम से विषम रंग रूप वाला भी आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। जिसका प्रबल उदाहरण श्याम रंग के कृष्ण का आकर्षक, सलोना स्वरूप है। कृष्ण के रूप, रंग तथा कलाओं पर अनादिकाल से सब मोहित हैं।

विशेष

1. सरल, सहज और बोधगम्य भाषा।
2. हृदयस्पर्शी मनोहारी।
3. गेय और लयात्मक सुन्दर रचना।
4. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का मणिकांचन योग।
5. 'भारी, मुरारी' और 'पचलोना, सलोना' में अत्यन्त ध्वनि समान्तरता का आकर्षण स्वरूप।

(6) *चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।*
चूरन ऐसा हट्टा–कट्टा। कीना दांत सभी का खट्टा।।

प्रसंग– इन पंक्तियों में अंग्रेजों पर व्यंग्य रंग बिखेरा गया है। जिस प्रकार चूर्ण सामान्य किन्तु चटपटे स्वाद के लिए विख्यात होता है उसी प्रकार अंग्रेजी शासन का स्वरूप है अर्थात अंग्रेजों का आगमन भारतीयों के लिए आशा और प्रेरणादायक बनना था। किन्तु हुआ कुछ विपरीत।

व्याख्या– पाचक वाला चूरन के माध्यम से अंग्रेजों पर व्यंग्य करता हुआ कहता है कि इनका आगमन जब से हुआ है तब से ही भारतवर्ष का मान–सम्मान ही नहीं धन–बल भी सतत घटता चला जा रहा है अर्थात् इनमें अन्याय व शोषण की प्रबल विषम प्रवृत्ति दिखाई देती है। चूरन का मानवीकरण करते हुए कहता है कि इसकी बलवत्ता या शक्ति के कारण ही यह सब पर अपना विषम प्रभाव डाल रहा है। इसकी शक्ति औरों की शक्ति हरण का कारण बन रही है। कौन ऐसा भारतीय है जो इससे बराबरी कर सके। प्रत्येक भारतीय का मन पूरी तरह से बुझा हुआ, शक्ति क्षीण सी और साहस लुप्त सा लगता है। इस प्रकार इसका विषम और दूरगामी प्रभाव सब पर दिखाई देता है।

विशेष

1. 'दांत खट्टे करना', 'हट्टा–कट्टा होना', 'धन बल घटाना' मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है।
2. 'चूरण ऐसा हट्टा–कट्टा' में मानवीकरण अलंकार है।
3. हट्टा–कट्टा में अनुप्रास अलंकार।
4. लयात्मक रूप अंत ध्वनि समान्तरता का अनुकरणीय प्रयोग।
5. सरल प्रचलित शब्द प्रयोग का सुन्दर शिल्प विधान।

(7) *चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।।*

प्रसंग–बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रहसन कृति 'अंधेर नगरी' के द्वितीय दृश्य में तत्कालीन वातावरण शासन के नाम पर लूटपाट और विषमता दिखाई गई है। पाचकवाला अपने चूरन के माध्यम से अंग्रेज, अंग्रेजी शासन और ऐसे शासन की अव्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करता हुआ जन सामान्य को सचेत कर रहा है।

व्याख्या– वर्तमान समय में अंग्रेजी शासन का अत्याचार व अनाचार बढ़ता जा रहा है। इस शासन का प्रत्येक अंग्रेज अधिकारी खान–पान में बहुत निपट (चतुर) है। सारा स्वाद अर्थात सुखद स्थितियों को वह समेट लेना चाहता है और इस चूरन की तरह समग्र स्वाद को अपनाने के लिए वह भारतवर्ष के मान–सम्मान, संस्कृति–सभ्यता और धन ऐश्वर्य सब को लूट लेना चाहता है। ऐसी अव्यवस्थित उलझी हुई प्रशासनिक स्थिति में चारों ओर अव्यवस्था, अत्याचार का ही साम्राज्य है। कानून केवल आम जनता के लिए है जो अंधकार में भटक रही है और दुख पा रही है। व्यवस्था प्रदान करने वाले अब स्वयं ही कानून को अपना अधिकार मानकर भारतीयों पर अत्याचार कर रहे हैं। इस प्रकार ऐसे अनुशासन में चारों ओर अंधकार, लूटपाट और शोषण का ही साम्राज्य है।

विशेष

1. अंधेर नगरी के अंधेर का प्रेरक चित्रण।
2. 'हजम होना' मुहावरे का बहुत अच्छा प्रयोग।
3. 'खाता जाता' 'खाते जाते' में अन्त्यस्वर समान्तरण।
4. पूरे पद में व्यंग्य की प्रधानता है।
5. साहेब, हजम, कानून, पुलिस आदि विदेशी शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
6. तत्सम, तदभव के साथ विदेशी शब्दों का सहज प्रयोग।

(8) *मछरिया एक टके कैं बिकाय।*

लाख टका के बाला जोबन, गाहक सब ललचाय।

नैन मछरिया रूप जाल में देखत ही फसि जाय।

बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय।।

प्रसंग–'अंधेर नगरी' प्रहसन में विशेष भावों का सुन्दर समायोजन किया गया है। प्रहसनकार की मान्यता है कि मनुष्य स्वभाव में सुन्दरता का प्रेमी है। यहां मछली सुन्दरता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत की जा रही है। मछली वाली बाजार में मछली बेच रही है। दुर्भाग्य है वह बिकने की चीज नहीं पर यह सुन्दरता की प्रतीक बाजार में बिक रही है। मनुष्य की आदत है सुन्दरता को अपना बनाना। इस अंधेर नगरी में मछली सौन्दर्य स्वरूप में बाजार में बिक रही है।

व्याख्या– सृष्टि की सबसे सुन्दर और प्रतीक रूप मछली आज बाजार में क्रय व विक्रय हेतु रखी गई है। अर्थात दुर्भाग्य है कि वह बिकने वाली वस्तु बन गई है। यह मछली अपनी बचपन अवस्था से यौवन अवस्था की देहली पर कदम रख रही है और ऐसे में इसके सौन्दर्य को आंका नहीं जा सकता। यह अनमोल सौन्दर्य है और इस अमूल्य सौन्दर्य को कौन ऐसा प्राणी होगा जो इसे खरीद कर अपना नहीं बना लेना चाहेगा। क्योंकि सुन्दरता मनुष्य की आंखों को अपनी ओर खींच ही लेती है। यह खिंचाव असंदिग्ध है। मनुष्य की आंख मछली के सौन्दर्य रूपी जाल में पूरी तरह से बंध गई है, फंस गई है अर्थात सौन्दर्य आंखों को बांध चुका है। ये बाजार में बिकती हुई मछलियां पानी के अभाव में तड़पती दिखाई देती हैं। ये जीवन और मौत में संघर्ष कर रही हैं और यह अभाव यदि उन्हें ज्यादा दिन तक रहा तो उनका जीवन संदिग्ध हो सकता है।

कवि यहां अंधेर नगरी में बढ़ते हुए अत्याचार को देखकर आध्यात्मिक धरातल को छूता हुआ कह रहा है कि यहां की प्रत्येक आत्मा रूपी मछली परमात्मा रूपी पानी के शिथिल संबंधों के कारण लगातार व्यथित, उदास और निराश दिखाई देती है। उसकी मुक्ति परमात्मा रूपी पानी के सघन संबंध से ही संभव है।

विशेष

1. प्रकृति के परोक्ष चित्रण का आकर्षक रूप।
2. शृंगार का सहज और आकर्षक पुट।
3. अध्यात्म का आकर्षक रूप।
4. नैन मछरिया, रूप जाल में रूपक अलंकार।
5. 'टके में बिकना' 'लाख टके का होना' 'फंस जाना, आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग।

(9) *सेत सेत सब एक से, जहां कर्पूर कपास।*

ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।

कोकिल बापस एक सम, पण्डित मूरख एक।

इन्द्रायन, दाड़िम विजय, जहं न नेकु विवेक।।

बसिए ऐसे देस नहिं, कनक वृष्टि जो धेय।

रहिए तो दुख पाइये, पान दीजिए रोय।।

प्रसंग– प्रहसनकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'अंधेर नगरी' के तृतीय दृश्य में कहा है कि जब व्यक्ति विषम परिस्थितियों और भयानक समस्याओं में उलझ जाता है तो उसे दिशा बोध नहीं होता। वह लगातार भ्रमित होकर संकट से घिरता जाता है। ऐसे में मन को एकाग्र कर चिन्तन की आवश्यकता होती है और किसी अनुभवी या गुरु के निर्देश से ही मार्ग मिलता है। इसीलिए भारतेंदु जी ने जंगल के एकान्त वातावरण में पहुंचकर अपने शिष्यों को संबोधित और उद्‌बोधित करने के लिए महन्त को प्रस्तुत किया।

व्याख्या– महंत कह रहे हैं कि जिस स्थान अथवा देश में ऊपर से समान दिखाई देने वाली सभी वस्तुओं को एक मान लिया जाता है जबकि उसकी आन्तरिक भावना अथवा गुणवत्ता में जमीन आसमान का भेद होता है। वहां सत्य, असत्य निराकरण संभव नहीं है। कर्पूर जो अत्यंत शीतल और सुगन्धित पदार्थ है और कपास जो रंग मात्र से सफेद है, साथ ही फूलने के पश्चात बिखर जाता है। जहां इन दोनों को समान मान्यता दी जाती है, ऐसे देश अथवा स्थान पर भी निवास नहीं करना चाहिए। वहां रहकर व्यक्ति दिग्‌भ्रमित ही रहेगा, उसकी बुद्धि अविकसित ही रह जाएगी। ऐसे देश में मधुरतम स्वर में जन–जन को मोहनेवाली कोयल और कटु स्वर से मानव मन को आहत करने वाले कौए को समान महत्व दिया जाता है। इतना ही नहीं अत्यंत विडम्बना है कि वहां विद्वान, सज्जन और उदार व्यक्तियों को बुद्धिहीन के ही समान स्थान दिया जाता है अर्थात दोनों में भेद कर पाना उस देश के लिए संभव नहीं हो पाता। ऐसे देश में जंगली विषैले, सुन्दर दिखने वाले इन्द्रायन और स्वादिष्ट अनार के फल में कोई भेद नहीं किया जाता है। वहां नैतिकता, सहजता, उदारता, सहिष्णुता आदि मानवीय उच्च भावों के लिए कोई स्थान नहीं है। गुरु की मान्यता है कि ऐसे देश में यदि पूर्णरूपेण धन सम्पन्न होने की संभावना हो तब भी नहीं रहना चाहिए। यदि इस आदर्श और जीवनोपयोगी विचार की उपेक्षा कर कोई व्यक्ति रहना चाहेगा तो निश्चय ही वह जीवन पर्यन्त दुख, कठिनाइयों, समस्याओं में उलझा रहेगा। प्राणान्त के समय तक उसे सुख और शान्ति मिलना असंभव है। उसके प्राण रोते–रोते ही निकलेंगे। इस प्रकार यह कहावत पूर्ण सत्य प्रतीत होती है कि जैसा विचार है वैसा ही प्रतिफलन।

विशेष

1. अंधेर नगरी की विषमता का स्पष्ट चित्रण।
2. गुरु–शिष्य संवाद शैली का सुन्दर प्रयोग।
3. कर्पूर कपास में छेकानुप्रास है।
4. कनक वृष्टि मुहावरे का प्रयोग है।
5. 'सेत–सेत' में वृत्यानुप्रास है।
6. 'सेत–सेत' सब में वीप्सा अलंकार।
7. दोहा छन्द की योजना।

(10) *कुल मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग लुगाई।।*

जात पात पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।

प्रसंग– भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत प्रहसन 'अंधेर नगरी' के चतुर्थ दृश्य के प्रथम चरण में गोवरधनदास एकान्त वास के समय मदमस्त होकर अंधेर नगरी का विश्लेषण कर रहे हैं।

व्याख्या– अंधेर नगरी का साम्राज्य पूर्ण निराशाजनक और दुःखदायी बन गया है। जिस प्रकार घने अंधकार में जड़–जंगम, पक्षु–पक्षी विभिन्न मानव ही नहीं, समस्त रंग भी कालिमा के रंग में घुलकर अर्थात काले होकर एकाकार हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार इस साम्राज्य में सर्वत्र मान–सम्मान का अस्तित्व खो चुका है। सभी मनुष्य अपनेपन को खोकर निराशा में डूबे हैं। नर–नारी किसी में भी मानवीय गुणों का दर्शन नहीं होता। जिस प्रकार अध्यात्म में 'वसुधैव कुटम्बकम' या 'सारा संसार एक परिवार' की भावना होती है। ठीक उसी प्रकार इस देश की विषम और हृदय विदारक स्थिति है। यहां सभी जाति, सभी सम्प्रदाय व सभी धर्म के व्यक्ति निराशा में डूबे हुए हैं। अध्यात्म में भगवान का भजन करने वाला ही आदर्श चिंतक होता है और यहां इस सम्प्रदाय में सबको किंकर्तव्यविमूढ़ और अंधा बना दिया है।

विशेष

1. अंधेर नगरी का विषम प्रभाव चित्रण।
2. लोग लुगाई समस्त पद या द्वन्द्व समास।
3. लोग–लुगाई में छेकानुप्रास।
4. भक्ति भावना का भी सहजाभास।
5. सरल और सुगम भाषा का प्रयोग।
6. अन्यन्य ध्वनि समान्तरता।
7. गेय ध्वनि पदों का सुन्दर संयोजन।

(11) *वेश्या जोरू एक समाना। बकरी गऊ एक करि जाना।*
सांचे मारे–मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि–चढ़ि बोलैं।।

प्रसंग– अंधेर नगरी में सज्जन, विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। इसके कारण ही समाज गहरे अंधकार में खोया हुआ था। जिस समाज में ऐसे लोगों का सम्मान नहीं होता वह पतनोन्मुखी ही होता है। प्रहसनकार का कथन है कि ऐसे समाज के प्रति सुधारवादी बनकर समाज में रहना आवश्यक है।

व्याख्या– समाज में पतित व दुश्चरित्र नारी गणिका और घर को व्यवस्थित करने वाली, जीवन भर साथ निभाने वाली पत्नी को समान दृष्टि से देखा जाता था अर्थात सुख–दुख में सहभागी बनने वाली पत्नी को भी प्रेम और सम्मान प्राप्त नहीं था। पशुओं में पूज्य व कृषि प्रधान देश भारतवर्ष के लिए परम उपयोगी गाय को भी बकरी के समान अर्थात न के बराबर महत्व दिया जाता था। ऐसी अंधदृष्टि समाज को अंधविश्वासों में बांधे हुए थी। ऐसे वातावरण में सत्य पथ पर चलने वाला, आदर्श का वर्णन करने वाला, भारतीय संस्कृति का उपासक, सहृदय और उदार मन वाला व्यक्ति ठोकर खाता हुआ इधर–उधर निःसहाय फिरता रहता था। इसके विपरीत बाह्य आडम्बर करने वाले, दूसरों को मानसिक ही नहीं शारीरिक पीड़ा पहुंचाने वाले, निर्मम, निर्दयी और अनैतिक व्यक्ति समाज में सर्वाधिक सम्मान प्राप्त कर रहे थे। यह विषम परिस्थिति वातावरण को घायल कर रही थी। ऐसी पतनोन्मुखी परिस्थितियों के प्रति सजग होना अनिवार्य है।

विशेष

1. अंधेर नगरी की विषम परिस्थिति का स्पष्ट चित्रण।
2. हृदय स्पर्शी भाव चित्रण।
3. आकर्षक बिम्ब विधान।
4. 'मारे मारे डोलना', 'सिर चढ़ कर बोलना' मुहावरों का सुन्दर प्रयोग।

(12) *प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी। सोई राजसभा बलभारी।।*
सांच कहैं वे पनही खावैं। झूठ बहु विधि पदवी पावैं।।

प्रसंग– भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत प्रहसन 'अंधेर नगरी' के पंचम दृश्य में इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि अंधेर नगरी में सज्जन, विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। इसके कारण ही समाज गहरे अंधकार में खोया हुआ था। जिस समाज में ऐसे लोगों का सम्मान नहीं होता, वह पतनोन्मुखी ही होता है। प्रहसनकार का कथन इस प्रकार है।

व्याख्या– अंधेर नगरी में विचित्र स्थिति थी। वहां कथनी और करनी में आकाश–पाताल का अन्तर दिखाई देता था। बाहर से सरल, सभ्य, विनम्र और उदार दिखाई देने वाला व्यक्ति अपने वास्तविक रूप को छिपाए रखता है। वह तो अंदर से पूर्ण कपटी और अहंकारी होता था। शासन में भी ऐसे ही लोगों का बोलबाला था। यही कारण है कि पूरी तरह विकृत प्रजातंत्र और राजतंत्र पूर्ण–रुपेण घायल था। ऐसे शासन में सच बोलने वाली विपन्न और सहानुभूति व्यक्त करने वाला व्यक्ति सदा पीड़ित ही रहता था। प्रशासन की ओर से भी उसे प्रताड़ना मिलती थी। समाज में भी वह उपेक्षित रहता था। यह कितनी विडम्बना है कि झूठ बोलने वाला क्रूर और कठोर व्यवहार करने वाले को प्रशासन में उच्च पद मिलता रहा है। सारा देश ऐसे अंधकार में पूरी तरह खोया हुआ उद्देश्यविहीन लग रहा था।

विशेष

1. अंधेर नगरी की विषम परिस्थियों का जीवन्त चित्रण।
2. प्रशासनिक व्यवस्था का संवेदनात्मक चित्रण।
3. सरल और बोधगम्य भाषा–प्रयोग।
4. 'पनही खाना', 'पदवी पाना' मुहावरों का प्रभावोत्पादक प्रयोग।
5. 'पनही' आंचलिक शब्द का प्रयोग।
6. व्यंग्य प्रधान भाषा का सुन्दर स्वरूप।

(13) *छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहि लागे।*
भीतर होई मलिन की कारो। चाहिये बाहर रंग चटकारो।।

प्रसंग– अंधेर नगरी में सज्जन, विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। इसके कारण ही समाज गहरे अंधकार में खोया हुआ था। जिस समाज में ऐसे लोगों का सम्मान नहीं होता वह पतनोन्मुखी ही होता है। नाटककार का कथन इस प्रकार है–

व्याख्या–अंधेर नगरी में चारों ओर धोखाधड़ी व्याप्त थी। सत्यवादी और सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों की संख्या अत्यंत सीमित हो गई थी। समस्त क्रूर, निर्दयी और

छल प्रपंच करने वाले व्यक्तियों का आतंक छाया हुआ था। उन सब की गतिविधियां एकाकार हो रही थीं। कहा भी गया है– 'चोर चोर मौसेरे भाई'। इसका प्रभाव सज्जन, सुशील और विनम्र प्राणियों पर पड़ता था। सहज व्यक्तियों को लगातार कष्ट सहन के लिए बाध्य होना पड़ता था। छली व्यक्तियों के सामने उनके समस्त प्रयत्न विफल हो जाते थे। यह ऐसा युग था जब विषम आंधी चल रही थी। अधिकांश प्राणियों के मन, मस्तिष्क मे बुराइयों का साम्राज्य व्याप्त था। यदि उनका स्वरूप सुन्दर था तो वह मात्र बाहर से अर्थात वे बाहर से सरल व सुन्दर लगते थे। किन्तु अन्दर से कलुषता, निम्नता लोलुपता भरी हुई थी।

विशेष

1. अंधेर नगरी का यथार्थ चित्रण।
2. तत्कालीन समाज के खोखलेपन का स्पष्ट चित्रांकन।
3. गोवरधनदास का विश्लेषण शक्ति परिचायक व्यक्तव्य।
4. सरल, प्रवाह पूर्ण भाषा प्रयोग।
5. 'लाख करना' 'एक न लगना', 'रंग चटकारा होना' आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग।

(14) *धर्म अधर्म एक दरसाई। रजा करै सो न्याव सदाई।।*
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले अरु प्यादे।।

प्रसंग– हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ प्रहसन अंधेर–नगरी के पंचम दृश्य में स्पष्ट किया गया है कि अंधेर नगरी में सज्जन, विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्तियों को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। इसके कारण समाज गहरे अंधकार में खोया हुआ था। जिस समाज में ऐसे लोगों का सम्मान नहीं होता वह पतनोन्मुखी ही होता है। नाटककार का कथन इस प्रकार है–

व्याख्या– अंधेर नगरी में धार्मिक भावना पूर्ण रूपेण समाप्त हो चुकी थी, क्योंकि अधर्म का प्रबल और विपरीत प्रभाव समाज में व्याप्त था। जिस प्रकार घनी अंधेरी रात में प्रकाश का अस्तित्व समाप्त हो जाता है उसी प्रकार इस राज्य में अधर्म फैला हुआ था। धार्मिक व्यक्तियों को कहीं भी शरण और सम्मान नहीं दिया जाता था। शासक के द्वारा दिया गया निर्णय ही सत्य और आदर्श माना जाता था। वह चाहे कितनी भी विषम और विपरीत स्थिति उत्पन्न करने वाला हो, विचित्र न्याय व्यवस्था थी, इस नगरी की। यहां तो यह कहावत चरितार्थ हो रही थी–'जिसकी लाठी उसकी भैंस'। ऐसे समाज का प्रत्येक सदस्य बाहर से विनम्र, उदार और आकर्षक व्यक्तित्व वाला लगता था, किंतु उसका आंतरिक व्यक्तित्व शून्य ही था। अर्थात ऐसे व्यक्तियों के हृदय से मानवीय गुणों, दया, ममता, मधुरिमा और विनम्रता आदि लुप्त हो चुकी थी। चाटुकारों का प्रभुत्व था। सारा समाज और उसकी व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त होकर दुखदायी बन गई थी।

विशेष

1. विषम एवं विपरीत भाव चित्रण।
2. अंधेर नगरी के अंधेर का चित्रण।
3. शासन की शिथिलता का चित्रण।
4. संस्कृत, हिन्दी तथा विदेशी भाषा की मिश्रित शब्दावली।

(15) *अन्धा–धुन्ध मच्यौ सब देसा। मानहुं राजा रहत बिदेसा।*
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई। मानहुं नृपति बिधर्मी कोई।।

प्रसंग–भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'अंधेर नगरी' का पंचम दृश्य विशेष आकर्षक है। 'गोवरधनदास' 'अंधेर नगरी' में विचरण कर उसकी विषमता को राग काफी में गाते हुए वहां की स्थिति व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या– ऐसे समाज में चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा व्याप्त था अर्थात हर व्यक्ति अपने लक्ष्य से भटका हुआ दिखाई देता था। किसी में भी शांति और संतोष का भाव नहीं था। समाज और शासन अस्त–व्यस्त थे। यह सब देखकर लगता था मानो देश का शासक अपना राज्य छोड़कर विदेश चला गया है। अराजकता का भयानक वातावरण बना हुआ था। ऐसी दुखदायी परिस्थिति को देखकर प्रहसनकार कल्पना करता है कि शायद यहां का राजा क्रूर और निर्दयी ही नहीं निम्न प्रवृतियों का भी है। यही कारण है इस समाज में गाय, ईश्वरभक्त और ज्ञान–विज्ञान की धरोहर श्रुतियों (वेदों) को सम्मान नहीं दिया जाता था।

विशेष

1. अंधेर नगरी के जनहित से भिन्न वातावरण का मार्मिक चित्रण।
2. 'मानहुं राजा रहत विदेश' उत्प्रेक्षा अलंकार।
3. 'अंधाधुंध मचाना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग।
4. तद्भव शब्दों की बहुलता से सहज और सामान्य भाषा का आकर्षक स्वरूप।
5. गोवरधनदास का मानसिक चित्रण।
6. अंधेर नगरी के प्रशासन की शिथिलता और विषमता का चित्रांकन।
7. यथार्थवादी चिंतनशील दृष्टिकोण।

(16) *ऊंच नीच सब एकहि सारा। मानहुं ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा।।*
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।

प्रसंग–प्रस्तुत भावप्रधान व्यंग्यात्मक पंक्तियां 'अंधेर नगरी' प्रहसन के पांचवें दृश्य से ली गई हैं। इसमें गोवरधनदास अंधेर नगरी के वातावरण और अव्यवस्था को देखकर दुःखी हो जाता है। ऐसे में विश्लेषणात्मक गीत गाता है–

व्याख्या– इस अंधेर नगरी में आदर्श और उच्च गुणों से समन्वित व्यक्तियों को वही स्थान मिलता था जो कि निम्न और पतित व्यक्तियों को। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि श्रेष्ठ व्यक्तियों को अपमान और दुःसह जीवन जीना पड़ता था। ऐसी विचित्र कल्पना केवल भक्ति भावना के अध्यात्म धरातल पर दिखाई देती है। वहां जितनी ही सुखद स्थिति होती है यहां उतनी ही दुखद और विषम स्थिति बनी हुई है। ब्रह्म ज्ञान के आधार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव उत्पन्न होता है और सभी समरस में बहते हैं। यहां सभी अंधकार में बह रहे हैं। इस प्रकार अंधेर नगरी का सारा वातावरण विषाक्त व दुखदायी बन चुका था।

विशेष

1. 'अंधेर नगरी' की विषमता का हृदयस्पर्शी चित्रण।
2. 'मानहुं ब्रह्म ज्ञान बिस्तारा' में उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

3. 'एकहिं सारा' मुहावरे का सहज प्रयोग।
4. 'अंधेर नगरी.....राजा' कहावत का प्रभावोत्पादक प्रयोग।
5. सरल सुमधुर और गेय भाषा की आकर्षक योजना।
6. सरल, प्रचलित शब्दों का रोचक प्रयोग।

(17) *हम लोगों ने महाराजा से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फांसी दे दो, बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी की सजा जरूर है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुम को फांसी दे।*

प्रसंग– भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत प्रहसन 'अंधेर नगरी' के पंचम दृश्य में दर्शाया गया है कि अंधेर नगरी की अराजकता और अव्यवस्था से सारा समाज दुखी था। न्याय के नाम पर अन्याय हो रहा था। प्यादे के द्वारा व्यक्त किया गया भाव ऐसे ही तथ्य का निरूपण करता है।

व्याख्या–प्रशासन का प्रत्येक कर्मचारी, अधिकारी राजा के आदेश का अन्धभक्त होकर पालन करता था। प्यादे का कहना था कि बकरी के मर जाने पर किसी न किसी को सजा अवश्य देनी होगी। मुख्य कारण न ज्ञात होने पर और फांसी के फंदे को बड़ा देखकर किसी स्वस्थ और मोटे आदमी को खोजने की प्रक्रिया शुरू हुई है। जब तक किसी को फांसी नहीं दी जाएगी, तब तक न्याय की स्थिति नहीं मान सकते थे। फांसी हत्यारे को मिले अथवा कोई अकारण ही फांसी के तख्ते पर झूल जाए। यह कितना हास्यास्पद व व्यंग्य प्रधान तथ्य है कि 'करे कोई और भरे कोई'। हत्या कोई और कर रहा था और फांसी किसी और के लिए तैयार थी। प्यादा अपने भाव को स्पष्ट करते हुए कहता है कि गोवरधनदास तुम्हें कोतवाली इसलिए ले जा रहे हैं कि तुमको फांसी दी जा सके। और अंधेर–नगरी का शासन दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखद था।

विशेष

1. व्यंग्य प्रधानता।
2. प्रशासन की पतनोन्मुखी स्थिति।
3. सामाजिक उत्पीड़न का हृदयस्पर्शी चित्रण।
4. गोवरधनदास के ऊपर घिरते हुए संकट का चित्रांकन।
5. तत्सम, तद्भव के साथ अर्ज, हुकुम, आदमी, सजा, जरूर आदि उर्दू शब्दों का रोचक प्रयोग।

(18) *इसमें दो बातें हैं– एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़े तो वह न–जाने क्या बात बनावे कि हमीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फांसी देंगे।*

प्रसंग–अंधेर नगरी के पंचम दृश्य में यह प्रकट करने का प्रयास किया गया कि अंधेर नगरी की अराजकता और अव्यवस्था से सारा समाज दुःखी था। न्याय के नाम पर अन्याय ही हो रहा था। प्यादे के द्वारा व्यक्त किया गया भाव ऐसे ही तथ्य का निरुपण करता है।

व्याख्या– प्यादे के द्वारा 'अंधेर नगरी' की अव्यवस्था, दुर्दशा और भयानक स्थिति का चित्रण किया जा रहा है। बकरी की मृत्यु के पश्चात उस प्रशासन की दो कमियां उभर कर सामने आ रही हैं। पहली मुख्य बात यह है कि राजा का न्याय अत्यंत कठोर और विषम है। यहां का प्रत्येक व्यक्ति मानसिक रूप से दुखी है। क्योंकि यह पता नहीं रहता कि कब, किसको दण्डित किया जाएगा। प्रायः सत्यवादी, परिश्रमी और उदार व्यक्ति ही कठिनाइयों में फंसे रहते हैं। प्यादे के अनुसार उसकी अपनी समस्या और अधिक भयानक है। यदि वह गोवरधनदास साधु को जो कि सज्जन है, छोड़ता है तो राजा और भी क्रोधित हो सकते हैं। अपने भाषणों में अंधेर नगरी की कटुता को प्रकट करता है कि उस राज्य में सर्वाधिक पीड़ा, कष्ट और दुर्दशा ऐसे ही व्यक्तियों अर्थात साधु–महात्माओं की होती रही है। प्यादे के द्वारा प्रकट किया गया भाव एक ओर गोवरधनदास को फांसी देने के आदेश का स्पष्टीकरण है तो दूसरी ओर अंधेर नगरी की दुर्गति का चित्रण है।

विशेष

1. अंधेर नगरी के प्रशासन की पतनोन्मुखी दशा का चित्रण।
2. सज्जनों की दुर्दशा का हृदयस्पर्शी संकेत।
3. 'सिर पर छहराना', 'बात बनाना' 'डर से ना मुटाना', 'दुर्दशा होना' आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग।
4. सरल, प्रचलित, बोधगम्य शब्दावली का प्रयोग।
5. अंधेर नगरी के राजा का निम्न चरित्र–चित्रण।
6. अभिनयात्मक भाषा का अनुकरणीय रूप।

(19) *हाय! मैंने गुरुजी का कहना न माना। उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना। अरे इस नगरी का नाम ही अंधेर नगरी और राजा नाम चौपट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे इस नगर में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावें।*

प्रसंग– अंधेर नगरी में पूरी तरह अव्यवस्था व्याप्त है, जिसके परिणामस्वरूप सज्जन दुखी और उत्पीड़न के शिकार हो रहे हैं। ऐसे में गुरु के निर्देश न मानने पर संकट की स्थिति हो गई है। शिष्य गोवरधनदास पश्चाताप करता हुआ गुरु के उपदेश को याद कर रहा है।

व्याख्या– फांसी के भयंकर संकट के आ जाने पर गोवरधनदास पश्चाताप कर रहा है कि उसने गुरु की आज्ञा का पालन नहीं किया। उनके संदेश और आदेश के विपरीत आचरण करके उस नगरी में रहने से ही यह संकट आया है। अब उसका मन पूरी तरह से गुरु की शिक्षा को याद करके कह रहा है कि नगरी रहने योग्य नहीं है। शिष्य ने गुरु की बातों की उपेक्षा कर वहां निवास किया। अब उसे पता लग गया है कि इस नगरी का नाम अंधेर नगरी है। इसके नाम के ही अनुरूप यहां चारों ओर अंधेर अर्थात अराजकता व्याप्त है। यहां का राजा पूर्णतः निर्दयी, ज्ञानहीन और निम्न प्रवृत्ति का व्यक्ति है। इसलिए राज्य व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी है। शिष्य का मन पूरी तरह निराश हो चुका है। उसे बचने की कोई आशा नहीं है। शिष्य को चारों ओर अंधकार दिखाई दे रहा है। निराशा में डूबा हुआ वह सहारे के लिए आवाजें देता है किन्तु उसकी

ध्वनि वातावरण में फैलती हुई खो जाती है। कोई धर्मात्मा और फकीर उसे दूर तक दिखाई नहीं देता जो उसकी रक्षा के लिए सामने आए।

इस प्रकार शिष्य का मन निराशा में डूबा हुआ, अंधेर नगरी में जूझता हुआ दिखाई दे रहा है।

विशेष

1. गुरु महत्व का स्पष्ट प्रतिपादन।
2. अंधेर नगरी की हृदय विदारक अव्यवस्था का चित्रण।
3. गोवर्धनदास का भौतिक आकर्षणों से जुड़ा हुआ चरित्र–चित्रण और मार्मिक पश्चाताप।
4. राजा के निम्न चरित्र का उदाहरण पुष्ट चित्र।
5. हाय! मैंने– यह मैंने न सुना। अरे! इस नगर–। अरे! इस नगर–। सम्बोधनात्मक वाक्य रचना का आकर्षण प्रयोग।
6. श्रेष्ठ संवादात्मक और अभिनयात्मक भाषा का अनुकरणीय स्वरूप।
7. अन्तःकरण के उद्‌गारों का सूक्ष्म और स्पष्ट चित्रांकन।

(20) *जहां न धर्म न बुद्धि नहिं न सुजन समाज।*
ते ऐसहिं आपुहिं नसे, जैसे चौपट राज।।

प्रसंग–प्रहसनकार ने प्रहसन के अन्त में यथार्थ चित्र के आधार पर अपने उद्देश्य व जीवनोपयोगी शिक्षा को प्रतिपादित करने का सफल प्रयत्न किया है। इसमें अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों ही भावों का सुन्दर उपयोगी समन्वय किया गया है।

व्याख्या–पूरे सन्दर्भ के मार्मिक समापन के साथ गुरु महन्त अपने सद्‌विचारों का उद्‌घाटन करते हुए कहते हैं कि वही समाज मनुष्य के रहने के लिए उपयोगी है जहां धार्मिक भावना मनुष्य को सहिष्णु, उदार और सहयोगी बनाती है। बुद्धिमत्ता के आधार पर मनुष्य चिंतन करता हुआ कर्म पथ पर सतत गतिशील रहता है। नैतिकता के हरे भरे धरातल पर आपसी सामंजस्य और व्यावहारिक जीवन जीता है। ऐसा समाज सज्जनों की कृतियों से सदा गतिशील, प्रसन्न और प्रेरक बना रहता है। इसके विपरीत जिस समाज में धार्मिकता, बौद्धिकता और नैतिकता का अभाव होता है वह समाज पतनोन्मुखी होता है। वहां का प्रत्येक व्यक्ति दिशा–शून्य, कर्त्तव्यहीन और निराशा में डूबा रहता है। ऐसे समाज का पतन निश्चित है। अंधेर नगरी के समाप्त होने और चौपट राजा के दिवंगत होने के प्रमाण सामने हैं। निश्चय ही विषय चिन्तन मनुष्य को नाश की ओर ले जाता है।

विशेष

1. आदर्श विचार ही मनुष्य और समाज की उन्नति का आधार है।
2. 'अंधेर नगरी और चौपट राजा' के सन्दर्भ से जीवनोपयोगी शिक्षा का प्रतिपादन।
3. दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग।
4. 'सुजन समाज' में 'स' वर्ण की क्रमशः आवृत्ति से छेकानुप्रास अलंकार।

5. 'समाज', 'चौपट राज' में 'ज' अन्त्य ध्वनि की सुन्दर समान्तरता।
6. लयात्मकता और गेयता का सुन्दर विकसित स्वरूप।
7. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग।

अपनी प्रगति जांचिए

1. 'अंधेर नगरी' प्रहसन में प्रथम दृश्य किस पर आधारित है?
   (क) पत्नी और गणिका पर (ख) गुरु व शिष्य के मधुर संबंधों पर
   (ग) ईश्वर भक्ति पर (घ) इनमें से कोई नहीं
2. 'अंधेर नगरी' नाटक के रचयिता कौन हैं?
   (क) जयशंकर प्रसाद (ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी
   (ग) भारतेंदु हरिश्चंद्र (घ) सरदार पूर्ण सिंह

1.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद (व्याख्यांश)

जयशंकर प्रसाद ने अतीतजीवी नाटकों के माध्यम से वर्तमान का व्यावहारिक बोध कराने के साथ–साथ देशवासियों को संकटपूर्ण स्थितियों में दृढ़प्रतिज्ञ करने का सराहनीय प्रयास भी किया। अपने आदर्शपूर्ण विचार नाटकीय चरित्रों एवं स्थितियों द्वारा सम्प्रेषित करके भविष्य के प्रति भी एक सबल धारणा अपने नाटकों में उतारी। प्रसाद जिस सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्श तथा विचार–दृष्टि से जुड़े हुए रहे, वह उनके नाटकों में भी परिलक्षित होती है। प्रसाद का समय राष्ट्रीय चेतना के जागरण और सामाजिक जीवन में क्रांति का समय था। जहां एक ओर कांग्रेस जैसे संगठन द्वारा देश में स्वतंत्रता के संघर्ष का आंदोलन चल रहा था, वहीं दूसरी ओर नारी की दुर्दशा को सुधारने के लिए अनेक समाज सुधारक भी आंदोलन चला रहे थे। भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा, नारकीय जीवन का मुख्य रूप है– उसका बेमेल–विवाह में बंध कर कई प्रकार से अयोग्य, अत्याचारी पति के साथ रहने को बाध्य होना। शताब्दियों से भारतीय स्त्री इस यंत्रणा को सहते हुए, जूझते हुए किसी प्रकार जीवन जी रही है लेकिन सामाजिक आडम्बरों, खोखली मान्यताओं के कारण उसे वैवाहिक बंधन से मुक्ति नहीं मिलती। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के द्वारा प्रसाद ने स्त्री जीवन के इस कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

नारी के जीवन के यथार्थ की प्रस्तुति के साथ नारी की स्थिति में अभीष्ट सुधार भाव से प्रेरित प्रसाद पुरुष के शोषण चक्र से नारी मुक्ति से संबंधित प्राचीन ग्रंथों के प्रमाण को सामने रखते हैं। इसके द्वारा वह सिद्ध करना चाहते हैं कि स्त्री–पुरुष संबंधों पर विचार करते हुए प्राचीन भारतीय मनीषियों ने नारी–मोक्ष अथवा तलाक जैसे बिन्दुओं पर भी विचार किया है। प्रो. रमेश गौतम के शब्दों में, "भारतीय समाज में उपेक्षित एवं शोषित नारी वर्ग की यथार्थ स्थिति के प्रति सजग एवं आदर्श प्रेरित प्रसाद इतिहास से उदाहरण देकर यहां मुक्ति चेतना के संदेश द्वारा इतिहास को निर्माणात्मक भूमिका में ला खड़ा करते हैं। इतिहास का भविष्य की संभावना के रूप में उपयोग की रचनात्मक इच्छा का स्वर नाटककार की 'सूचना' में प्राप्य है। इतिहास के प्राचीन पृष्ठों से चंद्रगुप्त

और ध्रुवस्वामिनी के पुनर्लग्न की संभावित घटना के अन्वेषण एवं पुष्ट प्रमाणों को खोजते हुए प्रसाद ने अपनी प्रगतिशील दृष्टि को भी प्रमाणित किया है, तभी तो उन्होंने रामगुप्त के आधिपत्य से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की परम्परागत एवं अन्वेषण धर्मसम्मत व्यवस्था पुरोहित द्वारा दिलवाई है। नाटककार वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्राचीन चिंतन दृष्टि से पुष्ट अपनी नाटकीय परिणति द्वारा विवाह–मोक्ष एवं पुनर्विवाह से संबंधित भारतीय मनीषियों द्वारा सुझाए मार्ग का पुनर्बोध करता है। शास्त्रीय मनोवृत्ति वालों को चाहे चंद्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न असंभव, विलक्षण और कुरुचिपूर्ण लगे किंतु प्रसाद ने प्रगतिशील दृष्टि के अनुरूप समस्या के आधुनिक समाधान के लिए प्राचीन प्रमाणों को खोजने के साथ–साथ तदनुसार उद्देश्यगत नाटकीय अवधारणा भी की है।"

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक राज्याधिकार से संबंधित कार्यक्षेत्र की समस्या को भी चित्रित करता है। यदि राजा दुर्बल, अयोग्य, अत्याचारी, कायर और राज्य के सम्मान की रक्षा करने में असमर्थ हो तो क्या उसे अपने पद पर बने रहने का अधिकार है या उसे उसके पद से हटा देना चाहिए? उसके स्थान पर सुयोग्य शासक नियुक्त किया जाना चाहिए? यह प्रश्न उस राजतंत्र एवं उत्तराधिकारानुसार राजा बनने वाले युग में विशेष महत्व रखता है। उस समय पदच्युत करने का अधिकार जनता के पास नहीं था। प्रसाद ने परिषद् द्वारा की गई व्यवस्था के माध्यम से यह समाधान प्रस्तुत किया है कि अयोग्य व्यक्ति को शासक बनने का कोई अधिकार नहीं है। रामगुप्त ने षड्यंत्र कर शासन तो प्राप्त कर लिया लेकिन उसकी रक्षा करने में असमर्थ था। शक आक्रमण का समाचार सुनकर भी वह प्रेम संबंधी चिंता में लीन रहा। युद्ध की समस्या पर विचार करने की बजाय उसे हिजड़ों और बौनों का नृत्य अधिक आकर्षक और मोहक लगा। वह शासक के रूप में अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सका। इस कारण परिषद् ने रामगुप्त के विरुद्ध निर्णय दिया और उसे अपना पद छोड़ने को विवश होना पड़ा।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, अपनी रक्षा मैं स्वयं करूंगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूं। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं करूंगी।

प्रसंग– 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने समाज में पुरुष के हाथों नारी की शोचनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण किया है। पुरुष की प्रभुता तथा प्रेमजाल में फंसकर पराधीन रहने की परंपरा स्त्रियों की चेतना में प्रवेश कर गई है। इस चक्र में फंसकर भी उन्हें निराशा, उपहास और पीड़ा ही मिलती है। पुरुष के प्रति पूर्ण समर्पण के बाद भी उनकी दशा दुःखद ही रहती है। ध्रुवस्वामिनी नाटक स्त्रियों की इसी दशा का वर्णन करता है। जब ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त, शकराज संधि की शर्त के अनुसार उपहार स्वरूप देना चाहता है तो इसका सोया हुआ आत्माभिमान जाग उठता है। पहले तो वह रामगुप्त से रक्षा के लिए अनुनय–विनय करती है, लेकिन उसका कोई प्रभाव रामगुप्त पर नहीं पड़ता है। तब ध्रुवस्वामिनी का आक्रोश फूट पड़ता है।

व्याख्या – ध्रुवस्वामिनी यह देख कि कोई उसकी रक्षा करने वाला नहीं है, आहत होती है और मान–मर्यादा, परंपरा के मुखौटे को अलग कर रामगुप्त को लज्जाहीन, कायर

करार देती है। वह कहती है कि अगर कोई उसकी रक्षा करने वाला नहीं है तो वह स्वयं अपनी रक्षा करेगी। उसका यह संवाद वहां उपस्थित पुरुष समाज को चुनौती देता प्रतीत होता है। अपने स्वाभिमान को जागृत कर वह कहती है कि वह लोगों को प्रसन्न करने के लिए दी जाने वाली उपहार की वस्तु नहीं। उसके हृदय की संवेदनाएं मृत नहीं है, उसके हृदय में स्वाभिमान है जो उसे अपनी रक्षा के लिए प्रेरित करता है।

विशेष– यहां ध्रुवस्वामिनी का रामगुप्त द्वारा ठुकराए जाने पर सुषुप्त स्वाभिमान जागृत होता दिखाई देता है। ध्रुवस्वामिनी का चरित्र पुरुष प्रधान समाज के बंधनों से नारी मुक्ति का प्रयास करता दिखाई देता है।

(2) अमात्य, तुम गौरव किसको कहते हो? वह है कहीं? रोज जर्जर शरीर पर अलंकारों की सजावट, मलिनता और कलुष की ढेरी पर बाहरी कुंकुम–केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ाता। कुटिलता की प्रतिमूर्ति! बोलो! मेरी वाग्दत्ता पत्नी और पिता द्वारा दिए हुए मेरे सिंहासन का अपहरण किसके संकेत से हुआ? और छल से .....।

प्रसंग– यह संवाद चंद्रगुप्त के साथ हुए अत्याचारों का वर्णन करता है। शकराज की मृत्यु के बाद जब ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त को राजा और पति मानने से इंकार करती है तो शिखरस्वामी उन्हें बीती बातें भूलने को कहता है और चंद्रगुप्त को भाई–भाई की तरह रहने की सलाह देता है। तब चंद्रगुप्त का आक्रोश फूट पड़ता है।

व्याख्या– चंद्रगुप्त शिखरस्वामी से कहता है कि गुप्त कुल का गौरव तो पहले ही रामगुप्त और उसके षड्यंत्रों के कारण जर्जर हो चुका है। इसलिए अब गौरव की बात करना वैसे ही व्यर्थ है जैसे जर्जर शरीर पर अलंकार की सजावट व्यर्थ होती है। गंदगी के ढेर पर कुंकुम लेप उसकी शोभा नहीं बढ़ाता है। गुप्तकुल की मर्यादा रामगुप्त के मर्यादाहीन आचरण से पहले ही अपमानित हो चुकी है। यह शिखरस्वामी को कुटिलता की प्रतिमूर्ति कहता है क्योंकि उसी ने रामगुप्त की षड्यंत्र में सहायता की थी। उसी के कहने पर चंद्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी का विवाह रामगुप्त से छल से करवाया गया। चंद्रगुप्त के पिता उसे ही राजा बनाना चाहते थे किंतु उसके अधिकार का हरण भी शिखरस्वामी ने किया।

विशेष– यहां चंद्रगुप्त का आंतरिक आक्रोश फूटता दिखाई पड़ता है। जब शिखरस्वामी की नीचता की पराकाष्ठा हो जाती है तब चंद्रगुप्त अपने अधिकार की बात करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक किसके द्वारा रचित है?

(क) भारतेंदु हरिश्चंद्र (ख) जयशंकर प्रसाद

(ग) हजारी प्रसाद द्विवेदी (घ) डॉ. रामकुमार वर्मा

4. ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह किसके साथ होता है?

(क) रामगुप्त (ख) बुधगुप्त

(ग) प्रतिगुप्त (घ) चंद्रगुप्त

1.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा (व्याख्यांश)

डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी 'दीपदान' बहुत चर्चित एकांकी है। यह शीर्षक दो अर्थों को व्यंजित करता है। आमतौर पर देवताओं के समक्ष दीपक जलाने की प्रक्रिया को 'दीपदान' कहा जाता है। लेकिन इस एकांकी में 'दीपदान' का गहरा तथा सार्थक अर्थ है। चित्तौड़ के महाराजा सांगा के सबसे छोटे पुत्र कुंवर उदय सिंह की संरक्षक धाय पन्ना अपने पुत्र चंदन के प्राण कुर्बान कर देती है। राज्य के उत्तराधिकारी उदय सिंह के प्राण बचाने के लिए। पन्ना का अपने पुत्र को अपनी मातृभूमि के लिए कुर्बान कर देना ही इस एकांकी का वास्तविक मंतव्य है।

एकांकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचा गया है। सन् 1536 में चित्तौड़ के राजा सांगा की मृत्यु के उपरांत महाराजा सांगा के भाई पृथ्वीराज के दासी पुत्र बनवीर को राज्य का जिम्मा सौंपा जाता है। वह तब तक राज्य का संरक्षक है जब तक राजकुमार उदयवीर सिंह राज्य संभालने की उम्र में नहीं आ जाता। अभी उसकी उम्र चौदह वर्ष है। इसलिए राज्य का संचालन का जिम्मा बनवीर पर है।

दूसरी तरफ राजकुमार के संरक्षण का जिम्मा पन्ना के कंधों पर है। वह राजकुमार की सुरक्षा को लेकर बेहद चौकन्ना रहती है। राज्य में त्योहार के अवसर पर भी राजकुमार को राजमहल से बाहर नहीं जाने देती है। बनवीर राज्य में त्योहार की घोषणा करता है। पूरा राज्य उत्सव में डूब जाता है। इसी समय का लाभ उठाकर वह पहले रात के वक्त सोते हुए विक्रमादित्य की हत्या कर देता है।

इस घटना की सूचना पन्ना को मिलती है। उसका संदेह गहरा हो जाता है। वह बनवीर की मंशा को पहले ही भांप चुकी होती है। लेकिन वह इतना क्रूर और अत्याचारी हो जाएगा इसकी कल्पना वह नहीं कर पाती है। सामली के द्वारा पन्ना को सूचना प्राप्त होती है कि बनवीर के सैनिकों ने पूरे राजमहल को घेर लिया है। पन्ना अपने विवेक से काम लेती है। जूठे पत्तल फेंकने वाले कीरत की टोकरी में राजकुमार को भर कर सुरक्षित स्थान तक पहुंचा देती है।

उसे मालूम है कि बनवीर आज रात को राजमहल में प्रवेश कर राजकुमार की हत्या का प्रयास करेगा। पन्ना अपने बेटे चंदन को राजकुमार उदय सिंह के कक्ष में सुला देती है। वह जानती है कि बनवीर की आंखों में खून सवार है। वह किसी भी कीमत में राज्य को अपने कब्जे में करना चाहता है। पन्ना का अंदाजा सच निकलता है। वह बहुत गुस्से में राजमहल में प्रवेश करता है। पहले वह पन्ना को लालच देकर अपने साथ मिलाना चाहता है लेकिन पन्ना की राष्ट्रभक्ति इतनी सस्ती नहीं है कि थोड़े से लालच में उसका हृदय परिवर्तन हो जाए। पन्ना के लिए नमक की कीमत खून से ज्यादा है। वह अपने राज्य के उत्तराधिकारी की सुरक्षा के लिए हर कीमत चुका सकती है।

बनवीर गुस्से में राजकुमार के कक्ष में जाता है और सोते हुए बालक को कुंवर उदयवीर समझकर तलवार से प्रहार कर देता है। पन्ना यह सब अपनी आंखों के आगे घटते हुए देखती है। अपने पुत्र की जान को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कुर्बान कर देती है। पन्ना का त्याग और बलिदान वास्तविक 'दीपदान' के रूप में प्रस्तुत होता है।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) कुल–दीपक! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय मां! वे नाचने वाली लड़कियां तुलजा भवानी की पूजा में दीपदान करके ही नाच रही हैं। वे दीपक छोटे–से कुंड में कैसे नाचते हैं (मचलते हुए स्वर में) चलो न धाय मां। तुम उनका दीपदान देख लो। जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं, उसी तरह वे भी नाच रही है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा सांगा का सबसे छोटा पुत्र कुंवर उदय सिंह नगर में चल रहे नाच–गाने को देखने की जिद करता है लेकिन उसकी संरक्षक पन्ना उसकी सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। वह जानती है कि महाराणा सांगा के भाई पृथ्वीराज का दासी पुत्र बनवीर अपना एकछत्र राज्य कायम करना चाहता है। इस कारण वह कुंवर उदय सिंह की हत्या कभी भी कर सकता है। पन्ना जानती है कि कुंवर उदय सिंह पूरे चित्तौड़ का असली वारिस है। इस राज्य पर हक उसी का है।

व्याख्या : पन्ना, उदय सिंह को बताती है कि वह इस राज्य का कुल–दीपक है। वह इस पर चौंक कर पूछता है कि वह यदि कुल–दीपक है तो कहीं उसे उसी तरह दान नहीं करेंगी न, जिस तरह से नगर की लड़कियां दीपदान करके नृत्य कर रही हैं। तुलजा भवानी की पूजा में दीपदान करके वे लड़कियां नाच रही हैं। उदय सिंह महज तेरह वर्ष की आयु का लड़का है। वह यह नहीं समझता है कि उसकी जान को कितना खतरा है। न जाने कितने लोग राज्य को पाने की कामना में उसके दुश्मन बन बैठे हैं। वह अबोध है और सामान्य बालकों की तरह हठी भी है। अपनी जिद पूरी करने के लिए गुस्सा करता है। अपनी असुरक्षा के बोध से अंजान बालक कुंवर उदय सिंह अपनी धाय मां यानी पन्ना से हठ करता है कि नगर में नृत्य कर रही लड़कियों का नृत्य चल कर देख लें। वह दीपक की तरह नृत्य करती हुई लड़कियों को देखकर चकित भी है। उसे आश्चर्य होता है कि जिस तरह से दीपकों की लौ नाचती हैं, उसी तरह लड़कियां भी नृत्य कर रही हैं।

विशेष

1. एक राजकुमार के बाल हठ को बेहद खूबसूरती से अभिव्यक्त किया गया है।
2. 'कुल–दीपक' का अर्थ राज्य के उत्तराधिकारी से है। यानी राजकुमार कुंवर उदय सिंह चित्तौड़ राजवंश का इकलौता उत्तराधिकारी है।
3. 'तुलजा भवानी' नगर की आराध्य देवी है।
4. नगर में नाच–गान का त्योहार मनाया जा रहा है। उसी नाच–गान को देखने की जिद् राजकुमार ठान बैठे हैं।
5. 'धाय मां, अर्थात् पन्ना राज्य के प्रति अपनी जिम्मेदारी को बखूबी समझती है। देश–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत है। अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए प्रतिबद्ध है। उनकी प्रतिबद्धता अविस्मरणीय है।

(2) भाग्य! भाग्य तो सबका होता है, धाय मां! ये नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है। मेरे आगमन का संदेश पहले ही पहुंचा देते हैं, तो वह भी इनका भाग्य है और जब

मेरे पैर रुक जाते हैं तो ये मौन हो जाते हैं। वह भी इनका भाग्य है। भाग्य तो सबका होता है, धाय मां! तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो! मैं कौन होती हूं बीच में बोलने वाली।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश 'दीपदान' से उद्धृत है। यह एकांकी राजकुमार वर्मा द्वारा लिखित चर्चित एकांकी है। इसकी कथा सन् 1536 के आस–पास चित्तौड़ नगर की है। महाराणा सांगा की मृत्यु के उपरांत राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र कुंवर उदय सिंह है जिसकी रक्षा की जिम्मेदारी पन्ना के कंधों पर है और वह अपनी जिम्मेदारी को बखूबी समझती है। इस एकांकी में 'सोना' नामक सोलह वर्षीय किशोरी है जो रावल सरूपसिंह की पुत्री है, वह पन्ना से तर्क वितर्क कर रही है। सोना, कुंवर उदय सिंह को खोजते–खोजते राजमहल में आयी है। उसे आश्चर्य होता है कि आज समूचा नगर उत्सव मना रहा है। नाच–गान में व्यस्त है लेकिन राजकुमार इस उत्सव में क्यों शामिल नहीं हुआ है।

सोना केवल रूपवती ही नहीं, वह बेहद समझदार भी है। जब पन्ना कहती है कि उसका जीवन राज–सेवा में व्यतीत हो रहा है, यह उसके भाग्य के कारण है। इसी 'भाग्य' की व्याख्या करते हुए सोना अपना तर्क प्रस्तुत करती है।

व्याख्या : सोना यह स्पष्ट करती है कि इस संसार में जो कुछ है या जो कुछ भी हो रहा है। सब कुछ भाग्य के कारण ही है। वह कहती है कि जो 'नूपुर' उसके पैरों में बंधे हैं, वह 'नूपुर' का भाग्य है। पैरों की गति के अनुसार वह गीत गाते हैं, इसमें भी नूपुर का अपना भाग्य है। वह कहीं जाती है, उसके आगमन से पहले ही नूपुर बजकर उसके आने की सूचना पहुंचा देते हैं, यह भी नूपुर अपने भाग्य के कारण ही ऐसा कर पाता है। जब उसके पैर रुक जाते हैं, तब नूपुर मौन हो जाते हैं, उनसे आवाज नहीं निकलती है, वह भी नूपुर का भाग्य है। सोना यह बताना चाहती है कि सभी की अपनी–अपनी नियति है। हर चीज अपनी नियति के अनुसार गतिमान है। किसी घटना को कोई टाल नहीं सकता है। जिस चीज का होना तय है, उसे कोई रोक नहीं सकता है।

सोना यह भी कहती है कि तुम नगर के उत्सव में शामिल नहीं होना चाहती हो, तो न हो, महाराज बनवीर का समर्थन नहीं करती हो तो न करो। इस सबके बीच में वह कौन होती है बोलने वाली या किसी तरह का हस्तक्षेप करने वाली। वह नियति पर यकीन करती है और उसे इस बात पर पूरा यकीन है कि जिस चीज का होना तय है, उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती है।

विशेष

1. सोना की तर्क शक्ति लाजवाब है।
2. जितनी वह रूपवती है, उतनी ही तीक्ष्ण बुद्धि की भी है।
3. इस गद्यांश में विधि के विधान का महिमा मंडन किया गया है।
4. सोना, नगर की वास्तविकता से पूरी तरह अंजान है। इसलिए वह इस तरह से तर्कों का सहारा ले रही है।

(3) सोना : धाय मां, तुम विद्रोह की बातें करती हो।

पन्ना : आंधी में आग की लपटें तेज ही होती हैं, सोना। तुम भी उसी आंधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे ये सारे नूपुर बिखर जाएंगे। न जाने किस हवा का

झोंका तुम्हारे इन गीतों की लहरों को निगल जाएगा। चित्तौड़ राग–रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहां आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियां नहीं?

सोना : (क्रोध से चीखकर) धाय मां!

पन्ना : तोड़ो ये नूपुर! यहां का त्योहार आत्म–बलिदान है। यहां का गीत मातृभूमि की वंदना का गीत है। उसे सुनो और समझो।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। इस प्रसंग में कुंवर उदय सिंह के साथ खेलने वाली रूपवती किशोरी सोना, राजकुमार उदय सिंह से मिलने राजभवन में आती है। वह जानना चाहती है कि राजकुमार नगर के त्योहार में क्यों शामिल नहीं हुआ है। राजकुमार अपनी धाय मां पन्ना से जिद करता है कि वह लड़कियों के नृत्य को देखने चले लेकिन पन्ना बिना किसी सुरक्षा व्यवस्था के वहां जाना उचित नहीं समझती है। वह राजकुमार की इच्छा की परवाह नहीं करती है, उसे राजकुमार की सुरक्षा की चिंता है। इस कारण अपनी धाय मां से नाराज होकर राजकुमार अपने कक्ष में चला गया है। इसी बीच सोना का आगमन होता है और वह, पन्ना से तर्क–वितर्क करने लग जाती है। जब पन्ना वर्तमान में चित्तौड़ के शासक बनवीर पर संदेह करती है, तब सोना जवाब देते हुए कहती है–

व्याख्या : धाय मां, तुम विद्रोह करने की बातें करती हो। बनवीर के खिलाफ बातें करना ही विद्रोह करने जैसा है। वह चाहती है कि धाय मां बनवीर पर संदेह न करे। चूंकि वह बनवीर की कूटनीति और महत्वाकांक्षा से पूरी तरह से अंजान है। इस प्रसंग में पन्ना, सोना को चित्तौड़ नगर की वास्तविकता से रू–ब–रू करवाते हुए समझाती है कि आंधी की तेज हवाओं में आग की लपटें भी तेज हो जाती हैं। बनवीर तेज आंधी की तरह है और उस तेज आंधी का शिकार तुम भी होगी। तुम उस तेज में संभल नहीं पाओगी और लड़खड़ाकर गिर जाओगी। जिन नूपुरों के भाग्य पर तुम इतरा रही हो, वे नूपुर भी बिखर जाएंगे। जब हवा का झोंका आएगा तो तुम्हारे गीत को भी वही झोंका निगल जाएगा। पन्ना बनवीर को आंधी मानती है, वह उसकी महत्वाकांक्षा और छल से भी परिचित है। वह जानती है कि इस नगर पर वह कभी भी कब्जा कर सकता है। इस कारण सोना को वह संकेत करते हुए समझाती है।

पन्ना अपने नगर के इतिहास से भी परिचित है। वह जानती है कि इस नगर पर हमेशा से विपत्ति आती रही है। इसलिए इस नगर में हमेशा चौकन्ना रहना पड़ता है। दुश्मनों की टेढ़ी निगाह ने इस नगर में हमेशा उथल–पुथल मचाई है। इस कारण नगर की स्त्रियों के लिए यह नगर राग–रंग के लिए वक्त नहीं देता है। इस नगर में स्त्रियों को हर वक्त जौहर के लिए तैयार रहना पड़ता है। पन्ना सोना से कहती है कि इन नूपुरों को तोड़ दे। इनकी मधुर ध्वनि में डूबने की आवश्यकता नहीं है बल्कि यहां के त्योहार के वास्तविक अर्थ को समझने की चेष्टा करो। इस नगर का त्योहार 'आत्म बलिदान' है और 'मातृभूमि की वंदना' का गीत ही असली गीत है। इस यथार्थ को भली भांति समझ जाओ।

विशेष

1. पन्ना की अपने राज्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठा और राज–भक्ति प्रेरित करती है।
2. बनवीर की साजिश को पन्ना बखूबी समझती है।

3. चित्तौड़ के इतिहास में 'जौहर' के महत्व को रेखांकित किया गया है कि किस तरह से राज्य पर विपत्ति आने पर राज्य की स्त्रियां सामूहिक रूप से अग्निकुंड में कूद जाती हैं लेकिन दुश्मनों के आगे झुकने के लिए राजी नहीं होती हैं।

(4) सामली : (बिलखते हुए) हाय! सर्वनाश हो रहा है। क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे? हाय! क्या हो रहा है। तुलजा भवनी! तुम चित्तौड़ की देवी हो। कैसे कहूं कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही। मेवाड़ का भाग्य....

पन्ना : (फिर प्रवेश कर) सो रहा है। मेरा कुंवर सो रहा है। कहीं तो कुछ नहीं हुआ। कुंवर जी रुठ गए थे, वे तलवार को लिए हुए भूमि पर ही सो गए। तलवार उनके हाथों से खिसक गई है पर वे शांति से सो रहे हैं। मेरे कुंवर को कुछ नहीं हुआ।

समाली : कुंवर अच्छे हैं। तुलजा भवानी कुशल करें। पर धाय मां! महाराणा विक्रमादित्य जी की हत्या हो गयी।

पन्ना : (चीखकर) महाराणा की हत्या हो गई? किसने की?

सामली : बनवीर ने। महाराणा सो रहे थे। उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी।

प्रसंग : प्रस्तुत संदर्भ रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। अंतःपुर की परिचारिका सामली घबराकर राजभवन में प्रवेश करती है। वह संशकित है कि कहीं बनवीर ने राजकुमार वीर कुंवर सिंह की हत्या तो नहीं कर दी है। वह पन्ना से गुहार लगाती है कि किसी तरह से बनवीर से राजकुमार के प्राण की रक्षा करें। इस प्रसंग में सामली और पन्ना का संवाद है।

व्याख्या : सामली रोते–बिलखते हुए राजभवन में प्रवेश करती है और घबराकर यह संवाद बोलते जाती है। वह समझ गई है कि नगर अब सुरक्षित नहीं रहा है। बनवीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर दी है। और अब वह राजकुमार को अपने रास्ते से हटाने के लिए राजभवन की ओर आगे बढ़ रहा है। नगर का सर्वनाथ होना तय हो चुका है। सामली कहती है कि मेवाड़ को अब ये दिन भी देखना बाकी रह गया है। चित्तौड़ की देवी तुलजा भवानी का स्मरण करते करते हुए कहती है कि तुम चित्तौड़ की देवी हो। हम सभी लोग तुम्हारी आराधना करते हैं। तुम्हें हमारी रक्षा करनी चाहिए। तुम तो परम शक्तिशाली हो। तुम्हारे रहते चित्तौड़ का कोई क्या बिगाड़ सकता है। लेकिन सच यह है कि चित्तौड़ अब सुरक्षित नहीं रह गया है मन यह बात मानने को तैयार नहीं है कि तुलजा भवानी के त्रिशूल में शक्ति नहीं रही है। न जाने मेवाड़ के भाग्य में क्या लिखा है।

पन्ना, सामली को आश्वस्त करती है कि राजकुमार को कुछ नहीं हुआ है। वह पूरी तरह से सुरक्षित है। बस केवल नाराज होकर अपनी तलवार लेकर भूमि पर ही सो गए हैं। सिर्फ तलवार उसके हाथों से खिसक गई है पर वे पूरी तरह से सुरक्षित हैं और नींद से सो रहे हैं। पन्ना अपने राजकुमार की कुशलता को लेकर आश्वस्त है। जब सामली को यह बात मालूम पड़ती है कि राजकुमार पूरी तरह से सुरक्षित है, तब वह देवी तुलजा भवानी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है। वह पन्ना को इस घटना की सूचना भी देती है कि रात के वक्त नींद में सो रहे विक्रमादित्य की हत्या बनवीर ने कर दी है। यह घटना कोई मामूली घटना नहीं है। इस घटना के बाद चित्तौड़ का भविष्य असुरक्षित हो गया है।

विशेष

1. बनवीर के प्रति जो संदेह था, वह सच साबित हुआ है।
2. विक्रमादित्य को छलपूर्वक मार दिया गया है इससे बनवीर के बुरे चरित्र का रेखांकन होता है।
3. राजकुमार की आयु मात्र तेरह वर्ष की है लेकिन उसका खिलौना तलवार है। वह तलवार लेकर सो रहा है, इससे इस बात का भी पता चलता है कि राजकुमार अबोध उम्र में भी अपने राज्य की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध है।

(5) सामली : धन्य हो धाय मां! पर तुम नहीं भाग सकोगी। तुम महलों से निकल भी न सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे, एक ओर से तो तुम्हारा महल घिर ही चुका था।

पन्ना : हे! भगवान एकलिंग! अब क्या होगा?

सामली : जैसे भी हो कुंवर जी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों की सहायता नहीं मिल सकती?

सामली : सैनिक तो उसके हैं, धाय मां!

पन्ना : और सामंत।

सामली : उनमें इतना साहस नहीं है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। इस प्रसंग में सामली और पन्ना का संवाद है। सामली ने यह सूचना दी है कि बनवीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर दी है। अब राजकुमार कुंवर उदय सिंह के प्राण सुरक्षित नहीं रह गए हैं। किसी भी वक्त बनवीर राजभवन में प्रवेश कर सकता है और राजकुमार पर जान लेवा प्रहार कर सकता है। पन्ना कुंवर उदय सिंह को राजभवन से बाहर निकालकर किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहती है लेकिन सामली समूचे नगर की वास्तविक बताते हुए कहती है।

व्याख्या : धाय मां तुम धन्य हो। राजकुमार की सुरक्षा को लेकर इस कदर व्याकुल हो उठी हो। सामली बताती है कि बनवीर के सैनिक राजभवन को चारों तरफ से घेरने के लिए आ रहे हैं। सैनिकों से बचकर निकलना संभव नहीं है। थोड़ी देर में यह महल चारों तरफ से घेर लिया जाएगा। पन्ना इस खबर को सुनकर चिंतित हो उठती है। वह यह सोचकर परेशान हो उठती है कि न जाने अब क्या होगा? सामली कहती है कि किसी भी हाल में राजकुमार की रक्षा करनी ही होगी। पन्ना चाहती है कि राज्य के सैनिक राजकुमार की रक्षा के लिए सहायता करें लेकिन सामली उसे यह भी बताती है कि राज्य के सैनिक हमारे नहीं हैं, वे अब बनवीर के लिए समर्पित हैं। राज्य के सैनिकों से किसी तरह की उम्मीद नहीं की जा सकती है। पन्ना का ध्यान राज्य के सामंतों की तरफ जाता है। वह सामली से पूछती है कि सैनिक हमारी सहायता न करें लेकिन सामंत तो कर ही सकते हैं। सामली बताती है कि बनवीर की शक्ति के आगे राज्य के सामंत बेबस और लाचार हैं। उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि बनवीर का मुकाबला कर सकें।

विशेष

1. राजकुमार के प्राण की रक्षा के लिए राज्य की एक स्त्री किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार है।
2. वह हर स्तर पर अपना प्रयास करने के लिए प्रतिबद्ध है।
3. पन्ना राजकुमार के जीवन को हर कीमत पर बचाना चाहती है।
4. सामली महल में आकर असुरक्षित राजकुमार की जान के प्रति केवल आगाह ही नहीं करती है बल्कि उसे प्रेरित भी करती है।

(6) चली गई। कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकुंगी। जो मुझे करना है, वह सामली सुन भी न सकेगी। भवानी! तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया। मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूं। अपने लाल को दे सकूं। यह राजपूतनी का व्रत है। यही राजपूतनी की मर्यादा है। यही राजपूतनी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो। माता के हृदय के स्थान पर पत्थर बना दो जिससे ममता का स्रोत बंद हो जाए। भवानी! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। नगर की परिचायिका सामली राजभवन में आकर पन्ना को सूचित करती है कि बनवीर के सैनिकों ने राजमहल को चारों तरफ से घेर लिया है। उसने नींद में सो रहे विक्रमादित्य की छाती पर तलवार से वार कर उनकी हत्या भी कर दी है। इसी तरह से वह राजमहल में आकर सोते हुए राजकुमार कुंवर उदय सिंह की भी हत्या कर देगा। उसकी इस सूचना से पन्ना व्याकुल हो उठती है और निश्चय करती है कि वह अपने बेटे चंदन को राजकुमार के कक्ष में सुला देगी। बनवीर क्रोध में इस कदर अंधा हो चुका है कि वह पहचान नहीं पाएगा कि बिस्तर पर राजकुमार सोया पड़ा है या चंदन। इस तरह वह अपने बेटे को कुर्बान कर राजकुमार के प्राण को बचा लेगी। सामली, पन्ना की इस योजना पर केवल चकित ही नहीं होती बल्कि उसे लगता है कि एक मां अपने बेटे के प्राण की बलि चढ़ाने के लिए तैयार हो गई है ताकि राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार के प्राण सुरक्षित रहें। इस बात को सामली सुन नहीं पाती है और राजभवन को छोड़कर चली जाती है।

व्याख्या : पन्ना अपने पुत्र चंदन को राजकुमार कुंवर उदय सिंह के कक्ष में सुला देने का निर्णय लेती है ताकि जब बनवीर गुस्से में आकर राजकुमार पर वार करे तब उस स्थान पर राजकुमार नहीं वरन् उसका पुत्र चंदन सोया रहे। यह निर्णय लेना किसी भी मां के लिए बेहद कठिन है। इस निर्णय को सामली सुन तक नहीं पाती है। वहां से सामली जा चुकी है। वह अपने आप से ही कहती है कि सामली जो काम मुझे करना है, वह तुमसे सुना तक नहीं जा रहा है। सोचो यह निर्णय कितना कठिन है। एक मां का हृदय इसके लिए किस प्रकार से तैयार होगा। हे मां भवानी तुमने मेरा हृदय कैसा कर दिया है। मुझे शक्ति दो ताकि मैं इस निर्णय को अंजाम तक पहुंचा सकूं और राजवंश की रक्षा कर सकूं। वह अपने पुत्र की जान को राजवंश की रक्षा के लिए कुर्बान कर देने के लिए खुद को तैयार कर चुकी है। ऐसा वह इसलिए कर रही है कि चित्तौड़ के उत्तराधिकारी के प्राण बच जाएं। उसने राजकुमार की सुरक्षा का प्रण ले रखा है। एक राजपूतनी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकती है। राज्य की सुरक्षा का कर्तव्य ही उसका व्रत है। राज्य की सुरक्षा करना एक राजपूतनी की मर्यादा है। यही उसका

धर्म है। हे भवानी। मेरा हृदय इतना पत्थर का कर दो कि अपने बेटे की जान की आहूति दे सकूं। उसकी ममता का स्रोत बन्द हो जाए इसके लिए मां भवानी से प्रार्थना करती है। इस कर्तव्य के निर्वाहन के लिए पन्ना हर कीमत अदा करने के लिए तैयार है। वह जानती है कि इसी में राज्य की भलाई छिपी हुई है। इतनी बड़ी कीमत चुका कर वह चित्तौड़ की सच्ची स्त्री कहलाना चाहती है।

विशेष

1. देश प्रेम के आगे मां की ममता का मूल्य भी कम हो जाता है।
2. राजकुमार उदय सिंह की रक्षा करने के लिए अपने बेटे चंदन के प्राणों का बलिदान कर देने में राज्य की भलाई समझती है।
3. राज भक्ति की भावना प्रबल है।

(7) आज अंतिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी। तुम क्या जानो कि कल तुम और कुंवर साथ–साथ कैसे भोजन करोगे। कहते थे.... कल तुम परोसकर खिलाना। मैं अब किसे खिलाऊंगी, चंदन। (सिसकियां) तुम्हारे अंगूठे से रक्त की धारा नहीं। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूंगी। मेरे लाल! मेरे चंदन! जाओ यह रक्त धारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीपदान मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी ने किया है। एक बार तुम्हारा मुख देख लूं। कैसा सुन्दर और भोला मुख है। (सिसकियां लेती है।)

प्रसंग : प्रस्तुत प्रसंग रामकुमार वर्मा के एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। इस प्रसंग में पन्ना की ममता और करुणा का उदात्त रेखांकन हुआ है। चित्तौड़ के क्रूर शासक बनवीर की सत्ता लिप्सा पन्ना से छिपी हुई नहीं है। उसे सूचना मिलती है कि बनवीर ने विक्रमादित्य की हत्या कर दी है। इसके उपरांत राज्य के उत्तराधिकारी कुंवर उदय सिंह को षड्यंत्र कर मारने के लिए नगर में नाच–गान का त्योहार मनाने के लिए आदेश दिया है ताकि नगर में सभी का ध्यान उत्सव मनाने पर रहे और वह उदयसिंह की हत्या कर राज्य पर अपना एकछत्र राज्य कायम कर ले। लेकिन पन्ना देशभक्ति और कर्तव्यनिष्ठा के प्रति समर्पित है। वह अपने बेटे चंदन को राजकुमार के कक्ष में सोने के लिए यह जानते हुए भी भेज देती है कि आज बनवीर उसकी हत्या कर देगा। इस प्रसंग में पन्ना की ममता और करुणा का पक्ष उभरकर आता है।

व्याख्या : आज कुंवर उदय सिंह अपनी धाय मां से रुठकर बिना खाए सोने चला गया है। जब यह बात चंदन को पता चलती है तब वह भी तय करता है कि कल साथ मिलकर राजकुमार के साथ भोजन करेगा। उसकी मां पन्ना जानती है कि उसके पुत्र चंदन की यह आखिरी रात है। संभव है कि कल वह राजकुमार के साथ भोजन करने के लिए जीवित भी न बचे। वह सोचती है कि आज आखिरी रात को अंतिम बार भी बेटे को अपने हाथ से भोजन न करा सकी। उसे क्या पता है कि कल वह भोजन करने के लिए जीवित बचेगा भी या नहीं। राजकुमार के भोजन न करने की वजह से उसने भी भोजन करने से मना कर दिया। उसने कहा है कि कल तुम अपने हाथों से परोसकर भोजन करा देना। लेकिन अब वह उसे कैसे भोजन करा पाएगी। चंदन के अंगूठे में चोट लगी है। उस चोट की वजह से रक्त बहा तो उस रक्त को रोक न सकी। जब बनवीर

तलवार से तुम्हारे हृदय पर वार करेगा तब मैं उस रक्त को किस प्रकार से रोक पाऊंगी। मेरे लाल, तुम यह समझना कि तुमने अपने रक्त को मातृभूमि की रक्षा के लिए चढ़ा दिया है। आज मैंने भी अपने दीपक का दान कर दिया है।

पन्ना रोते हुए इन बातों को सोच रही है। उसने अपनी देश भक्ति में अपने दीपक को रक्त में बहा दिया है। क्या ऐसा दीपदान किसी मां ने किया होगा। आज अंतिम बार तुम्हारा मुख देख लेती हूं। कितना भोला है, कितना सुन्दर है तुम्हारा मुख। आज के बाद तुम्हारे मुख को देख भी न पाऊंगी।

विशेष

1. पन्ना का कर्तव्यपरायणता का भाव इतना प्रबल है कि उसके ममत्व का भाव फीका पड़ गया है।
2. पन्ना का त्याग अविस्मरणीय है।
3. पन्ना का साहस प्रेरित करता है।
4. राज्य की सुरक्षा के आगे जीवन का मूल्य गौण है।

(8) धाय मां तो मंगल–कामनाओं की देवी है। वो दीपदान करके चित्तौड़ का कल्याण करेगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूंगा। एक बात और कहूं, पन्ना। मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूं। वहां तुम्हारे लिए तुलजा भवानी का मंदिर बनेगा। मंदिर! सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुममें कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मंदिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के चर्चित एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत है। महाराणा सांगा के भाई पृथ्वीराज का दासी पुत्र बनबीर चित्तौड़ की राजसत्ता को हासिल करना चाहता है। पहले वह रात में सोते हुए विक्रमादित्य की हत्या कर चुका है। उसके बाद 'महाराणा सांगा' के इकलौते वारिस राजकुमार कुंवर उदय सिंह की हत्या करने के लिए राजमहल में दाखिल हो चुका हैं राजकुमार की धाय मां पन्ना अपने राज्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठ है। वह पहले ही राजकुमार को जूठी पत्तल उठाने वाले कीरत बारी की टोकरी में लिटाकर राजमहल से बाहर निकाल चुकी है और राजकुमार के शयनकक्ष में अपने बेटे चंदन को सुला दिया है। राजमहल में बनवीर का सामना पन्ना से होता है। वह पन्ना को लालच देते हुए कहता है।

व्याख्या : धाय मां तुम मंगल–कामनाओं की देवी हो। तुम इस राज्य का मंगल चाहती हो। मैं भी इस राज्य का कल्याण करना चाहता हूं। तुम 'दीपदान' करके चित्तौड़ का कल्याण करना चाहती हो। ठीक है, तुम जरूर करो लेकिन एक बात तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम्हारी कर्तव्यनिष्ठा से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें मारवाड़ की एक जागीर उपहार स्वरूप देना चाहता हूं। वहां तुम्हारे लिए तुलजा भवानी के एक मंदिर का निर्माण करवा दिया जाएगा। मंदिर निर्माण के उपरांत तुम्हारे प्रति लोगों के मन में इतना श्रद्धा का भाव उमड़ेगा कि भवानी और तुममें कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। तुम भी मां भवानी की तरह पूजनीय हो जाओगी। तुम उस मंदिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे। लोगों के मन में तुम्हारे लिए भवानी की तरह भक्ति का भाव रहेगा।

विशेष

1. बनवीर पहले पन्ना को लालच देकर अपनी तरफ मिलाना चाहता है।
2. स्त्री के मनोविज्ञान के आधार पर वह अपनी बात रखता है।
3. पन्ना की तरह खुद को देशभक्त साबित करना चाहता है।
4. वह क्रूर है फिर भी खुद को कल्याणकारी की तरह पेश करता है।
5. पन्ना किसी भी कीमत पर बनवीर के झांसे में नहीं आती है और उसे उसका कर्तव्य याद कराती है कि उसकी तरह ही राजकुमार की रक्षा करना उसका भी दायित्व है।

(9) पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो, महाराज।

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है? चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धांय मां होने पर तुममें इतनी ममता भर गई कि तलवार नहीं देख सकती? पन्ना! तलवारें आसानी से म्यान के भीतर नहीं जातीं।

पन्ना : यह नहीं होगा, यह नहीं होगा महाराज बनवीर।

बनवीर : जागीर नहीं चाहती?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदय सिंह के बदले जो मांगों वह दिया जाएगा।

पन्ना : राजपूतनी व्यापार नहीं करती, महाराज! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है, या चिता पर।

प्रसंग : प्रस्तुत प्रसंग 'दीपदान' एकांकी से उद्धृत है। इस प्रसंग में बनवीर और पन्ना में संवाद होता है। वह पन्ना को तरह–तरह से लालच देकर अपने साथ मिला लेना चाहता है। लेकिन पन्ना अपने राज्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठ है। उसे यह बात भली–भांति याद है कि चित्तौड़ का असली उत्तराधिकारी बनवीर नहीं है बल्कि राणा सांगा का पुत्र राजकुमार कुंवर उदय सिंह है। वह अपने राजकुमार की प्राण की रक्षा हेतु अपने बेटे चंदन की जान को कुर्बान करती है। पन्ना के असली 'दीपदान' को प्रस्तुत करना एकांकी के मूल में है। इस प्रसंग में बनवीर पन्ना को प्रलोभन देता है पर वह नहीं मानती है बल्कि उससे ऐसा न करने के लिए दबाव बनाती है।

व्याख्या : पन्ना, बनवीर से कहती है कि राजकुमार की हत्या के उद्देश्य से तुमने जो तलवार खींची है। उसे म्यान में रख लो। बनवीर को लगता है कि पन्ना को तलवार से भय लगता है। लेकिन वह इस बात से भी वाकिफ है कि चित्तौड़ में तलवार से किसी को भी भय नहीं लगता है। बनवीर, पन्ना से कहता है कि राजकुमार के प्रति तुम्हारे मन में इतनी ममता भर गई है कि तुम तलवार भी नहीं देख सकती हो। इस तलवार से तुम्हें खौफ नहीं लगता है। वह यह भी बताता है कि तलवारें आसानी से म्यान के अंदर नहीं जाती हैं। जिस उद्देश्य से तलवार खींची जाती है, उस उद्देश्य को पूरा करने के बाद ही तलवार म्यान के भीतर जाती है।

पन्ना उसे बार–बार समझाने का प्रयास करती है कि वह ऐसा न करे। लेकिन बनवीर फिर पन्ना को जागीर देने का लालच देता है। वह किसी भी प्रलोभन में नहीं

आती है फिर उदय सिंह के बदले कुछ भी मांग लेने के लिए कहता है। लेकिन वह अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर अडिग है। वह बनवीर से यह भी कहती है कि राजपूतनी व्यापार नहीं करती है। वह रणभूमि में युद्ध करती है या चिता पर चढ़कर खुद का उत्सर्ग करती है।

विशेष

1. पन्ना की कर्तव्यनिष्ठा के साथ–साथ साहस भी स्पष्ट होता है।
2. पन्ना का देश–प्रेम और राणा सांगा के प्रतिनिष्ठा का भाव इतना प्रबल है कि वह किसी प्रलोभन में नहीं आती है।
3. चित्तौड़ के उत्तराधिकारी की रक्षा करने के लिए पन्ना अपने पुत्र की बलि चढ़ा देती है। वह भारतीय इतिहास की त्याग की प्रति मूर्ति के रूप में प्रस्तुत होती है।

(10) ओह क्रूर बनवीर! तुम तो उदय सिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे? नहीं, नहीं यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। महाराणा बनवीर तुम राज करो, चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज करो। पर कुंवर उदय सिंह को छोड़ दो। मैं उसे लेकर संन्यासिनी हो जाऊंगी। तीर्थों में वास करूंगी। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर मेरा कुंवर भी मेरी गोद में रहे। बनवीर। महाराणा बनवीर मुझे यह भिक्षा दे दें।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश रामकुमार वर्मा के एकांकी 'दीपदान' से उद्धृत किया गया है। यह एक ऐतिहासिक एकांकी है जो चित्तौड़ के महाराजा राणा सांगा के उत्तराधिकारी पुत्र उदय सिंह की प्राण रक्षा पर आधारित है। राजकुमार की प्राण–रक्षा को पन्ना धाय अपना कर्तव्य मानती है। वह राजकुमार की संरक्षक है। इस प्रसंग में क्रूर शासक बनवीर से पन्ना का वार्तालाप है। बनवीर विक्रमादित्य की हत्या कर चुका है। अब वह राजमहल में राजकुमार की हत्या की नीयत से प्रवेश करता है। पन्ना उसे उसकी कर्तव्य निष्ठा का स्मरण कराते हुए कहती है–

व्याख्या : बनवीर, राज्य लिप्सा के स्वार्थ में इतनी क्रूरता न दिखाओ। तुमने विक्रमादित्य की भी हत्या कर दी है। वास्तव में इस राज्य का उत्तराधिकारी कुंवर उदय सिंह है। तुम उदय सिंह के संरक्षक हो। तुम्हें उसकी रक्षा करनी चाहिए थी। लेकिन रक्षा करने के बदले स्वार्थवश उसकी भी हत्या करने की सनक तुम्हारे ऊपर हावी हो गई। ऐसा मत करो बनवीर। पन्ना धाय, बनवीर से आग्रह करती है कि राजकुमार के प्राण न लो। इसके बदले तुम पूरे चित्तौड़ पर पूरे मेवाड़ पर राज करो। समूचे राजपूताने पर राज करो। पर उदय सिंह की जान बख्श दो। यदि तुम ऐसा करते हो तो मैं संन्यासिनी होकर इस राज्य को छोड़ दुंगी। अपने साथ कुंवर उदयवीर को लेकर तीर्थों की यात्रा में निकल जाऊंगी। वह बनवीर से कहती है कि तुम पूरे राजपूताने पर अपना राज स्थापित करो। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे ही माथे पर रहेगा। राजकुमार को लेकर मैं चली जाऊंगी, वह केवल मेरी गोद में रहे। उसे राज्य न दो लेकिन उसके प्राण न लो। बनवीर से वह राजकुमार उदयवीर के प्राणों की भिक्षा मांगती है लेकिन वह इतना मदांध हो चुका है कि पन्ना की इस बात को भी नहीं सुनता है। गुस्से में आकर चंदन की हत्या राजकुमार उदय सिंह समझकर देता है।

विशेष

1. पन्ना धाय अपने कर्तव्य पर अडिग है।
2. राजकुमार कुंवर उदय सिंह की प्राण रक्षा के लिए वह राज्य तक छोड़ देने का प्रस्ताव बनवीर के सामने रखती है।
3. पन्ना का त्याग अपूर्व है।
4. इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी पन्ना विवेक से काम लेती है और राजकुमार की रक्षा करती है।
5. अपने पुत्र चंदन की बलि राज्य हित में चढ़ाकर पन्ना वास्तविक अर्थों में 'दीपदान' करती है। पन्ना की स्वामी भक्ति अद्वितीय है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. दीपदान एकांकी किस पृष्ठभूमि पर रचा गया है?

   (क) सामाजिक (ख) राजनैतिक

   (ग) ऐतिहासिक (घ) सांस्कृतिक

6. दीपदान एकांकी में एकांकीकार ने किसके माध्यम से देशप्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के भाव को प्रस्तुत किया है?

   (क) उदय सिंह (ख) पन्ना

   (ग) बनवीर (घ) चंदन

1.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर (व्याख्यांश)

विष्णु प्रभाकर का ध्वनि एकांकी 'वापसी' बेहद चर्चित रहा है। यह एकांकी असगर नामक पाकिस्तानी सैनिक की कहानी पर आधारित है। असगर भारत के बंटवारे से पूर्व भारत के कश्मीर के एक गांव में पला–बढ़ा था। उसका बचपन भारत के गांव में व्यतीत हुआ था। आजादी मिलने के बाद असगर को अपना यह मुल्क छोड़कर नये मुल्क पाकिस्तान जाने के लिए विवश होना पड़ा। उसे यह देश छोड़ते वक्त बहुत दुख हुआ था लेकिन उसके पास विकल्प ही क्या था?

पाकिस्तान में वह मजबूरन फौज में भर्ती हो जाता है। संयोग से उसे उसी गांव में जासूसी करने के लिए भेज दिया जाता है, जहां उसका बचपन गुजरा था। उसके साथ कुछ और भी पाकिस्तानी सैनिक हैं। इन लोगों को पाकिस्तानी वायु सेना को इशारा देने का काम सौंपा जाता है। रात के अंधेरे में असगर गांव के भूगोल को समझना चाहता है। उसे अहसास होता है कि यह पूरा इलाका उसका पहले से जाना–पहचाना है। अंधेरे में उसे पगडंडियां दिखाई पड़ती हैं। हरे–भरे खेत दिखाई पड़ते हैं। मस्जिद की दीवारें दिखाई पड़ती हैं। पुराना खंडहर दिखाई पड़ता है। अचानक उसकी आंखों के आगे उसका बचपन फिल्म की भांति तैरने लग जाता है। वह अपने साथियों को इस गांव की विशेषताओं के बारे में बताता है। उसे यह देखकर आश्चर्य होता है कि यहां के लोग आराम से हमेशा की तरह खेतों में फसल उगाते हैं, उन्हें न युद्ध की चिंता है और न नुकसान होने का डर।

असगर के बदले स्वभाव को देखकर उसके साथी मकसूद को बड़ी हैरानी होती है। उसे लगता है कि असगर दुश्मनों के खेमे से जा मिला है। वह असगर को याद दिलाता है कि वह अपने देश के दुश्मनों को सबक सिखाने के लिए सरहद पार से भेजा गया है। इस देश को ताबह और बर्बाद कर देना इन सभी का लक्ष्य है। असगर कहता है कि पाकिस्तान ने हमें दिया ही क्या है? और सियासतदारों के एक इशारे पर बेकसूर लोगों का जान लेना क्या उचित है। असगर और मकसूद में बहस शुरू हो जाती है। असगर अपने साथियों की एक न सुनता है और गांव की विशिष्टताओं को बताने लगता है। उसके साथियों को असगर की बातों से कोई दिलचस्पी नहीं है। वे लोग बार–बार अपने मुल्क से गद्दारी न करने की हिदायत देते हैं।

असगर का अंतर्द्वंद्व देखने लायक होता है। वह कभी पाकिस्तान के विषय में सोचने लग जाता है, कभी अपनी मातृभूमि भारत की खूबसूरती में डूब जाता है। अचानक रात बीत जाती है। सुबह होने वाली है। गांव के लोगों को यह भनक लग जाती है कि कुछ छतरीधारी पाकिस्तानी सैनिक जासूसी करने के लिए हमारे गांव में घुस गए हैं। स्थानीय लोगों के साथ गांव का चौधरी और इंस्पेक्टर इन पाकिस्तानी सैनिकों को हिरासत में ले लेता है। असगर, चौधरी को ताऊ कहकर पुकारता है। पहले चौधरी चौंक उठते हैं लेकिन बाद में उन्हें असगर की याद आ जाती है। वे स्वीकार करते हैं, यह वही लड़का है जिसे उन्होंने गोद में खिलाया था।

अब चौधरी पसोपेश में पड़ जाते हैं। उन्हें समझ में नहीं आता है कि वे इनके साथ कैसा व्यवहार करें। वे अपनी भावनाओं को काबू में करते हैं और इन पाकिस्तानी फौजियों को हिरासत में ले लेते हैं। असगर भी खुद को भारत के हवाले कर सुकून की सांस लेता है। वह जानता है कि उसके साथ यहां अच्छा व्यवहार नहीं किया जाएगा, फिर भी बेकसूर जनता पर गोली चलना वह स्वीकार नहीं करता है। वह अपनी कर्म भूमि के बजाय मातृभूमि के प्रति अपनी निष्ठा और कर्तव्य का पालन करता है।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) कहीं भी तो रोशनी नहीं दिखाई दे रही है। लेकिन मैं हूं कहां हवाई अड्डा उस तरफ ही तो नहीं? हां, उसी तरफ होना चाहिए। तब तो हवाई जहाज इधर से होकर ही जाएंगे। देखूं नक्शा। (नक्शा खोलने की आवाज) हां, यही है। ठीक है, उस तरफ फैक्टरी है। बुनियाद और मुनीर को वहीं जाना है। मेरे कपड़े तो ठीक हैं? हां, हां। बिल्कुल हिन्दुस्तानी किसान के से लगते हैं। अब्बा कहते थे कि मैं बिल्कुल हिन्दू जाट की तरह दिखाई देता हूँ। हिन्दू जाट, मुसलमान जाट, आखिर दोनों जाट ही तो हैं। (चौंककर) यह मैं क्या सोचने लगा? यह कुफ्र है। हमारे मौलवियों ने आजादी की इस लड़ाई को जिहाद का फतवा दिया है। जिहाद के इस मौके पर मैं भी अपना फर्ज करूँगा।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर के रेडियो एकांकी 'वापसी' से उद्धृत है। यह एकांकी सन् 1965 में भारत–पाकिस्तान के युद्ध की एक रात में घटी घटना पर आधारित है। पाकिस्तान के कुछ सैनिकों को जहाज के माध्यम से भारत की धरती पर जासूसी करने के लिए उतारा गया है। इस एकांकी का प्रमुख चरित्र असगर है। भारत के विभाजन के पूर्व का उसका अपना वही गांव है जिस पर उसे आक्रामण करने का आदेश दिया गया है। पूरे एकांकी में असगर का अन्तर्द्वंद्व मुखर रूप से उभर कर सामने आता है।

व्याख्या : यह असगर का अपना गांव है जहां उसने अपना बचपन व्यतीत किया है। यह सारा इलाका उसका जाना पहचाना है लेकिन अब यह गांव उसका नहीं है। उसे रात के अंधेरे में दुश्मन की धरती यानी भारत पर आक्रामण करने के लिए भेजा गया है। चारों तरफ अंधेरा है। कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। वह हवाई अड्डे की दिशा का अंदाजा लगाता है। उसे अंधेरे में लगता है कि हवाई अड्डे की दिशा उस ओर ही होनी चाहिए।

फिर भी अपनी तसल्ली के लिए इस इलाके का नक्शा खोलकर देखता है। फिर उसने जो अंदाजा लगाया था वह सही होता है। फिर वह कहता है फैक्टरी की दिशा दूसरी तरफ है जिस ओर उसके साथी बुनियाद और मुनीर को जाना है। इसके बाद उसका ध्यान अपने पहने हुए कपड़ों की तरफ जाता है। वह आश्वस्त हो लेना चाहता है कि वह एक भारतीय की तरह दिख रहा है या नहीं। उसे आभास होता है कि वह बिल्कुल हिन्दुस्तानी किसान की तरह दिखाई दे रहा है। फिर उसे अपने पिता की बात याद आती है। उसके पिता अक्सर कहा करते थे कि वह बिल्कुल हिन्दू जाट की तरह दिखाई देता है। उसे लगता है कि ये हिन्दू जाट और मुसलमान जाट क्या होता है? जाट तो जाट है। उसके मन में अन्तर्द्वंद्व चलता रहता है।

वह अपने अन्तर्द्वंद्व से चौंक उठता है। उसे लगता है कि यह वह क्या सोचने लग गया है। उसे जिस काम के लिए भेजा गया है, वही करना है। उसे लगता है कि वह दुराग्रह की बातें सोच रहा है। ऐसा सोचना तो ईश्वर की सत्ता को ही खारिज करने जैसा है। वह जिस युद्ध के लिए भेजा गया है वह युद्ध नहीं है बल्कि आजादी की लड़ाई के लिए किया गया जेहाद है। यह बात उसके मौलवियों ने बताई है। वह सोचता है कि इस जिहाद के मौके में सिर्फ अपना मकसद पूरा करूंगा। असगर अपनी भावना पर पहरा लगा देता है। एकांकीकार ने असगर के अन्तर्द्वंद्व को प्रमुखता से रेखांकित किया है।

विशेष

1. असगर दुश्मनों की धरती पर आकर अपने अतीत को याद करने लग जाता है।
2. अंधेरे में उसे सारे रास्ते मालूम हैं। इससे पता चलता है कि उसका बचपन इन्हीं इलाकों में व्यतीत हुआ है।
3. उसका मन जानता है कि हिन्दू जाट और मुसलमान जाट नहीं होता है बल्कि जाट केवल जाट होता है। लेकिन यहां वह अपनी भावनाओं पर काबू पाने का प्रयास करता है।

(2) असगर : ऐसा लगता है कि यहां के किसानों को किसी बात की फिक्र नहीं है। वे अपने खेतों को हमेशा की तरह जोत बो रहे हैं। इधर देखो, ये जुते हुए खेत और उधर वह ईख और मकई की फसल।

मकसूद : वह देखने की मुझे फुरसत नहीं है। अंधेरे में यह सब कोई कैसे देख सकता है? मैं तो बस उस वक्त की राह देख रहा हूं, जब हमारे हवाई जहाजों की आवाज कानों में पड़ेगी और मैं उन्हें इशारा कर सकूंगा।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण रेडियो एकांकी 'वापसी' से उद्धृत किया गया है। इस एकांकी के लेखक विष्णु प्रभाकर हैं। 1965 में भारत–पाकिस्तान के युद्ध का दृश्य है। इस दृश्य

में कुछ पाकिस्तानी फौजियों को भारत की धरती कश्मीर में जासूसी करने के लिए उतारा गया है ताकि सही जगह पर हमला किया जा सके। इन फौजियों में एक फौजी असगर है जिसका बचपन इसी इलाके में व्यतीत हुआ था। वह युद्ध की बातें भूल कर अपने अतीत को याद करने लग जाता है। फौजियों के आपस में हो रहे वार्तालाप का यह बेहद महत्वपूर्ण प्रसंग है।

व्याख्या : असगर को जिस इलाके में हवाई जहाज से उतारा गया है, वह इलाका उसके लिए बहुत जाना–पहचाना है। अदरसल, यह वही इलाका है जहां की धरती में खेलकर वह जवान हुआ है लेकिन देश के बंटवारे के समय उसे पाकिस्तान जाना पड़ा। परंतु उसकी 'वापसी' जिस तरह से हुई है वह बेहद पीड़ादायक है।

असगर को जिस उद्देश्य के लिए भारत भेजा गया है, वह अपना उद्देश्य भूल गया है, उसे अपना बचपन याद आ रहा है। अपने बिताए वक्त को याद कर करके वह प्रसन्न हो रहा है। उसे लगता है कि युद्ध के दौरान भी यहां कितनी शांति है। यहां के किसानों को लगता ही नहीं है कि दो पड़ोसी मुल्कों में युद्ध हो रहा है। वे लोग अपने–अपने कामों में इस कदर व्यस्त है कि मानो जैसे कुछ हुआ ही नहीं है। कब किसकी छत पर बम की वर्षा हो जाए, इसकी भी परवाह इन लोगों को नहीं है। खेत में उगी फसलों को देखकर असगर को लगता है कि हमेशा की तरह आज भी यहां के किसान अपने खेतों को जोत–बो रहे हैं। वह ये सब देखकर चकित भी है और प्रफुल्लित भी है। अपने साथी मकसूद को वह बताता है कि उधर देखो, जुते हुए खेत दिखाई पड़ रहे हैं। वह मकसूद को ईख और मकई के खेतों की तरफ देखने के लिए कहता है।

असगर के लिए यह इलाका अपना है। यहीं पर उसका बचपन बीता है। इस पूरे इलाके से वह अपनेपन के भाव से भरा हुआ है लेकिन उसके साथी मकसूद को इन बातों से कोई मतलब नहीं है। मकसूद को यह देखकर आश्चर्य होता है कि अंधेरे में यह सब कोई कैसे देख सकता है। और यह सब देखने के लिए वह यहां नहीं आया है। वह उस हवाई जहाज की राह देख रहा है जिस पर सवार होकर उसे वापस लौटना है और अपने आलाकमान को इस इलाके के बारे में जानकारी देनी है। वह चाहता है कि जल्दी से जल्दी उसका जहाज इस ओर आ जाए और वह उसे इशारे दे सके।

विशेष

1. अपनी धरती से असगर के अद्‌भुत लगाव को दर्शाया गया है।
2. असगर के लिए यहां की चीज उसकी अपनी है, इसलिए उसे अंधेरे में भी सब कुछ दिखाई पड़ रहा है।
3. एक सैनिक के मन में युद्ध के दौरान इतनी भावनात्मक बातें हैरान करने वाली हैं।

(3) एक–एक ईंट करके यह खत्म हो रहा है। सब कुछ खत्म हो जाता है। अमन भी, जंग भी, यह जंग भी खत्म हो जाएगी। चलूं जरा इसके भीतर तो देखूं। बचपन में घर से भागकर मैं यहीं आकर छिपता था और अब्बा परेशान होते रहते थे। इसी के पास से तो वह गांव का रास्ता गया है। वह दूर, आसमान में जो साए की तरह दिखाई दे रही हैं, वे मस्जिद की मीनारें ही तो हैं। हां वही हैं और यह इधर क्या है? चौपाल! शायद अभी बनी है और उसके चारों तरफ ये

ऊंचे–ऊंचे पेड़! इन पेड़ों के पास वही तो रहट है। रहट का वह मीठा–मीठा ठंडा पानी, मन करता है खूब पीऊं– शायद वहीं कहीं नया नाला भी है।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर के एकांकी 'वापसी' से उद्धृत है। यह एकांकी भारत–पाकिस्तान के युद्ध की एक रात की घटना पर आधारित है। इस एकांकी का प्रमुख चरित्र असगर पाकिस्तान फौज का सदस्य है। उसे कश्मीर की धरती पर हवाई जहाज से रात के अंधेरे में जासूसी करने के लिए उतारा गया है। संयोग से जिस इलाके में वह उतरा है, उस इलाके से वह अच्छी तरह वाकिफ है। यह वही इलाका है, जहां असगर का बचपन बीता था लेकिन देश के बंटवारे के बाद वह पाकिस्तान चला गया था। उसकी स्मृति में इस इलाके की एक–एक चीज बसी हुई है। प्रस्तुत प्रसंग में असगर उन्हीं चीजों को देखता है तो उसकी यादें ताजा हो जाती हैं।

व्याख्या : असगर के लिए यह दुश्मनों का इलाका जाना पहचाना है। वह पाकिस्तान का एक सच्चा सिपाही है। अपने मुल्क के लिए वह अपनी जान की बाजी लगाने में एक पल के लिए नहीं सोच सकता है। लेकिन यहां आकर वह भावुक हो उठा है उसे यहां बिताए बचपन के दिनों की याद आने लगी है। वह देखता है कि जिस खण्डहर में वह खेल–खेल में आकर छिप जाया करता था, उस खण्डकर की एक–एक ईंट समाप्त होती जा रही है। वह सोचने लगता है कि एक दिन सब कुछ इसी ईंट की तरह खत्म हो जाएगा। एक देश जब से बंटकर अलग हुआ है, तब से दोनों देशों की शान्ति भी खत्म हो गई है।

असगर अपने बचपन के दिनों को न केवल याद करता है बल्कि उसे यह उम्मीद भी है कि जिस तरह से ईंटें और अमन खत्म हो गया है, उसी तरह एक दिन यह युद्ध भी खत्म हो जाएगा।

असगर को इस इलाके का चप्पा–चप्पा याद है। वह हर एक रास्ते को पहचानता है। मस्जिद की दीवारें तक उसे याद हैं। उसके जाने के बाद जो चौपाल बनी है, उसे याद आता है कि यह चौपाल उस समय नहीं बनी थी, जब वह यहां था। उसके यहां से दूसरे मुल्क जाने के बाद यह चौपाल बना था। गांव के ऊंचे–ऊंचे पेड़ों को देखकर उसे याद है कि इन्हीं पेड़ों के पास रहट है। रहट का पानी कितना मीठा और ठंडा होता है। उसे रहट के पानी का स्वाद तक याद है। असगर अपने गांव वापस आकर यह भूल जाता है कि अब यह गांव उसका नहीं है बल्कि अब वह दुश्मन का गांव है। वह युद्ध लड़ने के लिए यहां आया हुआ है। एकांकीकार ने इस प्रसंग में एक मनुष्य की मानसिकता को रेखांकित करने का प्रयास किया है। आदमी पहले आदमी होता है, फिर बाद में सिपाही या कुछ और। यहां आदमी की संवेदना और मनोभावों को खूबसूरती से चित्रित किया गया है।

विशेष

1. सैनिक को यह याद नहीं है कि उसे यहां युद्ध लड़ने के लिए भेजा गया है।
2. पुरानी स्मृत्तियों को याद कर वह खुशी से झूम उठता है।
3. मनुष्यता की वास्तविक मनोवृत्ति को दर्शाया गया है।

(4) मकसूद : दुश्मन की धरती पर आकर तुम्हारे दिमाग में ये कैसे ख्याल भर आए? क्या यह बगावत नहीं है? क्या तुम यहां दुश्मन को बरबाद करने की कसम खाकर नहीं आए थे?

असगर : आए हैं, लेकिन मन से नहीं। मन की आजादी है ही कहां! एक दिन यहां से जाने को मजबूर हुए। आज आने को मजबूर हुए हैं। क्या मैं कुछ गलत कह रहा हूं?

मकसूद : (झिझककर) गलत तो नहीं कर रहे हो, लेकिन खाने–पीने के सामान की तो कोई कमी नहीं है। लाओ बोतल दो, मैं जरा पानी पिऊँगा।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर के रेडियो एकांकी 'वापसी' शीर्षक से उद्धृत है। इस प्रसंग में मकसूद और असगर का संवाद है। दोनों पाकिस्तान के सच्चे सिपाही हैं। वह अपने कर्तव्य को भली–भांति समझता है लेकिन यह असगर का पुराना गांव भी है इस गांव में आकर वह अपनी पुरानी स्मृतियों में खो जाता है। मकसूद को उसका व्यवहार अटपटा लगता है। वह उसे पहले समझाता है लेकिन असगर का कहना है कि वह दुश्मन को बरबाद करने के ख्याल से आया जरूर था, लेकिन यह उसका कोई निजी फैसला नहीं है।

व्याख्या : असगर की भावनात्मक बातें सुनकर मकसूद हैरान है। उसे लगता है दुश्मन के विषय में असगर क्या–क्या सोच रहा है। उसे कभी–कभी अपने साथी पर संदेह भी होता है। इसलिए वह कहता है कि दुश्मन की धरती पर आकर उसके मन में यह कैसे–कैसे ख्याल आ जा रहे हैं। ऐसा सोचना अपने मुल्क से बगावत करना है। वह असगर को यहां आने से पूर्व खाई कसम की याद भी दिलाता है कि तुम यहां अपने दुश्कनों को बरबाद करने के ख्याल से आए थे।

असगर कुबूल करता है कि वह आया जरूर था दुश्मनों को तबाह और बरबाद करने की नीयत से लेकिन यह उसका मन नहीं था। उसे लगता है कि वह सियासतदानों की कठपुतली बन कर रह गया है। इस देश से भी वह अपनी मर्जी से नहीं गया था। उसे दूसरे बने मुल्क में जाने के लिए मजबूर किया गया था। आज जब वह इस मुल्क में युद्ध करने के लिए आया है, तब भी वह अपनी इच्छा से नहीं आया है। उसे दोनों ओर से विवश किया गया है।

मकसूद भले असगर की बातों को जायज समझ रहा है लेकिन उसके मन में असगर के प्रति संदेह भर गया है। उसे बीच–बीच में लगता है कि कहीं असगर दुश्मनों से मिल तो नहीं गया है। इसलिए वह यह भी कहता है कि भले वह अपनी मर्जी से नहीं गया था लेकिन वहां खाने–पीने की कोई दिक्कत नहीं है। उसे वह सब कुछ मिल रहा है जो यहां मिल सकता है। इतना कहते–कहते उसका गला सूख गया है। असगर से वह पानी की बोतल मांग कर पानी पीता है।

विशेष

1. सैनिक के अन्तर्द्वंद्व को प्रभावशाली तरीके से रेखांकित किया गया है।
2. भावुक असगर को देखकर उसके अपने साथी मकसूद को यकीन नहीं होता है बल्कि उस पर संदेह तक करने लग जाता है।
3. युद्ध में सैनिक की इच्छा नहीं देखी जाती है। दो मुल्कों के नेताओं का निजी स्वार्थ इन युद्धों की मूल वजह है। यह संदेश एकांकी के इस संवाद से प्रतिबिंबित होता है।

(5) चौधरी : आप इसकी बिल्कुल चिन्ता मत कीजिए। देश के लिए हम बड़े से बड़ा बलिदान करने को तैयार हैं। किसके हैं, यह बाद में देखा जाएगा। आप टैक्टर मंगवाकर करवा डालिए।

इंस्पेक्टर : ट्रेक्टर अभी आ रहा है। शायद वह आ भी गया है। मुझे यकीन है पैराटूपर यहीं कहीं छिपे हैं। आओ, उधर खेतों की ओर चलें।

(आवाजें धीरे–धीरे दूर होती हैं। क्षणिक सन्नाटे के बाद असगर की आवाज उभरती है।)

असगर : आखिर इन्हें पता लग गया। थोड़ी देर बाद ये लोग हमको घेर लेंगे।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर का रेडियो एकांकी 'वापसी' से उद्धृत है। यह एकांकी सन् 1965 में भारत–पाकिस्तान के युद्ध की एक रात की घटना है। इस प्रसंग में पाकिस्तान से आए सैनिकों को खोजने के लिए गांव का चौधरी और इंस्पेक्टर इन क्षेत्रों की तलाशी लेने के लिए निकले हुए हैं। गांव के लोगों को आभास हो गया है कि कुछ पाकिस्तानी सैनिक इस इलाके में हवाई जहाज से उतारे गए हैं। इस प्रसंग में चौधरी और इंस्पेक्टर का संवाद है।

व्याख्या : पाकिस्तानी सैनिकों की तलाशी में निकले गांव के चौधरी और इंस्पेक्टर आपस में बात कर रहे हैं। चौधरी को लगता है कि खेतों में फसल उगे होने की वजह से छिपे पाकिस्तानी सैनिकों को खोजने में दिक्कत हो रही है, तब वह इंस्पेक्टर से कहते हैं कि आप टैक्टर मांगवा कर सारी फसल को कटवा दीजिए। देश के लिए यह बलिदान करना कोई बड़ी बात नहीं है। अभी खेत में उगी फसलों की कटाई का परिणाम चाहे जो भी हो, उसकी परवाह करने की जरूरत नहीं है। देशहित में कोई भी कीमत चुकानी पड़े, उसके लिए हम सभी तैयार हैं।

इंस्पेक्टर कहता है कि ट्रेक्टर आने वाला ही है। उसे यकीन है कि दुश्मन देश के सिपाही इन्हीं खेतों में छिपे हैं। वह चौधरी के साथ मिलकर समूचे इलाके की छानबीन कर रहा है। असगर को इसका आभास हो जाता है कि गांव का चौधरी पाकिस्तानी सैनिकों को खोज रहा है। उसे वह गिरफ्तार करवाना चाहता है। उसे इस बात का भी अहसास है कि थोड़ी देर में वह इन लोगों के हाथों पकड़ा जाएगा। ताज्जुब की बात यह है कि असगर इस दृश्य को देखकर डरता नहीं है बल्कि वह फिर अपनी पुरानी यादों में खो जाता है कि ये वही चौधरी हैं जिसकी गोद में वह खेला करता था।

विशेष

1. देशहित में आम नागरिक भी अपना बलिदान देने के लिए हमेशा तैयार रहता है।
2. युद्ध में सबसे अधिक क्षति आम नागरिकों की होती है।
3. असगर को अपने पकड़े जाने का भय नहीं है। वह चौधरी को अपनी ओर आता देख खुश ही होता है।

(6) उस दिन हम सब रोए थे और आज कैसी अनोखी बात है। एक बिल्कुल दूसरे ही माहौल में मैं उनको देख रहा हूं। उन्होंने कहा था, हम दोस्त हैं। लेकिन आज तो हम दुश्मन हैं। सच तो यह है कि साथ रहते थे, तब भी दुश्मन माने जाते थे। अलग है, तब भी दुश्मन है। दुश्मनी का माहौल जैसे सच्चाई है, बाकी

सब झूठ है। दुश्मनी का माहौल। आह! क्या यह माहौल बदल नहीं सकता? क्या हम कभी एक–दूसरे को प्यार नहीं कर सकते, क्या इन्सान...?

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित रेडियो नाटक 'वापसी' से उद्धृत है। यह एकांकी भारत–पाकिस्तान के युद्ध पर आधारित है। कुछ पाकिस्तानी सैनिक भारत के कश्मीर में हवाई जहाज से जासूसी करने के लिए उतार दिए गए हैं। लेकिन इन सैनिकों के इस इलाके में होने की खबर गांव के स्थानीय लोगों को हो चुकी है। स्थानीय लोगों ने अपनी फसलों को भी इसी कारण कटवा दिया है। गांव के चौधरी और इंस्पेक्टर पाकिस्तानी सैनिकों की खोज में लगे हुए हैं। दूसरी तरफ इन सैनिकों में असगर नाम का सैनिक अपनी अतीत की यादों में खोया हुआ है। इसी इलाके में उसका बचपन गुजरा है। देश के बंटवारे के बाद उसे पाकिस्तान जाना पड़ गया था। असगर यह भूल गया है कि उसे पाकिस्तान एयरफोर्स को संकेत देने के लिए इस इलाके में उतारा गया है। वह अपनी अतीत की यादों में खोया हुआ है।

व्याख्या : यह संवाद असगर का है। वह देश के बंटवारे के समय को याद कर रहा है। उसे याद आता है कि जब वह इस देश को हमेशा–हमेशा के लिए छोड़कर जा रहा था तब वह खूब रोया था। उसके साथ–साथ यहां के लोग भी रोए थे। लेकिन आज ऐसी परिस्थिति बन गई है कि दोनों मुल्क के लोग दुश्मन बन गए हैं। आज का माहौल बिल्कुल बदल गया है।

एक वक्त था जब एक–दूसरे से बिछड़ने के गम में सभी लोग रो रहे थे। आज दोनों जगह के लोग आपस में दुश्मन बन बैठे हैं। यहां से जाते समय लोगों ने कहा था कि अलग होने के बावजूद हम दोस्त की तरह से हैं लेकिन आज दुश्मन हो चुके हैं। लेकिन आज क्या, जब हम लोग एक–दूसरे के साथ थे, तब भी हम दोस्त नहीं थे। एक–दूसरे को दुश्मन की नजर से ही देखते थे। एक–दूसरे को दुश्मन की तरह मानते थे।

ऐसा लगता है कि मानो दुश्मनी ही एक मात्र सच्चाई है बाकी सारे रिश्ते–नाते झूठे थे। एक–दूसरे के पति हमदर्दी का भाव फरेब था। असगर सोचता है कि क्या दुश्मनी का यह माहौल बदल नहीं सकता है। उसके मन में इस तरह के अनेक प्रश्न उठने लगते हैं। उसे यह भी लगता है कि क्या दोनों मुल्कों के लोग आपस में प्यार से नहीं रह सकते हैं। क्या इंसान के पास मात्र दुश्मनी का रिश्ता ही शेष बचा है। एकांकीकार ने एक सिपाही के अंतर्द्वंद्व के भाव को बड़ी सूक्ष्मता के साथ प्रतिबिंबित किया है।

विशेष

1. असगर के माध्यम से विष्णु प्रभाकर ने मानवता के बोध को जगाने का प्रयास किया है।
2. असगर सैनिक होकर भी मनुष्यता के भाव से भरा हुआ है। वह दुश्मनी के रिश्ते को मानने से इंकार कर देता है।
3. असगर दोनों मुल्कों को प्यार अमन से रहने की इच्छा प्रकट करता है।

(7) मकसूद : ये कैसी बातें करते हो? तुम गद्दार हो।

असगर : चुप रहो। उन्होंने हमारे साथ कौन–सा अच्छा सलूक किया है। ये सियासत वाले हर मुल्क में अपना उल्लू सीधा करने के लिए आपस में लड़ा

करते हैं और लोगों को परेशान करते हैं। (गोली चलने की आवाज) यह लो गोली चली। शायद खेत कट जाने पर हमारे साथी घिर गए हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश 'वापसी' एकांकी से उद्धृत है। इस रेडियो एकांकी के रचनाकार विष्णु प्रभाकर हैं। एकांकीकार ने भारत–पाकिस्तान के युद्ध को आधार बनाकर इस एकांकी को लिखा है। इसमें असगर नाम का पाकिस्तानी सैनिक है, जिसे कश्मीर की धरती पर हवाई जहाज के माध्यम से रात के अंधेरे में जासूसी करने के लिए उतारा गया है। उसके साथ और भी कई पाकिस्तानी सैनिक हैं जिन्होंने इस मुल्क को तबाह करने की कसम खा रखी है। लेकिन असगर जब यहां उतरता है, तब उसे यह इलाका जाना–पहचाना लगता है। उसे याद आता है कि उसका बचपन इसी जगह बीता है। रात के अंधेरे में भी वह सभी चीजों को अच्छी तरह से पहचान ले रहा है। वह युद्ध भूलकर अपने अतीत को याद करता है। वह सोचता है कि दोनों मुल्क अपनी दुश्मनी भूलकर प्यार से रहने लगें तो कितना अच्छा होता। उसके साथी महमूद के मन में असगर के प्रति संदेह का भाव गहरा होता चला जाता है। इस प्रसंग में दोनों पाकिस्तानी सैनिकों का संवाद है।

व्याख्या : मकसूद बार–बार असगर को याद दिलाता है कि वह पाकिस्तानी सैनिक है। जिस मुल्क ने उसे युद्ध करने के लिए भेजा है, वह उस बात को भूल कर अपने बचपन की यादों को क्यों कुरेद रहा है। मकसूद कहता है कि तुम गद्दार की तरह की बातें कर रहे हो। ये तुम्हें क्या हो गया है। तुम अपने इरादे को भूल चुके हो। जिस मुल्क ने तुम्हें पनाह दी है, सिर छिपाने के लिए जगह दी है, उसके साथ तुम बगावत कैसे कर सकते हो। असगर अपनी धुन में है। वह बचपन के दिनों को याद कर उसे जी लेना चाहता है। मकसूद के बार–बार सचेत करने पर भी पुरानी यादों को असगर बटोर रहा है।

असगर यह भी बताता है कि दोनों मुल्क के सियासत करने वाले लोग अपने निजी स्वार्थ के लिए इस तरह के युद्धों को रचते हैं। दो मुल्कों को युद्ध में धकेल देते हैं। इसमें सारा नुकसान दोनों मुल्कों के नागरिकों को ही उठाना पड़ता है। इस तरह के युद्धों से नेताओं को फायदा हो जाता है लेकिन यहां रहने वाले लोग परेशान हो जाते हैं। इसी बीच गोली चलने की आवाज आती है और जिस खेत में पाकिस्तानी फौजी छिपे होते हैं, उस खेत की कटाई कर दी गई है। सभी पाकिस्तानी सैनिक पकड़ लिए गए हैं।

विशेष

1. इन संवाद के माध्यम से युद्ध के असली कारणों की तलाश की गई है।
2. असगर गद्दार नहीं है लेकिन यहां अपने बिताए जीवन को याद कर युद्ध के परिणाम से व्यथित हो उठा है।
3. पाकिस्तानी सैनिकों की तलाशी लेने के लिए समय से पहले खेतों की कटाई कर दी गई है। यह भी किसानों का ही नुकसान है लेकिन किसान इस बलिदान को अपना कर्तव्य तथा देश के प्रति निष्ठा मानते हैं।

(8) चौधरी : (परेशान होकर) यह कैसा जाल है? ताऊ, लतीफ, असगर! मैं किसी को नहीं जानता। तुम मुझे भुलावे में डालना चाहते हो लेकिन–लेकिन मुझे कुछ

याद आ रहा है। हाँ, हाँ तुम लतीफ के बेटे हो। तुम असगर हो। तुम इतने बड़े हो गए! (दृढ़ होकर) लेकिन नहीं। तुम असगर हो या लतीफ या कोई भी हो। इस वक्त दुश्मन के जासूस हो। बस तुम केवल एक कैदी हो।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश 'वापसी' एकांकी से उद्धृत है। इस एकांकी को विष्णु प्रभाकर ने लिखा है। एकांकी का मूल उद्देश्य युद्ध की व्यर्थता और मनुष्यता को स्थापित करना है। पाकिस्तानी फौजी असगर को युद्ध के मैदान में इसलिए भेजा गया था कि वह जासूसी कर पाकिस्तानी वायु सेना को इशारा कर बताए कि कहां बमबारी करनी है लेकिन असगर जब यहां उतरता है, तब उसे यह इलाका जाना–पहचाना लगता है फिर उसे याद आता है यहीं उसका बचपन व्यतीत हुआ है। वह अपनी पुरानी स्मृतियों में खो जाता है। उसे युद्ध की चिंता नहीं रहती। स्थानीय लोगों को पाकिस्तानी सैनिकों की खबर लग गई है। इन सैनिकों को खोजने के लिए उन्होंने अपने समूचे खेतों की कटाई करवा दी है। चौधरी पाकिस्तानी फौजियों की तलाश कर रहा है। असगर को देखकर वह चकित हो उठता है। असगर उन्हें याद दिलाता है कि वह उनकी गोद में खेला है। वह लतीफ का बेटा है। चौधरी भी पसोपेश में पड़ जाता है। वह असगर को पहचान लेता है लेकिन अब उसे समझ में नहीं आ रहा है, इस पाकिस्तानी सैनिक के साथ कैसे बर्ताव करें उसे अपना दोस्त माने या कैदी। इसी अंतर्द्वंद्व को एकांकीकार ने इस प्रसंग में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या : असगर को देखकर चौधरी परेशान हो उठते हैं। असगर उन्हें याद दिलाता है कि वह लतीफ का बेटा असगर है जिसका बचपन उनकी आंखों के आगे व्यतीत हुआ है। चौधरी को सारी बातें याद आ जाती है। वह असगर को पहचान भी लेते हैं लेकिन अब क्या करें? यह वो असगर नहीं है जिसे उनहोंने अपने गोद में खिलाया है। अब ये दुश्मन देश का फौजी है। दुश्मनों का जासूस है।

असगर को अपने दुश्मन के रूप में देखकर चौधरी असमंजस में पड़ जाते हैं। वह कभी कहते हैं, हां, याद आ गया कि तुम वही असगर हो जिसे मैंने बचपन में खिलाया है। दूसरे क्षण उसे पहचानने से इंकार कर देते है। फिर उन्हें लगता है, ये चाहे जो भी हो, अब वह दुश्मन का जासूस है। तुम सिर्फ हमारे कैदी हो। आपसी रिश्ते दो मुल्क में बंटते ही खत्म हो जाते हैं। मन में उथल–पुथल है लेकिन दोनों पक्ष बेबस और लाचार है। न एक–दूसरे का हाल–चाल पूछ सकते है, न एक–दूसरे को गले लगा सकते है। यह एक विकट स्थिति है। एकांकीकार ने युद्ध की भूमि में भी मानवता को स्थापित करने का प्रयास किया है।

विशेष

1. चौधरी, असगर को पहचान लेता है लेकिन वह आज विवश है। दोनों मुल्क मित्र नहीं दुश्मन हैं। इसलिए दोनों मुल्कों के लोग भी आपस में एक–दूसरे को दुश्मन मानने लगे हैं।
2. असगर अब अपना होते हुए भी दुश्मन का जासूस है, इसलिए चौधरी उसे कैदी मानते हैं।
3. मानवीय संवेदना को अभूतपूर्व रूप से व्यंजित किया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. एकांकी 'वापसी' के लेखक निम्न में से कौन हैं?

(क) डॉ. रामकुमार वर्मा (ख) विष्णु प्रभाकर

(ग) लक्ष्मीनारायण मिश्र (घ) जयशंकर प्रसाद

8. 'वापसी' एकांकी किस युद्ध का दृश्य है?

(क) भारत–पाकिस्तान (ख) भारत–चीन

(ग) चीन–पाकिस्तान (घ) पाकिस्तान–अफगानिस्तान

1.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल (व्याख्यांश)

आचार्य शुक्ल ने मनुष्य के विज्ञान को सूक्ष्म तरीके से अभिव्यक्त किया है। लेकिन यह भी समझ लेना जरूरी है कि उनके निबंध सीधे–सीधे मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित नहीं हैं। मनोविज्ञान के सहारे उन्होंने व्यावहारिक पक्षों के उद्‌घाटन पर ज्यादा जोर दिया है। आचार्य शुक्ल का जीवन दर्शन 'लोकमंगल' की अवधारणा पर टिका रहा है, इसलिए उनकी यह अवधारणा हर जगह व्याप्त रही है। जीवन के अनेक व्यावहारिक पक्षों को शुक्ल जी के निबंधों में खोजा जा सकता है। शुक्ल जी के निबंध अपनी गंभीरता, विचारशीलता और व्यापक विश्लेषण क्षमता के लिए अलग से पहचाने जाते हैं।

आचार्य शुक्ल ने अपने इस निबंध में लिखा है कि व्यक्ति जब समाज में प्रवेश करता है, तब उसके सुख और दुख का बहुत बड़ा अंश किसी दूसरे पर निर्भर करने लगता है। वह दूसरे के दुख को देखकर दुखी होता है और दूसरे के सुख को देखकर सुखी हो जाता है। लेकिन यह नियम एक–सा भी नहीं है। आदमी दूसरे के दुख को देखकर दुखी जरूर होता है लेकिन दूसरे के सुख को देखकर वह भी सुखी हो यह जरूरी नहीं है। अक्सर हम किसी अनजान व्यक्ति के दुख को देखकर भी दुखी हो उठते हैं लेकिन जैसे ही हमें इस बात की जानकारी होती है कि दुखी आदमी अत्याचारी या अपराधी भी है तो उसके प्रति हमारे मन का भाव दुखी नहीं होता बल्कि उस व्यक्ति के प्रति क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

'करुणा' निबंध में आचार्य शुक्ल यह बताते हैं कि 'करुणा' जैसी भावना कब जन्मती है। चूंकि यही वह भावना है जो मनुष्य के अन्य भावों से बिल्कुल अलग और विशिष्ट है। करुणा का भाव उत्पन्न होते ही मनुष्य सामने वाले की भलाई के लिए सोचने लगता है। इसके अतिरिक्त करुणा का भाव उत्पन्न होने के बाद मनुष्य के व्यवहार में किस तरह से परिवर्तन होने लगते हैं, उन परिवर्तनों की विशद व्याख्या इस निबंध में देखी जा सकती है।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है, उसके सुख और दुख का बहुत–सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलम्बित हो जाता है। और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है।

वह दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चर्चित निबंध संग्रह 'चिन्तामणि' के 'करुणा' निबंध से लिया गया है। अपने इस निबंध में आचार्य शुक्ल 'करुणा' जैसे मनोभाव की विशद व्याख्या–विश्लेषण करते हैं।

व्याख्या– आचार्य शुक्ल का मानना है कि मनुष्य का सुख अथवा दुख उसके समाज में प्रवेश करने के बाद दूसरों पर आश्रित हो जाता है। मनुष्य का दुख दूसरे व्यक्ति के काम या अवस्था पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य समाज से बाहर रहे तो उसके सुख और दुख का क्षेत्र अत्यंत संकीर्ण हो जाएगा। मनुष्य अपने आप में खुश या दुखी नहीं रह सकता है। उसके सुख या दुख का अधिकांश कारण दूसरा ही होता है। प्रायः यह देखा जा सकता है कि व्यक्ति दूसरे के दुख से दुखी हो जाता है और दूसरे के सुख से खुश होता है। लेकिन यह नियम एक–सा नहीं होता है। मतलब व्यक्ति जितना दूसरों के दुख से दुखी होता है, उतना दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसी तरह व्यापक नहीं है। आचार्य शुक्ल इस प्रसंग में दुख और सुख का ठोस आधार खोज पाने में पूरी तरह से सफल दिखाई पड़ते हैं क्योंकि यह वास्तविक है कि मनुष्य का स्वभाव है कि वह प्रायः दूसरे के दुख से दुखी तो हो जाता है किंतु दूसरे के सुख से उसकी सारी भावना बदल जाती है।

विशेष

1. आचार्य शुक्ल मनुष्य के मनोभावों का विश्लेषण व्यावहारिक आचरण से करते हैं, न कि मनोविश्लेषण के सिद्धांतों को आधार बनाकर।
2. भावात्मक विश्लेषण का बेजोड़ रूप अभिव्यक्त हुआ है।
3. सुख–दुख का आधार वैयक्तिक न होकर सामाजिक माना गया है।
4. भाषा का संयम और कसावट का अद्‌भुत नमूना दिखाई पड़ता है।
5. शुक्ल जी के विचार और चिंतन सूत्र रूप में अभिव्यक्त हुए हैं।

(2) करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनन्दित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद् या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान या चरित्रवान होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'करुणा' निबंध से लिया गया है। आचार्य शुक्ल का यह निबंध उनके उत्कृष्ट निबंधों में से एक है, जिसमें मनोवृत्तियों का गूढ़ विश्लेषण हुआ है।

व्याख्या– इस प्रसंग में दुखात्मक और सुखात्मक भावों का विलक्षण विश्लेषण शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि करुणा का भाव उसे सहायता से प्राप्त

हो जाता है जो वास्तव में दुखी होता है। दुख के अतिरिक्त किसी अन्य भावों की अपेक्षा नहीं होती है। कोई व्यक्ति दुखी हो, उसे करुणा का भाव प्राप्त हो ही जाता है। हम उसे भले ही न जानते हों लेकिन सिर्फ इतना जानते हैं कि कोई दुखी है, झट हमारे मन में उसके प्रति करुणा का भाव उमड़ पड़ता है। हम दूसरे के दुख को देखकर दुखी भी हो जाते हैं। लेकिन अंजान व्यक्ति के सुखों से हमें कोई लेना–देना नहीं होता। अंजान या अपरिचित व्यक्ति का सुख हमें आनन्दित नहीं करता। लेकिन किसी करीबी या जानकार व्यक्ति का सुख हमें आनन्दित करता है। खुशी प्रदान करता है। ऐसे व्यक्ति के सुख से भी हमारे मन में खुशी का भाव पैदा होता है जिसके बारे में हमें यह ज्ञात होता है कि वह शीलवान और चरित्रवान है अथवा समाज का भला करने वाला है। अपरिचित व्यक्ति का सुख हमारे मन में किसी तरह से आनन्द का भाव नहीं पैदा करता है। इस कारण दुख से दुखी होने का नियम व्यापक है लेकिन दूसरे के सुख से सुखी के नियम की एक निश्चित सीमा है।

विशेष

1. मनुष्य के मनोभावों का व्यापक और गूढ़ चित्रण किया गया है।
2. अनुभूति को मूर्त रूप दे दिया गया है।
3. दुख–सुख की तुलनात्मक विशिष्टता को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।
4. मनुष्य का भाव विश्लेषण सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक रूप से हुआ है।
5. भावात्मक निबंध का उत्कृष्ट व्यापक रूप चित्रित हुआ है।

(3) मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' ये नियम के अन्तर्गत हैं, शील या सद्भाव के अन्तर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े–बड़े अनर्थ हो जाते हैं, इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत–सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी–किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषतः जब इस नियम भंग द्वारा अन्तःकरण की किसी उच्च और उदार वृत्ति का साधन होता हो।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उत्कृष्ट निबंध 'करुणा' से लिया गया है। यह निबंध भावात्मक विषयक निबंधों में श्रेष्ठ है। आचार्य शुक्ल ने इस निबंध में 'करुणा' भाव का व्यापक और गूढ़ विश्लेषण किया है। आचार्य शुक्ल मूलतः लोकोन्मुख निबंधकार हैं, इस कारण उनकी दृष्टि में 'मनुष्य' के प्रति अटूट आस्था का भाव दिखाई पड़ता है।

व्याख्या– आचार्य शुक्ल की स्थापना ठोस भाव भूमि पर आधारित है। उन्होंने अपने इस निबंध में जितनी भी स्थापनाएं दी हैं, सब मनुष्य के व्यवहार पर आधारित हैं। उनका मानना है कि 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' जैसी बातें नियम के अंतर्गत हैं। नैतिक आचरण या व्यवहार के अंतर्गत यह बातें शामिल नहीं की जाती हैं। प्रायः यह देखा गया है कि झूठ बोलने से बड़े से बड़ा अनर्थ हो जाता है। इस कारण ही यह नियम बना दिया गया कि 'झूठ नहीं बोलना चाहिए।' कहीं–कहीं यह नियम सख्त रूप से लगा दिया जाता है कि किसी भी अवस्था में झूठ नहीं बोलना चाहिए। लेकिन कई बार मनोरंजन, खुशामद

और शिष्टाचार के नाते भी झूठ बोला जाता है जिस पर किसी को आपत्ति नहीं होती बल्कि समाज कुपित भी नहीं होता है। कई अवस्थाओं में धर्मग्रंथ भी झूठ बोलने की इजाजत दे देते हैं। खासकर उस अवस्था में यह नियम तोड़ना गलत नहीं माना जाता है जब अंतःकरण की उच्च और किसी उदार वृत्ति का साधन किया जाता है। मतलब यदि किसी के झूठ से किसी की जान बच जाए अथवा किसी का बगैर नुकसान किए किसी का फायदा हो जाए, तब ऐसी स्थिति में झूठ को अनैतिक नहीं माना जाता है। लेकिन किसी भी स्थिति में झूठ बोलना आचरण या व्यवहार का हिस्सा नहीं बनता है।

विशेष

1. सच बोलने को 'नियम' के रूप में स्वीकार किया है। आचरण के रूप में नहीं।
2. सच का महत्व जितना है, किसी–किसी अवस्था में झूठ का महत्व भी हो जाता है।
3. सामाजिक जीवन के उदाहरण से शुक्ल जी अपनी स्थापनाओं को सिद्ध करते हैं।
4. शुक्ल की ये स्थापनाएं सर्वथा मौलिक हैं।

(4) यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश हो जाता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकल जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचारों की भी मुंह पर प्रशंसा करनी पड़ती है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'करुणा' से लिया गया है। इस निबंध में आचार्य शुक्ल ने मनुष्य के 'करुणा' भाव का विशद विश्लेषण किया है। 'करुणा' जैसे मनोभाव का उत्स खोजने के दौरान शुक्ल जी मनुष्य के आचरण और व्यवहार का पर्त दर पर्त विवेचन करते चले जाते हैं।

व्याख्या– आचार्य शुक्ल का मानना है कि यदि मनुष्य में मन का आवेग न हो तो वह सब कुछ रहते भी जड़ के समान होगा। स्मृति, अनुमान और बुद्धि के बावजूद वह पत्थर के समान निर्जीव हो जाएगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि वर्तमान जीवन स्थितियों में मनुष्य अपने इस भाव को बचा पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। बल्कि अपने मनोभावों को मारना पड़ जाता है। इस कारण ही मनुष्य अपनी भावना का सही और सच्चा निर्वाह नहीं कर पाता है। वन, नदी और पर्वत के सौंदर्य से रसास्वाद करने में असफल हो जाता है। कई बार परिस्थितियों के कारण भी मनोभावों को नियंत्रित करना पड़ जाता है। दुराचारी से घृणा और उसके ऊपर क्रोध आता है पर शिष्टाचारवश हम उसके सामने उस पर क्रोध या उससे घृणा नहीं कर पाते हैं। कई बार हमें मालूम होता है कि सामने वाला दुराचारी है पर शिष्टाचार वश उसकी प्रशंसा भी करनी पड़ जाती है। इस तरह से मनोभाव को नियंत्रित करना पड़ जाता है।

विशेष

1. मनोभावों का नियंत्रण किस तरह से होता है, इस प्रसंग में प्रभावशाली ढंग से व्याख्यायित हुआ है।

2. भाव दशा का जड़ होना अपने आप में भयंकर है। भाव दशा को नियंत्रित करने की वजह से व्यक्ति अपने भावों का निर्वाह ठीक तरीके से नहीं कर पाता है।
3. मनुष्य के वास्तविक व्यवहार का चित्रण हुआ है।
4. शुक्ल जी ने भाव विवेचना मनुष्य के व्यवहार को आधार मानकर की है, उनकी मंशा सिद्धांत स्थापित करना नहीं है।
5. शुक्ल जी सामान्य जीवन से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध 'करुणा' किस निबंध–संग्रह से लिया गया है?

   (क) मानस की धर्मभूमि (ख) चिंतामणि

   (ग) कविता क्या है (घ) इनमें से कोई नहीं

10. प्रस्तुत निबंध में क्या भाव प्रदर्शित किया गया है?

    (क) भक्ति (ख) क्रोध

    (ग) करुणा (घ) लोभ और प्रीति

1.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी (व्याख्यांश)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे कथाकार हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व रचना प्रक्रिया शुरू की और स्वतंत्रता पश्चात् उसे प्रौढ़ता से युक्त किया। उनके लेखन में कालिदास का लालित्य, बाणभट्ट का समास गुंफन, रवीन्द्र की मानवीय भावना, कबीर के समान मनमौजी स्वभाव देखने को मिलता है। वे सांस्कृतिक बोध का दिग्दर्शन कराते हैं। उनके निबंधों में विचार शृंखला देखने को मिलती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विषय की गंभीरता तथा मानवतावादी भावबोध मिलता है। उनके निबंध उनकी विद्वत्ता, गंभीर व्यक्तित्व, वैचारिकता को दर्शाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध में मन की जिज्ञासा, मानव की मूलभूत आवश्यकता, ऐतिहासिक संदर्भ, संस्कृति की छटा, मानव व पशु का अंतर, भौतिकतावादी भावना एवं मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं को वर्णित करना है।

अपनी छोटी लड़की के यह पूछने पर कि नाखून क्यों बढ़ते हैं, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की ललित निबंधकार की प्रवृत्ति जाग उठती है और वे इसका उत्तर खोजने के लिए मनुष्य के आदिमकाल से अब तक के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं और इस ललित निबंध में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नाखून पशुता के प्रतीक हैं और उनका काटना मनुष्यता की निशानी है। नाखून कटने पर भी बार–बार बढ़कर इस बात को सूचित करते हैं कि अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है और आदमी सदैव उससे लोहा लेने के लिए कमर कसते हैं।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के लखदंतावलंबी जीव हो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करने वाले और चरने वाले।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, उपन्यासकार मानवतावादी लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों द्वारा लेखक अभिव्यक्त करता है कि वैज्ञानिक चकाचौंध से आकृष्ट होकर मानव ने विनाशकारी हथियारों का सहारा लेना शुरू कर दिया है। इससे मानव जाति का प्रगतिमार्ग अवरुद्ध हो गया है। द्विवेदी जी ने मानव की बदलती मानसिकता का वर्णन करते हुए लिखा है–

व्याख्या : जब मनुष्य आदि मानव था अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं पर आश्रित था। बाह्य आक्रमण से बचने के लिए उसके बड़े तथा नुकीले नाखून हथियार का काम करते थे। उससे मानवता कलंकित नहीं होती थी। उसके इन नाखूनों को देखकर पाशविक प्रवृत्ति का ज्ञान हो जाता था। भविष्य के प्रति चिंतित नहीं था, उसका वर्तमान ही सब कुछ था। लेकिन मनुष्य ने जैसे–जैसे प्रगति की उसकी इच्छाएं भी बलवती होती गईं। फलस्वरूप अनेक विपत्तियों का सामना करना उसकी विवशता बन गई। इनको हल करने के लिए नाखूनों के स्थान पर विनाशकारी हथियारों, एटम बमों का सहारा लेना मजबूरी बन गया। आज वह विनाश के कगार पर खड़ा है, कभी अपने अतीत को देखकर पश्चाताप करता है तो कभी भविष्य को देखकर उसकी आंखों से नींद उड़ जाती है। आज वह सभ्य तथा हथियारों से सुसज्जित होने पर भी संतुष्ट नहीं है। उसके नाखून आज भी उसी क्रम से बढ़ रहे हैं। विकास के पश्चात् भी पशुता, बर्बरता के प्रतीक नाखूनों में आज भी उसकी प्राचीन पशु हिंसक प्रवृत्ति विद्यमान है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव जब अपने अतीत पर दृष्टिपात करता है तो उसे दांत और नाखूनों के रूप में अपना आदि मानव अस्तित्व दिखाई देता है जिससे उसके पशुवत होने का अनुमान लगाया जा सकता है। खाने–पीने तथा सोने वाले जानवर की तरह मानव का स्वरूप मौजूद है। सौंदर्य बोध की झांकी के दर्शन नहीं होते हैं। एटम बमों के रूप में मनुष्य के नाखून की झलक दिखाई देती है। हथियारों के जमा करने की प्रवृत्ति से पशुवत व्यवहार का बोध होता है। अमानवीय, पशुता का प्रचलन वर्तमान युग का प्रचलन हो गया है।

विशेष

1. मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति का वर्णन किया है।
2. सभ्यता के विकास के साथ ही उसकी सोच भी बदलनी होगी तभी आधुनिकता की दौड़ में शामिल हो सकते हैं।
3. द्विवेदी जी का मानना है कि युद्ध पशुता का प्रतीक है तथा इससे मानवता कलंकित होती है।
4. वर्तमान युग में हथियारों के प्रति बढ़ता रूझान भविष्य के लिए खतरा पैदा करता है।

5. मानव के इतिहास की वर्तमान में प्रस्तुति की है।
6. बुद्धि, चेतना का धरातल ही पशु और मानव में अंतर स्पष्ट करता है।
7. द्विवेदी जी के गंभीर व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।
8. अभिधा शब्दशक्ति प्रयुक्त हुई है।
9. प्रसाद गुण है।
10. तुलनात्मक अध्ययन की छाप है।

(2) मानव शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि–विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव चित की भांति मानव शरीर में भी बहुत सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियां रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है वे वृत्तियां अनायास ही और शरीर के अनजान में भी अपने–आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है और असल में सहजात वृत्तियां अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं।

प्रसंग : यह गद्यावतरण उपन्यासकार, निबंधकार, मानवतावादी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से अवतरित है।

आदि मानव की प्रवृत्तियों का वर्तमान में शस्त्रों के रूप में पाया जाना चिंता का विषय है। नाखून बढ़ाने की सोच के मूल में पशुता ही दिखाई देती है जबकि नाखूनों के काटने से सभ्यता एवं संस्कृति का बोध होता है। मनुष्य ने एटम बमों तथा विनाशकारी हथियारों को एकत्र करना शुरू कर दिया है जिससे मानव सभ्यता पर विनाश के बादल मंडरा रहे हैं। मानवता की हिमायत करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि–

व्याख्या : मानव में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों में पाशविक लक्षणों का पाया जाना शुभ नहीं है। विकास के फलस्वरूप भी मानव का अतीत की प्रवृत्तियों से मोह भंग नहीं हुआ है। इसीलिए वह विनाशकारी कार्यों के प्रति उत्सुकता से बढ़ रहा है। समय के साथ मनुष्यों की सोच भी बदलनी होगी तभी हम विकास कर सकेंगे। शस्त्रों की होड़ से भविष्य भी सुरक्षित नहीं रह सकता। मानव का नाखूनों को बढ़ाना आदिम युग की आवश्यकता थी आज वह व्यर्थ सिद्ध हो रही है। बार–बार इन्हीं प्रवृत्तियों का मुखरित होना पशुता का प्रतीक है। इन प्रवृत्तियों से उसे संबल प्रदान होता है इसीलिए उनके प्रति चिपका हुआ है। आदिम प्रवृत्तियों का स्वरूप वर्तमान में भी दिखाई देता है। द्विवेदी जी इनका क्रमशः उल्लेख करते हुए कहते हैं कि नाखून का बढ़ना उनमें से एक है। बालों का बढ़ना भी स्वाभाविक है, दांतों का पुनः निकल आना इसका प्रमाण है। एक समय था, युग की मांग थी मनुष्य का इनके बिना जीवन सुरक्षित नहीं था। समय के बदलने के साथ अब यह प्रवृत्तियां व्यर्थ सिद्ध हो गई हैं। नाखूनों की आवश्यकता नहीं है फिर भी बढ़ना जारी है। पहले बालों को शारीरिक सुरक्षा का साधन माना जाता था। लेकिन अब यह फैशन का प्रतीक बन गया है। अब मनुष्य को तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध हैं। दांतों का प्रयोग आदि युग में भोजन चबाने में किया जाता था अब छीलने, काटने के लिए मशीनें हैं। पलकों का गिरना व पुनः उठना इनमें से एक है। द्विवेदी जी का मानना है कि यह प्रवृत्तियां जन्मजात हैं इसीलिए स्वाभाविक रूप से आज भी मौजूद हैं। मानव का मन इनसे मुक्त नहीं हो सका है। आज ये जीवन का अनिवार्य अंग बन गई हैं।

विशेष

1. आदि मानव और वर्तमान मानव में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है।
2. मानव के लिए जन्मजात प्रवृत्तियों को छोड़ पाना जटिल होता है।
3. द्विवेदी जी के गवेषणात्मक अध्ययन की झलक है।
4. द्विवेदी जी की भविष्योन्मुखी जीवन–दृष्टि का चित्रण है।
5. मानवता के द्वारा ही पाशविक प्रवृत्तियों को दूर किया जा सकता है।
6. वैज्ञानिक उपलब्धि की भीड़ में छिपी विनाशकारी लक्षणों की ओर संकेत किया है।
7. प्रसाद गुण प्रयुक्त हुआ है।
8. अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।
9. इतिहास का अध्ययन वर्तमान को सुधारने व भविष्य को संभालने के लिए किया जाता है।
10. युद्ध की विभीषिका से जन धन के साथ संस्कृति व सभ्यता भी विलुप्त हो जाती है।

(3) हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या पर नाना भावों और नाना पहलुओं से विचार किया गया है। हम कोई नौसिखिए नहीं हैं, जो रातों–रात अनजान जंगल में पहुंचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हैं। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियां बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है पर मूल समस्याएं बहुत अधिक नहीं बदली हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, आलोचक, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से अवतरित है। इन पंक्तियों में हथियारों की होड़ से चिंतित द्विवेदी जी मानवता संरक्षण के लिए हथियार को त्याज्य बताते हैं।

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना है कि इतिहास हमें भविष्य के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इतिहास हमारे अतीत का आईना होता है। मानव की पाशविक प्रवृत्तियों के लक्षण प्राचीन ग्रंथों में देखने को मिलते हैं। सभ्यता एवं संस्कृति हमारे अतीत का प्रमाण होती है। हमारे दर्शन ग्रंथों में इसका प्रमाण उपलब्ध है। हमारा वैचारिक पक्ष सुदृढ़ है। विभिन्न समस्याओं पर अपने विवेक से अवगत कराया गया है। परिपक्वता के फलस्वरूप ही हम नौसिखिए नहीं कहलाते। हमारा अतीत भले ही पाशविक रहा हो लेकिन हम लक्ष्य से भ्रमित नहीं हुए। हमने प्रश्नों के मूल में जाकर समस्या का हल ढूंढ़ निकाला है तथा संस्कारों से अपने जीवन को सुसंस्कृत कर लिया है। परंपरानुसार हम दिशा निर्देश के आधार पर लक्ष्य को प्राप्त कर रहे हैं जिसके फलस्वरूप अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ रहा है। हमारी मूल समस्याएं भी हल होने लगी हैं। मानवता के लिए हमने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला। हम अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को छोड़ने को बाध्य हो रहे हैं।

विशेष

1. भारतीय चिंतन पद्धति का वर्णन है।
2. मानवता का समर्थन करना द्विवेदी जी की विशेषता रही है।
3. इतिहास हमारे अतीत का संग्रहालय है जिससे हमें भविष्य के लिए दिशा निर्देश प्राप्त होता है।
4. संस्कारों की संख्या 16 होती है जो मनुष्य के जन्म से मृत्योपरांत तक चलते हैं।
5. संस्कारित व्यक्ति ही मानवता का समर्थक होता है।
6. एटम बमों के आविष्कार से मानवता का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।
7. प्रसाद गुण है।
8. अभिधा शब्द शक्ति प्रयोग हुई है।
9. संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
10. परिस्थिति अनुरूप मनुष्य का बदलना युग–चेतना का द्योतक है।

(4) परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सर्वस्व खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण कर लेते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते हैं। सो हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्व संचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से अवतरित है।

इस गद्यांश में द्विवेदी जी कहते हैं कि मानव की आदिम प्रवृत्तियों से पशुता का बोध होता है उसका परित्याग करना मनुष्यता का सूचक है। मानव ने हथियारों का निर्माण करके प्रगति के मार्ग में अवरोध खड़ा कर दिया है। द्विवेदी जी ने मानवता की वकालत करते हुए कहा–

व्याख्या : मानव ने भौतिकता के साथ शस्त्रों की होड़ में स्वयं को धकेल दिया है। पारस्परिक स्पर्धा के फलस्वरूप अपने संस्कारों को भूल गया है। परंपरा को विस्मृत कर दिया है। नवीनता के मोह में अपनी विरासत को भुला देना न्यायोचित नहीं है। उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि सब पुराने अच्छे नहीं होते और सब नए भी ग्रहणीय नहीं होते। अच्छाई बुराई का संबंध युग विशेष की अपेक्षा नहीं रखता। विवेकशीलता ही वह माध्यम है जिससे हम नूतन और पुरातन में सामंजस्य स्थापित कर ग्रहण योग्य स्वीकार कर सकते हैं। यह तर्क के आधार पर ही संभव है। द्विवेदी जी कहते हैं कि मूढ़ व्यक्ति जिनके पास विवेक नहीं होता, अंधानुकरण के पोषक होते हैं वही लक्ष्य से भटक जाते हैं। लेखक इसके लिए परीक्षण तर्क को आधार मानकर निर्णय लेना उचित मानता है। परंपरा का मूल्यांकन करने के लिए मानव हित सर्वोपरि होना चाहिए। आलोचनात्मक विवेक द्वारा ही यह संभव हो सकता है।

विशेष

1. द्विवेदी जी अंधानुकरण का त्याग कर नूतन दृष्टिकोण अपनाने पर बल देते हैं।
2. मानवतावादी चिंतन भारतीय दर्शन की विशेषता रही है।

3. वर्तमान समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए इतिहास का अध्ययन अपेक्षित है।
4. संस्कृत के प्रकांड विद्वान कालिदास का अभिमत विवेकसम्मत व न्यायसंगत है।
5. विवेकरहित व्यक्ति ही दिग्भ्रमित होता है।
6. द्विवेदी जी हितकारी तथ्य की प्राप्ति के लिए विवेक दृष्टि आवश्यक मानते हैं।
7. प्रसाद गुण है।
8. अभिधा शब्द शक्ति प्रयोग की गई है।
9. शोध करने की प्रवृत्ति ही अनुसंधित्सा कहलाती है।

(5) भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को समझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बांधना। मनुष्य पशु से किस बात से भिन्न है। आहार–निद्रा आदि पशु–सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्‌भावित बंधन हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार, उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से अवतरित है।

इन पंक्तियों द्वारा द्विवेदी जी पाशविक प्रवृत्तियों का परित्याग करने, मानवता की स्थापना करने, शस्त्रों की होड़ को विनाशकारी मानने, सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करने तथा भारतीय चिंतन का दिग्दर्शन करने पर बल देते हुए कहते हैं–

व्याख्या : भारतीय संस्कृति में आत्मसात का गुण विशिष्टता का धोतक है। यहां के ऋषियों ने मानव धर्म का समर्थन किया है। मानवीय पाशविक प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अपने चिंतन से अवगत कराया है। द्विवेदी जी का मानना है कि भारतीय इतिहास वर्णों एवं जातियों का यथार्थ बिंब प्रस्तुत करता है। संयम व धैर्य का पालन कराया गया है। मानव अपने विवेक द्वारा निर्णय कर जीवनशैली बिताता है। स्वयं सांसारिक बंधनों में आबद्ध होने पर भी कभी सत्य व विवेक का दामन नहीं छोड़ता। द्विवेदी जी ने मानव और पशु में विभाजक रेखा को स्वीकारते हुए कहा है कि विवेकशीलता व चिंतन ही दोनों के भेद का आधार हैं। मानव स्वयं अनुशासित रहकर संवेदना एवं सहानुभूति को व्यक्त करता है। तप, त्याग, मानवता, श्रद्धा, संयम के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के आदर्शों से विमुख नहीं होता। उपरोक्त गुणों के फलस्वरूप ही वह मानवोचित व्यवहार करने को बाध्य है। यह मनुष्य का स्वयं की सोच का परिणाम है।

विशेष

1. भारतीय संस्कृति एवं आदर्श का चित्रण है।
2. भारतीय दर्शन तथा चिंतन द्वारा मानवता की प्रतिष्ठा की गई है।
3. बौद्धिक चिंतन ही मनुष्य को पशु से अलग करता है।
4. मनुष्य के लिए साहित्य, संगीत, कला की अनिवार्यता होती है।
5. प्रेम, श्रद्धा, त्याग संयम, तप, मनुष्यता भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं।

6. भारत धर्मात्माओं का देश है समय–समय पर इन धर्मात्माओं ने अपने उपदेशों से समाज को दिशा–निर्देश प्रदान किया है।
7. चार वर्ण माने जाते हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
8. अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।
9. प्रसाद गुण है।
10. तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(6) उसने कहा था बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को उठाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मतोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, स्व का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी रही।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों द्वारा लेखक ने मानवता का समर्थन कर गांधीवादी विचारधारा का समर्थन किया है।

व्याख्या : द्विवेदी जी का मानना था कि मनुष्य को बाह्य जगत की अपेक्षा आंतरिक जगत का अवलोकन करना चाहिए क्योंकि आंतरिक नियंत्रण से बाह्य नियंत्रण स्वतः हो जाता है। मनुष्य को अपनी अभिव्यक्ति को तोलकर बोलना चाहिए। क्रोध, विनाश, हिंसा, द्वेष पाशविक प्रवृत्तियां हैं। इन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। मन में प्रतिकार की भावना का परित्याग कर देना चाहिए। भ्रम के निवारण हेतु विवेक का पालन करना अपेक्षित है। गांधी जी की यही शिक्षाएं थीं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करो। आराम करने से जीवन में शिथिलता आती है। घृणा का त्यागकर प्रेम को परिपक्व बनाना चाहिए क्योंकि इससे मानवता बढ़ती है, संबंधों में प्रगाढ़ता आती है। अपने हृदय को शुद्ध रखना चाहिए। कर्म में लीन रहना चाहिए, अकर्मण्य रहना आलस्य को दर्शाता है। गांधी जी ने संसार में 'प्रेम' को सर्वोपरि माना है क्योंकि वह आंतरिक पक्ष की अनुभूति कराता है। उद्दंडता से पशुता झलकती है। गांधी की शिक्षाएं सर्वस्वीकार्य हैं, उनसे अलगाव या भिन्नता का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य जब किसी की जान लेने का प्रयत्न करता है तो उसमें पाशविक प्रवृत्ति हावी हो जाती है यह माना जा सकता है कि अभी उसने पशुवत आचरण का त्याग नहीं किया है अर्थात् उसके नाखून के समान आदिम प्रवृत्तियां भी जीवित हैं।

विशेष

1. गांधी जी के दर्शन की अभिव्यक्ति है।
2. वर्तमान में मनुष्यों में पशुवत आचरण का होना चिंता का विषय है।
3. प्रेम का क्षेत्र व्यापक है जिसकी सीमा में परिवार, समाज तथा राष्ट्रीय परिदृश्य समाहित हो जाता है।
4. कर्म करना प्राणीमात्र का धर्म है।

5. यह संसार कर्मस्थल है कर्मानुसार फल अवश्य प्राप्त होता है।
6. स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की सहायता करने से सेवा का भाव व्यक्त होता है।
7. आराम करना प्रगति की दौड़ में स्वयं को अलग कर देना है।
8. आत्म संतोष सबसे बड़ा फल है।
9. वृद्ध जनों की शिक्षाएं, उपदेश व्यावहारिकता से पूर्ण होती है।
10. मानव की हत्या के पीछे आदिम प्रवृत्ति की झलक दिखाई देती है।
11. अहिंसा ही परम धर्म है।
12. सत्य बोलो, झूठ बोलना पाप है।
13. अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।
14. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
15. संवाद शैली के दर्शन होते हैं।
16. भावानुकूल भाषा का चित्रण है।

(7) सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को भी पा सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सभ्यता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात् वृद्धि का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना है, उस स्वनिर्धारित, आत्म बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध से लिया गया है। इन पंक्तियों द्वारा मानवता का समर्थन कर चरित्र पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी कहते हैं–

व्याख्या : सफलता प्राप्त करना और मानव चरित्र की विशेषताएं दो अलग–अलग पहलू हैं। वैज्ञानिक परिवेश में मनुष्य में शस्त्रों के प्रति आकर्षण बाह्य उपकरण कहलाता है। भौतिकता से मनुष्य के रहन–सहन का स्तर ऊंचा हुआ है। उसकी वास्तविक प्रगति तभी होगी जब वह आंतरिक गुणों से सुसज्जित होगा। चारित्रिक विशेषताएं सभी को स्वीकार्य होंगी। प्रेम, मित्रता, त्याग में मानवता के लक्षण समाहित हैं। स्वयं का परित्याग कर समाज कल्याण के लिए अर्पित कर देने से मानव चरित्र का उज्ज्वल पक्ष मुखरित होता है। लेकिन भौतिकता के आकर्षण से मनुष्य विमुख न होकर उसमें डूब गया है। धन एकत्र करना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया है। लोक मंगल की भावना के बिना मानवता पल्लवित नहीं होती। जिस प्रकार नाखून बढ़ने से नैसर्गिक पक्ष का बोध होता है, ठीक उसी प्रकार उनको नियमित काटने से मानवीय चरित्र मुखरित होता है। मानव पक्ष का उज्ज्वल पहलू वह होता है जिसमें मनुष्य स्वयं कमल के समान निस्पृह रहकर निःस्वार्थ भाव से मानव सेवा में लीन रहता है।

विशेष

1. मानवतावादी भावना का चित्रण है।

2. मानवीय गुणों के कारण ही मनुष्य पशु से श्रेष्ठ है।
3. चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।
4. प्रेम जीवन का वह पक्ष है जिसके बिना संबंधों की संकल्पना संभव नहीं है।
5. त्याग भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।
6. अर्पण की भावना से चरित्र की विशेषता मुखरित होती है।
7. सफलता और मानवता में अंतर द्रष्टव्य है।
8. अभिधा शब्द शक्ति प्रयोग में लाई गई है।
9. प्रसाद गुण है।
10. भाषा में संप्रेषण का गुण विद्यमान है।

अपनी प्रगति जांचिए

11. आदिम काल में मनुष्य को नाखूनों की आवश्यकता थी–

(क) भोजन के लिए (ख) रक्षा के लिए

(ग) काटने के लिए (घ) शिकार पकड़ने के लिए

12. नाखून बढ़ना किसका प्रतीक है?

(क) वीरता का (ख) कायरता का

(ग) पशुता का (घ) मनुष्यता का

1.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल (व्याख्यांश)

कठोपनिषद की एक प्रसिद्ध उक्ति है, जिसे स्वामी विवेकानंद उद्धृत किया करते थे– 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'। इस पंक्ति का अर्थ है– उठो, जागो और ध्येय की प्राप्ति तक रुको मत। श्रेष्ठ पुरुषों के सान्निध्य में ज्ञान प्राप्त करो। प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल का नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' भी इसी सूत्र वाक्य पर आधारित है। नाटककार अपने इस नाटक के माध्यम से गरीबी उन्मूलन तथा स्त्री शिक्षा के महत्व को स्थापित करना चाहते हैं। उनका विचार है कि इन दोनों वर्गों के उत्थान के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है।

नाटक की शुरुआत मिस्टर बंसल के घर में आयोजित पार्टी से होती है। यहां शहर के प्रतिष्ठित लोग उपस्थित होते हैं। कुछ के मन में गरीबों के प्रति घृणा का भाव होता है, कुछ लोग यह जानते हैं कि अमीरों की वजह से गरीब पैदा होते हैं। इसी पार्टी में गरीबों के उत्थान के लिए संगठनात्मक रूप से कार्य करने की योजना बनाई जाती है। अमीर वर्ग की मंशा को नाटककार ने बेहद प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है।

मिस्टर बंसल शहर के बड़े अधिकारी हैं। वे गरीबों के उत्थान के लिए प्रयासरत हैं। किसानों की समस्याओं का निदान करने से वे नहीं हिचकते हैं। नाटक आगे बढ़ता है और पता चलता है कि कमली तथा बंसी की बेटी गौरी की पढ़ाई आगे

नहीं बढ़ सकती। बंसी के पास इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी बेटी गौरी को आगे पढ़ा सके। वह चाहता है कि गौरी घर की आर्थिक हालत सुधारने में मदद करे। इसी बीच गौरी के शिक्षक उपस्थित होते हैं और कमली तथा बंसी को जागरूक करते हैं कि वे अपनी बेटी की पढ़ाई नहीं छुड़वाएं। इसके लिए वे भी हरसंभव मदद करने का वचन देते हैं।

गौरी को सरकार की तरफ से स्कॉलरशिप मिल जाती है। गौरी बड़ी मेहनत और लगन से अपनी पढ़ाई पूरी करती है। वह अपनी सभी कक्षा में अव्वल आती है। पढ़ाई पूरी करने के बाद आई.ए.एस. की परीक्षा की तैयारी करती है। उसे इस परीक्षा में सफलता मिलती है। एक गरीब मजदूर की बेटी इतनी बड़ी परीक्षा पास कर जाती है, यह सभी के लिए सुखद आश्चर्य का विषय होता है। गौरी अपनी ट्रेनिंग पूरी करके अपने जिले में कलेक्टर नियुक्त होती है फिर कुछ साथियों के साथ मिलकर गरीब जनता में जागरूकता फैलाने के लिए 'मानव–सेवा–केन्द्र' नामक संस्था की स्थापना करती है। वह मानव सेवा के लिए कृत संकल्प है। नाटक के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि गरीब घर की लड़की भी यदि शिक्षा प्राप्त कर ले तो वह समाज को बदल सकती है। अपने देश की उन्नति में योगदान देने के लिए शिक्षा बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाना इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। स्वामी विवेकानंद के विचारों को नाटककार ने बड़ी खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया है।

व्याख्या हेतु कुछ प्रमुख अंश

(1) ये झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले लोग भी हैं न.... हम अमीरों की बराबरी करने की कोशिश करते हैं। ये लोग बहुत घटिया और बदतमीज किस्म के होते हैं। इन लोगों में जरा भी सहूर नहीं होता कि किसी की इज्जत कैसे की जाती है। जरूर मिसेस बंसल ने उन्हें मुँह लगा रखा होगा। वर्ना क्या मजाल कि ये लोग हम अमीरों के बीच दखल देते।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश त्रिभुवननाथ शुक्ल के नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' के द्वितीय दृश्य से उद्धृत है। इस नाटक में अमीर वर्ग के लोग गरीबों के उत्थान के लिए संकल्प लेते हैं लेकिन गरीबों के प्रति न उनका नजरिया बदल पाता है और न ही उनकी उन्नति में किसी तरह की सहायता करते हैं। उद्धृत संवाद मिसेस श्रीवास्तव के अपने घर में हो रही पार्टी के अवसर पर आपसी बातचीत पर आधारित है।

व्याख्या : झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले गरीब लोग अपना समूचा जीवन अमीरों की सेवा में व्यतीत कर देते हैं। उनकी सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए अपना सबकुछ गंवा देते हैं लेकिन अमीर घराने की महिला मिसेस श्रीवास्तव अपने मन में गरीबों के प्रति इस तरह से जहर भरे होती है कि आए दिन वह गरीबों के प्रति ऐसा ही वक्तव्य देती रहती है। बल्कि इन्हीं के घर में गरीबों के उत्थान के लिए योजना भी बनाई जाती है। लेकिन वे लोग गरीब–बेबस समाज के लोगों को घटिया और बदतमीज किस्म के समझते हैं। मिसेस श्रीवास्तव यह भी मानती है कि ऐसे लोगों में सहूर नहीं होता है। वे अनपढ़ और गंवार किस्म के होते हैं इसलिए उन्हें इतनी भी समझ नहीं होती है कि बड़े लोगों का सम्मान किस तरह से किया जाता है। वह

मिसेस बंसल को उनके नौकरों के खिलाफ भी बोलकर गुमराह करती है। मिसेस श्रीवास्तव मानती है कि नौकरों को कभी मुंह नहीं लगाना चाहिए। ऐसा करने से गरीब नौकरों को अपनी औकात याद रहेगी और वे कभी अमीरों की किसी बात में दखल देने का साहस नहीं कर सकेंगे।

विशेष

1. अमीर लोगों का दंभ इस नाटक के माध्यम से उजागर हुआ है।
2. अमीरों का पूर्वाग्रह चित्रित होता है।
3. अमीर–गरीब के बीच की खाई लगातार बढ़ती गई है। इस खाई को बढ़ाने में मिसेस श्रीवास्तव जैसी स्त्रियों का योगदान होता है।

(2) माफ करना भाभीजी, मैं आपके विचारों से सहमत नहीं हूँ। निचले तबके के लोगों को इस तरह बेइज्जत करना हमारा धर्म नहीं है। मानते हैं कि झुग्गी–झोपड़ी वाले निर्धन और गरीब होते हैं किंतु ये गरीब निर्धन होकर भी बिना लाग–लपेट के हमारी सेवा करने में दिन–रात लगे रहते हैं.... खैर.... अच्छा यह बताओ, इनको गरीब निर्धन किसने बनाया? हम अमीरों ने ही....बताओ?

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश त्रिभुवननाथ शुक्ल के चर्चित नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' से उद्धृत है। इस नाटक में एक तरफ गरीबों को नीचा दिखाने, उसे अमीरों के टुकड़ों में पलने वाला बताया जाता है, दूसरी तरफ उसी की बदौलत अपना निजी स्वार्थ भी पूरा किया जाता है। प्रस्तुत संवाद मिस्टर कुरैशी ने कहा है। वे मिसेस ओबेराय तथा मिसेस श्रीवास्तव के द्वारा गरीबों की निंदा का विरोध करते हैं। इस प्रसंग में मिस्टर कुरैशी के मन में गरीब वर्ग के लिए गहरी सहानुभूति दिखाई पड़ती है।

व्याख्या : मिस्टर कुरैशी पार्टी में शामिल मिसेस ओबेराय तथा मिसेस श्रीवास्तव की बातों को दूर से सुन रहे होते हैं। गरीबों के प्रति उन स्त्रियों के मन में घृणा के भाव वे महसूस करते हैं और उनकी जहरीली बातों को बर्दाश्त नहीं कर करते हैं। तब वे उठकर उनके पास जाते हैं और अपना तीव्र प्रतिरोध दर्ज कराते हैं। वे मिसेस श्रीवास्तव तथा मिसेस ओबेराय की बातों का तीव्र विरोध करते हैं। वे उन्हें समझाते हैं कि गरीबों की बेइज्जती करना, उन्हें बात–बात पर अपमानित करना अच्छी बात नहीं है बल्कि यह बात धर्म के विरुद्ध है। मिस्टर कुरैशी गरीबों की पैरवी करते हुए यह भी स्पष्ट करते हैं कि गरीब और निर्धन बिना किसी लाग–लपेट के हमारी सेवा करने के लिए हर वक्त उपलब्ध रहते हैं। वे अपना सुख–चैन कभी नहीं देखते हैं। हमेशा हम जैसे अमीरों की खातिरदारी में लगे रहते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि गरीबों की इस दुर्दशा के असल जिम्मेदार भी हम जैसे अमीर वर्ग के लोग ही हैं।

विशेष

1. कुरैशी के मन में निर्धनों के प्रति अपार सहानुभूति है जिसे वे अभिव्यक्त करते हैं।
2. गरीबों की ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा को रेखांकित किया गया है।
3. गरीब–निर्धनों की दयनीय स्थिति का जिम्मेदार अमीर वर्ग है। इस बात की स्वीकृति इस प्रसंग में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई है।

(3) हम भारत की गरीबी पर चर्चा कर रहे थे। इस खुशी के मौके पर हम लोग स्वामी विवेकानंद के विचारों का अनुसरण करें और ये प्रार्थना करें कि सब लोग मिलकर एक आशा की किरण जगाएँ। आज हम आनंद मना रहे हैं और गरीब भूखों मर रहे हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश त्रिभुवननाथ शुक्ल के नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' के द्वितीय दृश्य से उद्धृत है। इस दृश्य में गरीबों के उत्थान के लिए मिस्टर ओबेराय को संकल्प दिखाई देता है। वे मिसेज श्रीवास्तव की पार्टी में शरीक सभी अमीर लोगों से गरीबों के हितों के लिए आगे बढ़कर उनकी सहायता करने का आह्वान करते हैं।

व्याख्या : पार्टी में गरीबों के प्रति घृणा के भाव को कुछ अमीर घरों की स्त्रियां अभिव्यक्त कर रही हैं। मिस्टर ओबेराय कहते हैं कि आज खुशी का अवसर है। ऐसे खुशी के मौके पर गरीबों की निंदा करे, इससे अच्छा है कि स्वामी विवेकानंद के बताए मार्ग पर आगे बढ़ें और सभी को बराबरी का दर्जा दिलाने में सहयोगी की भूमिका निभाएं। वे गरीबों की बदहाली की ओर इशारा करते हुए बताते हैं कि जी–तोड़ मेहनत करने वाले गरीब बड़ी संख्या में आज भी भूख से मर जाते हैं। इस गैर बराबरी से मुक्ति दिलाने के लिए मिस्टर ओबेराय एक संगठन बनाने की बात करते हैं। वे चाहते हैं कि अमीरों का यह संगठन गरीबों को जगाने के लिए प्रेरित करे और उन्हें गरीबी से मुक्ति दिलाने में मदद करें।

विशेष

1. मिस्टर ओबेराय की सकारात्मक बातें ऊर्जा का संचार करती हैं।
2. ओबेराय गरीबी पर चर्चा के अतिरिक्त उसके उत्थान के लिए ठोस कार्य करने पर बल देते हैं।
3. गरीब जनता को जगाने की बात मुखरता से उठाए जाने का उपक्रम दिखाई पड़ता है।

(4) अंधेरे में प्रकाश की किरण फूटे। आओ, हम सब मिलकर भारत के करोड़ों गरीबों–निर्धनों के लिए प्रार्थना करें, जो गरीबी और जातीय भेदभाव से जूझ रहे हैं हम उन गरीबजनों को जगाएं। उनमें साक्षरता का प्रकाश फैलाएँ। हमें ईश्वर राह दिखाएँ कि हम गरीबों के प्रति निष्ठावान बनें। मैं अमीरों का आह्वान करता हूँ कि सब अमीर उठें, जानें और ये तय करें कि हम भारत के अमीर लोग, गरीबों की गरीबी हटाएँगे और उन्हें बराबरी का दर्जा देंगे।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश त्रिभुवननाथ शुक्ल के बहुचर्चित नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' के द्वितीय दृश्य से लिया गया है। इस प्रसंग में मिस्टर ओबेराय गरीबों और निर्धनों की निंदा सुनकर एक ऐसा संगठन बनाने की बात करते हैं जो देश के गरीबों का उत्थान करें और उसे जगाने का प्रयास करें।

व्याख्या : मिस्टर ओबेराय देश की निर्धन जनता के जीवन को बदलने के लिए संकल्प लेने का आह्वान करते हैं। जो निर्धनरूपी अंधेरा समूचे देश में विद्यमान है, साथ मिलकर कार्य करने से वह अंधेरा दूर हो सकेगा और चारों तरफ उम्मीद की रोशनी बिखर जाएगी। वे पार्टी में आए सभी अमीर लोगों से गरीबों के उत्थान के लिए कदम आगे बढ़ाने की

बात करते हैं। शुरू में वे चाहते हैं कि सब मिलकर गरीबों तथा निर्धनों को विकट जीवन की स्थितियों से उबारने के लिए प्रार्थना करें। गरीब वर्ग अपनी इन स्थितियों से उबर जाएं। वे यह भी कहते हैं कि गरीब जनों को जगाने का प्रयास करें। अर्थात् वे गरीबी और अशिक्षा को अपनी नियति मान बैठे हैं। उन्होंने भाग्य के हवाले अपने जीवन को कर रखा है। उन्हें यह समझाएं कि यदि वे अपनी स्थिति को बदलना चाहते हैं तो भाग्य पर निर्भर न रहकर अपने कर्म पर विश्वास करें। गरीब जनता कर्मयोगी बने और अपनी परिस्थितियों से संघर्ष कर अपने निम्न जीवन स्तर को ऊंचा उठाएं। मिस्टर ओबेराय सभी अमीरों से यह निवेदन भी करते हैं कि वे गरीबों को निम्न न समझें। उन्हें गरीबी से मुक्ति दिलाने में सहायता करें और बराबरी का दर्जा प्रदान करें।

विशेष

1. मिस्टर ओबेराय घोर निराशा के माहौल में भी सकारात्मक पक्ष रखते हैं।
2. अमीरों से गरीबों की सहायता के लिए निवेदन करते हैं और बराबरी का दर्जा देने की गुहार लगाते हैं।
3. गैर–बराबरी के चित्र को उकेरने का प्रयास किया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक का मुख्य उद्देश्य क्या है?
    (क) प्रौढ़ शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाना
    (ख) स्त्री शिक्षा के प्रति जागरूकता फैलाना
    (ग) रोजगार के प्रति जागरूकता फैलाना
    (घ) उपरोक्त सभी
14. गरीब जनता में जागरूकता फैलाने के लिए गौरी ने किस संस्था की स्थापना की?
    (क) राष्ट्रीय सेवा केंद्र (ख) मानव–सेवा केंद्र
    (ग) सामाजिक सेवा केंद्र (घ) प्रशिक्षण सेवा केंद्र

1.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (ख)
4. (घ)
5. (ग)
6. (ख)
7. (ख)

8. (क)
9. (ख)
10. (ग)
11. (ख)
12. (ग)
13. (ख)
14. (ख)

1.10 सारांश

'अंधेर नगरी' एक प्रहसन है। इसलिए इसमें आद्योपान्त व्यंग्य की मारक लीला चलती हुई दिखाई पड़ती है। प्रहसन अपने सामान्य रूप में लोगों को हँसाकर, उनका मनोरंजन कर अपना कार्य सम्पन्न कर सकता है। वहां व्यंग्य के स्थान पर हास्य की प्रधानता हो सकती है किन्तु अपने गंभीर अर्थ में प्रहसन व्यंग्यात्मक होता है और उसके व्यंग्य सत्ता व्यवस्था और अनेक अपशक्तियों की विसंगतियों और क्रूरताओं पर गहरी चोट करते हैं। इस नाटक का चरित्र विधान अपनी तरह का है। वास्तव में इसमें किसी केन्द्रीय पात्र नायक का विधान करना उद्देश्य नहीं था, उद्देश्य था अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करना। इसलिए अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करने के लिए जिन–जिन पात्रों की आवश्यकता हुई है लेखक ने बहुत थोड़े–थोड़े में उनकी उपस्थिति दर्ज की है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक राज्याधिकार से संबंधित कार्यक्षेत्र की समस्या को भी चित्रित करता है। यदि राजा दुर्बल, अयोग्य, अत्याचारी, कायर और राज्य के सम्मान की रक्षा करने में असमर्थ हो तो क्या उसे अपने पद पर बने रहने का अधिकार है या उसे उसके पद से हटा देना चाहिए? उसके स्थान पर सुयोग्य शासक नियुक्त किया जाना चाहिए? यह प्रश्न उस राजतंत्र एवं उत्तराधिकारानुसार राजा बनने वाले युग में विशेष महत्व रखता है।

डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी 'दीपदान' बहुत चर्चित एकांकी है। यह शीर्षक दो अर्थों को व्यंजित करता है। आमतौर पर देवताओं के समक्ष दीपक जलाने की प्रक्रिया को 'दीपदान' कहा जाता है। लेकिन इस एकांकी में 'दीपदान' का गहरा तथा सार्थक अर्थ है।

विष्णु प्रभाकर का ध्वनि एकांकी 'वापसी' बेहद चर्चित रहा है। यह एकांकी असगर नामक पाकिस्तानी सैनिक की कहानी पर आधारित है। असगर भारत के बंटवारे से पूर्व भारत के कश्मीर के एक गांव में पला–बढ़ा था। उसका बचपन भारत के गांव में व्यतीत हुआ था। आजादी मिलने के बाद असगर को अपना यह मुल्क छोड़कर नये मुल्क पाकिस्तान जाने के लिए विवश होना पड़ा।

'करुणा' निबंध में आचार्य शुक्ल यह बताते हैं कि 'करुणा' जैसी भावना कब जन्मती है। चूंकि यही वह भावना है जो मनुष्य के अन्य भावों से बिल्कुल अलग और

विशिष्ट है। करुणा का भाव उत्पन्न होते ही मनुष्य सामने वाले की भलाई के लिए सोचने लगता है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि मनुष्य का सुख अथवा दुख उसके समाज में प्रवेश करने के बाद दूसरों पर आश्रित हो जाता है। मनुष्य का दुख दूसरे व्यक्ति के काम या अवस्था पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य समाज से बाहर रहे तो उसके सुख और दुख का क्षेत्र अत्यंत संकीर्ण हो जाएगा। मनुष्य अपने आप में खुश या दुखी नहीं रह सकता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में विषय की गंभीरता तथा मानवतावादी भावबोध मिलता है। उनके निबंध उनकी विद्वत्ता, गंभीर व्यक्तित्व, वैचारिकता को दर्शाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध के उत्स में जिज्ञासा, मानव की मूलभूत आवश्यकता, ऐतिहासिक संदर्भ, संस्कृति की छटा, मानव व पशु का अंतर, भौतिकतावादी भावना, चारित्रिक वर्णन को वर्णित करना है।

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल का नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' कठोपनिषद के सूत्र वाक्य पर आधारित है। नाटककार अपने इस नाटक के माध्यम से गरीबी उन्मूलन तथा स्त्री शिक्षा के महत्व को स्थापित करना चाहते हैं। उनका विचार है कि इन दोनों वर्गों के उत्थान के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। इस नाटक में एक तरफ गरीबों को नीचा दिखाने, उसे अमीरों के टुकड़ों में पलने वाला बताया जाता है, दूसरी तरफ उसी की बदौलत अपना निजी स्वार्थ भी पूरा किया जाता है। प्रस्तुत संवाद मिस्टर कुरैशी ने कहा है। वे मिसेस ओबेराय तथा मिसेस श्रीवास्तव के द्वारा गरीबों की निंदा का विरोध करते हैं।

1.11 मुख्य शब्दावली

- **लोभ** : लालच।
- **मूल** : कारण।
- **यामैं** : इसमें।
- **पचलोना** : पचाने वाला।
- **सलोना** : मधुर आकर्षक।
- **अतीतजीवी** : पुराने समय से प्रचलित।
- **करुणा** : दया, अनुकंपा।
- **दुराचार** : निंदनीय आचरण।
- **पाशविक** : पशु जैसी आदतें या स्वभाव।

1.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैरा' यह वाक्य 'अंधेर नगरी' नाटक के किस पात्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है?

2. निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव! शब्दों से प्रस्तुत गद्यांश में क्या तात्पर्य है?
3. दीपदान एकांकी में 'कुल–दीपक' शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?
4. 'कहीं भी तो रोशनी..... अपना फर्ज करूंगा?' प्रस्तुत अवतरण किस घटना पर आधारित है?
5. 'करुणा' निबंध के रचनाकार का नाम बताइए। यह किस निबंध संग्रह से लिया गया है?
6. 'ये झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले..... दखल देते।' यह संवाद किस अवसर पर आधारित है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'मछरिया एक टकै ..... मिले बिना अकुलाय।' प्रस्तुत गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
2. 'अमात्य, तुम गौरव ..... और छल से.....।' गद्यावतरण की व्याख्या कीजिए।
3. 'आज अंतिम दिन मैं तुम्हें ..... और भोला मुख है।' प्रस्तुत गद्यावतरण किस एकांकी से लिया गया है? सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
4. 'ऐसा लगता है ..... उन्हें इशारा कर सकूंगा।' प्रस्तुत गद्यांश में किन–किन पात्रों के मध्य संवाद स्थापित किया गया है? व्याख्या कीजिए।
5. 'करुणा की प्राप्ति के लिए ..... अपेक्षा परिमित है।' प्रस्तुत गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।
6. 'नखधर मनुष्य ..... विचरण करने वाले और चरने वाले', प्रस्तुत गद्यावतरण की प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

1.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
3. *समकालीन हिंदी साहित्यः विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
6. *हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास,* हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. *छायावाद,* डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9. *आधुनिक हिंदी साहित्य,* अज्ञेय, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।
10. *हिंदी वाङ्मय बीसवीं शती,* डॉ. नगेंद्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
11. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. रामनिवास शुक्ल, मंचन पब्लिकेशन, रोहतक।
12. *हिंदी का सुबोध इतिहास,* गुलाबराय, लक्ष्मी पब्लिकेशन, आगरा।
13. *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां,* डॉ. शिवकुमार शर्मा।

इकाई 2 अंधेर नगरी, ध्रुवस्वामिनी और निर्धारित एकांकी तथा निबंधों की आलोचनात्मक समीक्षा

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र
2.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद
2.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा
2.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर
2.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल
2.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी
2.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल
2.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.10 सारांश
2.11 मुख्य शब्दावली
2.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.13 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

गद्य एक ऐसी विधा है, जिसमें लेखक अपने भावों को प्रस्तुत करने के लिए सहज रूप से, बातचीत की शैली अथवा अलंकृत शैली में अपनी बात कहता चला जाता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य लिखा गया है। आधुनिक युग में गद्य लेखन की कई पद्धतियां विकसित हुईं। उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, कहानी आदि अनेकानेक विधाओं के माध्यम से साहित्य लिखा गया। साहित्य एक ऐसा प्रवाह है जो अनवरत चलता रहता है।

हिन्दी साहित्य में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उन्हें ही हिन्दी नाटकों का जनक भी माना गया है। साहित्य की अन्य विधाओं की भांति ही नाटक, का प्रमुख उद्देश्य जीवन एवं जगत संबंधी यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति है। नाटक साहित्य का वह कथात्मक रूप है, जो पात्रों द्वारा दर्शकों के सम्मुख रंगमंच पर प्रदर्शन के लिए होता है। सामाजिक यथार्थ घटनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण दर्शकों को शीघ्र प्रभावित करता है। साहित्य की अन्य विधाएं नाटक की दृश्यत्व प्रधानता की सफलता के कारण गौण हो जाती हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'अंधेर नगरी' अत्यंत संक्षिप्त कलेवर का हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण एक नाटक है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक परिवेश पर तीखे कटाक्ष किए गए हैं। ये कटाक्ष समय के साथ पुराने नहीं बल्कि आज की परिस्थितियों में भी अनुकूल और सटीक हैं।

टिप्पणी

जयशंकर प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक एक स्त्री प्रधान नाटक है जिसमें ऐतिहासिक कथावस्तु का प्रयोग कर नारी के शोषण, अनादर, अपमान और दयनीय अवस्था का चित्रण किया गया है। सन् 1933 में रचित यह नाटक आज भी प्रासंगिक है।

डॉ. रामकुमार वर्मा कृत एकांकी 'दीपदान' का मुख्य उद्देश्य देशप्रेम और राष्ट्रभक्ति की भावना को मजबूती से स्थापित करना है। चित्तौड़ के राजवंश की कथा के माध्यम से एकांकीकार ने देश–प्रेम के भाव को उजागर करने का प्रयास किया है।

विष्णु प्रभाकर कृत एकांकी 'वापसी' भारत–पकिस्तान के बंटवारे के बाद दोनों देशों में शुरू हुए युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह एकांकी युद्ध के दौरान एक रात की घटना पर आधारित है।

पं. रामचंद्र शुक्ल कृत निबंध 'करुणा' में आचार्य शुक्ल यह बताते हैं कि 'करुणा' का भाव उत्पन्न होते ही मनुष्य सामने वाले की भलाई के लिए सोचने लगता है। इसके अतिरिक्त करुणा का भाव उत्पन्न होने के बाद मनुष्य के व्यवहार में किस तरह परिवर्तन होने लगते हैं, उन परिवर्तनों की विशद व्याख्या इस निबंध में देखी जा सकती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में बाल जिज्ञासा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय की मांग, मानव व पशु में मित्रता, वर्तमान युग में मनुष्य की छटपटाहट आदि को स्पष्ट किया गया है।

त्रिभुवननाथ शुक्ल कृत नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' स्त्री शिक्षा पर केंद्रित है। इस नाटक के द्वारा यह समझाया गया है कि देश का उत्थान स्त्री शिक्षा के बिना संभव नहीं है।

इस इकाई में भारतेंदु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद, डॉ. रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, पं. रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा त्रिभुवननाथ शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय देते हुए इनकी प्रसिद्ध रचनाओं की आलोचनात्मक विवेचना की गई है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' की कथात्मकता (भाषा, संवाद, रंगमंचीयता) को समझ पाएंगे;
- 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के कथ्य, उद्देश्य, विशिष्टताओं तथा शिल्पगत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाल पाएंगे;
- 'दीपदान' एकांकी का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- 'वापसी' एकांकी के एकांकीकार विष्णु प्रभाकर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ उनकी भाषा शैली से अवगत हो पाएंगे;
- 'करुणा' निबंध का प्रतिपाद्य समझ पाएंगे;
- 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के प्रमुख उद्देश्यों से अवगत हो पाएंगे।

2.2 अंधेर नगरी : भारतेंदु हरिश्चंद्र

टिप्पणी

भारतेंदु का व्यक्तित्व इतना विराट था कि युग की बिखरी हुई शक्तियां उसमें समाहित हो गईं, जिससे उन्होंने भविष्य में समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। इनका जन्म 1 सितंबर 1907 विक्रम संवत् में काशी में हुआ था। इनके पिता 'कविकुल–कमल' श्री गोपाल चन्द्र गिरधर दास थे जो स्वयं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। भारतेंदु को साहित्य सृजन और समाज सुधार के संस्कार विरासत में मिले थे। परिवार का साहित्य वातावरण इनकी प्रतिभा को विकसित करने में सहायक बना। बाल्यावस्था में माता–पिता का देहान्त होने के कारण इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। प्रारंभ में शिक्षा में मन नहीं था फिर भी समय की मांग के अनुसार अंग्रेजी, उर्दू, और हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। अनेक भाषाओं की उन्नति का प्रयास किया क्योंकि भारतेंदु जन जागरण के संदेश को जन–जन तक पहुंचाना चाहते थे। अपने पिता से प्रेरणा लेकर भारतेंदु ने अपने समय के लेखकों और साहित्यकारों का एक मंडल गठित किया तथा साहित्य की अनेक विधाओं में लिखने का स्वयं तो प्रयास किया ही था, मंडल के सभी साहित्यकारों को भी प्रेरित किया। इनके साहित्य ने उस युग में जो क्रांति का बिगुल बजाया उसे भुलाया नहीं जा सकता।

भारतेंदु ने तन, मन और धन तीनों प्रकार से साहित्यकारों, कवियों और लेखकों की मदद की। नए लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार देते थे और भाषागत सुझाव भी देते थे। नए भावों और विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए प्रकाशन का प्रबन्ध भी कराते थे। इस युग के साहित्य को सांस्कृतिक और सामाजिक पुनर्जागरण की नव चेतना का साहित्य कहा जा सकता है। भारतेंदु का कवि रूप जितना ब्रज भाषा में सौंदर्य बिखेरता है उतना ही हिन्दी भाषा में कविता के साथ गद्य का सौंदर्य उसके बहुविध विकास में दिखाई पड़ता है।

पढ़ाई में अधिक रुचि नहीं थी फिर भी इनकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। मेधावी प्रतिभा के धनी थे। एक बार पढ़कर पाठ याद हो जाता था। राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद से अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की, अतः उन्हें गुरु मानते थे और काव्य गुरु पं. लोकनाथ थे। 5–6 वर्ष की अवस्था में ही पहली कविता लिखी जब इनके पिता बलराम कथामृति लिख रहे थे। भारतेंदु ने भी कविता लिखने का आग्रह किया और आज्ञा पाकर तुरन्त दोहा बनाया–

लै ब्यौंडा ठाढे भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को दनन लगे भगवान।।

इस प्रकार इनकी प्रतिभा बाल्यावस्था से ही दिखाई देने लगी थी। 13 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह गुलाबराय की पुत्री मुन्नादेवी से हुआ। 15 वर्ष की अवस्था में सपरिवार जगन्नाथ यात्रा की जिसके अनुभवों ने इनके जीवन को प्रभावित किया। वहां व्याप्त अंधविश्वासों का विरोध किया। इसके पश्चात् अनेक यात्राएं कीं। 1871 की यात्रा 33 दिन की थी। कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, ब्रज और आगरा भ्रमण के बाद इनकी सोच में परिवर्तन आया, हिन्दी भाषा की उन्नति की ओर ध्यान गया। जहां अंग्रेज राज की सुख सुविधाओं के प्रति सहज आकर्षण था, वहीं उनका मन उनकी आर्थिक नीतियां और भारत के जनमानस का

शोषण तंत्र व्यथित करता था। 1884 की बलिया यात्रा उनकी अंतिम यात्रा थी। 6 जनवरी 1885 में 34 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई। इतने कम समय में ही हिन्दी भाषा और साहित्य की जो सेवा की वह चिरस्मरणीय रहेगी।

टिप्पणी

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'अंधेर नगरी' अत्यंत संक्षिप्त कलेवर का हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण एक नाटक है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक परिवेश पर तीखे कटाक्ष किए गए हैं। ये कटाक्ष समय के साथ पुराने नहीं पड़े बल्कि आज की परिस्थितियों में भी अनुकूल और सटीक हैं। इसके कथानक में कोई विशेष गंभीरता नहीं है। इस नाटक में मूल्यहीन, अमानवीय और अराजक व्यवस्था प्रणाली को इस प्रकार प्रकट किया गया है कि शासन की अंधव्यवस्था सामने आ जाती है। विवेकहीन और मूर्ख राजा अपनी पूरी प्रजा के लिए कष्ट का कारण ही नहीं बनता बल्कि उसके नाश का आधार भी बन सकता है। लेखक ने इसके आधार पर जन–चेतना जगानी चाही है।

'अंधेर नगरी' नाटक की आलोचनात्मक समीक्षा

'अंधेर नगरी' नाटक की आलोचनात्मक समीक्षा को निम्न तत्वों के आधार पर समझा जा सकता है–

कथानक

अंधेर नगरी की कथावस्तु छः दृश्यों में विभाजित है। पहले दृश्य में महंत जी अपने दो चेलों–गोवरधन दास और नारायण दास के साथ अंधेर नगरी की ओर आते हैं। और उसके बाहर पड़ाव डालते हैं। दूसरे दृश्य में अंधेर नगरी के बाजार का चित्रण है। इस बाजार में कबाब वाला, घासीराम, नारंगीवाला, हलवाई, कुंजड़िन, चूरन वाला, मछलीवाला, बनिया आदि दिखाई पड़ते हैं। इन विभिन्न जातियों और व्यवसायों के लोगों के द्वारा लेखक अंधेर नगरी की सामाजिक और व्यावसायिक स्थितियों, जीवन पद्धतियों और बोलचाल आदि का विधान करता है, यानी थोड़े में इस नगरी की वास्तविक स्थिति की झांकी प्रस्तुत हो जाती है। लेकिन यह झांकी इकहरी नहीं है। इनके माल विज्ञापनों और संवादों के माध्यम से अंधेर नगरी की शासन और न्याय व्यवस्था की कुरूपता भी व्यंजित होती चलती है। इससे बड़ी कुरूपता क्या हो सकती है कि यहां हर चीज टके सेर बिकती है– टके सेर भाजी, टके सेर खाजा। यह मात्र एक स्थिति नहीं है बल्कि पूरी शासन व्यवस्था पर गहरी चोट है। यह कैसी शासन व्यवस्था है यहां सामान्य और विशिष्टहीन और श्रेष्ठ, मूल्यहीन और मूल्यवान में कोई अंतर ही नहीं है। दरअसल यह दृश्य अंधेर नगरी की अंधव्यवस्था को अपने भीतर से संकेतित करता है। तीसरे दृश्य में ज्ञान और अज्ञान की टकराहट दिखाई पड़ती है। गुरु महंत जी ने इस स्थिति से व्यवस्था के खतरनाक चेहरे को भांप लिया। इसलिए तुरंत इस नगरी को छोड़ने का फैसला किया। इस नगरी में उनके दो चेलों में से एक यानी नारायण दास पूरब में प्रवेश करता है। दूसरा गोवरधन दास पश्चिम में प्रवेश करता है। यह प्रवेश प्रसंग भी बहुत सांकेतिक है। पूरब में प्रवेश करने वाला भारतीय चेतना का प्रतीक है और वह गुरु की बात समझ लेता है इसलिए उनके साथ चलने को प्रस्तुत हो जाता है। लेकिन पश्चिम में प्रवेश करने वाला गोवरधन दास पश्चिमी भोग विलास की प्रवृत्ति से अभिभूत है। इसलिए वह अंधेर नगरी के मोहक जाल में फंस जाता है और गुरू के साथ जाना स्वीकार नहीं करता। गुरु मंहत जी की ज्ञान दृष्टि इस मूर्ख के अनिष्ठशील भविष्य को

समझ लेती है और महंत जी यह कहते हुए उसे छोड़कर चले जाते हैं कि विपत्ति पड़े तो मुझे याद कर लेना। चौथे दृश्य में राज्य सभा दिखाई गई है। इस दृश्य से कथा न्याय व्यवस्था की विसंगति की ओर अग्रसर होती है। लगता है जैसे पिछले दृश्य वह आवश्यक भूमिका थे जिसके गर्भ से न्याय व्यवस्था का यह कुरुप स्वरूप जन्म लेता है। इस दृश्य में एक फरियादी आता है जिसकी बकरी कल्लू बनिए की दीवार के नीचे दबकर मर गई होती है। कल्लू बनिया बुलाया जाता है। वह कहता है कि वह निरपराध है, कारीगर ने दीवार कमजोर बनाई और दीवार ढह गई। फिर कारीगर बुलाया जाता है, वह अपने को निरपराध बताता है और कहता है कि दोष चूने वाले का है। चूने वाला बुलाया जाता है। वह सारा दोष भिश्ती पर डाल देता है। इस प्रकार भिश्ती कसाई पर कसाई गड़रिए पर, गड़रिया कोतवाल पर अपना दोष डाल देता है और अंत में कोतवाल को फांसी की सजा सुनाई जाती है।

पांचवें दृश्य में गोवरधन दास की मौज–मस्ती का चित्रण है। वह मिठाई खाता हुआ यहां की विसंगत व्यवस्था से उपजे हुए सुख का गान गा रहा होता है कि राजा के चार प्यादे आकर उसे पकड़ लेते हैं और उसे फांसी के फंदे पर लटकाने के लिए ले जाते हैं। इसी दृश्य में यह ज्ञात होता है कि कोतवाल को फांसी इसलिए नहीं दी जा सकती कि फंदा बड़ा है और उसकी गर्दन छोटी, इसलिए उस गोवरधन दास को दी जाएगी, जिसकी गर्दन फंदे में आ जाएगी।

छठा दृश्य श्मशान का है। चार सिपाही गोवरधन दास को पकड़े हुए आते हैं और गोवरधन दास अपने गुरु को याद करता है। गुरु जी आते हैं। और अपनी बुद्धिमता से अपने चेले को बचा लेते हैं। वे यह घोषणा करते हैं कि इस समय जो मृत्यु पाएगा वह सीधा स्वर्ग जाएगा। महंत जी की इस घोषणा से सत्ताधीशों में फांसी चढ़ने की होड़ लग जाती है। लेकिन राजा तो राजा है। स्वर्ग जाने का पहला अधिकार तो उसी का है और वह फांसी चढ़ जाता है।

इस प्रकार भारतेंदु जी न केवल अंधेर नगरी के ज्ञानांध, राजा की अंधराज व्यवस्था का व्यंग्यात्मक उद्घाटन करते हैं बल्कि उस राजा को फांसी चढ़वा कर अन्याय और असत्य की समाप्ति का मूल्य बोध भी दीप्त करते हैं।

जहां तक कथानक संरचना का प्रश्न है भारतेंदु जी ने प्रहसन के कुछ शास्त्रीय नियमों का पालन किया है और अधिकांश का नहीं किया है। प्रहसन के सैद्धान्तिक विवेचन में भारतेंदु का नए नाटक से भाव उद्धृत किया है जिसमें उन्होंने कहा है कि आज पुराने भारतीय नाटकों की बहुत सी चीजें हमारे लिए प्रासंगिक नहीं रही। चाहे विषय का चुनाव हो या चरित्रें का आज का नाटककार कहीं भी पुरानी बंदिश को कहीं स्वीकार नहीं करता है। इसका कारण यह है कि नाटक का कथ्य और लक्ष्य बदल गया है। अंधेर नगरी में 'प्रहसन' की भाषा के अनुकूल केवल एक ही अंक रखा है। किन्तु चरित्र संबंधी कोई भी पारंपरिक मान्यता यहां लक्षित नहीं होती। यहां तो मूल उद्देश्य है अंधेर नगरी के माध्यम से अंग्रेजी शासन की सत्ता व्यवस्था और न्याय व्यवस्था की कुरूपता को उद्घाटित करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक पात्रों को लिया गया है। इनमें विभिन्न जातियों और पेशों के लोग हैं। दंड सूत्र से जुड़े तमाम लोग हैं, शासन के छोटे, बड़े कर्मचारी हैं और धर्म के ज्ञानी–अज्ञानी प्रतिनिधि हैं। इन सब की पारस्परिकता से लेखक अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करता है। यह सच है

टिप्पणी

कि यह कथा प्रहसन के अनुकूल काल्पनिक है, किन्तु इसके माध्यम से हमारे समय की एक यथार्थ दुनिया रूपायित होती है।

इस नाटक का चरित्र विधान अपनी तरह का है। वास्तव में इसमें किसी केन्द्रीय पात्र नायक का विधान करना उद्देश्य नहीं था, उद्देश्य था अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करना। इसलिए अंधेर नगरी के चरित्र को उजागर करने के लिए जिन पात्रों की आवश्यकता हुई है, लेखक ने बहुत थोड़े–थोड़े में उनकी उपस्थिति दर्ज की है। यहां पारम्परिक पात्रों जैसा कोई पात्र नहीं है। ये सारे के सारे पात्र अपने–अपने व्यावसायिक चरित्र की छोटी–छोटी निजी ध्वनियां उभारकर कोरस की तरह एक साथ भी बजते रहते हैं और एक साथ बजकर उस नगरी की सामूहिक वास्तविकता के उद्‌घाटन के उपकरण बन जाते हैं।

चरित्र चित्रण

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने प्रसिद्ध प्रहसन 'अंधेर नगरी' में पात्रों का चरित्र चित्रण बहुत ही सुन्दर रूप में किया है। इस प्रहसन में मुख्यतः तीन ही पात्रों– महंतजी, गोवरधन दास और चौपट राजा का ही चरित्र–चित्रण किया गया है जो निम्न हैं–

महंत जी

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित हास्य नाटक 'अंधेर नगरी' में मुख्य तीन ही पात्र हैं जिनमें महंत जी वर्ग विशेष से संबंधित हैं। वे नाटक के आरंभ और फिर अंत में मंच पर दिखाई देते हैं और दर्शक/पाठक पर अपनी बुद्धि और व्यवहार कुशलता की छाप छोड़ जाते हैं। उनका चरित्र जीवन के बहुत निकट है। वे सहज रूप से जीवन व्यतीत करते हैं और कहीं भी अपना ऐसा रूप नहीं दिखाते जिसमें वह अन्य व्यावहारिक दिखायी देते हों। उनका चारित्रिक विकास यथार्थ के बहुत निकट है। यद्यपि लेखक ने कहीं भी बलपूर्वक उनके चरित्र का विकास दिखाने का प्रयत्न नहीं किया तो भी वे सभी को बुद्धि को प्रभावित करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं और चौपट राजा को अपनी बुद्धि कौशल से फांसी के तख्ते पर पहुंचाकर सब का मन जीत लेते हैं। उनके चारित्रिक विकास में अग्रलिखित प्रमुख विशेषताएं विद्यमान हैं–

1. **ईश्वर में विश्वास**–महंत जी पूर्ण रूप से आस्तिक हैं और वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले सक्षम पुरुष हैं। वे गृहस्थी नहीं हैं। अपने दो शिष्यों नारायण दास और गोवरधन दास के साथ सांसारिक मोह माया से दूर रहकर ईश्वर भक्ति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे यह मानते हैं कि मानव का प्रत्येक कार्य ईश्वर के द्वारा ही होना है। ईश्वर अपने भक्तों का कल्याण ही करते हैं। नाटक के छठे अंक में वे अपने चेले से यही बात कहते हैं–'कोई चिन्ता नहीं, नारायण सर्व समर्थ हैं।' महंत जी के जीवन का परम उद्देश्य एक ही है। वे रामभक्ति में अपना जीवन बिताना चाहते हैं–

   राम भजो, राम भजो, राम भजो भाई।
   राम के भजे से गनिका तर गई।
   राम के भजे से गीध गति पाई।
   राम के नाम से काम बनैं सब।
   राम के भजन बिनु सबहीं नसाई।

राम के नाम से दोनों नयन बिनु।
सूरदास भये कवि कुल राई।
राम के नाम से घास जंगल की
तुलसीदास भए भजि रघुराई।

उनकी राम नाम के प्रति अटूट आस्था है और वे इसी में अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।

2. **विवेकशील**– महंत जी बुद्धिमान हैं। वे आने वाले समय को जान लेने की क्षमता रखते हैं। इसलिए वे हर कष्ट से बच निकलने के कौशल को जानते हैं। अपने विवेक के कारण ही गोवरधन दास को अंधेर नगरी में छोड़कर अन्यत्र चले जाने की सलाह देते हैं और कहते हैं–

सेत सेत सब एक से, जहां कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।
कोकिल ह्रास एक सम पण्डित मूरख एक।
इन्द्रायन दाड़िम विषय जहां न नेक विवेक।।
बसिए ऐसे देश नहीं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।

महंत जी ने अपने विवेक का परिचय देते हुए ही गोवरधन दास की चौपट राजा की फांसी के फंदे से रक्षा की थी तथा अविवेकी राजा को वह फंदा प्रदान कर दिया था।

3. **लोभ रहित**– महंत जी के जीवन में लोभ का कोई स्थान नहीं था। वे न तो स्वयं लोभी हैं और न ही अपने शिष्यों को लोभ के लिए कहते हैं। वे जीवन की 'गुजरबसर' के लिए थोड़े में ही अपना काम चलाना चाहते हैं। महंत जी कहते हैं 'देख, जो कुछ सीधा–सामग्री मिले तो श्री शामग्राम जी का बाल भोग सिद्ध हो।' वे अपने शिष्यों को लालच न करने का उपदेश देते हैं–

लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहिं कीजिए, या में नरक निदान।।

वे लोभ को पाप का मूल मानते हैं क्योंकि हर लोभी व्यक्ति धीरे–धीरे पाप के गर्त की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है।

4. **साधु समाज का प्रतिनिधि**–महंत जी भारतीय समाज के महत्वपूर्ण साधु समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें सभी विशेषताएं विद्यमान हैं जो किसी साधु महात्मा में होनी चाहिए। वे स्वभाव के गंभीर हैं, मितभाषी हैं तथा गहन गूढ़ बात ही करते हैं। उन्हें घर गृहस्थी में कोई आकर्षण नहीं था। वे मधुर स्वर में भजन गाते हैं। उनका मानना है कि ईश्वर भक्ति से ही मानव जीवन के कष्ट कटते हैं। उनकी भाषा भी साधु संतों के समान सधुक्कड़ी है–

(क) बच्चा! गोवरधन दास, तू पच्छिम की ओर जा और नारायण पूरब की ओर जाएगा।

(ख) बच्चा! बहुत लोभ मत करना।

(ग) देख, भिच्छा–उच्छा मिले तो ठाकुर जी को भोग लगे और क्या।

(घ) नहीं बच्चा हम इतना, समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भये, हमको जाने दे।

टिप्पणी

भ्रमणशील स्वभाव

महंत जी साधु–संतों की तरह एक जगह टिककर नहीं रहते। वे जगह–जगह घूमते रहते हैं। उनका मानना है कि घर–गृहस्थी ही एक जगह टिककर रहते हैं। वे लालची नहीं हैं और न ही वे एक जगह रहकर सुखों को प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

शिष्य हितैषी

यद्यपि महंत जी सांसारिकता के मोह में ग्रस्त नहीं हैं तो भी वे अपने शिष्यों के प्रति शुभ के भाव अवश्य रखते हैं और उनके दुख के समय में सामान्य मानव और परोपकारी की तरह उनका साथ देते हैं। जब गोवरधन दास अंधेर नगरी के आकर्षण में उलझकर वहीं रह गया था, तब उन्होंने उसे वह जगह छोड़ने का सुझाव दिया था लेकिन उसे कदापि वहां से जाने के लिए विवश नहीं किया था क्योंकि वे मानवीय मूल्यों को समझते हुए अपनी सीमाओं को जानते थे। जब गोवरधन दास मुसीबत में पड़ जाता है तब वे उसे बचाने आते हैं। उसकी जीवन रक्षा ही नहीं करते बल्कि मूर्ख राजा को भी फांसी के फंदे पर ला खड़ा करते हैं। अपने शिष्य का हितैषी होने के कारण ही उसे कहते हैं, "मैं तो जाता हूं पर इतना कहे जाता हूं कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।"

चतुर

महंत जी दुनियादार नहीं हैं तो भी दुनियादारी जानते हैं। अपनी चतुराई के कारण वे अपने शिष्यों को भीख मांगने के लिए भिन्न–भिन्न दिशाओं में भेजते हैं। चतुराई के कारण ही वे अपने लालची चेले गोवरधन दास के भविष्य को जान जाते हैं और चतुराई के कारण ही उसे फांसी के फंदे से बचा लेते हैं। वे चतुर थे तभी तो चौपट राजा को फांसी के फंदे तक पहुंचाने में सफल रहे।

निर्भय एवं साहसी

महंत जी निडर हैं। उनमें अपार आत्मिक बल विद्यमान है। इसी कारण उन्हें न तो किसी से भय है और न ही कोई संकोच। जब उनके शिष्य गोवरधन दास को फांसी के फंदे पर लटकाया ही जाने वाला था तब सिपाहियों से बिना डरे हुए उन्होंने अपने शिष्य से बात ही नहीं की थी बल्कि उन सिपाहियों से भी डांट भरे स्वर में बात की थी। भौंह चढ़ाकर सिपाहियों से– "सुनो मुझको अपने शिष्य को अन्तिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरो कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।"

संयमी

महंत जी का जीवन पूर्ण रूप से संयम द्वारा परिचालित है। उनका अपने मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण है। उनकी भावनाएं और इच्छाएं नियंत्रण से बाहर नहीं जा पातीं। जब उनका चेला गोवरधन दास बहुत सी मिठाई लेकर उनके पास पहुंचता है तो वे प्रसन्न होते हैं परन्तु जब उन्हें अंधेर नगरी और चौपट राजा के बारे में पता चलता है तो वे झट से उस नगर को छोड़कर कहीं और चले जाने का निर्णय ले लेते हैं। यदि वे संयमी न होते तो वे भी अपने चेले की तरह वहां रहकर जीवन को सुखमय बनाने का सपना देखते। संयमी होने के कारण वे अपने चेहरे पर किसी ऐसे भाव को नहीं

आने देते जिससे सिपाही यह जान पाते कि वे अपने शिष्य को फांसी के फंदे से बचाने के लिए नाटक कर रहे हैं।

सूक्तियों, दोहों आदि में निपुण

टिप्पणी

महंत जी में वे सभी विशेषताएं विद्यमान हैं जो सामान्य साधु–संतों में होती हैं। उन्हें हर अवसर पर कहीं गा सकने वाली सूक्तियां, पद, दोहे आदि कण्ठस्थ हैं। जहां कहीं भी उन्हें अवसर मिलता है, वे उसे कह देते हैं तथा स्थिति को गम्भीर और ज्ञान से पूर्ण कर देते हैं। चौपट राजा के फांसी के फंदे पर खड़े होने पर भी वे कह देते हैं–

जहां न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।
वे ऐसे ही आपुहि नसैं जैसे चौपट राज।।

वस्तुतः महंत जी अनेक विशेषताओं के स्वामी हैं जिन्होंने कथा को प्रवाह देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चाहे लेखक का मूल मंतव्य चौपट राजा के माध्यम से तत्कालीन परिवेश और भ्रष्ट शासन पद्धति को व्यंजित करना था तो भी महंत जी के चारित्रिक विकास में वे ऐसा कर पाने में सफलता पा गए हैं। महंत जी के चरित्र में ठोस पात्र बनने की पात्रता निश्चित रूप से विद्यमान है।

गोवरधन दास

भारतेंदु जी कृत हास्य नाटक 'अंधेर नगरी' के तीन पात्रों में गोवरधन दास एक महत्वपूर्ण पात्र है जिसकी कल्पना मुख्य उद्देश्यों को गति देने में की गई है। वह तत्कालीन ही नहीं समकालीन ढोंगी साधु–सन्तों का भी प्रतिनिधित्व करता है और नाटक को यथार्थवादी रूप देने में सहायता देता है। वह भगवावस्त्र और कमण्डल इसलिए धारण नहीं करता कि वह भक्त है बल्कि इसलिए करता है कि बिना कुछ काम किए हुए मजे से पेट भर सके। उसे समाज के किसी वर्ग के प्रति कोई चिन्ता नहीं है, वह तो हर दम अपने सुख और ऐशो आराम के बारे में ही सोचता है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं को निम्नलिखित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **लालची**– गोवरधन दास लालची और लोभी प्रवृत्ति का साधु है। सच्चा साधु लोभ प्रवृत्ति में नहीं पड़ता जबकि ढोंगी साधु लोभ ही करता है। महंत जी उसे भिक्षा लाने के लिए कहते हैं ताकि शालिग्राम जी का बाल भोग सिद्ध हो सके। लेकिन वह अधिक से अधिक भीख प्राप्त करना चाहता है ताकि वह अच्छा खा सके। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है–'गुरु जी मैं बहुत सी भिक्षा लाता हूं। यहां के लोग तो बड़े मालदार दिखाई पड़ते हैं। आप कुछ चिन्ता मत कीजिए। महंत जी के द्वारा लालच न करने का उपदेश देने पर भी वह भीख में सात पैसे इकट्ठे करता है और उससे साढ़े तीन सेर मिठाई खरीदता है; खाता है और अपनी लालची प्रवृत्ति प्रकट करता है।
2. **अविश्वासी और अस्थिर**–गोवरधन दास स्वभाव का अविश्वासी और अस्थिर है। बाजार में सभी सामान बेचने वाले गला फाड़–फाड़ कर चिल्ला रहे थे कि हर सामान टके सेर है लेकिन उसे फिर भी विश्वास नहीं होता कि वह ठीक कह रहे हैं। इसलिए वह बनिया, कुंजडिन, हलवाई आदि सभी के पास जाकर पूछता है कि क्या वास्तव में सब चीजें टके सेर की बिक रही हैं।
3. **पेटू**– गोवरधन दास पेटू है। उसे सिवाय खाने और जीवन में सुख उपभोग के कुछ नहीं सूझता। ऐसा लगता है कि जैसे उसका जन्म केवल खाने के लिए ही

हुआ है। इसलिए वह मिठाई खाते हुए प्रसन्नता से भरकर गाता है और बगल–बजाता है। जब महंत जी ने उसे वह स्थान छोड़ने के लिए कहा था तो उसने ऐसा करने से मना कर दिया था। वह वहीं रहना चाहता था जहां उसे बिना परिश्रम किए हुए हर रोज खाने को मिठाई मिले। वह कहता भी है–

"गुरु जी ने हमको नाहक यहां रहने को मना किया था। माना कि देश बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राज–काज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनंद से राम भजन करना।"

4. **अवज्ञाकारी**– गोवरधन दास पेट सुख के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहता है। उनके गुरु जी ने विवेक का परिचय देते हुए उसे सलाह दी थी कि वह अंधेर नगरी को छोड़कर उसके साथ अन्यत्र चले लेकिन पेटू गोवरधन दास ने उनके साथ जाने से इंकार कर दिया था। उसे लगा कि कहीं और जाने से उसे खाने के लिए अच्छा भोजन और मिठाई नहीं मिल पाएगी। उसने गुरु जी से कहा था– 'गुरु जी ऐसा तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है। दो पैसा पास रहने से ही मजे से पेट भरता है। मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊंगा और जगह दिन भर मांगो तो भी पेट नहीं भरता। वरन बाजे–बाजे दिन उपवास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूंगा।'

   गोवरधन दास घर–बार त्याग चुका था। इसलिए महंत जी के अतिरिक्त अपना और कोई नहीं था लेकिन उसने उनकी आज्ञा को भी मानने से मना कर दिया था। आज्ञा न मानने के कारण उसे पछताना पड़ता है।

5. **डरपोक**– गोवरधन दास स्वभाव से डरपोक और भीरू है। वह शरीर से तो भारी है लेकिन मन से कमजोर है। विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न हो जाने पर वह उनका सामना नहीं कर पाता और स्वयं को असहाय अवस्था में मानने लगता है। उसमें साहस की कमी है। विरोध की क्षमता न होने के कारण वह राजा चौपट के चार प्यादों से अपनी रक्षा नहीं कर पाया था। उन चार प्यादों से यह जानकर कि उसे फांसी पर लटकाया जाएगा, वह भय से कांप उठा था। "फांसी अरे बाप रे फांसी। मैंने किस की जमा लूटी है कि मुझको फांसी। मैंने किसी के प्राण मारे कि मुझको फांसी।" वह उन प्यादों के सामने रोता है, गिड़गिड़ता है लेकिन बचने की उसे न तो कोई युक्ति सूझती है और न ही वह कोई तर्क दे पाता है। संकट की घड़ी में उसे बस अपने गुरु ही याद आते हैं।

6. **ढोंगी साधु का प्रतिनिधि**– गोवरधन दास न तो साधु है और न ही कोई महात्मा। वह तो मात्र पेट भरने के लिए साधुओं का ढोंग करने वाला है। उसके भगवे वस्त्र और कमण्डल केवल दिखावे के लिए हैं। उसका ज्ञान और अध्ययन थोथा है। महंत जी के समान उसे पद, दोहे, सूक्तियां आदि याद नहीं हैं। वह जंगलों–पहाड़ों में अकेले रह कर तपस्या करने की बजाय गली–बाजारों में भटकता फिरता है ताकि पेट की आग को बुझा सके। अंधेर नगरी के वैभव को देखकर वह सब कुछ भूल जाता है। उसे अपने गुरु की याद नहीं रहती। उसे केवल टके सेर वाली मिठाइयां दिखाई देती हैं। जिन्हें खाकर वह मोटा हो जाता है। और वही मोटापा उसे फांसी के फंदे तक ले जाता है। भगवान के भजन के नाम पर कीर्तन करना उसका पेशा है, न कि स्वभाव। उसका स्वभाव तो ढोंगी साधुओं की तरह खाना, डकारना और सोना है। वह वर्ग विशेष का प्रतिनिधि है।

टिप्पणी

इसलिए भारतेंदु ने उसमें उन सभी गुणों, अवगुणों को प्रकट किया है जो अब और तब के साधुओं में दिखाई देते हैं।

7. **आत्मकेन्द्रित**– गोवरधन दास पूर्ण रूप से आत्मकेन्द्रित है। वह केवल अपने बारे में ही सोचता है। उसके लिए गुरु, राजा, समाज, परिवार आदि सब व्यर्थ हैं। उसके लिए यदि कुछ भी महत्वपूर्ण है तो वह अपने शरीर की रक्षा करनी है। आत्मकेन्द्रित होने के कारण ही वह अकेला अंधेर नगरी में रहने का निर्णय करता है। आत्मकेन्द्रित होने के कारण ही वह सदा अपने सुख की बात सोचता है।
8. **पश्चातापी**– गोवरधन दास में एक गुण अवश्य विद्यमान है। वह अपने द्वारा की जाने वाली गलती को स्वीकार कर लेता है। जब अपने गुरु जी की आज्ञा को न मानकर वह अंधेर नगरी में रह जाता है और मिठाई खा–खाकर मोटा हो जाता है तब राजा के प्यादे उसकी मोटी गर्दन को फंदे में फंसाने के लिए ले जाने लगते हैं तो वह पश्चाताप करता है। अपने जीवन पर आए संकट को देखकर वह रोता है, चिल्लाता है और गिड़गिड़ाता है। तब वह कहता है, "हाय! मैंने गुरु जी कहना ना माना, उसी का यह फल है। गुरु जी ने कहा था कि ऐसे नगर में नहीं रहना चाहिए। यह मैंने नहीं सुना। अरे! इर नगर का नाम ही अंधेर नगरी और राजा का नाम चौपट है, तब बचने की कौन सी आशा है। अरे! इस नगर में कोई ऐसा धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचाए। गुरु जी! कहां हैं? बचाओ–गुरु जी–गुरुजी।" वास्तव में उसका पश्चाताप भी उसकी आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति का परिचायक है।

चौपट राजा

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने चौपट राजा के माध्यम से तत्कालीन रजवाड़ों के शासकों के चरित्र को अति रंजित और अस्वाभाविक ढंग से प्रकट करने का प्रयास 'अंधेर नगरी' में किया है। बिहार के किसी रजवाड़े को संकेत करके चौपट राजा के चरित्र को गढ़ा गया है। जिसके द्वारा वह तत्कालीन कुछ मूर्ख शासकों की मूढ़ता, दुराचरण, नशे की प्रवृत्ति, विवेकहीनता अन्याय, दंड विधान और सनकी स्वभाव को प्रकट कर सकें। इसके माध्यम से अंग्रेजी शासक के भ्रष्ट व्यवहार, अन्याय, शासन व्यवस्था आदि को भी प्रतीकात्मक शिकार बनाया गया है। चौपट राजा वर्ग पात्र है, इसलिए अपने वर्ग को अन्य लोगों की अच्छी बुरी आदतों और स्वभाव को प्रकट करने का वही आधार है। वही इस नाटक मुख्य पात्र है और उसी की गतिविधियों को प्रकट करने के लिए इसकी कल्पना की गई है। नाटक के आधार पर चौपट राजा की चारित्रिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **मूर्ख और विवेकहीन**– चौपट राजा मूर्ख है, विवेकहीन है तो उसमें सामान्य स्तर की बुद्धि का भी अभाव है। वह किसी भी प्रकार से सामान्य नहीं है। उसे अच्छे, बुरे पाप–पुण्य, दोषी, निर्दोषी, अपने–पराये का ज्ञान नहीं है। उसे जो कुछ भी कोई दूसरा व्यक्ति कह देता है वह उसे मान लेता है। वह हर बात पर दूसरों की बुद्धि का सहारा लेता है। कल्लू बनिए की दीवार गिरने से किसी व्यक्ति की बकरी उसके नीचे दबकर मर गई। मन्दबुद्धि राजा दीवार को ही दरबार में पेश करने का आदेश दे देता है। दीवार के भाई, पुत्र, दोस्त और सगे–संबंधियों को वह वहां बुलाना चाहते हैं। इसी सन्दर्भ में कल्लू बनिए, कारीगर, चूनावाला, भिश्ती, कसाई और कोतवाल को दरबार में बुलाया जाता है और निरपराध

कोतवाल को फांसी की सजा सुना दी जाती है, क्योंकि सभी अपना–अपना अपराध दूसरों के सिर मढ़ते जाते हैं। मूर्ख और अविवेकी राजा अपनी मूर्खता का परिचय देते हुए अंत में स्वयं ही फांसी के तख्ते पर जा खड़ा होता है ताकि वह उस घड़ी मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग जा सके।

2. **नशेबाज**– चौपट राजा नशा करने वाला व्यक्ति है। नशे में चूर होने की अवस्था में उसे कुछ भी अच्छा–बुरा नहीं सूझता। दरबार में वह नशे की अवस्था में विराजमान है और तब भी बार–बार शराब पीना चाहता है। राज सभा में जब एक नौकर उसे पान देना चाहता है तो नशे के कारण वह नहीं समझ पाता कि वह क्या चाहता है। नशा मानव को कुंठित कर देता है। इस अवस्था में उसकी इन्द्रियां ठीक प्रकार से काम नहीं कर पाती हैं। वह कहना कुछ चाहता है और कहता कुछ और है। शराब के नशे में चौपट राजा बकरी को बरकी, लरकी, कुबरी आदि नामों से पुकारता है। वह कल्लू को मल्लू कहता है। तो चूने वाले को चुन्नीलाल कहकर पुकारता है। कहीं–कहीं तो वह पूरा वाक्य गलत बोल जाता है क्योंकि नशे ने उसकी बुद्धि कुंठित कर दी है। जैसे–

   (क) क्यों बे भिश्ती! गंगा जमुना की किश्ती। इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई।

   (ख) क्यों बे कोतवाल! तूने ऐसी सवारी धूम से क्यों निकाली कि गड़रिये ने घबरा कर बड़ी भेड़ बेची जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनिया दब गया।

3. **मंत्रियों के हाथ की कठपुतली**– चौपट राजा मूर्ख है और उसकी अपनी बुद्धि काम नहीं करती इसीलिए वह मंत्रियों के हाथ की कठपुतली है। वह उसे जैसा नचाना चाहते हैं वह वैसे ही नाचता है। मंत्री के मुख से निकली बात ही वह पूरी करता है। नाटक में गडरिये की बात सुनकर जब मंत्री को लगता है कि मूर्ख राजा सारे नगर को ही कहीं फूंक देने या फांसी पर लटकाने का आदेश न दे दे तो उसका पूरा ध्यान कोतवाल की ओर मोड़ देता है। जिस कारण कोतवाल को फांसी की सजा सुना दी जाती है।

4. **चरित्रहीन**– चौपट राजा चरित्रहीन है। उसका संबंध एक नहीं अपितु अनेक नारियों से है। राजा के कारण ही नगर में वेश्या वृत्ति सामान्य सी एक बात है। सामान्य लोग वेश्या और पत्नी का अंतर ही नहीं समझते। राजा भी अपने चरित्र को प्रकट करता हुआ मंत्री से कहता है–''फिर वही नाम? मंत्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर–बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है।"

5. **अव्यवहार कुशल**–राजा चौपट पूर्ण रूप से अव्यावहारिक है। वह नहीं जानता कि क्या अच्छा हैं और क्या बुरा, वह उल्टी–सीधी बातें करता है– तर्क हीन संवाद रचता है, मूर्खों सी चेष्टाएं करता है और तरह–तरह की मुख मुद्राएं बनाता है। अपनी अव्यवहार कुशलता के कारण ही वह स्वयं को फांसी के तख्ते पर खड़ा कर देता है। उसके व्यवहार और स्वभाव को कोई नहीं समझता।

6. **दोषपूर्ण न्याय और दंड व्यवस्था का कारण**– किसी भी राज्य में राजा को ही न्याय–अन्याय का निर्णय करना होता है लेकिन चौपट राजा को न्याय

अन्याय की कोई समझ नहीं है। एक तो वह मूर्ख है, दूसरे सदा शराब के नशे में चूर रहता है। बकरी मर गई दीवार गिरने से और फांसी की सजा सुनाई गई कोतवाल को। कोतवाल को इसलिए छोड़ दिया गया कि उसकी गर्दन पतली है जो फांसी के फंदे में नहीं आती और बेकसूर गोवरधन दास को फांसी पर इसलिए लटकाने का आदेश किया गया क्योंकि उसकी गर्दन मोटी है और फंदे में पूरी आ जाती है। नगर के लोग न्याय की व्यवस्था से सदा डरते रहते हैं। एक प्यादा इस विषय में कहता है–

"नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं।"

7. **गाली–गलौज व अशिष्ट**– चौपट राजा को छोटी–छोटी बातों पर आकर गाली देने की आदत है। क्रोध में ही नहीं वरन सामान्य और सहज स्थिति में भी वह गाली देता रहता है। अपने नौकर को वह दुष्ट, लुच्चा, पाजी आदि गालियां देता है जबकि उसका दोष नहीं था। बिना किसी कारण वह उसे कोड़ों की सजा सुना देता है।
8. **डरपोक**– चौपट राजा बहुत डरपोक है। वह तो अपने साये से भी डरने वाला है। राजसभा में जब एक सेवक ने उसे चिल्लाकर कहा था–"पान खाइये महाराज" तो वह यह समझकर कि सुपनखा आई है अपना सिंहासन छोड़कर भाग खड़ा हुआ था और मंत्री ने उसे समझाकर उसके स्थान पर बिठाया था।
9. **अंध–विश्वासी**– चौपट राजा अंधविश्वासी है। अंधविश्वास के कारण ही वह फांसी के फंदे पर अपनी इच्छा से चला गया था। महंत जी द्वारा बताई गई शुभ घड़ी में मृत्यु को प्राप्त करके वह वैकुंठ की कामना करता है और मंत्री कोतवाल आदि से स्पष्ट शब्दों में कह देता है–"चुप रहो सब लोग। राजा के अलावा और कौन वैकुंठ जा सकता है। हमको फांसी चढ़ाओ। जल्दी–जल्दी।"

अभिनेयता

'अंधेर नगरी' अभिनेयता की दृष्टि से अत्यंत सफल रचना है जिसे नौटंकी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह एक प्रहसन है जिसमें अनेक गूढ़ार्थ व्यंग्य भरे हुए है। यह मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है ताकि तत्कालीन जनता उन समस्याओं को जान सके और उन पर सोच–विचार कर सके। डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में 'अधेर नगरी' अंग्रेजी राज्य का ही दूसरा नाम है– अंग्रेजी राज्य की अंधेरगर्दी की आलोचना ही नहीं, वह इस अंधेरगर्दी को खत्म करने के लिए भारतीय जनता की प्रबल इच्छा भी प्रकट करता है। इस तरह भारतेंदु जी ने नाटकों को जनता के मनोरंजन करने के साथ उसकी राजनीतिक शिक्षण करने का साधन भी बनाया।" इस नाटक की सारी घटनाएं एक दूसरे से बंध कर समग्रतः और पूर्णता की ओर आगे बढ़ती हैं। इन घटनाओं तथा नाटक की कथावस्तु में दोष विद्यमान नहीं है। अभिनेयता की दृष्टि से 'अंधेर नगरी' में निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हैं–

1. सरल और संक्षिप्त कथानक

'अंधेर नगरी' नाटक का कथानक निश्चित और सुविचारित योजना का परिणाम है। लेखक ने अपने युग के लोगों की शिक्षा, मनोवृत्ति और रुचियों को ध्यान में रखकर इस

टिप्पणी

नाटक का कथानक अति सरल और लघु आकार का निश्चित किया था। बिहार के किसी रजवाड़े को आधार बनाकर लिखे जाने वाले इस हास्य नाटक में महंत जी अपने दो शिष्यों के साथ चौपट राजा की अंधेर नगरी में प्रवेश करते हैं जहां हर वस्तु टके सेर बिकती है। गोवरधन दास नामक चेला उस नगर के वैभव से प्रभावित होकर वहीं रहने का निर्णय कर लेता है। वह रोज मिठाई खा–खाकर कुछ ही समय में मोटा हो जाता है। नगर में कल्लू बनिया की दीवार गिर जाने से एक बकरी मर गई उस व्यक्ति ने चौपट राजा से न्याय की फरियाद की। अविवेक और मूर्खता का परिचय देते हुए कोतवाल को इस कारण मौत की सजा सुना दी गई लेकिन फांसी का फंदा कोतवाल की पतली गर्दन में न आने के कारण मोटे गोवरधन दास की गर्दन में डालने का प्रयास किया जाता है। समय पर महंत जी वहां पहुंच जाते हैं और वह अपनी चतुराई से चौपट राजा को ही फांसी के फंदे तक पहुंचा देते हैं। भारतेंदु जी बड़ी सहजता से कथानक को गति प्रदान की है। इस कथानक में गति है, सरलता है, सरलता अैर संक्षिप्तता है जो किसी सफल नाटक के लिए आवश्यक होती है।

2. समुचित अंक योजना

'अंधेर नगरी' में छः अंक हैं। जो आकार में काफी छोटे हैं। उन्हें अलग–अलग स्थान के आधार पर बांटा गया है। हर अंक एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। पिछली कथा को उसके द्वारा गति प्राप्त होती है और अंतिम अंक में नाटक का चरम उत्कर्ष प्राप्त हो जाता है और चौपट राजा अपनी इच्छा से मरने के लिए फांसी के फंदे पर जा खड़ा होता है। नाटक के हर अंक के साथ पाठक और दर्शक का मन निरन्तर जिज्ञासा से भरता जाता है और अन्तिम अंक की समाप्ति के साथ ही वह कथानक के निरन्तर बदलाव और चौपट राजा के निर्णय के कारण ठहाका लगाकर हँस पड़ता है। अंकों के बीच कहीं भी कथानक को शिथिलता नहीं आने दी है।

3. परिवर्तनशील दृश्य विधान

'अंधेर नगरी' का दृश्य विधान निरन्तर परिवर्तनशील है। यदि ध्यान से देखा जाए जो इस नाटक में छः अंक नहीं हैं बल्कि छः दृश्य विधान हैं। जिन्हें बाह्य प्रान्त, बाजार, जंगल, राजसभा, अख्य और श्मशान नाम से प्रकट किया गया है। इन सभी दृश्यों को पर्दे बदल कर बहुत तेजी से बिना किसी देरी के दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके विधान में किसी प्रकार का कोई आडम्बर नहीं है। हर दृश्य एक दूसरे पर आश्रित है। एक ही मंच पर पर्दों के परिवर्तन से पूरा नाटक सरलता से अभिमंचित किया जा सकता है। इस नाटक की कथावस्तु निरन्तर परिवर्तनशील दृश्य विधान की नई तकनीक पर आधारित है। जिसमें न तो लम्बे अंक हैं और न ही स्टेज संवारने और बदलने में लम्बा समय लगता है। इसलिए दर्शक की रुचि नाटक में बनी रहती है।

4. सीमित पात्र संख्या

अंधेर नगरी में पात्र संख्या बहुत सीमित है, यद्यपि इसके बाजार अंक में अनेक लोग अपना अपना सामान बेचने वाले हैं लेकिन वे इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं कि दर्शक या पाठक को उनकी विशेषताओं से जोड़ना पड़े। इसी प्रकार राजसभा में भी आने वाले लोग भी केवल दृश्यों को यथार्थ और जीवन देने वाले हैं। नाटक में मूल पात्र तीन ही हैं– महंत, राजा और गोवरधन दास। नाटक की सारी कहानी इन तीनों के आसपास ही घूमती रहती है। जिस कारण दर्शक, पाठक के भाव इनसे शीघ्र जुड़ जाते हैं। इनकी

सृष्टि जीवन के यथार्थ की प्रस्तुति के लिए हैं न कि थोथे आदर्शों को गढ़ने के लिए। यह तीनों पात्र धर्म विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि चौपट राजा उस समय के रजवाड़ों का प्रतिनिधि है तो महंत जी और गोवरधन दास धार्मिक वृत्तियों और ढोंगी मानसिकता के प्रतिनिधि हैं। पात्रों की सीमित संख्या झट से अपने पाठक या दर्शक के साथ तारतम्यता जोड़ लेती है जिसका उनके मन पर अनुकूल प्रभव पड़ता है।

5. रंगमंचीय संकेत

भारतेंदु का सीधा संबंध रंगमंच से था। वे केवल नाटककार ही नहीं थे अपितु निर्देशक भी थे। वे स्वयं भी अभिनय करते थे इसलिए उन्हें रंगमंच की बारीकियों का भलीभांति परिचय प्राप्त था। एक सफल और कुशल निर्देशक की तरह सारे नाटक में उन्होंने स्वयं रंग संकेत दिए हैं। चरित्रानुकूल वेश–भूषा तथा नाटकीय प्रभाव को प्रकट करने के लिए उन्होंने स्थान स्थान पर विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है जैसे–

(क) महंत जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं।

(ख) गाते हुए सब जाते हैं।

(ग) बाबा जी का चेला गोवर्धन आता है और सब सामान बेचने वालों की आवाज सुन–सुनकर आनंद में बड़ा प्रसन्न होता है।

(घ) कुंजड़िन के पास जाकर।

(ङ) हलवाई के पास जाकर।

(च) गोवरधन दास चिल्लाता है। प्यादे उसको पकड़ कर ले जाते हैं।

(छ) रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं। गुरु अैर नारायण दास आते हैं आदि रंग संकेतों की सहायता से नाटक के पात्र अपना–अपना कार्य और अभिनय सरलता से कर पाते हैं। जो अभिनेयता की दृष्टि से नाटक को सबलता और विशिष्टता प्रदान करते हैं।

6. लघु और प्रभावपूर्ण संवाद योजना

अंधेर नगरी की संवाद योजना बहुत प्रभावशाली है। छोटे–छोटे संवादों की योजना के द्वारा दर्शक और पाठक की बुद्धि पर अनुकूल प्रभाव डाला जा सकता है। भारतेंदु जी ने ऐसा ही किया है। नाटक में सर्वत्र छोटे संवाद ही हैं। 'बाजार' के दृश्य में अपना–अपना सामान बेचने वाले अपनी बात कुछ लम्बी जरूर करते हैं लेकिन यथार्थवाद के बहुत निकट होने के कारण वे चुभते नहीं हैं। साथ ही वे पद्यात्मकता और गद्यात्मकता से युक्त हैं। संवाद में चुटीलापन है, व्यंग्य है। और वे लाक्षणिक के गुण से युक्त हैं।

7. गीत योजना

भारतेंदु जी के नाटकों में गीतों की योजना का प्रचलन था क्योंकि पारसी थियेटरों का मुकाबला करने के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ता था। नाटकों में गीतों की बड़ी संख्या घटनाक्रम में अवरोध बनती है लेकिन अंधेर नगरी में दिए गए कुछ गीत यथार्थ परिचय देने के कारण खटकते नहीं हैं। डा. रामविलास शर्मा के अनुसार, "भारतेंदु के गीत और हास्य भरे वाक्य लोगों की जुबान पर चढ़ गए हैं, और उनकी प्रहसन कला यहां अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है।" पहले अंक में महंत जी और उनके चेले राम–नाम का स्मरण लयात्मकता में करते हैं तो पांचों अंकों में गोवरधन दास तत्कालीन परिस्थितियों

को लय में प्रस्तुत करता है। ये गीत अत्यंत सरल शब्दों में गए हैं जिससे कथा को अवरोध नहीं मिला है।

टिप्पणी

8. वर्जित दृश्यों का पूर्ण अभाव

नाट्य शास्त्र में हत्या, युद्ध, बाढ़, आग आदि के दृश्यों को न करने का निर्देश दिया गया है। भारतेंदु ने इसका पालन करते हुए ऐसे दृश्यों की योजना नहीं की है जो वर्जित माने गए हैं। यह नाटक सामाजिक है तथा यथार्थ पर आधारित है पर फिर भी इसमें ऐसा कोई दृश्य नहीं है जो वर्जित बातों को प्रस्तुत करता है। कोतवाल को मृत्यु दंड की सजा सुनाई गई किन्तु मंच पर किसी को फांसी दी नहीं गई। इस नाटक में नाट्य शास्त्र के निर्देशों का पूर्ण पालन किया गया है।

9. जीवन की गूढ़–गंभीर समस्याओं का उद्‌घाटन

उस नाटक को सफल और सार्थक माना जाता है जिसमें जीवन की गूढ़–गम्भीर समस्याओं को प्रकट किया जाए और प्रेरणा दी जाए कि लोग उन समस्याओं से जूझने का प्रयत्न करें। अंधेर नगरी में हास्य के आधार पर अनेक ऐसी समस्याओं को प्रस्तुत किया है जो तत्कालीन समाज के लिए बहुत गंभीर थीं। अंग्रेजी शासन, अविवेकी रजवाड़े, भ्रष्टाचारी समाज, निकम्मी पुलिस और बेईमान कर्मचारियों के व्यवहार का परिचय लेखक ने दिया है। अति सरल और सहज ढंग से इन सब समस्याओं की ओर संकेत किया गया है।

10. सरल भाषा शैली

नाटक की सफलता का दायित्व बहुत बड़ी सीमा तक सरल, भाषा शैली पर निर्भर करता है। संवादों को नाटक की आत्मा माना जाता है तो भाषा संवादों का प्राण तत्व है। लेखक ने अंधेर नगरी में सरल, सहज और पात्रनुकूल भाषा का प्रयोग किया है जिस कारण पात्रों का चरित्र पाठक/दर्शक के समक्ष बहुत अच्छे ढंग से प्रकट हो गया है। भाषा की सरलता ने वातावरण सृष्टि में सहायता दी है। नाटककार ने विभिन्न पात्रों के लिए उनके अनुरूप शब्दावली का चयन किया है। साधु संतों के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में एक विशिष्टता है जो समाज के अन्य वर्गों के द्वारा प्रायः स्वीकार नहीं की जाती है। 'भिच्छा–उच्छा' 'और क्या' 'जो है सो', 'बाल भोग सिद्ध हो', 'नारायण सब समर्थ है'। 'अरे बच्चा' आदि ऐसे शब्द हैं जिनका अधिकतर प्रयोग सन्त, महात्माओं के द्वारा किया जाता है। कबाब, चूरन, भाजी, मछली, मेवा आदि बेचने वाले सभी लोगों ने विशिष्ट ढंग से अपना कार्य किया है, जिसने पाठकों/दर्शकों के मन को निश्चित रूप से प्रभावित किया है।

गीत योजना

भारतेंदु के 'अंधेर नगरी' में कुल मिलाकर छोटे–बड़े पांच गीत हैं जिन्हें नाटक की कथा को गति और स्पष्टता देने के लिए प्रयुक्त किया गया है। पारसी रंग–मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले नाटकों में गीतों को प्रकट करने का प्रचलन था। मनोरंजन के साथ–साथ पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं भी इनके द्वारा सरलता से दर्शकों/पाठकों के सम्मुख उजागर हो जाती थीं। भारतेंदु और जयशंकर प्रसाद के नाटकों में इसलिए गीतों की अधिकता दिखाई देती है।

भारतेंदु ने गीतों के प्रयोग द्वारा नाटक को गति प्रदान की है तथा विषय की स्पष्टता के लिए प्रयत्न किया है। 'पाचकवाला' के माध्यम से चूर्ण बेचते हुए लेखक ने अत्यंत तेज गति से तत्कालीन समाज की झांकी प्रस्तुत कर दी है। कुछ ही पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है कि सारे समाज में भ्रष्टाचार, बेईमानी और चोर बाजारी का बोलबाला है।

चूरन अमले सब जो खावैं।
दूनी रिश्वत तुरंत पचावैं।।
चूरन नाटक वाले खाते।
इसकी नकल पचा कर लाते।।
चूरन सभी महाराज खाते।
जिससे जमा हमज कर जाते।।
× × × × × × × × ×
चूरन खावैं एडिटर जात।
जिनके पेट पचै नहि बात।।
चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा हिन्द हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते।
सब कानून हजम कर जाते।।

भारतेंदु ने गीतों के माध्यम से अपने पाठक को हर प्रकार से प्रभावित करने का प्रयास किया है, उसे भक्ति का पाठ पढ़ाया है, समाज के चित्र दिखाए हैं, शिक्षा दी है, मूल्यहीन चेतना को यथार्थ रूप में प्रकट किया है तथा हास्य व्यंग्य की सृष्टि भी की है।

संवाद–योजना

नाटक में संवाद का बहुत महत्व होता है क्योंकि कथावस्तु की निर्मिति और विकास संवाद के माध्यम से ही होता है। पात्रों की मानसिकता का उद्‌घाटन भी प्रमुखतः संवादों के द्वारा ही होता है। इस छोटे से प्रहसन में अनेक पात्र आये हैं लेकिन उनके चरित्र का विकास करना यहां उद्देश्य नहीं है, वे थोड़ी–थोड़ी देर के लिए आते हैं और मूल काव्य में अपना छोटा सा योगदान देकर चले जाते हैं। कुछ पात्र तो वहां 'अंधेर नगरी' के बाजार की पहचान बनकर आते हैं और कुछ पात्र अंधी न्याय व्यवस्था के उद्‌घाटन में सहायक उपकरण बनकर। बाजार की पहचान कराने वाले पात्र किसी से संवाद नहीं करते, वे तो जैसे अपने सामने खड़े ग्राहकों की भीड़ को सम्बोधित करते हुए अपनी–अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करते हैं। एक तरह से इसे हम मौन भीड़ के साथ संवाद कह सकते हैं। इस भीड़ संवाद में हर दुकानदार अपने–अपने पेशे और जातीय चरित्र के अनुरूप भाषा बोलता है। बहुत छोटे–छोटे वाक्य आते हैं। उस वस्तु और व्यापारी के अनुरूप शब्दों का प्रयोग होता चलता है। उनकी वस्तुएं क्या–क्या प्रभाव डाल सकती है, इसका एक काल्पनिक बखान चलता रहता है। कुंजड़िन, मुगल, कबाब वाला, पाचक वाला आदि विक्रेताओं के शब्द प्रयोगों में थोड़ी–थोड़ी भिन्नता दिखाई पड़ती है। इन वस्तु विक्रेताओं के वस्तु विज्ञापनों में बड़े सहज ढंग से व्यवस्था पर चोट होती चलती है। सहजभाव इसलिए कहा गया है कि जिन वस्तुओं के विज्ञापन में चोट की संभावना बनती है, वहीं चोट की गई है। यानी घासीराम, पाचकवाला, जातवाला के

टिप्पणी

ही लटकों में यह व्यंग्य विधान उभरता है। घासीराम 'चना जोर गरम' का बखान करता–करता कहता है–

चना हाकिम सब जो खाते।
सब पर दूना टिकस लगाते।

पाचकवाला तो अमले, महाराज, एडीटर, पुलिस सब पर व्यंग्य करता है। जातवाले ने जात व्यवस्था पर चोट की है।

इस बाजार में गोवरधन दास और दुकानदारों का संवाद भी चलता है और उस संवाद में केवल दो–दो शब्द आते हैं–जैसे–

गोवरधन दास–जौ चावल।

बनिया–टके सेर

गोवरधन दास–और चीनी?

बनिया–टके सेर।

इसी तरह गोवरधन दास का संवाद अन्य दुकानदारों से चलता है। संवादों की यह प्रस्तुति संक्षिप्त बहुत स्वाभाविक एवं प्रभावशाली है और यह संवाद अंधेर नगरी की अंधी शासन व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। जिसमें मूल्यहीन और मूल्यवान चीजें एक ही निगाह से देखी जाती हैं। ये संवाद हमें आगे आने वाली अंधी न्याय व्यवस्था की पहचान के लिए तैयार करते हैं।

नाटक का उत्तरार्ध पक्ष अंधी न्याय व्यवस्था से संबंधित है और इस कथा खंड में आते हैं– बकरी वाला, कल्लू बनिया, चूनेवाला, मश्क वाला, कोतवाल, राजा, गोवरधन दास आदि। ये पात्र आते हैं और अपने अनुसार छोटे–छोटे सहज संवाद बोल कर चले जाते हैं। वे संवाद कथा को अग्रसर करते हैं। भारतेंदु ने इन संवादों में पात्रों के स्तर और स्वभाव के अनुसार ही बोल चाल की भाषा का प्रयोग किया है। हां राजा की भाषा में एक कौशल का प्रयोग किया है, वह यह भी कहने वाला कहता है कुछ, और राजा पहली बार सुनता है कुछ। इस कौशल से लेखक ने राजा की मूर्खता की ओर तो संकेत किया ही है, यह भी कहना चाहा है कि सत्ता ऊंचा सुनती है।

समग्रतः इस प्रहसन की भाषा और संवाद में बड़ी ही सहजता और जीवन्तता है। लेखक ने आवश्यकतानुसार तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके भाषा को स्थिति और पात्रों के अनुकूल बनाए रखा है।

भाषा शैली

भारतेंदु काल में हिंदी साहित्य एक नई करवट ले रहा था। इस समय तक हिंदी काव्य की रचना ब्रज या अवधी में होती थी लेकिन सामान्य बोलचाल के लिए खड़ी बोली का प्रयोग होता था। जिस खड़ी बोली का प्रयोग जन सामान्य के द्वारा किया जाता था उसका स्वरूप भी वैसा नहीं था जैसा अब है। आधुनिक काल के इस संधि साहित्य में भारतेंदु एक ओर प्राचीनता के प्रेमी हैं तो दूसरी ओर नवीनता के सूत्रधार भी हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में ब्रज भाषा का प्रयोग ही किया और गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का व्यवहार आरम्भ किया। अंधेर नगरी में भारतेंदु के द्वारा प्रयुक्त भाषा शैली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. गद्य–पद्य के लिए भिन्न भाषा का प्रयोग– अंधेर नगरी में भाषा प्रयोग की विविधता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महंत जी के उपदेशों, पदों तथा तुकबन्दियों में ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है जैसे–

राम भजो, राम भजो, राम भजो भाई
राम के भजे से गनिका तरगई, राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बने सब, राम के भजन बिनु सबहिं नसाई।।

महंत जी जहां कहीं भी उपदेशात्मकता का सहारा लेते हैं वहां ब्रजभाषा की कोमल कान्त विशिष्टता दिखाई दे जाती है। लेकिन पात्रों के आपसी संवादों में खड़ी बोली का ही प्रयोग किया गया है। इतना निश्चित है कि उनकी खड़ी बोली का रूप आज की परिपक्व खड़ी बोली से कुछ भिन्न है जैसे–

(क) बच्चा नारायण दास! यह नगर तो दूर से बड़ा सुन्दर दिखाई पड़ता है। देख, कुछ भिच्छा उच्छा मिले तो ठाकुर जी का भोग लगै। और क्या।

(ख) महाराज! कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज न्याय हो।

2. शब्द प्रयोग– भारतेंदु ने अपने नाटक में सभी प्रकार के प्रचलित शब्दों का सहज सुन्दर प्रयोग किया गया है। गद्यात्मक संवादों में ब्रज और खड़ी बोली दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। अंग्रेजी शासन में फारसी, अरबी, उर्दू शब्दों का अधिकता से प्रयोग होता था इनके उदाहरण बड़ी संख्या में भारतेंदु के काव्य में दिखाई देते हैं जैसे–

(क) **तत्सम शब्दावली का प्रयोग**– नारायण, भिक्षा, आनंद, कवि, सिद्ध, कृष्णा मुरारी, श्याम सलौना, समर्थ, रक्षा, शिष्य, सामग्री, अन्तिम उपदेश, मान, नृपति, श्रुति, गो, द्विज, प्राण, दुर्दशा, साधु, महात्मा, परमेश्वर, गुरु, प्राण धर्मात्मा, समर्थ आदि।

(ख) **तद्भव शब्दावली का प्रयोग**– गीध, कुल राई, भिच्छा, होंठ, चाटे, बहत्तर, सत्तरंगा मंदिर, अंधेर, आसरे, पूरब, न्यब, जम, छलियान, दरसाई, मुटाना, धरम, मछरी, ग्राहक, ललपाय, कितणें, निबुआ, मुरई, मिरची, साग लडुआ, नगरी।

(ग) **देशज शब्दावली का प्रयोग**– लक लक, बुंबुक, बुंबुक, बोदा, टिकस, चौपट, नैनुवा, गैया, चाभना, मुटाना, बाजे–बाजे भाजी, खाजा, टके, अखपौड़े के गड़रिया, अबे, छन, बेर बेर।

(घ) **विदेशी शब्दावली का प्रयोग**– कबाक, रैयत, राजी, नाहक, हाकिम, हजम, कानून, पाजी, कसूर, बन्दे, हुक्मी, बरखास्त, इंतजार, दोस्त, दरबार, हिन्द, काजी, हुकुम, पीनक, लुच्चा फर्यादी, आशना, गजब, फकीर, बेशक, सबब।

3. मुहावरे–लोकोक्तियों का सफल प्रयोग

भाषा को जीवन्तता प्रदान करने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत आवश्यक होता है। काव्य में लाक्षणिकता का समावेश इन्हीं से होता है और गद्य को गतिशीलता की प्राप्ति होती है। भारतेंदु ने अपने इस नाटक में मुहावरे, लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग करके भाषा को पैनापन प्रदान किया है। नाटक का नामकरण ही लोकोक्तियों के आधार पर किया गया है– 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी, टका सेर खाजा।'

टिप्पणी

(क) मुहावरे– नाटक में प्रयुक्त मुहावरों के कुछ उदाहरण हैं–

1. यहां के लोग बड़े मालदार दिखाई पड़ते हैं।
2. मैं तो पिया के रंग न रंगी।
3. नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे।
4. ऐसा मुल्क जिसमें अंग्रेज का भी दांव खट्टा हो गया।
5. कीना दांव सभी का खट्टा।
6. जिनके पेट पच नहीं बात।
7. सब कानून हजम कर जाते।
8. गुरु चेले सब आनंद पूर्वक इतने में छक जाएंगे।
9. अरे यहां बड़ा ही अंधेर है।
10. यह क्या गोलमाल है।

(ख) लोकोक्तियां

1. गरमागरम मसालेदार– खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै।
2. जो खाय सो भी पछताय जो न खाय सो भी पछताय।
3. जैसे काजी वैसे पाजी।

4. अशिक्षित लोगों के द्वारा प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग

यद्यपि कोई भी भाषा और उसके शब्द किसी की बपौती नहीं होते पर कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग प्रायः पढ़े–लिखे लोग नहीं करते। अज्ञान और अशिक्षा के कारण कुछ लोग विशेष शब्दों का प्रयोग करते है। ' अंधेर नगरी' के कुछ लोगों की भाषा में भारतेंदु ने ऐसे ही शब्दों का प्रयोग जानबूझकर दिया है–

1. अरे बाबा क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो?
2. अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूं?
3. राम का नाम ले–बेफायदा क्यों शोर करता है?

भारतेंदु ने कुछ ऐसे भी शब्द प्रयुक्त किए हैं जो अब प्रायः दिखाई नहीं देते जैसे वोई, हई, करै।

5. पात्रानुकूल भाषा

'अंधेर नगरी' में सारे पात्र अपने–अपने वर्ग, स्तर और व्यवसाय के आधार पर बोलते दिखाई देते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली अपने आप ही उनका स्तर बता देती है। महंत जी का स्तर बुद्धिमता और विवेक से सर्वत्र परिपूर्ण दिखाई देता है। उनमें सहजता और गम्भीरता है। उपदेशात्मकता का स्वर प्रधान है–'अरे बच्चा मैंने तो पहले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तेने मेरा कहना नहीं सुना।' महंत के दोनों शिष्यों का स्वभाव उनकी बातचीत से स्पष्ट हो जाता है। नाटक में वर्णित सारा व्यापी समाज वर्ग विशेष प्रकार की भाषा बोलता है। घासीराम, नारंगी वाला, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल, पाचकवाला, मछली वाली, जातवाला ब्राह्मण, बनिया आदि सभी की भाषा में पूर्ण रूप से सहजता है। नारंगी वाली की भाषा में दोहरे अर्थ छिपे हुए हैं, 'भई नींबू से नारंगी। मैं तो पिया के रंग न रंगी। मैं तो मूली लेकर संगी नारंगी ले नारंगी।'

शराब के नशे में डूबे रहनेवाले चौपट राजा की भाषा में मूर्खता और अभिमान सर्वथा झलकता है। उसकी लड़खड़ाती जुबान से बकरी को बरकी, लरकी, भेड़ आदि कहलावा कर उसकी मानसिक स्थिति को प्रकट किया है। गोवरधन दास को बंदी बनाने के लिए आए चार प्यादों का वार्तालाप उनके बुद्धि स्तर को प्रकट करता है। भारतेंदु ने नाटक के विभिन्न पात्रों के लिए जिस प्रकार की भाषा चुनी है वह अत्यंत प्रभावशाली है।

6. तुकबन्दियों से युक्त संवादात्मकता

भारतेंदु ने भाषा के माध्यम से व्यंग्य और कटाक्ष को तीखा करने के लिए तुकबन्दियों का सुन्दर प्रयोग किया है। ये तुकबन्दियां केवल काव्य भाग में ही नहीं बल्कि गद्यात्मक संवादों में भी है–

(क) क्यों बे भिश्ती! गंगा–जमुना की किश्ती।

(ख) क्यों बे कसाई मश्क ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई?

(ग) टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान।

वास्तव में तत्कालीन परिस्थितियों में भारतेंदु के नाटक अंधेर नगरी की भाषा–शैली पूर्ण रूप से अनुकूल है। हर दृष्टि से यह प्रभावशाली और वांछित उद्देश्य की पूर्ति में समर्थ है। नाटककार ने अंग्रेजी शासक को प्रतीकात्मकता के द्वारा प्रस्तुत किया और उसे फांसी पर चढ़ाकर अपना क्रोध प्रकट कर दिया और अनुकूल भाषा–शैली के माध्यम से अपनी राष्ट्रीयता की भावना को मुखरित कर दिया।

अपनी प्रगति जांचिए

1. हिन्दी नाटक को साहित्य की भूमिका प्रदान करने का प्रयास सर्वप्रथम किसने किया था?

   (क) जयशंकर प्रसाद (ख) भारतेंदु हरिश्चंद्र

   (ग) डॉ. रामकुमार वर्मा (घ) त्रिभुवननाथ शुक्ल

2. अंधेर नगरी की कथावस्तु को कितने दृश्यों में विभाजित किया गया है?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छह

2.3 ध्रुवस्वामिनी : जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। जयशंकर प्रसाद का जन्म गोवर्धन सराय मुहल्ले के समृद्ध वैश्य परिवार में सन् 1889 ई. (माघ शुक्ल, दशमी, संवत 1914 वि.) में वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनके पितामह बाबू शिवरत्न साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद कलाकारों का आदर करने के लिए विख्यात थे। अपने सुरती के व्यवसाय में नाम–ख्यात होने से शिवरत्न साहू 'सूंघनी साहू' नाम से बनारस में प्रसिद्ध हो गए। बनारस की जनता 'हर हर महादेव' के घोष से इस वंश के लोगों का सम्मान करती थी। यह सम्मान बनारस के महाराज के अतिरिक्त केवल इसी वंश को प्राप्त हुआ।

टिप्पणी

प्रसाद जी की आरंभिक शिक्षा काशी में हुई, किंतु बाद में घर पर ही इनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध किया गया। इन्होंने संस्कृत, हिंदी, उर्दू तथा फारसी का अध्ययन घर पर ही किया। प्रसाद बड़े ही प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के इनसान थे। उन्हें प्रारंभ से ही ज्ञान के प्रति अभिप्सा तथा विद्या का व्यसन था। प्रसाद जी को अमरकोश, पाणिनी के सूत्र तथा गीता कंठस्थ थी।

जयशंकर प्रसाद जी का बचपन काफी सुख से गुजरा था, परंतु बाद में उन्हें अत्यंत दुख भी झेलना पड़ा। बारह वर्ष की उम्र में पिता, पंद्रह वर्ष की उम्र में माता तथा सत्रह वर्ष की उम्र में अपने भाई शुभरतन को इन्होंने खो दिया था। पिता के निधन के बाद से परिवार में जो खींचतान, गृह–कलह और मुकदमेबाजी शुरू हुई उसकी वजह से व्यवसाय लगातार खत्म होता चला गया। परिवार की एकसूत्रता भी खत्म होती चली गई। फिर भाई शुभरतन ने अपने हौसले, साहस और परिश्रम से व्यवसाय को कुछ व्यवस्थित किया ही था कि वे भी संसार छोड़ कर चले गए। तब व्यवसाय और गृहस्थी का बोझ प्रसाद जी के कंधों पर आ पड़ा।

प्रसाद जी का वैवाहिक जीवन भी कभी सुखद नहीं रह पाया। अपना प्रथम विवाह 1908 ई. में उन्होंने स्वयं किया था। विवाह के उपरांत बीमारी के कारण पहली पत्नी जल्द ही दुनिया से चली गई। दूसरा विवाह 1916 ई. में किया। इस बार भी बीमारी की वजह से पत्नी असमय दुनिया से चली गई। अब इसके बाद प्रसाद जी घर नहीं बसाना चाहते थे परंतु भाभी के दुख का ख्याल कर 1918 ई. में उन्होंने तीसरा विवाह किया, जिनसे उनके एकमात्र पुत्र शंकर (1922 ई.) का जन्म हुआ।

प्रसाद जी स्वभाव से शांत, विनम्र, स्वाभिमानी, गंभीर, मृदुभाषी, मिलनसार और सहनशील थे। वे कटु से कटु आलोचना का भी उत्तर नहीं देते थे। वे विनोद–प्रिय व्यक्ति थे। उनकी छोटी–सी मित्र मंडली थी जिससे वे खुश रहते थे। प्रसाद जी शिव के उपासक थे। अपने जीवन के 48वें वर्ष के पड़ाव में ही रोग ग्रस्त होने के कारण 15 नवंबर, 1937 ई. को उनका देहावसान हो गया।

जयशंकर प्रसाद उन कलाकारों में 'मूर्धन्य' हैं, जिन्होंने अपने गहन अध्ययन और रमणीय कल्पना के आधार पर इतिहास के निर्जीव और शुष्क कंकाल में नव प्राणों का स्पंदन और सजीवता का स्फुरण भरा है। प्रसाद ने जहां 'कामायनी' जैसी कालजयी रचना लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया वहीं उनकी नाट्य कृतियों ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में क्रांति कर दी। प्रसाद जी का आविर्भाव उस समय हुआ था, जब देश में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की लहर दौड़ रही थी। सच्चे साहित्यकार होने के नाते तत्कालीन स्थिति के प्रति उपेक्षा भाव धारण करना प्रसाद के लिए संभव न था इसलिए प्रसाद ने ऐतिहासिक कथानकों को आधार बनाकर तत्कालीन जनजीवन में व्याप्त विसंगतियों को अपनी नाट्य कृतियों में स्थान दिया। जहां 'चंद्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' नाटकों में बौद्ध ब्राह्मण, विदेशी आक्रमणकारियों से युद्ध जैसी प्रमुख समस्याएं हैं तो वहीं 'जनमेय का नागयज्ञ' में नाग और आर्य जाति का संघर्ष, बौद्ध बिहारों के भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ किया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक स्त्रियों की स्वतंत्रता, बेमेल–विवाह, स्त्रियों के अधिकार सहित विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करता है। वस्तुतः हिन्दी नाटक के क्षेत्र में प्रसाद अद्वितीय हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक आलोचनात्मक समीक्षा

टिप्पणी

जयशंकर प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक एक अप्रतिम नाट्यकृति है, इसका समग्र तात्विक विवेचन निम्न प्रकार है–

देशकाल एवं वातावरण

सन् 1933 में प्रसाद द्वारा रचित 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक उनके अन्य नाटकों से भिन्न धरातल को प्रस्तुत करता है क्योंकि अन्य परंपरागत कथानकों से भिन्न कथानक को प्रस्तुत कर 'ध्रुवस्वामिनी' समसामयिकता पर प्रकाश डालता है। समसामयिक नारी के अधिकारों की समस्या को लेकर लिखा गया प्रस्तुत नाटक हमें इस बात पर विचार करने के लिए कटिबद्ध करता है कि नारी का समाज में क्या स्थान है? यदि वह पति से संरक्षण नहीं पाती तो उसे कौन–सा मार्ग अपनाना चाहिए? उसका पुनर्विवाह संभव है या नहीं? नारी–मुक्ति का प्रश्न उनके अधिकांश नाटकों में उठाया गया है। अपने सभी नाटकों में प्रसाद जी ने नारी–जीवन को विभिन्न कोणों से जांचने का प्रयास किया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में हम सरमा द्वारा वासुकि से प्रत्यक्ष शब्दों में अधिकार की मांग को देखते हैं तो 'स्कंदगुप्त' में देवसेना अहं पर हल्की–सी ठेस भी बर्दाश्त नहीं कर पाती, चाहे जीवनभर आत्मपीड़न ही क्यों न सहन करना पड़े।

कथानक

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथावस्तु इतिहास के स्वर्णयुग गुप्तकाल से संबंधित है। इस नाटक के द्वारा तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति का पता चलता है। चंद्रगुप्त की वीरता, ध्रुवस्वामिनी का स्वाभिमान, पुरोहित का धर्मनिष्ठ जागरूक व्यक्तित्व, सभासदों का अन्याय के प्रति विद्रोह, न्यायपूर्ण निर्णय आदि सभी बातें तत्कालीन युग की गौरव गाथा कहती हैं। ध्रुवस्वामिनी का कथानक उलझा हुआ नहीं है। घटनाओं की अतिशयता भी नहीं है। मुख्यतः शकराज का संधि प्रस्ताव, रामगुप्त द्वारा स्वीकारने पर चंद्रगुप्त का क्रोधित होना और ध्रुवस्वामिनी सहित स्त्री वेश में शकराज के शिविर में जाना, शकराज का वध, पुनः रामगुप्त का वहां आना, परिषद् में ध्रुवस्वामिनी का मोक्ष प्राप्त करना और रामगुप्त का निष्कासन आदि प्रमुख घटनाएं हैं। इनका अभिनय सरलता से किया जा सकता है। दर्शक/पाठक की जिज्ञासा आद्यांत बनी रहती है। संकलन–त्रय (स्थान, काल और कार्य) की दृष्टि से भी यह एक सफल नाटक है। नाटक का समय गुप्तकालीन है। घटना का स्थान अंतःपुर के प्रकोष्ठ से लेकर शकराज के शिविर तक है। नाटक का मुख्य कार्य ध्रुवस्वामिनी को अपने अधिकारों की प्राप्ति है। अतः काल, स्थान व समय की दृष्टि से यह नाटक सफल है। घटना–व्यापार प्रायः एक ही स्थल पर घटित होता है। तीन अंकों में एक–एक दृश्य है। थोड़े से परिवर्तन के साथ नाटक को एक ही मंच पर अभिनीत किया जा सकता है। नाटक के गीत प्रसंगानुकूल हैं जिससे अभिनय में बाधा नहीं आती।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में प्रसाद ने नारी के सामाजिक शोषण के प्रश्न को कथानक की केन्द्रीय संवेदना के रूप में रखा है। नार्वे निवासी इब्सन, चेखव, हाप्टमैन और स्ट्रिंडबर्ग ने भी तत्कालीन समाज की स्थिति को अपने नाटकों का कथ्य बनाया, ऐसा ही प्रसाद ने भी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में किया है। नारी–शोषण की इस युगीन समस्या को प्रसाद ने केवल उठा कर छोड़ नहीं दिया बल्कि बुद्धि के बल पर उसका शास्त्रसम्मत समाधान भी प्रस्तुत किया है।

टिप्पणी

रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी का विवाह तो धार्मिक रीति से हुआ किंतु ध्रुवस्वामिनी के प्रति रामगुप्त का व्यवहार पति के अनुरूप न होकर एक कठोर शासक के समान ही रहा, तब ध्रुवस्वामिनी अपने वैवाहिक जीवन पर शंका प्रकट करते हुए कहती है, "उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशाप था?" क्योंकि ध्रुवस्वामिनी से विवाह करने वाला रामगुप्त अपनी पत्नी को केवल शक के घेरे में ही नहीं लेता बल्कि उसका भक्षक भी बन जाता है। रामगुप्त, ध्रुवस्वामिनी को एक संधि के तहत शकराज के सम्मुख उपहारस्वरूप भेजने की बात करता है।

यहां जयशंकर प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी को आधुनिक, सजग भारतीय नारी के रूप में चित्रित कर नारी–चेतना के स्वर को बुलंद किया है। ध्रुवस्वामिनी विवाहोपरांत मिले बंधनों और मान्यताओं के प्रति कड़ा रुख अपनाती हुई दिखाई देती है। वह रामगुप्त की पैशाचिक आज्ञा के प्रति विद्रोह करती है। उसका यह विद्रोह केवल रामगुप्त के प्रति ही नहीं बल्कि धार्मिक विधानों में स्त्री को बांधने वाले समाज के प्रति भी है। ध्रुवस्वामिनी का यह कथन–"पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।" रामगुप्त को कहा गया ध्रुवस्वामिनी का उपर्युक्त कथन स्त्री जाति की बदलती हुई मानसिकता की ओर संकेत करता है, जहां वह, यह प्रदर्शित करती है कि पुरुष द्वारा होने वाले अत्याचारों को अब स्त्री सहन नहीं करेगी। पुरुष की इस परंपरागत भोगवादी प्रवृत्ति के खिलाफ आवाज उठाकर ध्रुवस्वामिनी ने नारी–मुक्ति के प्रश्न को महत्वपूर्ण बना दिया है।

चरित्र–चित्रण और पात्र–योजना

'ध्रुवस्वामिनी' चरित्र–चित्रण और पात्र–योजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है। इस नाटक में प्रत्येक पात्र का स्वतंत्र व्यक्तित्व है और सभी पात्र अपनी विलक्षणता के कारण पाठक/प्रेक्षक पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इस नाटक में पात्रों की संख्या प्रसाद के अन्य नाटकों की अपेक्षा कम है। नाटक के प्रधान पात्र जहां परिस्थितियों के बीच संघर्ष की भूमिका प्रस्तुत करते हैं वहीं गौण पात्र उसके लिए आवश्यक पृष्ठभूमि और वातावरण बनाने में योगदान देते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' के स्त्री पात्रों में ध्रुवस्वामिनी, कोमा और मंदाकिनी प्रमुख हैं। जबकि पुरुष पात्रों में रामगुप्त, चंद्रगुप्त, शकराज, शिखरस्वामी, पुरोहित प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त मिहिरदेव गौण पात्र है।

स्त्री पात्र

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में स्त्री पात्रों का चरित्र–चत्रिण नाटककार ने निम्न प्रकार से किया है–

ध्रुवस्वामिनी

नाटक में ध्रुवस्वामिनी का चरित्र ही प्रधान है। ध्रुवस्वामिनी ही ऐसा पात्र है जिसका नाटक की समस्त घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। उसके चरित्र के चारों ओर अन्य पात्र निर्भर करते हैं। समस्त घटनाएं और व्यापार उसी से संबंधित हैं। यह नाटक उसी के जीवन संघर्ष को दर्शाता है जहां वह प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए स्वयं को बेमेल–विवाह के बंधन से स्वतंत्र कराती है। वह प्रारंभ में एक ऐसी स्त्री के रूप में आती

है जो 'प्रभुत्व की साकार कठोरता में सीधे तने हुए उन्मुक्त अग्रभेदी शिखर के आगे क्षुद्र, कोमल, निरीह लताओं को उसके चरणों में लौटना ही होगा' की बाध्यता का अनुभव करती है। नारी का जीवन सदैव वेदना से पूर्ण रहा है। उसके अधिकारों का अपहरण हुआ है तथा उसको भर्त्सना सहनी पड़ी है। ध्रुवस्वामिनी के पैरों में भी धर्म और सामाजिक रूढ़ियों का बंधन पड़ा है वह अपने अपमान और यंत्रणा को जैसे अपने जीवन का सत्य स्वीकार कर लेती है क्योंकि 'राजचक्र उसको पीसता है, पिसने दो हम दुर्बल निस्सहायों को भी पिसने दो।' ध्रुवस्वामिनी एक कोमल और सहिष्णु नारी है। नाटक के प्रारंभ में ही उसके विषादपूर्ण जीवन का आभास मिल जाता है। उसका जीवन संकटों से घिरा रहता है। क्लीव और पतित रामगुप्त के साथ अनिच्छापूर्वक उसे विवाह–सूत्र में बांध दिया जाता है, जहां उसे एक पत्नी का सम्मान नहीं मिलता। नाटक का प्रथम संवाद ही उसकी दयनीय स्थिति की ओर संकेत करते हैं–

"... इस राजकुल के अंतःपुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा–जो मुझे आते ही मिला–किंतु क्या तुम जैसी दासियों से भी–वही मिलेगा? . . . यह कैसा इंद्रजाल! उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे जो आशीर्वाद दिया था, क्या वह अभिशाप था? इस राजकीय अंतःपुर में सब जैसे एक रहस्य छिपाए हुए चलते हैं, बोलते हैं और मौन हो जाते हैं। . . . इस राजकुल में संपूर्ण मनुष्यता का एक भी निदर्शन न मिलेगा क्या? जिधर देखो–कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूंगे और बहरे हैं।" उसके दयनीय–त्रासद जीवन के मूल में दाम्पत्य जीवन की विषमता है। उसका पति रामगुप्त विलासी और क्रूर है जिसके कारण ध्रुवस्वामिनी को उसके सम्मुख झुकने के लिए विवश होना पड़ता है। प्रो. रमेश गौतम के शब्दों में, "ध्रुवस्वामिनी नारी की उस दुर्नियति को रेखांकित करती है जो रामगुप्त जैसे हिंसक, पाखंडी, क्षीव और क्लीव पति के घोर बर्बरतापूर्ण व्यवहार से अत्यंत पीड़ित है। भाग्य छलना ने उसे चंद्रगुप्त जैसे योग्य पति के स्थान पर रामगुप्त जैसे नरपशु की पत्नी बनने के लिए विवश किया। रामगुप्त ने चंद्रगुप्त की वाग्दत्ता ध्रुवस्वामिनी पर भी उसी प्रकार छल–बल से अधिकार कर लिया जिस प्रकार वह राज्य का अधिपति बन बैठा। ध्रुवस्वामिनी को उसने अपने अंतःपुर में इस प्रकार रखा हुआ है, जैसे स्वर्ण पिंजर में बंदिनी कोई पक्षिणी हो। रामगुप्त की अपराधी आत्मा ध्रुवस्वामिनी की निकटता से घबराती है। वह निरंतर ओछी विलासिता और हीन मनोरंजन में खोया रहता है। ध्रुवस्वामिनी के लिए उसके पास अवकाश नहीं। अनिच्छित दाम्पत्य–जीवन की घुटन और कापुरुष जाति का तिरस्कार कुत्सित दंड के रूप में ध्रुवस्वामिनी भोगने के लिए विवश है।"

ध्रुवस्वामिनी की स्थिति तब और दयनीय हो जाती है जब रामगुप्त युद्ध से बचने के लिए संधि की शर्त के अनुसार उसे उपहार की वस्तु समझ कर शकराज को देने का षड्यंत्र करता है। यहां वह अपने नारीत्व की रक्षा हेतु रामगुप्त को विवाह की विधियों, प्रतिज्ञा की याद दिलाती है किंतु रामगुप्त इस प्रतिज्ञा से इंकार कर देता है फिर भी ध्रुवस्वामिनी सदियों की पराधीन मानसिकता में दबी अपने नारीत्व की रक्षा हेतु रामगुप्त जैसे कर्तव्यहीन कायर और नीच पति के समक्ष गिड़गिड़ाती है–

"मेरी रक्षा करो! मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूं। मैं स्वीकार करती हूं कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किंतु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूंगी। राज्य और संपत्ति

रहने पर राजा को–पुरुष को– बहुत–सी रानियां और स्त्रियां मिलती हैं किंतु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।"

टिप्पणी

इस अनुनय–विनय का रामगुप्त पर कोई असर नहीं होता। यहां ध्रुवस्वामिनी का आत्मगौरव प्रदीप्त हो उठता है और वह आत्मसम्मान से भर कर कह उठती है–

"पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी सकते हो। हां, तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहां से चली जाऊंगी।"

ध्रुवस्वामिनी स्वयं को उपहार देने की वस्तु नहीं मानती। रामगुप्त द्वारा ठुकराए जाने पर ध्रुवस्वामिनी का सुषुप्त स्वाभिमान विस्फोट करता है और वह सदियों से पुरुष प्रधान समाज में कैद भारतीय नारी की मुक्ति का प्रयास करती दिखाई देती है। कायर, क्लीव रामगुप्त के प्रति उसके आक्रोश में नारीत्व की स्वतंत्र अस्मिता व्यक्त हुई है–

"निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूं। मुझ में रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूंगी।"

प्रसाद के नारी पात्रों में जो दर्प, उज्ज्वलता ध्रुवस्वामिनी में है वह किसी और में नहीं। वह धर्म, समाज की रूढ़िग्रस्तता से चंगुल से नारी को मुक्त करने की आकांक्षा के लिए विद्रोह तो करती है किंतु कहीं भी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। उसके मन में धर्म और समाज की रूढ़ियों के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है। तभी तो वह कहती है–

"धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की वैचारिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गई है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस विवाह करवाया है, उसका उत्सव भी कितना सुंदर है। यह जनसंहार देखो।"

ध्रुवस्वामिनी असाधारण व्यक्तित्व की स्वामिनी है। प्रारंभ से अंत तक उसका जीवन कठिनाइयों से घिरा रहता है, किंतु वह कठिनाइयों से घबराती नहीं है। उसकी कर्तव्यपरायणता, उसका अनुराग तथा उसका साहस एवं विवेक उसे एक असाधारण नारी के पद पर पहुंचा देता है। ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की महत्वपूर्ण विशेषता उसके भीतर चलने वाला अंतर्द्वन्द्व और उसके मूल में निहित प्रेम की भावना है। चंद्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी होने के कारण वह शुरू से ही चंद्रगुप्त के प्रति अनुरक्त थी किंतु परिस्थितियों के कारण उसका विवाह रामगुप्त से हो गया, जहां सहज दाम्पत्य के कारण उसे घोर अपमान और उपेक्षा मिली। असहाय अवस्था में चंद्रगुप्त की ओर से सहायता का प्रस्ताव मिलते ही उसके मन का संचित स्नेह भाव जग उठता है। सामाजिक बंधनों की मर्यादा और हृदय की सहज भावना का द्वंद्व उसके मन में चलने लगता है। अंततः वह तार्किक उत्तर खोजने में सफल होती है जब रामगुप्त द्वारा परित्यक्त हो जाने पर वह न्याय की मांग करती है। धर्मशास्त्र द्वारा अनुमोदित मांग कर रामगुप्त से मोक्ष प्राप्त करती है।

वस्तुतः ध्रुवस्वामिनी का चरित्र भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के बीच आधुनिक प्रगतिशील को प्रकट करता है और धर्म, समाज, राजनीति सबको चुनौती देते नारी

अस्मिता के संकट और उस संकट से मुक्ति को चित्रित करता है। प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी के चरित्र में नारी हृदय के मनोविज्ञान और आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना का स्वाभाविक मेल किया है। प्रसाद ने नारी अस्मिता से जुड़े ज्वलंत प्रासंगिक प्रश्नों को सामयिक संदर्भों के अनुसार ध्रुवस्वामिनी के चरित्र के माध्यम से अंकित किया है।

कोमा

कोमा का नाटक में द्वितीय अंक में प्रवेश होता है। वह आचार्य मिहिरदेव की पालिता पुत्री है। वह शकराज से प्रेम करती है। वह विश्व का सब कुछ उसी के आलोक में देखती है। प्रारंभ में वह यौवन और प्रेम की भावनाओं को लेकर प्रफुल्ल कुसुम की भांति आती है। किंतु शकराज के युद्ध प्रेम के कारण उसे निराशा ही हाथ लगती है।

"... इधर कई दिनों से महाराज अपने युद्ध–विग्रह में लगे हुए हैं और मैं भी यहां नहीं आई, तो फिर इनकी चिंता कौन करता? उस दिन मैंने यहां और भी दो मंच रख देने को कह दिया था, पर सुनता कौन है? सब जैसे रक्त के प्यासे–प्राण लेने और देने में पागल! बसंत का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उसके स्पर्श से परिचित नहीं। ...प्रणय, प्रेम। जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आंखों में प्रकाश की किरण नहीं। तब वही, केवल वही! हो पागलपन ... भूल हो, दुःख मिले–प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच–समझकर चलना दोनों बराबर है।"

उसका यह संवाद स्पष्ट करता है कि कोमा भावुक है, किंतु शकराज राजनीतिक प्रतिशोध में कोमा को भुला बैठता है। संसार के लिए प्रेम, पागलपन, भूल या कि दुःख का स्रोत हो सकता है किंतु कोमा के लिए एकमात्र वही काम्य है। उसकी यह निष्ठा नारी मन की चंचल भावुकता मात्र नहीं है। वह उसकी आंतरिक वास्तविकता है, उसका जीवन मूल्य है, उसके समग्र व्यक्तित्व का आधार है। वह स्त्री हृदय की पीड़ा जानती है। वह शकराज को ध्रुवस्वामिनी के संधिस्वरूप शक शिविर में आने का विरोध करती है–

"मेरे राजा, आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो?"

ध्रुवस्वामिनी की तरह कोमा भी प्रेम विदग्ध है। दोनों ही पुरुषों द्वारा प्रताड़ित, लांछित, अपमानित होती हैं, किंतु ध्रुवस्वामिनी इस अपमान के विरुद्ध विद्रोह करती है वहीं कोमा मृत्यु के पश्चात् भी शकराज को नहीं छोड़ती। वह शकराज को पतित और दुर्बल नहीं देख सकती। उसने शकराज की दर्प से दीप्त महत्वमयी पुरुष मूर्ति की पूजा की थी, न कि स्वार्थमलिन कलुष से भरी मूर्ति की। शकराज का पतन उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाता है और यहां वह शकराज की दृढ़तापूर्वक उपेक्षा करती है–

"प्रेम का नाम न लो। वह एक पीड़ा थी जो छूट गई। उसकी कसक भी धीरे–धीरे दूर हो जाएगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुषमूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ–मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं।"

कोमा का चरित्रंकन प्रसाद ने बड़ी सुंदरता से किया है। वह नारी हृदय का उत्कृष्ट नमूना है। विनम्रता, आत्मसमर्पण, कोमलता, दैन्य, त्याग, प्रेम सभी उसके हृदय में उपस्थित है। जगदीश प्रसाद कौशिक के शब्दों में, "कोमा की विशिष्टता यह है कि

वह अविचल प्रेममयी होकर भी स्त्रीतत्व के आत्मगौरव के प्रति जागरूक रहती है। अपनी भावमयता में वह प्रसाद की कवि कल्पना कोमलतम सृष्टियों में से एक है।"

मंदाकिनी

टिप्पणी

मंदाकिनी का चरित्र आत्मसम्मान तथा वीरता से भरा हुआ है। प्रसाद ने मंदाकिनी के विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। एक स्थान पर जब वह ध्रुवस्वामिनी को भाभी कहकर संबोधित करती है उस समय प्रतीत होता है कि वह चंद्रगुप्त और रामगुप्त की बहन है। मंदाकिनी नाटक में स्त्री–पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है और स्त्री–स्वातंत्र्य के लिए लड़ती दिखाई पड़ती है। उसमें उत्साह तथा साहस भरा पड़ा है। रामगुप्त का षड्यंत्र जानकर उसका हृदय संशंकित हो उठता है और वह न्याय का पक्ष लेने का निश्चय करती है–

"भयानक समस्या है। मूर्खों ने स्वार्थ के लिए साम्राज्य के गौरव का सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया है। सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छलछंद की धूल उड़ती है। कुमार चंद्रगुप्त को यह समाचार शीघ्र मिलना चाहिए। गूंगी के अभिनय में महादेवी के हृदय का आवरण तनिक–सा हटा है, किंतु वह थोड़ा–सा स्निग्ध भाव भी कुमार के लिए कम महत्व नहीं रखता। कुमार चंद्रगुप्त! कितना समर्पण भाव है उसमें? और उसी का बड़ा भाई रामगुप्त। कपटाचारी रामगुप्त! जी करता है, इस कलुषित वातावरण से कहीं दूर, विस्मृति में अपने को छिपा लूं। पर मंदा! तुझे विधाता ने क्यों बनाया? नहीं, मुझे हृदय कठोर करके अपना कर्तव्य करने के लिए यहां रुकना होगा। न्याय का, दुर्बल का पक्ष ग्रहण करना होगा।"

मंदाकिनी पलायनवादी नहीं है। वह ध्रुवस्वामिनी का पक्ष लेने का निर्णय करती है। मानवता और न्याय के पक्ष का समर्थन करने के लिए वह स्वभाव से प्रतिबद्ध है। वह नारी मन की व्यथा समझती है और उसके निवारण के लिए पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत रहती है। ध्रुवस्वामिनी की दुविधाग्रस्त मानसिकता का अनुभव कर लेने के बाद वह रामगुप्त से मुक्ति और चंद्रगुप्त से संयोग की दिशा में प्रयत्नशील होती है।

"आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म–बंधन में बांधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार–कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियां अपनी आपत्ति में अवलम्ब मांग सकें।"

मंदाकिनी के चरित्र का महत्वपूर्ण पहलू है उसका राष्ट्र–प्रेम। शकराज द्वारा शिविर को घेर लिए जाने पर वह जिस उत्साह से सबको संगठित राष्ट्रहित के लिए प्रेरणा देती है, वह राष्ट्रवाद का अप्रतिम उदाहरण है। वह स्वयं वाहिनी का नेतृत्व करती हुई अपने प्रोत्साहनमय अभियान गीत से सैनिकों का मनोबल बढ़ाती है–

पैरों के नीचे जलधर हों, बिजली से उनका खेल चले।
संकीर्ण कगारों के नीचे, शत–शत झरने बेमेल चले।।

मंदाकिनी को न शासन का भय है और न परम्परामुक्त सामाजिक निरर्थक दम्भ ही उसे विचलित कर सकते हैं। वह रामगुप्त को दंड देने की परिषद् से प्रार्थना करती है–

"राजा का भय मंदा का गला नहीं घोंट सकता। तुम लोगों में यदि कुछ भी बुद्धि होगी तो इस अपनी कुल मर्यादा–नारी को, शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान ने

स्त्रियों को उत्पन्न करते ही अधिकारों से वंचित नहीं किया। किंतु तुम लोगों की दस्यु–वृत्ति ने उन्हें लूटा है। इस परिषद् से मेरी प्रार्थना है कि आर्य समुद्रगुप्त का विधान तोड़कर जिन लोगों ने राजकिल्विष किया हो उन्हें दंड मिलना चाहिए।"

टिप्पणी

प्रसाद ने मंदाकिनी के चरित्र में स्वतंत्रता संग्राम की वीर स्त्रियों के व्यक्तित्व की छाप दी है। वह स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी है तथा प्रगतिशील आधुनिक स्त्रियों की प्रतिनिधि है।

पुरुष पात्र

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के पुरुष पात्रों का चरित्र–चित्रण निम्न प्रकार से किया गया है–

चंद्रगुप्त

'ध्रुवस्वामिनी' का चंद्रगुप्त, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों 'स्कंदगुप्त' तथा 'चंद्रगुप्त' के नाटकों के समान धैर्यवान, साहसी, वीर, पराक्रमी तथा उदार है। इसके साथ ही उसके हृदय का कोमल पक्ष भी है और वह है ध्रुवस्वामिनी के प्रति प्रेम जिसको उसके हृदय से पृथक् नहीं किया जा सकता। कुल मर्यादा तथा भ्रातृ–प्रेम के कारण वह अपने प्रेम, अपने अधिकार का त्याग कर देता है। वह सत्य की रक्षा के लिए कटिबद्ध है। उसको आंतरिक तथा बाह्य विरोधियों पर विजय प्राप्त होती है और अंत में वह ध्रुवस्वामिनी को भी प्राप्त करता है। चंद्रगुप्त असीम साहसी, अपराजेय पौरुष परिपूर्ण और प्रचंड पराक्रमी है। वंश और साम्राज्य की गौरव रक्षा के लिए वह किसी से भी टकराने की हिम्मत रखता है। उसने अपने वंश और साम्राज्य की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए स्वयं को राज्याधिकार से अलग कर लिया था। यद्यपि प्रयत्न करके भी वह अपनी वाग्दत्ता और प्रिया की छवि हृदय से नहीं निकाल पाया था। उसके हृदय में किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है और न ही साम्राज्य प्राप्ति के लिए वह कोई षड्यंत्र रचता है। वह केवल वीर नहीं वरन् एक कर्तव्यपरायण पुरुष भी है। वह अपनी वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी के वरण के लिए शक्ति का प्रयोग नहीं करता। उसमें आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान भरा हुआ है। चंद्रगुप्त के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसका मर्यादा पालन। इसी मर्यादा पालन के लिए वह कोई भी त्याग करने को तत्पर रहता है। गुप्तकुल के गौरव को कायम रखना उसके जीवन का लक्ष्य है। वह गुप्तकुल के अपमान को किसी भी प्रकार से सह नहीं सकता। जब उसे यह पता चलता है कि ध्रुवस्वामिनी को शकराज को संधि के रूप में दिया जा रहा है तो वह आवेश से कह उठता है–

"यह नहीं हो सकता! महादेवी! जिस मर्यादा के लिए–जिस महत्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राजदंड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पददलित होना पड़ेगा और भी एक बात है। मेरे हृदय के अंधकार में प्रथमा किरण–सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्न किया कि....।"

चंद्रगुप्त वीर है और उसका संयम भी वीरोचित है। वह विनयशील है किंतु जिस बिन्दु के बाद विनय कायरता प्रतीत होने लगती है तब परिवर्तन अपेक्षित हो जाता है।

टिप्पणी

जब रामगुप्त और शिखरस्वामी की नीचता, कुटिलता असहय हो जाती है तब चंद्रगुप्त सबको उनकी नीचता का अहसास कराने के लिए फटकार लगाता है।

"मैं आर्य समुद्रगुप्त का पुत्र हूं और शिखरस्वामी, तुम यह अच्छी तरह जानते हो कि मैं ही उनके द्वारा निर्वाचित युवराज भी हूं। तुम्हारी नीचता अब असहाय है। तुम अपने राजा को लेकर इस दुर्ग से सकुशल बाहर चले जाओ। यहां अब मैं ही शकराज के समस्त अधिकारों का स्वामी हूं।"

वह प्रत्येक स्थिति का डटकर मुकाबला करता है। ध्रुवस्वामिनी का साथ वह बड़ी वीरता से देता है और हर कठिनाई से उसकी रक्षा करता है। वह एक प्रकार से ध्रुवस्वामिनी के अधूरे व्यक्तित्व का पूरक है।

रामगुप्त

रामगुप्त विलासी प्रकृति का व्यक्ति है। वह मद्यप तथा कायर राजा है। उसका चरित्र दुर्गुणों से परिपूर्ण है। वह मदिरा में उन्मत्त हिजड़ों और बौनों के मूर्खतापूर्ण हास्य–विनोद में रस लेता है। वह शिखरस्वामी जैसे धूर्त चाटुकारों से घिरा रहता है। वह शासन के अयोग्य है। साम्राज्य उसे अपनी विलास तृप्ति के लिए ही चाहिए। ध्रुवस्वामिनी के सम्मुख शकराज का घृणित प्रस्ताव रखने में उसे लज्जा भी नहीं आती। वह युद्ध में शकराज का सामना करने की बजाय अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को उसे उपहार देने को तैयार हो जाता है।

"ठीक ही है, जब उसके यहां सामंत है तब उन लोगों के लिए भी स्त्रियां चाहिए। हां, क्या यह सच है कि महादेवी के पिता ने पहले शकराज से इनका संबंध स्थिर कर लिया था?"

यह संवाद उसकी कायरता और मानवीय भावनाओं की कमी को दर्शाता है। जब ध्रुवस्वामिनी उसे विवाह की प्रतिज्ञाओं की याद दिलाते पूछती है कि किसने सुख–दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्नि–वेदी के सामने की थी? तो वह कायर पुरुष की तरह इंकार करता है–

". . . परंतु रामगुप्त ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षासव में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या–क्या पढ़ा दिया होगा, उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर।"

ध्रुवस्वामिनी उसे 'प्रवंचना का पुतला और स्वार्थ का घृणित प्रपंच' कहकर संबोधित करती है। पुरोहित उसे "गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मो से राजकिल्विषी क्लीव" करार देता है। परिषद् के सम्मानित सदस्य उसे अनार्य, पतित, क्लीव और गुप्त साम्राज्य के पवित्र सिंहासन पर बैठने के अयोग्य घोषित करते हैं। अपनी स्वार्थ–पूर्ति के मार्ग में वह किसी संबंध, रिश्ते की कद्र भी नहीं करता।

शिखरस्वामी

शिखरस्वामी रामगुप्त का अमात्य है। वह धूर्त और स्वार्थी है। वह अपनी राजनीतिक प्रतिभा का दुरुपयोग असत्य के समर्थन, प्रवंचना एवं चाटुकारिता के रूप में करता है। वह अवसरवादी कूटनीतिज्ञ है जिसका आचरण धर्म तथा न्याय के विपरीत है। उसका चरित्र स्वार्थ से शासित होता है। वह समुद्रगुप्त की आज्ञा के प्रतिकूल राज्य प्राप्त करने के लिए रामगुप्त का समर्थन करता है। रामगुप्त की मर्यादाहीन, अनीतिपूर्ण बातों को

समझते हुए भी विरोध नहीं करता क्योंकि वह उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाए रखना चाहता है। चंद्रगुप्त के शब्दों में वह 'कुटिलता की प्रतिमूर्ति' है और पुरोहित के शब्दों में 'राजनीतिक दस्यु' है।

टिप्पणी

शकराज

शकराज क्रूर, दुर्विनीत एवं विलासी प्रकृति का है। उसकी चारित्रिक दुर्बलताएं ही उसके विनाश का कारण बनती हैं। वह भौतिक सुख–सम्पदा और विलास को ही जीवन में श्रेष्ठ मानता है। इस कारण वह कोमा की पवित्र भावनाओं का निरादर करता है–"यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, मैं किसी से बड़ा नहीं हूं, तो छोटा भी नहीं बनना चाहता।"

वह सौभाग्य और दुर्भाग्य को मनुष्य की दुर्बलता समझता है–"सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं मैं तो पुरुषार्थ को ही नियामक मानता हूं।"

अन्य पात्रों में मिहिरदेव और पुरोहित हैं। मिहिरदेव आचार्य हैं उनके चरित्र में दार्शनिकता है। पुरोहित सारी स्थितियों का अध्ययन कर निर्णय सुनाता है।

रंगमंचीयता

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक जयशंकर प्रसाद के नवीन नाट्यशिल्प का उदाहरण है। रंगमंचीयता की दृष्टि से इसे तीन अंकों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अंक में एक ही दृश्य–बंध का प्रावधान रखा गया है। पात्रों के संक्षिप्त, सरल एवं द्वंद्व से पूर्ण संवाद पाठक/दर्शक को बांधे रहते हैं।

समाज और व्यक्ति के बीच होने वाला यह संघर्ष नाटक को कल्पना लोक की मनोभूमि बनाकर नहीं छोड़ देता बल्कि यथार्थ के कठोर धरातल से उसे ऊर्जा देता रहता है। यही कारण है कि शकराज के दुर्ग पर अधिकार के पश्चात् ध्रुवस्वामिनी कहती है–"पुरुष की प्रभुता का जाल मुझे अपने निर्दिष्ट पथ पर ले ही आया।" संघर्ष का यह तत्व तब अपने चरम पर पहुंच जाता है जहां ध्रुवस्वामिनी सभी परंपरागत मान्यताओं का खण्डन और रूढ़ियों का विध्वंस कर देती है। उसका यह कथन–"इतना बड़ा उपहार–धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा मुझसे बलपूर्वक ली गई है।" जहां ध्रुवस्वामिनी रूढ़ और गली–सड़ी मान्यताओं की नींव भी रखती है। जहां स्त्री को पुरुष के समान जीने का अधिकार तो है ही साथ ही अपने लिए योग्य पुरुष चुनने का अधिकार भी स्त्री को मिलना चाहिए।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की उपर्युक्त प्रस्तुत सभी विशेषताएं उसे यथार्थवादी शैली का नाटक घोषित करती हैं क्योंकि नारी जीवन की समस्या का चित्रण, बुद्धि और तर्क की प्रधानता, परंपरागत सड़ी–गली मान्यताओं का खंडन और संघर्ष तत्व की प्रधानता यथार्थवादी नाटकों की विशेषता रही है। पंच–अंकीय प्रथा का निषेध, एक अंक में एक ही दृश्य–बंध, मंचसज्जा, सामान्य उपकरणों से भरपूर और रंगमंच के अनुकूल यह नाटक प्रसाद की एक श्रेष्ठतम कृति है।

भाषा–शैली एवं संवाद योजना

सामान्य जीवन की विशेष समस्या को तर्क और बुद्धि का जामा पहनाकर, अभिव्यक्ति के सभी सरों (बाणों) के साथ प्रसाद जी ने इस रूप में प्रस्तुत किया कि सभी सहृदय, विशेष समस्या का सामान्यीकरण करने में जुट गए। आम बोल–चाल की भाषा से युक्त

टिप्पणी

प्रस्तुत कथ्य की अभिव्यक्ति में प्रसाद ने नाटक की मांग के अनुरूप पद्यमय संवादों का प्रयोग भी किया है। प्रस्तुत नाटक की भाषा में वस्तु एवं विषय की गति एवं व्यंजनात्मकता के कारण भाषा में वैदग्ध्य, प्रखरता, तीव्रता, व्यंग्यात्मकता है। जिस प्रकार नाट्यवृत्त बिना किसी ठहराव के वेग एवं सक्रियता के साथ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार भाषा अभिधार्थ के अभिप्रेत को प्रस्तुत करती हुई संपूर्ण नाट्य–वस्तु के व्यंग्य एवं विडंबना पर टिप्पणी करती चलती है। छोटे–छोटे संवादों का प्रयोग और दीर्घ संवादों के प्रयोग से बचा गया है। जिससे संवादशैली अत्यंत स्वाभाविक और वार्तालाप युक्त हो गई है–

ध्रुवस्वामिनी – तुम लोग कौन हो?

कोमा – मैं पराजित शक–जाति की एक बालिका हूं।

ध्रुवस्वामिनी – इस घोर अपराध का तुम्हें क्या दंड मिला?

कोमा – वही, जो स्त्रियों को प्रायः मिला करता है–निराशा, निष्पीड़न और उपहास! रानी! मैं तुमसे भीख मांगने आई हूं।

बुद्धि और तर्क की प्रधानता ने कहीं–कहीं भाषा को तर्कपूर्ण और व्यंग्य वक्रोक्ति युक्त कर दिया है। इस तरह के संवाद कभी कोई समस्या उत्पन्न नहीं करते बल्कि अभिनेताओं के लिए एक चुनौती अवश्य प्रस्तुत करते हैं कि वह किस तरह अपने भावों की अभिव्यक्ति करें? अभिनेताओं द्वारा प्रसाद की भाषा के विषय में कहा गया है कि–"प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी आधुनिकता की चादर ओढ़े इस समाज की वास्तविकता, राजनीति, धर्म और सामाजिक व्यवस्थाओं पर संवेदनात्मक चिंतन कराने के अतिरिक्त भाषा के लावण्य की ऐसी सरल मूर्ति है जो हम जैसे चितेरों को अपना शृंगार करने के लिए बार–बार आह्वान देती है, ललचाती है।"

'ध्रुवस्वामिनी' की प्रासंगिकता

जयशंकर प्रसाद कृत नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' सदैव एक नवीन सोच और नई अभिव्यक्ति की मांग करता रहेगा। प्रसाद ने जिस प्रकार एक ज्वलंत विषय को आधार बनाया है उसी प्रकार इसकी प्रस्तुति भी उन्हीं उपकरणों की मांग करती है, जो सहृदय को प्रेक्षागृह में एक नई सोच और नए विचार के साथ बाहर भेजे और वह प्रण लेकर जाए कि सभी स्त्रियों को पूरे सम्मान के साथ समाज में स्थान दिया जाए।

1933 में रचित 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आज स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सजग तो हैं परंतु समाज के दरिन्दे उनके अधिकारों की प्राप्ति में सदैव बाधक बनकर खड़े रहते हैं। केवल स्त्री के अधिकारों के प्रति सजगता से काम नहीं चलेगा बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि पुरुष–प्रधान समाज यह समझे कि स्त्री भी मनुष्य है, उसे भी जीने का अधिकार है तभी निर्भया जैसे हत्याकांडों पर हम विजय प्राप्त कर सकेंगे।

उद्देश्य

ध्रुवस्वामिनी वस्तुतः स्त्री प्रधान नाटक है। इस नाटक को लिखने का उद्देश्य आधुनिक नारी की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हुए एक जटिल प्रश्न का समाधान देना था। ध्रुवस्वामिनी आधुनिक नारी के रूप में समाज की रूढ़ियों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध

है। यदि पुरुष नारी की रक्षा करने में असमर्थ है तो वह अपनी रक्षा स्वयं भी कर सकती है। उसमें इतना साहस व बल आ गया है कि वह अपने क्लीव, पतित और विलासी पति से मोक्ष (तलाक) पा सकती है, संबंध तोड़ सकती है। प्रसाद का उद्देश्य केवल विवाह–मोक्ष या पुनर्लग्न की समस्या का हल नहीं है वरन् इसमें प्रसाद ने देश का विघटन करने वाली राजनैतिक, सामाजिक, व्यवस्था के रूढ़, भ्रष्ट मूल्यों पर प्रहार करते हुए राष्ट्र एवं व्यक्ति की अस्मिता का प्रश्न उभारा है। नाटक के उद्देश्य की चर्चा करते महेश आनंद लिखते हैं–"यह पहला हिन्दी नाटक है, जहां व्यक्ति ने राजनीति और धर्म से सीधे प्रश्न करते हुए अपनी अस्मिता के लिए आवाज उठाई है। अस्मिता का यही प्रश्न देश के सम्मान और गौरव का प्रश्न बन जाता है। क्या ऐसी गौरवहीन व्यवस्था स्वीकार्य हो सकती है, जहां व्यक्ति की रक्षा संभव नहीं है? इसको ठोस आधार देने के लिए ध्रुवस्वामिनी, मंदाकिनी और कोमा के द्वारा नारी के तीन रूप प्रस्तुत किए गए हैं। ध्रुवस्वामिनी द्वारा प्रश्न उठाया गया है कि क्या उपहार की वस्तु की तरह नारी दूसरे या तीसरे व्यक्ति के पास चली जाए? क्या मंदाकिनी जैसी प्रबुद्ध नारी इस स्थिति के प्रति तटस्थ रहकर 'विस्मृति' में अपने को छिपा ले? या कोमा अपने को सुरक्षित करने के लिए शकराज के पास रहकर अन्याय को मौन भाव से स्वीकार करती चले? यहां प्रसाद ने व्यक्ति के शोषण के साथ उन सूत्रों की व्याख्या भी की है जिनके कारण देश विघटित होने की स्थिति को पहुंच रहा था।"

प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी को संपूर्ण नारी–जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाया है। अधिकारों की यह मांग वह केवल अपने लिए नहीं करती बल्कि सम्पूर्ण नारी जाति के लिए करती है। ध्रुवस्वामिनी की अपने अधिकारों के प्रति यह सजगता केवल विवाह–मुक्ति के रूप में ही हमारे सामने नहीं आती बल्कि वह कायर और उसकी रक्षा में असमर्थ व्यक्ति को तलाक देकर एक योग्य पुरुष से पुनर्विवाह भी चाहती है। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से संपूर्ण नारी जाति को प्रसाद यह संदेश देना चाहते हैं कि "नारी को भी सिर उठाकर जीने का अधिकार मिलना चाहिए।" विवाह बंधन से मुक्ति, कायर पुरुष के साथ न रहने का निर्णय और फिर पुनःविवाह के लिए किसी दूसरे पुरुष का चयन ये सभी बातें प्रसाद ने केवल कोरी कल्पना को लेकर प्रस्तुत नहीं कीं बल्कि बुद्धि और तर्क के साथ इन सभी बातों को प्रस्तुत किया और साथ–ही–साथ इसका समाधान भी निकाला। यह अवश्य है कि इसे धर्म की आड़ में व्याख्यायित किया गया लेकिन वह भी बुद्धि और तर्क के बल पर। विवाह–मोक्ष के विषय में सोचना और धर्मशास्त्र में उसका समाधान खोजना क्या ये सब बुंद्धि से परे की बातें हैं? बिल्कुल नहीं, तलाक लेने के लिए ध्रुवस्वामिनी ने जो तर्क प्रस्तुत किए कि रामगुप्त क्लीव, मद्यप और अपनी पत्नी की सुरक्षा करने में असमर्थ कायर पुरुष है। "निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं?" क्या ध्रुवस्वामिनी की इन बातों पर असहमति प्रकट की जा सकती है? बिल्कुल नहीं। इन सब बातों पर सहमति प्रकट करते हुए पुरोहित कहता है– "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बंधन में बांध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पददलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म–विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते, परंतु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन और (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।" ध्रुवस्वामिनी और मंदाकिनी की अपने अधिकारों के प्रति दृढ़ता ही थी, जिसने परिस्थिति

को उनके अनुकूल बना दिया और पुरोहित ने उपर्युक्त कथन कहकर ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त से विवाह–मोक्ष की अनुमति दे दी। नाटक में प्रस्तुत संघर्ष तत्व को वह ही खड़ा रखती है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक किस सन् में लिखा गया?

(क) सन् 1931 (ख) सन् 1932

(ग) सन् 1933 (घ) सन् 1934

4. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के द्वितीय अंक में किसका प्रवेश होता है?

(क) कोमा (ख) मंदाकिनी

(ग) चंद्रगुप्त (घ) रामगुप्त

2.4 दीपदान : डॉ. रामकुमार वर्मा

रामकुमार वर्मा का जन्म 15 सितंबर, 1905 को मध्य प्रदेश के सागर जिले में हुआ था। पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा डिप्टी कलक्टर के पद पर कार्यरत थे। बचपन इनका सुख–सुविधाओं के बीच व्यतीत हुआ था। इनका रुझान साहित्य की तरफ बचपन से ही था। विद्यार्थी जीवन में रामकुमार वर्मा, गांधी जी के असहयोग आंदोलन से जुड़ गए थे। वे गांधी जी के व्यक्तित्व से इस हद तक प्रभावित हुए थे कि दसवीं की परीक्षा देने के उपरांत अध्ययन छोड़कर देश की राजनीति में सक्रिय हो गए। बाद में पुनः अध्ययन शुरू कर 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर नागपुर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की डिग्री हासिल की और प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के कार्य से जुड़ गए। इसी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में विभागाध्यक्ष भी बने। साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में अमूल्य योगदान देने के लिए इन्हें सन् 1963 में 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया। सन् 1990 में इनका निधन हुआ।

साहित्य में योगदान

रामकुमार वर्मा की ख्याति कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में है। इनकी साहित्य–यात्रा की शुरुआत काव्य से हुई थी। वर्मा के शुरुआती काव्य में राष्ट्रीय प्रेम की भावना प्रबल थी, बाद में इनकी कविता छायावादी रूप ग्रहण करती है। 'चित्र रेखा', 'चंद्र किरण', 'अंजलि', 'चितवन', 'अभिशाप', 'आकाशगंगा' शीर्षक से काव्य संकलन प्रकाशित हुए। इन्होंने कई प्रबंध काव्य भी लिखे। 'एकलव्य', 'वीर हम्मीर', 'रूप राशि', 'निशीथ' जैसे प्रबंध काव्य चर्चित रहे।

रामकुमार वर्मा ने नाटक और एकांकी लेखन में खूब यश कमाया। एकांकी लेखन के प्रवर्तक के रूप में ख्याति अर्जित करने वाले वर्मा ने 'बादल की मृत्यु' शीर्षक से 1930 में पहला एकांकी लिखा। 'पृथ्वीराज की आंखें', 'रेशमी टाई', 'चारूमित्रा', 'विभूति', 'सप्त किरण', 'रूप–रंग', 'रजत–रश्मि', 'ऋतुराज', 'दीपदान', 'रिमझिम', 'इंद्रधनुष' और 'पांचजन्य' शीर्षक से प्रमुख एकांकी प्रकाशित हुए हैं। रामकुमार वर्मा ने

आलोचक के रूप में भी खूब प्रतिष्ठा अर्जित की। 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' और 'कबीर का रहस्यवाद' शीर्षक से पुस्तक काफी चर्चित हुई। साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा में 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' का महत्व आज भी कायम है।

टिप्पणी

'दीपदान' एकांकी की आलोचनात्मक समीक्षा

'दीपदान' एकांकी की आलोचनात्मक समीक्षा निम्न प्रकार से की गई है–

कथानक

रामकुमार वर्मा के एकांकी में यथार्थ का पुट सबसे अधिक दिखाई पड़ता है। इनके एकांकी समस्या–प्रधान तो थे ही, साथ में पौराणिक विषयों को आधार बनाकर ऐतिहासिक एकांकी की नई धारा विकसित करने में इनका प्रमुख योगदान रहा। इनके नाटकों में प्रसाद की ऐतिहासिक–सांस्कृतिक विशिष्टताओं का प्रभाव पड़ा। वर्मा ने ज्यादातर नाटक ऐतिहासिक, पौराणिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे हैं।

'दीपदान' एकांकी की कथा चित्तौड़ राजवंश के उत्तराधिकारी राजकुमार कुंवर उदय सिंह के प्राणों की रक्षा पर आधारित है। राजकुमार की प्राण रक्षा के लिए पन्ना अपने बेटे चंदन के प्राणों को न्यौछावर कर देती है।

एकांकी की शुरुआत नगर में नाच–गान के त्योहार से होती है। नगर की युवतियां तुलजा भवानी के समक्ष दीप जलाकर नृत्य करती हैं। राजकुमार कुंवर उदय सिंह अपनी संरक्षक धाय मां से हठ करता है कि वह भी साथ चलकर युवतियों का नृत्य देखे। धाय मां अचानक नगर में उत्सव मनाने को लेकर सशंकित हो उठती है और राजकुमार को महल के बाहर ले जाने से इंकार कर देती है।

राजकुमार नाराज होकर बिना खाए–पिए सोने चला जाता है। राजकुमार की हमउम्र रावल सरूपसिंह की पुत्री सोना राजकुमार को देखने आती है कि वह नृत्य देखने क्यों नहीं आए। पन्ना से वह तर्क करती है कि राजकुमार को क्यों नहीं भेजा नगर के उत्सव में शामिल होने के लिए। पन्ना उसे बताती है कि राजकुमार का वहां जाना उचित नहीं है। सोना राज्य के वर्तमान राजा बनवीर से काफी प्रभावित है। वह नाच–गान के इस त्योहार के लिए बनवीर के प्रति आभार व्यक्त करती है। पन्ना उसे समझाती है कि इस राज्य में नाच–गान के लिए नहीं बल्कि 'जौहर' के लिए तैयार रहना चाहिए।

इसी बीच नगर की परिचारिका सामली राजभवन में यह सूचना लेकर प्रवेश करती है कि बनबीर ने रात में नींद में सोए विक्रमादित्य की हत्या कर दी है। वह यह भी बताती है कि बनवीर के सैनिकों ने भवन को चारों तरफ से घेर लिया है। किसी भी वक्त बनवीर राजकुमार की हत्या करने के लिए भवन में आ सकता है। पन्ना अपने साहस का परिचय देती है। अपने बेटे चंदन को राजकुमार के कक्ष में सुलाकर राजकुमार को जूठी पत्तल उठाने वाले कीरत की टोकरी में भरकर नगर के बाहर सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देती है। बनवीर राजभवन में आता है और पन्ना को तरह–तरह से लालच देता है लेकिन पन्ना अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होती है।

बनवीर, पन्ना से पूछता है कि तुम दीपदान देखने क्यों नहीं आई। वह कहती है कि दीपदान देखने की चीज नहीं है, करने की चीज है। फिर वह मारवाड़ की एक

टिप्पणी

जागीर देने की बात कहता है। पन्ना इस पर राजी नहीं है बल्कि वह बनवीर की नीचता और कायरता के लिए उसे कोसती है। उसे वह याद दिलाती है कि वह उदय सिंह का संरक्षक है। राजकुमार की रक्षा करना उसका भी कर्तव्य है। इस बात पर वह और भड़क उठता है। फिर पन्ना उससे कहती है कि तुम चाहो तो समूचे राजपूताने राज्य पर एकछत्र राज करो लेकिन राजकुमार की हत्या मत करो। वह उसे आश्वस्त करती है कि वह संन्यासिनी होकर राजकुमार को साथ लेकर तीर्थ यात्रा पर निकली जाएगी। लेकिन वह पन्ना की एक नहीं सुनता है और वह राजकुमार उदय सिंह को सोया समझकर चंदन की हत्या कर देता है।

पन्ना के माध्यम से एकांकीकार ने देशप्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के भाव को प्रस्तुत किया है। देश के अतीत का गौरव गान कर देशप्रेम के भाव को जगाने का प्रयास किया है। पन्ना त्याग और साहस की प्रतिमूर्ति के रूप में सामने आती है। उसके मन में राणा सांगा के उत्तराधिकारी की रक्षा का भाव हमेशा विद्यमान रहता है। एक प्रसंग में वह कहती भी है कि "महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।''

चरित्र चित्रण

'दीपदान' एकांकी के पात्रों का चरित्र–चित्रण एकांकीकार द्वारा इस प्रकार किया गया है–

पन्ना– 'दीपदान' एकांकी का केंद्रीय पात्र है पन्ना। कुंवर उदय सिंह चित्तौड़ राज्य का उत्तराधिकारी है। पन्ना, उदय सिंह की धाय मां है। वह राजकुमार की देखभाल करती है, वही उसकी संरक्षक है। अपने राजकुमार के जीवन की सुरक्षा के लिए पन्ना अपने बेटे चंदन के प्राण दांव पर लगा देती है। इस एकांकी में पन्ना की राजभक्ति गजब की है। वह जानती है कि कुंवर उदय सिंह चित्तौड़ का भविष्य है। इसलिए वह हमेशा राजकुमार के जीवन की सुरक्षा के प्रति सचेत रहती है। जब पन्ना को पता चलता है कि चित्तौड़ का वर्तमान क्रूर संरक्षक बनवीर राजकुमार उदय सिंह की हत्या कर राज्य को हड़पना चाहता है, तब बहुत चतुराई से जूठी पत्तल उठानेवाले कीरत की टोकरी में रखकर उसे सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देती है और यह जानते हुए कि बनवीर आज रात में सोते हुए राजकुमार कुंवर उदय सिंह की हत्या कर सकता है, वह अपने बेटे चंदन को राजकुमार के कक्ष में सुला देती है। बनवीर राजकुमार के कक्ष में प्रवेश करता है और सोए चंदन की हत्या राजकुमार समझकर कर देता है। इस स्थान पर पन्ना का त्याग और बलिदान मिसाल बन जाता है।

पन्ना का व्यक्तित्व सहज–सरल और हृदय कठोर है। उसे जब पता चलता है कि बनवीर ने पूरे राजमहल की घेराबंदी कर चुका है और आज की रात राजकुमार की हत्या करने की योजना साकार करने के लिए उतावला है, तब वह बहुत चालाकी से राजकुमार को राजमहल से बाहर निकलवा देती है और अपने बेटे चंदन के जीवन को दांव पर लगा देती है। एक समय के लिए पन्ना का ममत्व उमड़ता है। चंदन को राजकुमार के कक्ष में सुलाकर पीड़ा से भर उठती है। खुद को कोसती भी है कि उसने ऐसा क्यों कर दिया। क्यों अपने बेटे चंदन के प्राण को खतरे में डाल दिया। क्या अब वह उसे दोबारा देख पाएगी? क्या उसे अपने हाथों से भोजन करवा पाएगी? इतना सब कुछ सोचते उसकी आंखों से आंसू की धारा बहने लगती है लेकिन वह अपने कर्तव्य

टिप्पणी

से विमुख नहीं होती है। वह अपने हृदय को कठोर करते हुए सोचती है कि उसने देश के लिए अपने बेटे के प्राण को कुर्बान कर दिया है। यही उसका असली दीपदान है। अपनी मातृभूमि के लिए पन्ना का ऐसा त्याग अन्यत्र दुर्लभ है।

पन्ना निःस्वार्थ भाव से अपने राज्य की सुरक्षा में लगी है। बनवीर उसे अपने साथ मिलाना चाहता है। उसे तरह–तरह से लालच देता है। पन्ना को राजकुमार के बदले जागीर देने की बात करता है लेकिन वह कहती है कि राजपूतनी व्यापार नहीं करती है। वह निडर भी है और वीरांगना भी। बनवीर के आगे डटकर खड़ी हो जाती है। वह बनवीर की क्रूरता से अच्छी तरह वाकिफ़ है लेकिन वह उससे बेखौफ होकर बहस करती है। जब बनवीर राजकुमार की हत्या करने के लिए जिद ठान लेता है, तब पन्ना उससे कहती है कि समूचे चित्तौड़ पर तुम राज करो लेकिन राजकुमार के जीवन को बख्श दो। वह खुद संन्यासिनी होकर राजमहल छोड़ने तक का प्रस्ताव रखती है। पन्ना के व्यक्तित्व के पहलुओं पर गौर करने पर उसका व्यक्तित्व निर्भीक और साहसी दिखाई पड़ता है।

पन्ना का व्यक्तित्व धैर्यवान है और दूरदर्शी भी। वह बनवीर के षड्यंत्र को भांप लेती है। नगर में अचानक हो रहे उत्सव से उन्हें बनवीर पर संदेह होने लगता है। इस कारण ही वह राजकुमार कुंवर उदय सिंह को राज्य से बाहर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के लिए कीरत की सहायता लेती है। पन्ना का संदेह सच साबित होता है और बनवीर का असली चेहरा उजागर होता है।

बनवीर– एकांकी में बनवीर एक क्रूर प्रशासक है। वह राज्य का संरक्षक है लेकिन उसके मन में लालच है कि वह इस राज्य का राजा बन जाए। वह जानता है कि जब तक राजकुमार कुंवर उदय सिंह जीवित है वह अपने इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता है। महाराणा सांगा के दासी पुत्र बनवीर अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए कुंवर उदय सिंह की हत्या की योजना बनाता है। तरह–तरह से षड्यंत्र करके राज्य को हासिल करना चाहता है। उसकी राह में सबसे बड़ी रुकावट पन्ना है। वह पन्ना को भी लालच देता है लेकिन पन्ना उसके झांसे में नहीं आती है। एकांकी में बनवीर का क्रूर, लालची और स्वार्थी चेहरा उभर कर सामने आता है।

चंदन– पन्ना का तेरह वर्षीय बेटा चंदन एकांकी का सहायक चरित्र है। वह राजकुमार कुंवर उदय सिंह के साथ न केवल खेलता है बल्कि उसके प्रति निष्ठा का भाव भी रखता है। जब उसे पता चलता है कि राजकुमार ने रूठकर रात का भोजन नहीं किया है, तब वह भी भोजन करने से इंकार कर देता है और अपनी माता पन्ना से कहता है कि कल सुबह वह राजकुमार के साथ ही भोजन करेगा।

बेहद कम उम्र होने के बावजूद चंदन समझदार भी है और साहसी भी। चारों तरफ सैनिकों के पहरे को वह भी संदेह भरी नजर से देखता है और अपनी माता से इस बाबत सवाल भी पूछता है। वह कहता है कि राजकुमार उदय सिंह को सोना ने ही बुरा बनना सिखा दिया है। पहले वे किसी बात का बुरा नहीं मानते थे लेकिन सोना अपना नाच दिखाकर राजकुमार को बिगाड़ रही है। चंदन अपनी मां पन्ना से कहता है कि वह सोना से कह दे कि राजकुमार को नाच न दिखाया करें। उसका मन आखेट में नहीं लगता है। चंदन आज्ञाकारी पुत्र है। वह अपनी माता की आज्ञा को हमेशा मानने के लिए तैयार रहता है। अपनी मां के प्रति आस्था का भाव रखता है। वह पन्ना से

टिप्पणी

कहता है कि बड़ा होकर वह बहुत सारी जागीरें जीतेगा और उनके लिए मंदिर बनवाकर देवी के स्थान पर उन्हें बैठाएगा।

सोना– 'दीपदान' एकांकी में सोलह वर्षीया कन्या सोना रावल सरूपसिंह की बेटी है। वह अत्यंत रूपवती है और लाजवाब तर्क करती है। राजकुमार कुंवर उदय सिंह के साथ खेलने वाली सोना नृत्य कला में माहिर है। वह राज्य में होने वाले उत्सव के अवसर में जमकर नृत्य करती है। अपने साथ–साथ राजकुमार उदय सिंह को भी खेल–कूद में लगाए रखती है।

इस एकांकी में एक प्रसंग में पन्ना के साथ तर्क करते दिखाई पड़ती है। वह जिस तरह से तर्क जाल बुनती है, उससे स्पष्ट होता है कि वह रूपवती होने के साथ–साथ समझदार भी है। लेकिन राज्य के उथल–पुथल से अनभिज्ञ है। वह बनवीर की प्रशंसक है और उसके व्यक्तित्व से प्रभावित भी है। उसे इस बात का संज्ञान नहीं है कि बनवीर कितना घातक और क्रूर प्रशासक है। वह पन्ना से कहती है कि बनवीर पर संदेह करना विद्रोह करने जैसा है। सोना के अस्थिर चित्त से पन्ना वाकिफ है इसलिए वह उससे कहती है कि "चित्तौड़ राग–रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहां आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियां नहीं।" पन्ना के इस संवाद से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सोना राज्य के इतिहास से वाकिफ नहीं है। उसे गीत–नृत्य से ज्यादा लगाव है। राज्य में आए संकट से अनजान सोना का व्यक्तित्व अल्हड़ कन्या के रूप में उभरता है।

संवाद योजना

'दीपदान' एकांकी का प्रारंभ पन्ना और उदय सिंह के संवादों से शुरू होता है। एकांकी की शुरुआत में ही चरित्रों द्वारा कहे गए संवाद प्रभावशाली और सधे हुए परिलक्षित होते हैं। पन्ना का ममत्व एकांकी के संवाद से समझा जा सकता है। वह चित्तौड़ के उत्तराधिकारी की संरक्षक है लेकिन एक मां की तरह कुंवर उदय सिंह का पालन–पोषण करती है। पन्ना के हृदय में राजकुमार के प्रति वात्सल्य का भाव भी है और दूसरी तरफ सख्ती भी है। पन्ना एक प्रसंग में राजकुमार से कहती है– "कुंवर रूठने से राजवंश नहीं चलते।" एकांकी के प्रायः संवाद इतने सधे हुए हैं कि एकांकी का उद्देश्य प्रारंभ से ही स्पष्ट हो जाता है।

एकांकी की पृष्ठभूमि मध्यकालीन है। सन् 1536 ई. में चितौड़ के राजवंश की कथा के माध्यम से एकांकीकार ने देश–प्रेम के भाव को उजागर करने का प्रयास किया है। इस कारण इसके संवाद परिस्थिति के अनुकूल रचे गए हैं। इस एकांकी में प्रेरणादायक संवादों की भरमार है। पन्ना धाय कभी राजकुमार कुंवर उदय सिंह को समझाते हुए प्रेरक वाक्य कहती है, कभी सोना को सही मार्ग पर लाने के लिए कर्तव्यपरायणता का पाठा पढ़ाती है। अपने पुत्र चंदन से वार्तालाप करते समय भावुक नहीं होती है, जबकि उसे मालूम है कि अपने ही हाथों से अपने पुत्र चंदन के प्राणों को संकट में डाल दिया है।

एकांकी में कहे गए संवाद प्रवाहपूर्ण हैं। इस कारण इसके हरेक संवाद से तारतम्यता स्थापित करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती है। पूरे एकांकी में पन्ना जहां–जहां संवाद कहती है, एक गरिमामयी प्रभाव उपस्थित हो जाता है। पन्ना के संवाद में यदि वात्सल्य का भाव है तो विद्रोह का भाव भी स्पष्ट उभरता है। एक वीरांगना के रूप में पन्ना के संवाद बेहद प्रभावशाली हैं। एक प्रसंग में वह कहती है–

"कुंवर की रक्षा! अवश्य होगी.... अवश्य होगी। अब मेवाड़ के उत्तराधिकारी का एक यही तो राजपूत रक्त है। दासी–पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।" पन्ना के समस्त संवाद देशकाल और परिस्थिति के अनुकूल है।

टिप्पणी

किसी भी एकांकी के संवादों की विशेषता उसकी संक्षिप्तता में होती है। छोटे–छोटे वाक्य प्रभावपूर्ण होते हैं। 'दीपदान' एकांकी में संवादों की योजना भी इसी के अनुरूप की गई है। एकांकी के चरित्र संक्षिप्त संवादों से प्रभावी माहौल तैयार कर देते हैं। सोना राज्य में आने वाली विपत्ति से अनभिज्ञ है। वह बनवीर के व्यक्तित्व से प्रभावित भी है। उसे लगता है कि बनवीर राज्य को अच्छे तरीके से संचालित कर रहा है। पन्ना धाय बेवजह उस पर संदेह करती है और जरूरत से अधिक सतर्क रहती है। पन्ना जब सोना से कहती है कि "बनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है सोना।" तब प्रति उत्तर में सोना कहती है– "धाय मां! पागल कौन नहीं! महाराणा विक्रमादित्य अपने सात हजारों पहलवानों के साथ पागल है। मल्ल–क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है। महाराज बनवीर, महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता से पागल है। सारा नगर आज के त्योहार में पागल है। तुम कुंवर उदय सिंह के स्नेह में पागल हो और मैं? (हंसकर) मेरी कुछ न पूछो, धाय मां, मैं तो इन सबके पागलपन में पागल हूं।"

एकांकी में इस तरह के रोचक संवादों की भी योजना की गई है जिससे श्रोता बंध जाता है। पन्ना के संवाद में संयम है तो सोना के संवाद अल्हड़ता के परिचायक। इसी तरह एकांकी में देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा की भावना में संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। पन्ना एक प्रसंग में कहती है– "मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।" एकांकी के इस तरह के संवादों से देश के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का भाव परिलक्षित होता है।

'दीपदान' के संवाद गतिशील, सार्थक और पात्रानुकूल हैं। इस एकांकी में जिस तरह से संवादों की योजना की गई है, उससे एकांकी अपने अर्थपूर्ण उद्देश्य को स्थापित करने में पूरी तरह से सफल हो जाता है।

भाषा शैली

'दीपदान' एकांकी की भाषा सहज, सरल और प्रवाहवान है। इस कारण ही इसका मंचन बेहद सफल हुआ है। इसके पात्र छोटे–छोटे अर्थपूर्ण संवाद बोलते हैं जिससे एकांकी के दर्शक बहुत आसानी से जुड़ जाते हैं। एकांकी की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है तथा राजघराने में बोली जाने वाली अभिजात्य भाषा की योजना की गई है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो इसके पात्रों की भाषा आमजन की भाषा के निकट है।

इस एकांकी में जितने पात्रों की रचना की गई है, प्रायः सभी पात्र अपने–अपने स्वभाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। पन्ना धाय की भाषा में एक विशेष प्रकार का गाम्भीर्य है। वह त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति है। उसकी भाषा में भावुकता या लिजलिजापन नहीं है। वह सधी हुई भाषा का प्रयोग करती है। पन्ना अपनी मातृभूमि के खातिर अपने बेटे का बलिदान कर देती है। वह 'दीपदान' के वास्तविक अर्थ को परिपूर्ण करती है। अपने बेटे को खोने के बाद भी पन्ना की भाषा में बेचारगी का भाव नहीं है बल्कि राज्य के उत्तराधिकारी कुंवर उदय सिंह की जान हर कीमत पर सुरक्षित रखने के लिए दृढ़संकल्प दिखाई पड़ती है। इस कारण पन्ना की भाषा में जबर्दस्त दृढ़ता का भाव परिलक्षित होता है।

एकांकी में सोना, कुंवर उदय सिंह और चंदन युवावस्था की दहलीज पर हैं। उन सभी की भाषा में सहजता और मोहकता है। सोना के तर्क से अंदाजा लगाया जा सकता है कि उसका पालन–पोषण संभ्रांत परिवार में हुआ है। उसकी भाषा में सहजता के साथ–साथ परिपक्वता भी है। वहीं राजकुमार कुंवर उदय सिंह को मालूम है कि वह आने वाले समय का राजा है, उसकी भाषा में राजकुमारों वाली गरिमा है। बनवीर की भाषा से उसके चरित्र और स्वभाव का अंदाजा हो जाता है। वह एक क्रूर राजा है। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए किसी की हत्या तक कर सकता है। बनवीर की भाषा में लिजलिजापन और कठोरता दोनों हैं।

'दीपदान' में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है, ज्यादातर शब्द तद्भव हैं। चूंकि मध्यकालीन वातावरण में पढ़े–लिखे वर्ग संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते रहे होंगे इस कारण एकांकीकार ने वातावरण के अनुकूल शब्दों का चयन किया है। तत्कालीन समाज में इस्तेमाल हो रहे मुहावरों का उपयुक्त प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस एकांकी में राज–परिवार से संबंधित पात्रों का संवाद है, इसलिए भाषिक प्रयोग चुस्त और सधा हुआ भी है।

उद्देश्य

इस एकांकी का उद्देश्य देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति और अपनी मातृभूमि के लिए जीवन के बलिदान को रेखांकित करना है। चित्तौड़ राज्य का उत्तराधिकारी है कुंवर उदय सिंह। वह अभी महज चौदह वर्ष का है, उसे राज्य की जिम्मेदारी नहीं सौंपी गई है। उसकी जगह पर राज्य का संरक्षक बनवीर है। बनवीर के मन में स्वार्थ है, वह चित्तौड़ का राजा बनने का स्वप्न देखता है। अपने स्वप्न को पूरा करने के लिए सोते वक्त विक्रमादित्य की हत्या कर देता है। ठीक उसी तरह रात के वक्त राजकुमार की हत्या करने की योजना बनाता है। दूसरी तरफ पन्ना का उत्सर्ग है। वह स्वामी भक्ति का पर्याय है। राजकुमार उदय सिंह के प्राण को सुरक्षित रखने के लिए अपने पुत्र चंदन के प्राणों की आहुति दे देती है। राज्य के उत्तराधिकारी का जीवन सुरक्षित रह सके, इसके लिए सही अर्थों में 'दीपदान' करती है। एक मां के लिए पुत्र के प्राण से अधिक कीमती राज्य की सुरक्षा और कर्तव्यनिष्ठा है। देशप्रेम और देशभक्ति की भावना को मजबूती से स्थापित करना 'दीपदान' एकांकी का मूल उद्देश्य है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. रामकुमार वर्मा को सन् 1963 में कौन–से पुरस्कार से सम्मानित किया गया?

   (क) ज्ञानपीठ पुरस्कार (ख) साहित्य अकादमी पुरस्कार

   (ग) पद्मभूषण (घ) मैगसैसे पुरस्कार

6. 'दीपदान' एकांकी का केंद्रीय पात्र निम्न से कौन–सा है?

   (क) बनवीर (ख) पन्ना

   (ग) उदय सिंह (घ) चंदन

2.5 वापसी : विष्णु प्रभाकर

टिप्पणी

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 को उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गांव मीरापुर, जिला मुजफ्फरनगर में हुआ था। इनके पिता का नाम दुर्गा प्रसाद तथा माता का नाम महादेवी था। परिवार पढ़ा–लिखा और धार्मिक विचारों का आचरण करने वाला था लेकिन घर की माली स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी। विष्णु प्रभाकर की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा मीरापुर में हुई। घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं रहने के कारण इन्हें बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ गई। इनके जीवन की शुरुआत चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी के रूप में हुई थी। नौकरी करने के साथ–साथ दोबारा अपनी विधिवत पढ़ाई शुरू कर अंग्रेजी में बी.ए. की डिग्री हासिल की। विष्णु प्रभाकर के जीवन में गांधी दर्शन का प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बने और रचनात्मक लेखन को स्वतंत्रता हासिल करने के लिए औजार के रूप में इस्तेमाल किया। आजादी से पहले वे अपने मामा के घर हिसार में रहे और सुशीला नामक कन्या से विवाह किया। आजादी के बाद दिल्ली आकर बस गए। इसी शहर में वे जीवनपर्यंत रहे। दिल्ली आकाशवाणी में बतौर नाट्य निर्देशक के रूप में कार्य किया। 11 अप्रैल, 2009 को इनकी मृत्यु दिल्ली में हुई।

साहित्यिक योगदान

हिंदी साहित्य जगत में अपनी खास पहचान रखने वाले विष्णु प्रभाकर ने कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध विधा में प्रचुर लेखन किया। शरत्चंद्र के जीवन पर आधारित जीवनी 'आवारा मसीहा' हिंदी की कालजयी कृति के रूप में शुमार है। विष्णु प्रभाकर ने पहला नाटक 'हत्या के बाद' शीर्षक से लिखा था। सन् 1931 में इनकी पहली कहानी 'हिंदी मिलाप' में 'दीवाली के दिन' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। 'ढलती रात', 'स्वप्नमयी', 'अर्द्धनारीश्वर', 'क्षमादान', 'दो मित्र', 'पाप का घड़ा' और 'होरी' शीर्षक से इनके प्रमुख उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'मेरा वतन', 'खिलौने', 'आदि और अंत' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'नव प्रभात' 'डॉक्टर', 'प्रकाश और परछाइयां', 'बारह एकांकी', 'अशोक', 'अब और नहीं' तथा 'टूटते परिवेश' शीर्षक से नाटक प्रकाशित हुए हैं। 'पंखहीन' शीर्षक से तीन खंडों में विष्णु प्रभाकर ने अपनी आत्मकथा लिखी है। साहित्यिक सेवा में अमूल्य योगदान के लिए इन्हें पद्भूषण, मूर्तिदेवी सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड से सम्मानित किया गया है।

साहित्यिक विशेषताएं

विष्णु प्रभाकर के जीवन में गांधी जी का असर गहरा था। इस वजह से उनके साहित्य में गांधीवादी दर्शन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सत्य, अहिंसा और ईमानदारी इनके रचनात्मक लेखन का प्रमुख सोपान रहे हैं। वे स्वयं को मानवतावादी मानते थे, इस कारण उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में मानवतावाद का दर्शन प्रखर रूप से उभरता है। इनकी रचनाओं में तत्कालीन जीवन की समस्याओं का चित्रण भी खूब हुआ है।

'वापसी' एकांकी की आलोचनात्मक समीक्षा

'वापसी' एकांकी की आलोचनात्मक समीक्षा एकांकीकार ने निम्न तत्वों के आधार पर की है–

टिप्पणी

कथानक

'वापसी' एकांकी भारत–पाकिस्तान के बंटवारे के बाद दोनों देश में शुरू हुए युद्ध (1965) की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह एकांकी युद्ध के दौरान एक रात की घटना पर आधारित है। पाकिस्तान की फौज ने अपने कुछ सैनिकों को रात के अंधेरे में भारत की सरजमीं पर जासूसी करने के लिए हवाई जहाज से उतारा है। पाकिस्तानी सेना में एक सैनिक असगर है जिसे बंटवारे के बाद पाकिस्तान जाना पड़ा था। उसका पूरा बचपन हिंदुस्तान के इसी सरजमीं पर व्यतीत हुआ था। इस कारण घनी अंधेरी रात में भी वह इस इलाके को पहचान लेता है।

असगर को जैसे आभास होता है कि यह वही इलाका है जिसमें मेरा बचपन व्यतीत हुआ है, वह युद्ध को भूलकर अपने बीते बचपन को याद करने लग लाता है। उसकी स्मृतियों में बचपन की तस्वीरें एक–एक कर उतरने लगती हैं। वह खेत में उगे अनाज को देखकर खुश हो जाता है। गांव की पगडंडियों को वह आज भी पहचान पा रहा है। उसे पता है कि किस तरफ फैक्टरी है और किस तरफ मस्जिद की मीनारें। असगर नई–नई बनी चौपाल को देखकर कहता है कि यह पहले नहीं थी, लगता है अभी–अभी बनी है। रहट का मीठा पानी पीकर अपने बचपन के दिनों में खो जाता है।

उसके साथी मकसूद को असगर का बदला हुआ व्यवहार अटपटा लगता है। उसे वह याद दिलाता है कि तुम जंग के लिए यहां भेजे गए हो। मकसूद को लगता है कि असगर दुश्मन के साथ मिल गया है। उसने अपने पाकिस्तान के साथ दगा किया है। मकसूद यह बात समझ नहीं पाता है कि असगर तो कसम खाकर आया था कि दुश्मन देश को तबाह और बर्बाद करेगा लेकिन यहां आकर अपना कर्तव्य भूल गया है। असगर रातभर अपनी पुरानी यादों में खोया रहता है।

इसी बीच गांव के लोगों को यह जानकारी मिलती है कि कुछ पाकिस्तानी सैनिक हमारे इलाके में छिपे हुए हैं। गांव का इंस्पेक्टर और चौधरी उन पाकिस्तानी सैनिकों की तलाश में निकलते हैं। उन्हें खोजने के उपक्रम में सारे खेतों की कटाई कर दी जाती है। फिर चौधरी का सामना असगर और उनके साथियों से होता है। असगर, चौधरी को पहचान लेता है। वह अपने बचपन के दिनों की यादें चौधरी से साझा करता है। वह बताता है कि मेरे पिता का नाम चौधरी लतीफ है और बचपन में वह उसे ताऊ कहकर पुकारता था।

चौधरी असगर को पहचान लेता है लेकिन वह बार–बार उसे न पहचानने का अभिनय करता है। यह कैसी विडंबना है कि हमारी गोद में खेल कर बड़ा हुआ यह लड़का दुश्मन देश के सैनिक तथा जासूस के रूप में सामने आ खड़ा है। अंतर्द्वंद्व से ग्रस्त चौधरी! असगर को देखकर परेशान हो उठते हैं। अंत में चौधरी की आंखों के आगे असगर का बचपन कौंधने लग जाता है। चौधरी असमंजस की स्थिति में है फिर भी असगर को देखकर भावुक हो उठा है। चौधरी सोचने लग जाता है कि असगर की 'वापसी' कैसी प्रतिकूल स्थिति में हुई है। वह उसे गले भी नहीं लगा सकता। असगर आत्मसमर्पण कर देता है।

चरित्र–चित्रण

विष्णु प्रभाकर के एकांकी 'वापसी' की मूल संवेदना अपनी मातृभूमि से गहरा लगाव तथा राष्ट्रप्रेम की भावना है। इस एकांकी की पृष्ठभूमि भारत–पाकिस्तान के बीच 1965 में हुए

युद्ध पर आधारित है। एकांकी में एक रात की कहानी है। पाकिस्तानी सेना ने अपने कुछ सैनिकों को हवाई जहाज की सहायता से कश्मीर में जासूसी करने के लिए उतार दिया है। पाकिस्तानी सैनिकों में असगर, मुनीर, मकसूद तथा बुनियाद का चित्रण है लेकिन एकांकी का मुख्य किरदार असगर है। दूसरी तरफ चौधरी का चरित्र महत्वपूर्ण है। सरदार तथा इंस्पेक्टर सहायक चरित्र हैं।

असगर– सरहद लांघकर भारतीय सेना तथा इस देश को तबाह और बर्बाद करने के उद्देश्य से पाकिस्तानी सैनिक असगर भारत की धरती में आते ही बदल जाता है। उसे याद है कि जहां पर वह खड़ा है, वहीं उसका बचपन गुजरा है। अपनी बचपन की स्मृतियों को याद करके वह भावुक हो उठता है। असगर का अंतर्द्वंद्व लगातार बढ़ता जा रहा है। उसे अपना फर्ज याद है। उसे अपने हवाई जहाजों को हिंदुस्तान की धरती पर हमला करने के लिए इशारा करना है। वह कश्मीर के गांव की तरफ आगे बढ़ता है, तब उसे याद आता है कि उसके पिता उसे कहते हैं कि वह बिल्कुल हिंदू जाट की तरह दिखाई पड़ता है। वह सोचता है हिंदू जाट और मुसलमान जाट में क्या फर्क है। जाट तो आखिर जाट होता है। इसी बीच फिर उसे याद पड़ता है कि वह आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए यहां आया है। इस जिहाद के अवसर पर दूसरी बात सोचना कुफ्र है।

असगर को युद्ध का तनाव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में वह मकसूद से हंसी मजाक भी कर लेता है। असगर को आश्चर्य होता है कि पाकिस्तान की सीमा से सटे कश्मीर के किसान को किसी बात की कोई फिक्र क्यों नहीं होती है। वह हमेशा की तरह अपने खेतों में फसल जोत–बो रहे हैं। असगर को घने अंधेरे में सब कुछ साफ–साफ दिखाई पड़ने लगता है। दरअसल, यह वही इलाका होता है जहां उसका बचपन बीता है। बंटवारे के वक्त उसे पाकिस्तान जाना पड़ता है।

असगर पाकिस्तान जाकर भी हिंदुस्तान की धरती को भूल नहीं पाया है। रह–रह कर उसे पुरानी घटनाएं याद आती हैं। दिमागी रूप से वह पकिस्तान के खिलाफ सोचना प्रारंभ कर देता है। उसे यह बात भी स्मरण होती है कि उसने कभी पाकिस्तान चाहा ही नहीं था। पकिस्तान जाने के लिए वह मजबूर था। वह बार–बार अपने कर्तव्य और निष्ठा के प्रति संकल्प लेता है, लेकिन हिंदुस्तान की धरती में वापसी कर उसका मन युद्ध में न लगकर खेत, खलिहान, खंडहर, मस्जिद की दीवारों और पगडंडियों की ओर खिंचने लगता है।

असगर एक ऐसा पाकिस्तानी सैनिक है जिसका विवेक जागृत हो चुका है। वह युद्ध के पक्ष में खड़ा नहीं रह पाता। उसे लगता है युद्ध की इच्छा आम नागरिकों को नहीं होती है। यह युद्ध सियासत वाले बेवजह नागरिकों के ऊपर थोप देते हैं। वह बेकसूर नागरिकों को मारने से इंकार कर देता है। अंततः खुद को चौधरी तथा इंस्पेक्टर के आगे समर्पण कर देता है जबकि वह जानता है कि यहां के लोग भी उस पर यकीन नहीं करेंगे। उसे तरह–तरह से तकलीफ देंगे। फिर भी वह अपने कर्तव्य और निष्ठा के विरुद्ध राष्ट्र प्रेम को महत्व देता है। असगर मानवतावाद को स्थापित करने वाला मजबूत चरित्र है।

चौधरी– 'वापसी' एकांकी में दूसरा सबसे महत्वपूर्ण चरित्र चौधरी का है। चौधरी उसी गांव का प्रमुख है जहां पर पकिस्तानी सैनिक छिपे हुए हैं। चौधरी का देशप्रेम भी अद्‌भुत

टिप्पणी

है। वह अपनी जान की बाजी लगाकर पाकिस्तानी सैनिकों को खोज निकालने के लिए स्वयं निकल पड़ता है। साथ में इंस्पेक्टर है। वह इंस्पेक्टर को गांव के भूगोल के बारे में जानकारी देता है। पाकिस्तानी सैनिकों को पकड़ने के लिए खेत में उगी फसल को वक्त से पहले ही कटवा देता है। वह आर्थिक नुकसान उठाकर देश के दुश्मनों को गिरफ्तार करवाने के लिए दृढ़संकल्प है।

इसी दौरान चौधरी का सामना पाकिस्तानी सैनिक असगर से होता है। असगर के सामने जैसे ही चौधरी आता है, वह उसे पहचान लेता है। अपने बचपन की स्मृतियों को चौधरी से साझा करता है। शुरुआत में चौधरी असगर को पहचानने से इंकार कर देता है लेकिन बाद में उसे याद हो आता है कि असगर इसी गांव का है लेकिन बंटवारे के समय उसे इस मुल्क को छोड़कर जाने पर विवश होना पड़ा था। चौधरी धर्मसंकट में पड़ जाता है कि एक दुश्मन देश के सैनिक पर कैसे भरोसा किया जाए। असगर की इस तरह से 'वापसी' होगी, इसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। चौधरी कभी सोचता है सैनिक के वेश में हमारा असगर है। हमारे गांव का लड़का है लेकिन अगले ही पल अपनी भावनाओं पर काबू पाने की कोशिश करता है। चौधरी दुश्मन देश के सैनिक पर कैसे यकीन करे, यह संशय का भाव चौधरी के चरित्र पर अंत तक हावी रहता है।

मकसूद– मकसूद पाकिस्तानी सेना का सच्चा सिपाही है। वह असगर के साथ एक उद्देश्य को लेकर सीमा के पार आया है। असगर के बदले हुए स्वभाव से वह हतप्रभ है। मकसूद बार–बार असगर के कर्तव्यों की याद दिलाता है। वह अपने देश के साथ किए गए वादे का वास्ता देता है। मकसूद के लिए यह युद्ध आजादी की लड़ाई है। वह अपने दुश्मन देश भारत को सबक सिखाना चाहता है। असगर और मकसूद की कई बार तीखी बहस भी होती है। मकसूद अपने मुल्क के प्रति वफादार है, अपनी जान की परवाह नहीं करने वाला निडर सैनिक है। मकसूद बार–बार असगर को दुश्मन देश के प्रति युद्ध लड़ने के लिए उकसाता है लेकिन अंततः असगर के साथ आत्म समर्पण करने के लिए तैयार हो जाता है।

संवाद योजना

'वापसी' एकांकी की संवाद योजना इस तरह से की गई है कि पात्रों की मनःस्थितियां उजागर हो जाती हैं। एकांकी में घटना से ज्यादा महत्वपूर्ण पात्रों के मन में चल रहे उथल–पुथल का भाव है। एकांकीकार ने असगर, चौधरी तथा मकसूद जैसे पात्रों के संवादों को इतने प्रभावशाली ढंग से बुना है कि उनके मनोविज्ञान को आसानी से समझा जा सकता है। असगर गद्दार नहीं है। वह अपने मुल्क के प्रति कुछ भी कर सकता है लेकिन उसे युद्ध करने के लिए जिस गांव में भेजा गया है, वहां पहुंचकर उसका मन बदल सा गया है। युद्ध की सार्थकता और निरर्थकता के द्वंद्व में फंस गया है। एकांकी का प्रत्येक संवादों के माध्यम से असगर के गहरे अंतर्द्वंद्व को उभारा गया है।

दूसरी तरफ चौधरी जैसे चरित्र के संवादों से उसके मन में चल रहे संशय का बोध हो जाता है। संवादों के माध्यम से मन के भीतर चल रहे उथल–पुथल को एकांकीकार ने सूक्ष्म रूप से अभिव्यक्त किया है। बाहर दो मुल्कों के बीच युद्ध चल रहा है तो मन के भीतर का युद्ध ज्यादा गहरा है। एकांकी के संवादों के माध्यम से

टिप्पणी

एकांकीकार ने स्पष्ट किया है कि चाहे परिस्थितियां जैसी भी रहे, अंततः जीत मानवीयता की होती है।

'वापसी' के संवादों की योजना इस प्रकार से की गई है कि दो बंटे हुए मुल्कों के लोगों का बंटा हुआ मन भी परिलक्षित हो जाता है। इस एकांकी के समस्त संवाद पात्रानुकूल हैं। एकांकीकार ने उपयुक्त और स्वाभाविक संवादों के माध्यम से मानवीय संबंधों को प्रभावूपर्ण तरीके से अभिव्यक्त किया है।

भाषा शैली

'वापसी' एकांकी रेडियो के लिए लिखा गया है इसलिए इसमें ध्वनि का ख्याल विशेष रूप से रखा गया है। भारत और पाकिस्तान के पात्रों का संवाद इतना जीवंत तथा वास्तविक बन पड़ा है कि एकबारगी ऐसा महसूस होता है कि दोनों देशों के पात्र अलग–अलग नहीं हैं। एकांकी की भाषा सहज और गतिमान है। बेहद सधी हुई भाषा से यह एकांकी प्राणवान हो गया है।

असगर, बुनियाद, मुनीर और मकसूद की भाषा में अरबी, फारसी का प्रभाव जरूर दिखता है लेकिन यह हिंदुस्तानी भाषा से भिन्न नहीं लगता है। असगर की भाषा अरबी–फारसी जुबान होने के बावजूद भावों की प्रखर अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ हुआ है। चौधरी की भाषा में कश्मीर बोली का प्रभाव है जो आकर्षण पैदा करने में समर्थ हैं।

'वापसी' एकांकी की भाषा सहज, संप्रेषणीय और भावपूर्ण है। एकांकी के पात्रों की भाषा में स्वाभाविकता है। अपनी भाषा के प्रयोग की वजह से इस नाटक के सभी पात्र निखर कर सामने आते हैं। असगर की भाषा में चुटीलापन है। युद्ध की भूमि में भी असगर को तनाव नहीं है। वह मकसूद से एक प्रसंग में कहता है– "तुम इतने कमसिन और खूबसूरत दिखाई देते हो कि तुमको देख लेने पर भी कोई शक नहीं कर सकता है।" ऐसी विनोदपूर्ण भाषा के कारण एकांकी का प्रभाव बढ़ जाता है।

वापसी के कई प्रसंगों में भाषा का गाम्भीर्य भी झलकता है। असगर भारत की धरती में पहुंचकर ऊहापोह की स्थिति में है। वह समझ नहीं पाता है कि अपनी मातृभूमि के प्रति कैसे कर्तव्य का निर्वाहन करे। दूसरी तरफ अपने वतन पाकिस्तान से गद्दारी भी नहीं करना चाहता है। एक प्रसंग में वह कहता है–"यह जिंदगी और मौत का सवाल है, वतन का सवाल है। मेरा प्यारा वतन, मेरा प्यारा पाकिस्तान, पाकिस्तान (क्षणिक शांति) लेकिन क्या सचमुच हमने पाकिस्तान चाहा था, क्या सचमुच! ना, ना हमने तो नहीं चाहा, इन गांवों के रहने वाले मुसलमानों ने तो कभी मुस्लिम लीग का साथ नहीं दिया।" पूरे एकांकी में पात्रानुकूल और प्रसंगानुकूल के अनुरूप भाषा का इस्तेमाल दिखाई पड़ता है।

'वापसी' एकांकी की भाषा की सबसे बड़ी खासियत है, उसकी सर्जनात्मकता और प्रभावपूर्ण संप्रेषणीयता। एकांकी की भाषा शरू से अंत तक बांधे रखने में सफल रहती है। पात्रों के संवादों में रोचकता का समावेश बेहद सफलतापूर्वक हुआ है। छोटे–छोटे सहज वाक्यों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति विशिष्ट तरीके से हुई है। 'वापसी' की भाषा शैली में जीवंतता भी है और वास्तविकता भी। एकांकी में प्रयुक्त आम फहम की भाषा का जादू अपने उत्कर्ष पर दिखाई पड़ता है।

टिप्पणी

उद्देश्य

'वापसी' एकांकी दो देशों के युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है। युद्ध की अपनी आवश्यकता हो सकती है, यह एक राजनैतिक मसला है। 'वापसी' का पहला उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है कि दो मुल्कों की सरहदें जमीन के टुकड़े को विभाजित कर सकती हैं लेकिन मनुष्यता को विभाजित नहीं कर सकती हैं।

असगर और चौधरी के माध्यम से एकांकीकार ने स्पष्ट किया है कि दो मुल्कों की दुश्मनी के बावजूद मानवता खत्म नहीं हुई है। एक तरफ असगर अपने दुश्मन मुल्क के बेकसूर आमजनों को मारने से इंकार कर देता है वहीं दूसरी ओर चौधरी दुश्मन देश के सैनिक असगर को पहचान लेता है कि यह हमारे गांव में पला–बढ़ा लतीफ का बेटा है। यही मनुष्यता की कसौटी है।

इस एकांकी का दूसरा उद्देश्य यह संदेश भी है कि भौगोलिक बंटवारे के बावजूद सांस्कृतिक बंटवारा संभव नहीं है। सरहदें भाषा, परंपरा और संबंधों को बांटने में सफल नहीं हो सकती हैं।

'वापसी' का तीसरा उद्देश्य इस तथ्य को भी स्थापित करना है कि कर्मभूमि से ज्यादा महत्व मातृभूमि का है। अपनी कर्मभूमि के प्रति निष्ठावान होना जरूरी हो सकता है लेकिन अपनी मातृभूमि के प्रति वफादार होना अनिवार्य रूप से मनुष्य का कर्तव्य है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. विष्णु प्रभाकर का प्रमुख उपन्यास कौन–सा है?

   (क) ढलती रात (ख) स्वप्नमयी

   (ग) अर्धनारीश्वर (घ) उपरोक्त सभी

8. विष्णु प्रभाकर को साहित्यिक सेवा में अमूल्य योगदान देने के लिए किस पुरस्कार से सम्मानित किया गया?

   (क) मूर्तिदेवी सम्मान (ख) पद्मभूषण

   (ग) साहित्य अकादमी पुरस्कार (घ) उपरोक्त सभी

2.6 करुणा : पं. रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म संवत् 1941 की आश्विन पूर्णिमा (4 अक्टूबर, 1884 ई) को सरयू तट पर बसे उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता चंद्रबली शुक्ल की नियुक्ति कानूनगो के पद पर थी, इस कारण उनका तबादला होता रहता था। शुक्ल जी की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा हमीरपुर में हुई। इनके पिता उर्दू–फारसी के हिमायती थे, इस कारण शुक्ल जी आठवीं तक उर्दू–फारसी पढ़े। इनकी माता का निधन बाल्यकाल में ही हो गया था और उनका बचपन पितामही के संरक्षण में बीता। चंद्रबली शुक्ल का तबादला जब मिर्जापुर में हुआ तब वे अपने बच्चों को भी साथ वहीं ले गए और शुक्ल जी का दाखिला मिर्जापुर के जुबली स्कूल में करवा दिया। शुक्ल जी की शादी बारह वर्ष की आयु में हो गई थी। उधर उनके पिता ने भी

दूसरी शादी कर ली। अपने सौतेले बच्चों से विमाता की निभ न सकी और उनसे इतनी कलह होने लगी थी कि शुक्ल जी को घर छोड़कर 'अगोना' जाना पड़ा।

जुबली स्कूल से उन्होंने मिडिल परीक्षा पास कर लंदन मिशन स्कूल में दाखिला लिया। सन् 1901 में स्कूल लीविंग परीक्षा पास की और कायस्थ पाठशाला प्रयाग में इंटर की पढ़ाई शुरू की। लेकिन घरेलू विवादों के कारण उन्होंने अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर 'आनन्द कादंबिनी' के संपादन से जुड़ गए। 1904 में लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग शिक्षक बने। सन् 1908 में 'हिंदी शब्द सागर' में सहायक संपादक के पद पर नियुक्त हुए। फिर 'नागरी प्रचारिणी सभा' के संपादक बने। सन् 1921 में उनकी नियुक्ति काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी प्राध्यापक के पद पर हुई। डॉ. श्यामसुंदर दास के अवकाश ग्रहण के बाद शुक्ल जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने। 2 फरवरी, 1941 में इनकी मृत्यु हो गई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का रचनाकार्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गंभीर समीक्षक, इतिहासकार, निबंधकार, अनुवादक और संपादक की भूमिका में ख्याति अर्जित की है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1929) इनकी प्रतिष्ठा का मूलाधार है। हिंदी साहित्य के इतिहास का वैज्ञानिक और मौलिक रूप सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल ने प्रस्तुत किया है। इनकी इतिहास संबंधी स्थापनाओं को चुनौती देने का साहस बहुत कम लोग ही कर पाए। शुक्ल जी के साहित्येतिहास दृष्टि का अनुकरण बाद के अनेक साहित्यकारों ने किया। निबंध विधा को भी आचार्य शुक्ल ने प्रौढ़ और गरिमामय बनाने में अहम योगदान दिया।

बाबू गुलाब राय ने लिखा है– "आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय–विस्तार और परिमार्जन तो पर्याप्त हुआ किंतु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी।" निःसंदेह आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी निबंध विधा को गरिमामय ऊंचाई प्रदान की थी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सैद्धांतिक, भावात्मक और समीक्षात्मक निबंध लिखे हैं। उनके भावात्मक निबंध 'भाव और मनोविकार', 'उत्साह', 'श्रद्धा–भक्ति', 'करुणा', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'घृणा', 'ईर्ष्या', 'भय' और 'क्रोध' हिंदी निबंध की अनमोल रचनाएं हैं। इन निबंधों में उन्होंने मानव मन और मानवीय व्यवहार का विश्लेषण अद्‌भुत तरीके से किया है।

मूल पाठ : 'करुणा'

जब बच्चे को सम्बन्ध ज्ञान कुछ–कुछ होने लगता है तभी दुख के उस भेद की नींव पड़ जाती है जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले यह परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना–क्रम के, स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्य–कारण–सम्बन्ध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुख के कारण या कार्य को देखकर उनके दुख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दुख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब मां झूठ–मूठ 'ऊं ऊं' करके रोने लगती हैं तब कोई–कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उनके किसी भाई या बहिन को कोई मारने उठता है तो तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

टिप्पणी

दुख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुख और आनन्द दोनों की श्रेणियों में रखी गई है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र को भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनन्द की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी–कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं को हानि पहुंच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा। लोभी महमूद ने सोमनाथ को तोड़ा; पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको खूब सम्भालकर रखा। नूरजहां के रूप के लोभी जहांगीर ने शेर अफगान को मरवा कर नूरजहां को बड़े चैन से रखा।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है, उसके सुख और दुख का बहुत–सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलम्बित हो जाता है। और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूं, नहीं। हम अज्ञात–कुल–शील मनुष्य के दुख को देखकर भी दुखी होते हैं। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बन्द नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन, कहां रहता है और कैसा है; यह और बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुंच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है हमारी दया दूर या कम हो जाए। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनन्दित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद् या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान या चरित्रवान होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इससे प्रकट है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उसमें वेग या प्रेरणा होती है। पर दूसरों के दुख से, परिज्ञान से जो दुख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

जबकि अज्ञात व्यक्ति के दुख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तब जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग होता है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित रहते हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है, उसके उतने ही दुख पर अवश्य अधिक करुणा होगी। किसी भोली–भाली सुन्दरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई–बन्धु को दुख में देख हमें अधिक व्याकुलता होगी। करुणा की

टिप्पणी

तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवन–निर्वाह की सुगमता और कार्य–विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए।

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता या दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके सम्बन्ध या संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होती है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म सज्जनता या दुर्जनता की कोटि में न आएगा। उसके सब कर्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुख की निवृत्ति और सुख प्राप्ति है। अतः सबके उद्देश्य को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख की स्थापना और दुख का निराकरण हुआ। अतः जिन कर्मों से संसार के इस अदृश्य के साधन हों वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दुख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्विक हैं तथा जिस अंतःकरण वृत्ति से इन कर्मों में प्रवृत्ति हो यह सात्विक है। कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है; पर एक तो कृपा या अनुग्रह में आत्म–भाव छिपा रहता है और उसकी प्रेरणा से पहुंचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतिकार है। दूसरी बात यह कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दुख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है।

दूसरे के उपस्थित दुख से उत्पन्न दुख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोविकारों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के सम्भाव्य दुख का ध्यान या अनुमान, जिसके द्वारा हम, ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुख पहुंचे, शील या साधारण सद्वृत्ति के अंतर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता या मुरौवत ही का भाव समझा जाता है; जैसे 'उनकी आंखों में शील नहीं है', 'शील तोड़ना अच्छा नहीं।' दूसरों का दुख दूर करना और दूसरों को सुख न पहुंचाना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है, पर दुखशीलता या दुर्भाव का नहीं। ऐसा मनुष्य झूठ बोल सकता है, पर ऐसा नहीं जिससे किसी का कोई काम बिगड़े या जी दुखे। यदि वह किसी अवसर पर बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसीलिए कि वह उसे ठीक नहीं जंचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है; इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे।

मेरे विचार में तो 'सदा सत्य बोलना', 'बड़ों का कहना मानना' ये नियम के अंतर्गत हैं, शील या सद्भाव के अंतर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े–बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाए। पर मनोरंजन, खुशामद और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत–सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी–किसी अवस्था में तो धर्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाजत तक दे दी गई है, विशेषतः जब इस नियम भंग द्वारा अंतःकरण की किसी उच्च और उदार वृत्ति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निःसहाय व्यक्ति अनुचित दंड से बच जाए तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील या सद्वृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं। मनोवेग–वर्जित सदाचार दम्भ या झूठी कवायद है। मनुष्य के अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली यही करुणा है। इसी से जैन और बौद्ध धर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है–

टिप्पणी

पर उपकार सरिस न भलाई
पर–पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी–न–किसी रूप में सात्विक शील हो जाता है। अतः करुणा और सात्विकता का सम्बन्ध इस बात से और भी सिद्ध होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनन्द आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। क्रिया में तत्पर करने वाली प्राणियों की आदि अंतःकरण–वृत्ति मन या मनोवेग हैं। अतः इन मनोवेगों में से जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्विकता का आदि संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य के आचरण के प्रवर्त्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग–अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मन के वेग या प्रवृत्ति पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य में प्रवृत्त हो। यदि विचार को देखा जाए तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अंतःकरण की सारी वृत्तियां केवल मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूंढ़ती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर भाव को और भावना को तीव्र करने वाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दुख होता है उसमें कभी–कभी दया या करुणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिवर्तित हो जाता है। अतः प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है। जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुख के परिज्ञान से होती है, वही करुणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुख असह्य होता है, पर प्रिय जनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चित बात पर सुखी या दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है, इसी से इस प्रकार के दुख या करुणा को किसी–किसी प्रान्तिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोग जनित दुख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम–जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती है–

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चले परवाई।
कौन बिरिछ तर भीजत ह्वैहैं राम लखन दोउ भाई। (गीता.)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहां सब प्रकार का सुख–वैभव था; यहां यशोदा इसी सोच में मरती रहीं कि–

प्रात समय उठ माखन रोटी को बिन मांगे दैहै?
को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छिन–छिन आगे लैहै?
और उद्धव से कहती हैं

संदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय, तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।
उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि कै न्हाते।।
तुम तो टेव जानतिहि ह्हैहौं, तऊ मोहि कहि आवै।।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै।।
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वैहैं करत संकोच।

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं कभी–कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है, जैसे एक पति वियोगिनी संदेह करती है कि–

नदी किनारे धुआं उठत है, मैं जानूं कछु होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय।।

शुद्ध वियोग का दुख केवल प्रिय के अलग हो जाने की भावना से उत्पन्न क्षोभ या विषाद है जिसमें प्रिय के दुख या कष्ट आदि की कोई भावना नहीं रहती।

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्टता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत–सा अंश उसी के सम्बन्ध द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने–सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग या व्यवहार है। अतः ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंग का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सुहृद के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय व कुव्यवहार तथा उसकी इच्छापूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं।

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है। समाज–शास्त्र के पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाज में एक–दूसरे की सहायता अपनी–अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाए तो कर्म–क्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देने वाली किसी–न–किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में एक–दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्थ परिणाम पर दृष्टि रखकर नहीं की जाती, बल्कि मन की स्वतः प्रवृत्त करने वाली प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की संभावना है, इस बात या उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक, विशेषकर सच्चे, सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विस्तृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और मुंडे–मुंडे भिन्न वस्तु के भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज–रक्षा के लिए एक–दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी, यह समाज–शास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही

टिप्पणी

जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण और यदि उसका उद्देश्य वहीं तक होता जहां तक समाज–शास्त्र के वक्ता बतलाते हैं, तो हमारी दया मोटे, मुसंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं। पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दुखी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं। इससे स्पष्ट है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनको धारण करने वाला मनुष्य का छोटा–सा अंतःकरण नहीं, विश्वात्मा है।

दूसरों के, विशेषतः अपने परिचितों के, थोड़े क्लेश या शोक या शोक पर जो वेग–रहित दुख होता है उसे सहानुभूति कहते हैं। शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा–सा हो गया है। अब प्रायः इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है। सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियां लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म–शिष्टता मनुष्य के व्यवहार–क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमशः चरती जा रही है।

करुणा अपना बीज अपने आलम्बन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करने वाले पर भी करुणा नहीं करता– जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है– बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है। बहुत–सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियां दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार कराने वाले युवकों के प्रेम में फंस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बंगला के उपन्यास–लेखक करुण और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

मनुष्य के प्रत्येक ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान या दूसरों से प्राप्त ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लांघता हुआ अपना देशकाल सम्बन्धी विस्तार बढ़ाता है। प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी–कभी आवश्यक होता है। मनोविकारों की उपयुक्तता कभी–कभी इस विस्तार से निर्भर रहती है। किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बड़े–बड़े अपराध कर चुका है, इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि भावों या मनोविकारों के केवल सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे उनके लिए विषय उपस्थित करते हैं। वे कभी तो आप से आप विषयों को मन के सामने लाते हैं, कभी किसी विषय के सामने आने पर उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्य–कारण–सम्बन्ध) रखने वाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं जो कभी तो सब के सब एक ही भाव के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भाव को तीव्र करते हैं, कभी भिन्न–भिन्न भावों के विषय होकर प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न भावों को परिवर्तित या धीमा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग या भावों को मन्द या दूर करने वाली, स्मृति, अनुमान या बुद्धि कोई दूसरी अंतःकरण–वृत्ति नहीं है, मन का दूसरा भाव या वेग ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग या प्रवृत्ति में, भावों की तत्परता में है। नीतिज्ञों और धार्मिकों के मनोविकारों को दूर करने का उपदेश घोर पाषंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर सान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हें परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थों के साथ उनके उपयुक्त सम्बन्ध निर्वाह पर जोर देते हैं। यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश हो जाता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकल जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध या घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की भी मुंह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन–निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा के कारण उसे दूसरे के दुख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य हृदय को दबाकर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है। उसकी भावुकता का नाश होता जाता है। पाषंडी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुंह बनाकर कहने लगे हैं– "करुणा छोड़ो, प्रेम छोड़ो, आनन्द छोड़ो। बस, हाथ–पैर हिलाओ काम करो।"

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात; पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो–चार बार उसे दया उत्पन्न होगी; पर जब बार–बार उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा। यहां तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी।

बहुत से ऐसे अवसर पर पड़ते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा सकता। पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिणामों का विरोध प्रायः तीन वस्तुओं से होता है– 1. आवश्यकता, 2. नियम और 3. न्याय। हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढा और कार्य करने में अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है, पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करने की कौन कहे, उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रुपया देकर लोग कोई कार्य करने पाएं तो जो व्यक्ति रुपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे दीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा, दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चंद्र ने अपने रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्‌भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो राजा हरिश्चंद्र के उस नियम–पालन का उतना महत्व न दिखाई पड़ता; करुणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती है। करुणा का विषय दूसरे का दुख है; अपना दुख नहीं।

टिप्पणी

आत्मीय जनों का दुख एक प्रकार से अपना ही दुख है। इससे राजा हरिश्चंद्र के नियम–पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करुणा से नहीं।

न्याय और करुणा का विरोध प्रायः सुनने में आता है। न्याय से ठीक प्रतिकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे 1000 रु. उधार लिया तो न्याय यह है कि वह हमें 1000 रु. लौटा दे। यदि किसी ने अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि 1000 रु. लेने के उपरान्त उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई तो न्याय मिलने के विचार का विरोध करुणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता, गिड़गिड़ाता और कान पकड़ता है तथा पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है, तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करुणा करने का सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रुपया चाहिए या जिसका अपराध किया गया है उसको है, न्यायकर्ता या तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के 1000 रु. अलग किए या अपराध द्वारा जो क्षति–ग्रस्त हुआ, विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करुणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक रूप से कर सकता है, जैसे ऊपर लिखे मामले में वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हजार–पांच सौ अपने पास दे दे या दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करुणा का द्वार खुला है।

निबंध 'करुणा' का प्रतिपाद्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध 'करुणा' मनोविकार विषयक निबंधों में उत्कृष्ट है। इस निबंध में उन्होंने 'करुणा' जैसे मनोभाव पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि करुणा की नींव उसी वक्त पड़ जाती है जब बच्चे को संबंध ज्ञान होने लगता है। बच्चा अपने अनुभवों के द्वारा और फिर 'कार्य–कारण संबंध से अभ्यरत होने पर' दूसरे के दुखों का अनुमान करता है। वह दूसरों के व्यवहार को देखकर अपना व्यवहार स्थिर करता है। जब मां झूठ–मूठ के 'ऊं ऊं' करती है तब बच्चा भी रोने लगता है। जब कोई भाई या बहन को मारने उठता है तो वह बच्चा भी चंचल हो उठता है।

आचार्य शुक्ल 'करुणा' पयार्यवाची पर विचार करते हुए लिखते हैं कि 'करुणा का उल्टा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है।' और जिसके प्रति करुणा का भाव उमड़ता है, उसके लिए भलाई करने की प्रवृत्ति सक्रिय हो उठती है। भलाई दो कारणों से कोई करता है– पहला, करुणा उत्पन्न होने के कारण और दूसरा प्रसन्न होने के कारण। इस प्रकार भलाई का भाव दुख और प्रसन्न दोनों भावों में होता है। आचार्य शुक्ल मानते हैं कि 'आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है।' आचार्य शुक्ल ने यह भी स्पष्ट किया है जिस चीज से व्यक्ति को लोभ होता है, वह उसे कभी नुकसान नहीं पहुंचाता है। इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने दो उदाहरण सामने रखे हैं। पहला उदाहरण उन्होंने महमूद का दिया है जिसने सोमनाथ मंदिर को लूटा। मंदिर से लूटे जवाहरात को महमूद ने बहुत संभाल कर रखा था और दूसरा उदाहरण जहांगीर का

देते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि– "नूरजहां के रूप में लोभी जहांगीर ने शेर अफगन को मरवाया, पर नूरजहां को बड़े चैन से रखा।" इन दो उदाहरणों से आचार्य शुक्ल ने यह बात आसानी से स्पष्ट कर दी है कि लोभ से प्राप्त की गई चीजों को कोई हानि पहुंचाने की चेष्टा नहीं करता है।

कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि 'करुणा' प्राप्त करने के लिए पात्र में दुख के अलावा किसी अन्य गुणों की दरकार नहीं है। दुखी व्यक्ति से किसी भी व्यक्ति को 'करुणा' का भाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। लेकिन जहां तक आनंद का सवाल है, अक्सर हम उसी व्यक्ति के सुख से सुखी होते हैं जिसे हम अच्छी तरह से जानते हैं अथवा उससे पूर्व परिचित हैं। अनजान व्यक्ति के सुख से किसी भी तरह का आकर्षण नहीं होता। वैसे व्यक्तियों के सुख से प्रसन्न होते हैं जिसे हम जानते हैं कि वह अत्यंत सज्जन, शीलवान और चरित्रवान है। इस तरह से शुक्ल जी निष्कर्ष निकालते हैं कि 'दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है।' यह भी माना है कि दूसरे के सुख से जो आनन्द प्राप्त होता है उसका कोई अतिरिक्त नाम नहीं है लेकिन दूसरे के दुख से जो मन दुखी होता है उसका नाम 'करुणा' है और 'दया' जैसे नामों से भी पुकारा जाता है। 'करुणा' किसी के दुख को दूर करने की प्रेरणा भी देती है। किसी अज्ञात व्यक्ति के दुख के बारे में जब हमें मालूम पड़ता है, तब हम उसके प्रति 'दया' का भाव रखते हैं, लेकिन जब हमारे परिचित अथवा जिसे हम निजी रूप से जानते हैं, उसके स्वभाव से अच्छी तरह से परिचित होते हैं, वैसी स्थिति में उस व्यक्ति में दुख के लिए करुणा का भाव अवश्य जाग्रत होता है। इस प्रसंग को अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है– "किसी भोली–भाली सुंदर रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई–बंधु को दुख में देख, हमें अधिक व्याकुलता होगी।" इसलिए वे लिखते हैं– "करुणा की तीव्रता का सापेक्ष विधान जीवन–निर्वाह की सुगमता और कार्य–विभाग की पूर्णता के उद्देश्य से समझना चाहिए।"

शुक्ल जी मानते हैं कि मनुष्य की प्रकृति में 'शील' और 'सात्विकता' का आदि संस्थापक तत्व करुणा ही रहा है। वास्तव में मनुष्य की अच्छाई या बुराई उसी समय व्यक्त होती है, जब वह दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आता है। यदि कोई मनुष्य निर्जन स्थान पर हो, जहां अन्य कोई दूसरा व्यक्ति न हो, उस स्थान पर उस व्यक्ति का कोई भी कर्म सज्जनता और दुर्जनता की श्रेणी में नहीं आ सकता है। उसके सभी कर्म निर्लिप्त होंगे। आचार्य शुक्ल स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि दुनिया में हर कर्म का उद्देश्य दुख का निवारण और सुख की प्राप्ति करना है। और जिन कर्मों से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाए, वह कर्म निश्चित रूप से उत्तम माना जाएगा। मनुष्य अपने जिस अंतःकरण वृत्ति के कारण अच्छे कर्मों की तरफ मुड़ता है वही सात्विक भाव कहलाता है। वे मानते हैं कि कभी–कभी 'कृपा या अनुग्रह से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है।' किंतु इसमें सुख पहुंचाने के बजाय दुख खत्म करने का भाव ज्यादा छिपा रहता है।

अक्सर हम उन चीजों से बचते हैं जिससे किसी को अकारण दुख पहुंचे। ऐसे आचरण को शुक्ल जी 'शील' श्रेणी के अंतर्गत रखते हैं। सामान्यतः 'शील' को चित्त की कोमलता या मुरौवत के भाव में ग्रहण किया जाता है। इसी तरह 'सत्य बोलना' और 'बड़ों का कहना मानना' नियम के अंतर्गत आता है शील के अंतर्गत नहीं। आचार्य

टिप्पणी

शुक्ल इस नियम का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं– "झूठ बोलने से बहुधा बड़े–बड़े अनर्थ हो जाते हैं, इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाये।" लेकिन इस नियम के बावजूद कई कारणों से झूठ बोलते देखा जाता रहा है परंतु उस तरह के झूठ से किसी का नुकसान नहीं होता है। कई धर्मग्रंथों में विशेष परिस्थितियों में झूठ बोलने की इजाजत दे दी गई है। शुक्ल जी लिखते हैं कि यदि झूठ बोलने से कोई निरपराध व्यक्ति अनुचित दंड का भागी बनने से बच जाये तो वैसे झूठ को बुरा नहीं समझा जाता है। इस कारण ही 'नियम' शील का साधक बनता है लेकिन उसके समकक्ष नहीं आता है।

आचार्य शुक्ल ने माना है कि 'अंतःकरण में सात्विकता की ज्योति जलाने वाली यही करुणा है।' इस करुणा के भाव को बौद्ध और जैन धर्म में बहुत प्रधानता मिली है। 'करुणा' के भाव का विश्लेषण करते हुए वे 'श्रद्धा' तक पहुंचते हैं और मानते हैं कि 'किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है।' किसी भी व्यक्ति के मन में किसी के क्रोध, भय, ईर्ष्या, घृणा, आनन्द के कारण श्रद्धा का भाव उत्पन्न नहीं होता है। शुक्ल जी ने स्पष्ट किया है कि 'मनुष्य के आचरण के प्रवर्त्तक भाव या मनोविकार ही होते हैं, बुद्धि नहीं।'

करुणा का अंश उस परिस्थिति में उत्पन्न होता है जब कोई प्रिय के वियोग से दुखी होता है। जब राम वन प्रस्थान करते हैं तब कौशल्या के दुख में करुणा का भाव उमड़ता है। श्रीकृष्ण के गोकुल चले जाने के बाद यशोदा के मन में भी करुणा का भाव उत्पन्न होता है। वह कृष्ण को याद करते हुए सोचती है, "प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै? को मेरे बालक कुंवर कान्ह को छिन–छिन आगे लैहैं?" इसी तरह कृष्ण के वियोग में गोपियों के मन में करुणा का भाव जाग्रत होता है। यानी जिस व्यक्ति से घनिष्ठता होती है उसके बिछड़ने पर यह भाव स्वाभाविक रूप से जन्म लेता है। कभी–कभी जब किसी प्रिय की मृत्यु हो जाती है, तब उसके साथ किए गए व्यवहार के कारण या उसकी इच्छापूर्ति के कारण 'करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है।'

आचार्य शुक्ल यह मानते हैं कि 'सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है।' शुक्ल जी करुणा के भाव का विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि समाज में परस्पर सहायता के भाव में कहीं न कहीं करुणा का भाव छिपा होता है लेकिन परस्पर सहायता का परिणाम कल्याण ही नहीं है। यदि ऐसा होता तो "हमारी दया मोटे, मुसंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहिज लोगों पर नहीं, जिनसे समाज को उतना लाभ नहीं। पर इसका बिल्कुल उल्टा देखने में आता है। दुखी व्यक्ति जितना ही असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं।'

शुक्ल जी 'सहानुभूति' पर भी विचार करते हैं। वे बताते हैं कि किसी के दुख और क्लेश को देखकर जो वेग रहित दुख होता है उसे 'सहानुभूति' कहते हैं। लेकिन वे यह भी बताने से नहीं चूकते कि यह शब्द भाव रहित होने के कारण 'निकम्मा' हो चुका है। इस शब्द का सही भाव समझा नहीं जा सकता है। सहानुभूति छद्म शिष्टता के कारण भी ज्ञापित करते हैं। इस कारण ही यह छद्म शिष्टता 'मनुष्य के व्यवहार–क्षेत्र से सच्चाई के अंश को क्रमशः चीरती जा रही है।'

करुणा का बीज उस व्यक्ति में उत्पन्न नहीं होता है, जिस पर करुणा की जाती है। करुणा प्राप्त करने वाला व्यक्ति बदले में करुणा का भाव ज्ञापित नहीं कर सकता, जिस तरह से 'क्रोध' अथवा 'प्रेम' में होता है। 'क्रोध' करने वाला व्यक्ति 'क्रोध' का शिकार होता है और 'प्रेमी' को बदले में प्रेम ही मिलता है। लेकिन 'करुणा' का मामला बिल्कुल अलग है। जिस आदमी पर करुणा की जाती है, बदले में वह कृतज्ञता, प्रीति या श्रद्धा का भाव व्यक्त करता है। बहुत सारी औपन्यासिक कथाओं में यह दिखाया गया है कि जब युवतियां दुष्टों के हाथों अपना उद्धार करवाती हैं, तब वह उनके प्रेम के जाल में फंस जाती हैं। शुक्ल जी इन कोमल भावों की योजना स्पष्ट करने के लिए बंगला उपन्यासकारों के करुणा और प्रीति के मेल का प्रभावोत्पादक दृश्य का उल्लेख करते हैं।

वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि जिस तरह व्यक्ति के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति संकुचित होती है, वह जिस चीज को जिस समय और स्थान पर देखता है, उसे उसकी उसी अवस्था का अनुभव भी होता है लेकिन दूसरों से प्राप्त ज्ञान, अनुमान या अपनी स्मृति के सहारे वह अपने ज्ञान की उस परिमिति को लांघता है और विस्तार करता है, वैसे ही मनोविकारों की उपयुक्तता भी इसी तरह के विस्तार पर निर्भर रहती है। इसे स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है– "किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है, पर जब हम सुनते हैं कि कई बार वह बड़े–बड़े अपराध कर चुका है, इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा, तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है।" इस तरह के अनुमान से मन के भाव तीव्र या मंद होते रहते हैं।

आचार्य शुक्ल मानते हैं कि मनुष्य की सजीवता भावों की तत्परता में है। मनोविकार को दूर करने के उपदेश पाखण्डपूर्ण हैं। मनुष्य के पास बुद्धि, स्मृति और अनुमान हो और मनोवेग न हो तो वह मनुष्य जड़ की तरह है। कई बार मनुष्य को परिस्थितिवश अपने मनोवेग को मारना पड़ता है, ऐसी स्थिति में उसके मन में किसी खूबसूरत स्थान को देखकर भी आनन्द का भाव नहीं उमड़ता है। कई बार दुराचारी के कर्म पर घृणा का भाव उत्पन्न होता है किंतु शिष्टाचारवश उसकी मुंह पर प्रशंसा करनी पड़ जाती है। इस प्रकार हृदय के भावों को दबाने और आवश्यकतानुसार अपने भावों को व्यक्त करने वाला व्यक्ति कठपुतली सा जड़ के समान हो जाता है। इसलिए आचार्य शुक्ल का मानना है कि मनोवेग के अनुसार व्यवहार करने से मनोवेग का अभ्यास घटता चला जाता है। इस संदर्भ में उन्होंने एक उदाहरण देकर अपनी बातों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है–"यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो–चार बार उसे दया उत्पन्न होगी, पर जब बार–बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे–धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा, यहां तक कि उसकी दया की वृत्ति मारी जाएगी।"

आचार्य शुक्ल मानते हैं कि कई बार करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम करना कठिन होता है लेकिन इस तरह की परिस्थिति बार–बार उत्पन्न नहीं होनी चाहिए, ऐसा होना ठीक नहीं है। उनका मानना है कि जीवन में मनोवेगों के अनुसार परिमाणों का विरोध मुख्य रूप से तीन वस्तुओं से प्रभावित होता है। पहली– 'आवश्यकता', इसके लिए शुक्ल जी एक बुजुर्ग नौकर का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वह बुजुर्ग नौकर में काम करने की शक्ति नहीं है, उस पर दया का भाव आता है फिर

टिप्पणी

भी उस काम को करना जरूरी है और हमें अपने मनोवेग पर नियंत्रण करना पड़ता है। इसी संदर्भ में शुक्ल जी एक दुष्ट अफसर का भी उदाहरण देते हैं– "किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करने की कौन कहे, उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते।" इसी तरह दूसरी वस्तु है 'नियम'। कई बार 'नियम' के वशीभूत होकर भी अपने मनोभाव को दबाना पड़ता है। इसके लिए भी आचार्य शुक्ल एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण सामने रखते हैं जिसके पास वह काम करने के लिए पैसा नहीं है लेकिन नियमानुसार जो व्यक्ति रुपया वसूल करने के लिए नियुक्त किया गया है, वह दया का भाव रखते हुए भी अपने मनोभाव को दबा लेता है। इसी संदर्भ में राजा हरिश्चंद्र का भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

करुणा या मनोवेगों के परिणाम के विरोध में तीसरी वस्तु है 'न्याय'। न्याय और करुणा का विरोध कई बार सुनने में आता है। आचार्य शुक्ल ने यहां भी अपनी इस बात को उदाहरण की सहायता से अभिव्यक्त किया है। वे मानते हैं कि 'करुणा संत का सौदा नहीं है' न्याय करने वाले के लिए करुणा का द्वार सदा खुला रहता है। और सबसे बड़ी बात यह कि 'विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा जैसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है।'

निबंध : 'करुणा' का समीक्षात्मक अध्ययन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के चिन्तामणि, भाग–1 में मनोविकार संबंधी दस निबंध हैं। उन्होंने 'भाव या मनोविकार', 'उत्साह', 'श्रद्धा भक्ति', 'करुणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि' आदि विषयक मनोभावों का विश्लेषण विवेचन जितनी गंभीरता से किया है, वह दुर्लभ है। किस तरह मनुष्य की भावना नियंत्रित होती है, कैसे मनोभावों का संचालन होता है, व्यक्ति के मनोभावों का प्रभाव किस हद तक उसके कार्य–व्यापारों और व्यवहारों पर पड़ता है, इसकी विशद व्याख्या उनके निबंधों में दिखाई पड़ती है। ऐसा माना जाता है कि आचार्य शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंध मनोवैज्ञानिक हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि इन निबंधों में मनोविज्ञान के सिद्धांतों का निरूपण किसी रूप में नहीं किया गया है। आचार्य शुक्ल ने मनोभावों की गतिशीलता और मंद होने के पीछे व्यावहारिक पक्षों के उद्घाटन में बल दिया है। उन्होंने इन विकारों के जटिल रूपों की व्याख्या के लिए मनुष्य के व्यवहारों को आधार बनाया है। आचार्य शुक्ल का चिंतन मौलिक है।

'करुणा' शीर्षक निबंध में उन्होंने करुणा के विविध रूपों के दर्शन ही नहीं कराए हैं बल्कि कई उदाहरण देकर अपनी बातों को स्पष्ट किया है। यह सच है कि शुक्ल जी अपने निबंधों में गंभीर विचारों और भावों का समावेश किया है फिर भी उनके विचारों की अभिव्यक्ति इतनी सरलता के साथ हुई जिसे आसानी से समझा जा सकता है। इस सरलता के पीछे मुख्य कारण यह भी है कि विशुद्ध सिद्धांत निरूपण करना उनका उद्देश्य नहीं था। लोकवादी दृष्टि के आधार पर उन्होंने मनोवृत्तियों का विवेचन किया है। शुक्ल जी ने एक जगह लिखा है, "रस के पक्षधर होने के कारण, उनकी लोकवादी दृष्टि लोक मंगलवादी दृष्टि है और इसलिए वह कोरी बौद्धिक न होकर भावात्मक अधिक है।"

आचार्य शुक्ल ने इस निबंध में बताया है कि करुणा का भाव दूसरे पर निर्भर करता है। अपने दुख से यह भाव नहीं पनपता बल्कि दूसरों के दुखों से यह भाव उत्तेजना पैदा करता है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है– "संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुख

की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अतः सबके उद्देश्य को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दुख का निराकरण हुआ।" आचार्य शुक्ल का मानना है कि 'स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अंतःकरण की सारी वृत्तियां केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे भावों या मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूंढती हैं।" इस तरह उन्होंने कई उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं, जहां करुणा का संचार होता है। किस स्थिति में मनुष्य का मनोवेग नियंत्रित होता रहा है। वे 'करुणा' जैसी मनोवेग की सार्थकता पर भी विचार करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि "इस भाव को धारण करने वाला मनुष्य का छोटा–सा अंतःकरण नहीं, विश्वात्मा है।" आचार्य शुक्ल ने 'करुणा' संबंधी मनोवेग के विवेचन में रोजमर्रा के जीवन से अनेक रोचक प्रसंग उठाए हैं। जैसे– "एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही या पहलवान को पिटते देख नहीं।" इसी तरह एक जगह वे लिखते हैं– "किसी दुष्ट अफसर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य करने को कौन कहे, उसका चिह्न तक नहीं प्रकट नहीं होने देते।" इस तरह के प्रसंगों के माध्यम से आचार्य शुक्ल ने 'करुणा' मनोभाव का विश्लेषण किया है। कभी–कभी वे अपनी समृद्ध परंपरा से भी कई उद्धरण जुटाते हैं। रामचरित मानस, सूरदास के पद, राजा हरिश्चंद्र की घटना के माध्यम से वे बतलाते हैं कि करुणा रस का संचार किन परिस्थितियों में होने लगता है। वास्तव में ये प्रसंग इतने रोचक और प्रभावशाली होते हैं कि इसे समझने के लिए कुछ विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है। जटिल से जटिल विचार भी सहज ढंग से अभिव्यक्त करने में आचार्य शुक्ल को महारथ हासिल है।

इस तरह से आचार्य शुक्ल 'करुणा' के विविध रूपों का विश्लेषण करते हैं। वे कई जगहों पर जटिल मुद्दों पर इतने प्रभावशाली सूत्र वाक्यों के जरिये अपनी बात कहते हैं कि वे सूत्र–वाक्य अपने आप में सिद्धांत का रूप ले लेते हैं। व्यवहार और सिद्धांत का अद्‌भुत सम्मिश्रण इनके निबंधों में हुआ है। इस कारण भी इनके निबंध उच्च कोटि के माने गए हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के निबंधों की प्रशंसा करते हुए लिखा है– "इसी काल में पंडित रामचंद्र शुक्ल की प्रतिभा का अंकुर दिखाई दिया। आगे चलकर उनके गंभीर चिंतन प्रधान निबंधों ने साहित्य को बहुमूल्य निधि दी।" वास्तव में शुक्ल जी का यह निबंध 'गद्य की कसौटी' पर खरा उतरता है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किस प्रकार के निबंध लिखे?
   (क) सैद्धांतिक (ख) भावात्मक
   (ग) समीक्षात्मक (घ) उपरोक्त सभी
10. सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए किस का प्रसार आवश्यक है?
   (क) घृणा (ख) करुणा
   (ग) प्रेम (घ) ईर्ष्या

2.7 नाखून क्यों बढ़ते हैं : हजारी प्रसाद द्विवेदी

हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म श्रावण शुक्ल एकादशी को सन् 1907 में 'आरत दूबे का छपरा' (बलिया) नामक गांव में हुआ था। इनका बचपन का नाम वैद्यनाथ द्विवेदी था। इनके पिता का नाम अनमोल द्विवेदी और माता का नाम ज्योतिष्मती था। इन्होंने

टिप्पणी

बसरियापुर के मिडिल स्कूल से पढ़ाई करने के बाद पराशर ब्रह्मचर्य आश्रम में संस्कृत का अध्ययन किया। सन् 1923 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण की और संस्कृत साहित्य से 'शास्त्री' और 'शास्त्राचार्य' की उपाधि प्राप्त करने के बाद सन् 1930 में शांति निकेतन में अध्ययन किया। शांति निकेतन में आप रवींद्रनाथ टैगोर के करीब आए और उनके जीवन से प्रभावित हुए। यहीं लगभग 20 वर्षों तक नौकरी की। 1950 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। फिर कुछ वर्षों तक पंजाब विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने। सन् 1967 में पुनः काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 'रेक्टर' के पद पर नियुक्त हुए। द्विवेदी जी ने अपने पूरे जीवन आर्थिक संघर्ष झेला और विरोधों का सामना किया। अपने विरोधियों के कारण उन्हें कई बार अपमानित भी होना पड़ा लेकिन उन्होंने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी और आजीवन साहित्य साधना में लीन रहे। उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण और साहित्य अकादमी पुरस्कार के अतिरिक्त अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। 18 मई, 1979 को अस्वस्थता की वजह से दिल्ली में उनकी मृत्यु हो गई।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का रचनाकार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विपुल साहित्य की रचना की है। इनकी पहली पुस्तक 'सूर साहित्य' सन् 1930 में प्रकाशित हुई थी। 'कबीर', 'साहित्य का मर्म', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। इन्होंने चार उपन्यास भी लिखे– 'बाणभट्‌ट की आत्मकथा', 'पुनर्नवा', 'चारूचंद्रलेख' और 'अनामदास का पोथा'। औपन्यासिक कृतियों ने इन्हें खूब प्रसिद्धि दिलाई। इनके चारों उपन्यास ऐतिहासिक हैं और इन उपन्यासों में भारतीय संस्कृति का वैभव मूर्त रूप से अभिव्यक्त हुआ है। इनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा के संदर्भ में त्रिभुवन सिंह ने लिखा है– "हिंदी साहित्य के युग–पुरुष आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का महिमा मंडित व्यक्तित्व उनकी विद्वत्ता में 'चार चांद' था। इसी मोहक व्यक्तित्व के कारण जीवन काल में ही जितनी सामाजिक प्रतिष्ठा, लोकप्रियता एवं राष्ट्रीय स्तर की ख्याति द्विवेदी जी को मिली किंचित ही हिंदी साहित्य के इतिहास में किसी साहित्यकार को मिली होगी।"

द्विवेदी के आठ निबंध संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। 'साहित्य सहचर', 'कुंटज', 'विचार–प्रवाह', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'आलोक पर्व' और 'अशोक के फूल' उल्लेखनीय निबंध संग्रह हैं।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी की 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद', 'सहज साधना' और 'मध्यकालीन धर्म साधना' आदि पुस्तकें भी महत्वपूर्ण हैं। इन पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने भारतीय धर्म–कला और संस्कृति के अनमोल पक्षों और रूपों को अभिव्यक्त किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में हजारी प्रसाद द्विवेदी का योगदान अमूल्य है।

मूल पाठ : 'नाखून क्यों बढ़ते हैं'

बच्चे कभी–कभी चक्कर में डाल देनेवाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ

दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ–बाप अक्सर उन्हें डांटा करते है। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे–धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्रजी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाए। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीजें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते–वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़–भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख–धर मनुष्य अब एटम–बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदंतावलंबी जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरनेवाले और चरनेवाले।

ततः किम्। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन – कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व – वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कमबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि–कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर–युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह कैसे कहूँ। नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार–बार थोड़े ही हुआ है? यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी–कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवन प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जमके सँवारता था। उनके काटने की कला

टिप्पणी

काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े–बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी–अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों की ओर नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव–शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणि–विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव–चित्त की भाँति मानव–शरीर में भी बहुत–सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने–आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटनेवाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है – किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ – जानते हो, ये अस्त्र–शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंग्रेजी के 'इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेजी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी–कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि–विज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाए। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई

नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों–रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परंपरा महिमामयी उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई हैं। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने आप पर अपने–आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाए रहनेवाली 'बँदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें, परीक्षा करके हिकर बात सोच–लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती–झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना और मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है। आहार–निद्रा आदि पशु सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही है, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख–दुख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्‌भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े–टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़नेवाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है–

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।

निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।।

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन प., 120. 10)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

टिप्पणी

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े–बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा कहता था – बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा – प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ – बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास – बिना सिखाए – आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व–निर्धारित, आत्म–बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

निबंध : 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' का समीक्षात्मक अध्ययन

ललित निबंधकार, सांस्कृतिक चेतना के समर्थक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में बाल जिज्ञासा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय की मांग, मानव व पशु में भिन्नता, वर्तमान युग में मनुष्य की छटपटाहट, सफलता व चरित्र में अंतर स्पष्ट किया है। निबंध की विशेषताएं निम्नवत् हैं–

(क) बाल मनोविज्ञान– बच्चे स्वभाव से जितने नटखट होते हैं उतने ही जिज्ञासु भी होते हैं। तथ्य की तह में जाकर प्रश्नों का हल खोजना बालमनोविज्ञान की विशेषता है। इस निबंध में नाखून क्यों बढ़ते हैं? साधारण प्रश्न को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। नाखूनों का बढ़ना जिज्ञासा का द्योतक है।

(ख) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– मनुष्य का इतिहास उसका लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। नाखून क्यों बढ़ते हैं। प्रश्न की भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। आदि मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, खान–पान, शत्रुओं से रक्षा व प्रतिकार के लिए नाखूनों को बढ़ाता था। यही दांत थे यही शस्त्र भी। पत्थर, हड्डी एवं दांतों से भी शस्त्रों का निर्माण कर जीवन को सुखी बनाने का यत्न किया गया। देवता और असुरों के मध्य युद्ध इसके प्रमाण हैं।

(ग) विकास– मानव विकास के साथ उसकी बुद्धि भी बदलती चली गई। भविष्य के प्रति दृष्टिकोण भी बदल गया। नाखूनधारी मानव ने एटम बमों का विकास कर लिया। लेकिन नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। नाखून रखने पर दंडित किया जाने लगा। उनको काटना सभ्य माना गया। लेकिन मनुष्य की बर्बरता कम नहीं हुई।

(घ) सौंदर्य का साधन– एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का अंग था। कामसूत्र इसका प्रमाण है। नाखूनों को विभिन्न आकारों त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुलाकार में काटना कला माना जाता था। गौण देश बड़े–बड़े नाखून पसंद करते थे जबकि दक्षिण के लोग छोटे नाखून रखते थे। मनुष्य की स्वाभाविक व जन्मजात प्रवृत्तियां खत्म नहीं हुई।

(ङ) विवेक की आवश्यकता– द्विवेदी जी का मानना है कि विवेक मनुष्य को वास्तविकता का बोध कराता है। प्राचीन को त्याज्य समझकर झुठलाया नहीं जा सकता और न भविष्य को मुख्य मानकर ग्रहण किया जा सकता है। विवेक द्वारा निर्णय ग्रहणीय होता है। मूढ़ व्यक्ति पथ से विचलित होते हैं। हम परीक्षा द्वारा योग्य स्वीकार करें और अयोग्य का त्याग करें।

(च) मानव और पशु में अंतर– विभिन्न संस्कृतियों के समागम से समाज में विषमता पनपने लगी थी। समय–समय पर महान आत्माओं, ऋषियों ने मध्य वर्ग को खोज निकाला। सभी वर्णों व जातियों में समान आदर्श स्थापित किए। विवेक ही वह माध्यम है जिससे मनुष्य पशु से भिन्न है। उसमें संयम है। श्रद्धा, तप, त्याग जैसे गुणों का भंडार सुरक्षित है। मानवता प्रमुख धर्म बन गया। अहिंसा, सत्य, धर्म का पालन आवश्यक माना गया।

(छ) सुख की खोज– मनुष्य ने सुख के लिए अनेक मशीनों का आविष्कार किया, उत्पादन क्षमता विकसित की। उपकरणों को बनाया। लेकिन वृद्ध द्वारा बताए गए रास्ते में सुख के लक्षण दिखाई दिए। हिंसा, मिथ्या, क्रोध, लोक महत्ता, प्रेम की अनिवार्यता से मानवता की भावना बलवती होने लगी। वह पुनः आत्म मंथन को विवश हुआ। यंत्रीकरण की विभीषिका से दो चार हुआ। अपनी गलती स्वीकार की। घृणा को पशुता माना गया। भावनाओं की कद्र करना मानव धर्म माना गया।

(ज) सफलता व चरित्र में अंतर– दोनों ही शब्द एक दूसरे के विरोधी हैं। मनुष्य बाह्य उपकरणों से सफलता तो प्राप्त कर सकता है लेकिन चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता। चरित्रंकन में प्रेम का गुण अनिवार्य है। त्याग की भावना का होना आवश्यक है। अर्पण की भावना का होना आवश्यक है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की सहज अंधता का सूचक है उनको काट देना, आत्मबंधन का पफल है जिससे चरित्र का बोध होता है।

टिप्पणी

भाषा शैली

द्विवेदी जी की भाषा में संस्कृत शब्दावली का वर्णन, उर्दू शब्दों की छटा, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, तत्सम शब्दावली की प्रधानता देखने को मिलती है द्विवेदी जी का भाषागत सौंदर्य निम्नवत् है–

(क) संस्कृत/तत्सम शब्दावली–निःशेष, प्रवृत्ति, अस्त्र, वाक् निर्बोध, निर्लज्ज

(ख) अंग्रेजी शब्दावली–एटम बम, इंडिपेंडेक्स

(ग) उर्दू/फारसी शब्दों का प्रयोग–मजबूत, कमबख्त, अनजान, निशानी, गलत शायद, जरूरत, बेहया, हाजिर

द्विवेदी जी ने निबंध लेखन में वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, काव्यात्मक, तुलनात्मक शैलियों का प्रयोग किया है। नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में वर्णित शैलियां उदाहरण सहित निम्नवत् हैं–

(क) तुलनात्मक शैली–सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है। मनुष्य की सहज प्रवृत्ति का परिणाम नाखून का बढ़ना है उनको काट–छांट देना चरितार्थता का द्योतक है।

(ख) चिंतन का पक्ष जहां वर्णित हो, विवेकसम्मत निर्णय निकल आए तो विश्लेषण शैली की झांकी दर्शनार्थ है।

(ग) सूचना प्रधान वृत्तांतात्मक शैली–बाहर नहीं भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्मतुष्टि की बात सोचो, काम करने की बात सोचो।

(घ) वर्णनात्मक शैली–मनुष्य में कुछ जन्मजात स्वाभाविक वृत्तियां होती हैं जो अनायास अपना काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उनमें से एक है, केश बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है।

उद्देश्य

ललित निबंधकारों की परम्परा को विकसित करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित नाखून क्यों बढ़ते हैं? निबंध में साधारण जिज्ञासा को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत कर मौलिकता का परिचय दिया गया है। निबंध का उद्देश्य निम्नवत है–

जिज्ञासा वह जन्मजात प्रवृत्ति है जो मनुष्य की चेतना को व्यक्त करती है। कभी–कभी साधारण सा प्रश्न मनुष्य को व्यथित कर देता है। उन्हीं में से जिज्ञासा बनी कि मनुष्य के नाखून क्यों बढ़ते हैं? एक इनको काट देने पर भी इनका पुनः उग आना कौतूहल का विषय है। बच्चों की जिज्ञासा को शान्त करना मां–बाप का कर्तव्य हो जाता है।

संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है। ठीक इसी प्रकार मानव का भी अतीत, इतिहास की दास्तां बयान करता है। जब मनुष्य असभ्य बनमानुष समान था उसे

नाखूनों की आवश्यकता होती थी वे उसकी जीवन रक्षा का कार्य करते थे। उसके शत्रु को पछाड़ने में नाखूनों की आवश्यकता होती थी। धीरे–धीरे मनुष्य पत्थरों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगा। तत्पश्चात हड्डियों से अस्त्रों का निर्माण किया। देवता, असुर युद्ध में भी इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। तत्पश्चात नाखून युक्त मनुष्य एटमबमों का भी आविष्कार करने लगा लेकिन नाखूनों का बढ़ना इतिहास को व्यंजित कर रहा है।

एक समय नाखून रखना आवश्यकता था किंतु कालांतर में नाखून रखना सभ्य नहीं माना जा रहा है। मां–बाप बच्चों को इन्हें काटने की सलाह देते हैं क्योंकि उनकी जगह अब अस्त्रों ने ले ली है। मनुष्य की बर्बरता बढ़ती जा रही है। अर्थात मनुष्य की पशुता खत्म होने का नाम नहीं ले रही।

एक समय नाखून बढ़ाना सौंदर्य का प्रतीक बन गया था। वात्स्यायन के कामसूत्र में नाखून बढ़ाने की प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है। उनके काटने के अनेक प्रकार थे। कभी चौकोर काटे जाते थे, कभी वर्तुलाकार तो कभी चंद्राकार भी काटे जाते थे। मोम आदि द्वारा उन्हें रगड़कर सुंदर बनाया जाता था। गौण देश के मनुष्य बड़े–बड़े तथा दक्षिण के लोग छोटे नाखून पसंद करते थे।

नाखून का बढ़ना जन्मजात प्रवृत्ति है। आवश्यक न होते हुऐ भी वह अनायास बढ़ रहे हैं। शरीर में यह नाखूनों का बढ़ना जन्मजात व काटना मानव प्रवृत्ति का द्योतक है। हम किस ओर जा रहे हैं? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर।

सामंजस्य स्थापित करना युग की मांग है। पुरातन से चिपके रहना हमें परंपरावादी कहलाने को विवश करता है। ठीक उसी प्रकार आधुनिकता को जीवन में रखना नयापन का बोध कराता है। इस संबंध में कालिदास के कथन को स्वीकार करना चाहिए। सभी अतीत त्याज्य नहीं है और सभी नवीन ग्रहण योग्य नहीं है। विवेकयुक्त होकर आचरण करना ही श्रेष्ठ है। विवेक ही वह माध्यम है जिसके आधार पर मनुष्य और पशु में अंतर किया जा सकता है। श्रद्धा, तप, संयम त्याग, मानवीय गुण हैं। जाति समुदाय मनुष्य को विवाद में फंसाते हैं। गौतम का भी मानना था कि सुख–दुख में समभाव रखना ही मनुष्यता कहलाती है। अंहिसा, सत्य ही जीवन के अस्त्र हैं।

मनुष्य सुखी कैसे रहे? इसलिए मशीनों की खोज की, वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया। धन को एकत्र करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी लेकिन फिर भी मनुष्य को सुख नहीं मिला। मनुष्य को सुख भीतरी ओर देखने पर मिलेगा, हिंसा से दूर रहने को कहा गया, झूठ को त्याज्य बताया। क्रोध, द्वेष से बचना बताया। प्रेमपूर्वक व्यवहार पर बल दिया गया। आत्मसंतोष को महत्व प्रदान किया गया। कर्म को महत्व प्रदान किया गया। प्रेम को सर्वोपरि माना गया।

मानव जीवन को खुशहाल बनाने के लिए अनेक आदर्शों की स्थापना की गई। नाखून बढ़ाना पशुता माना गया तथा काटना मनुष्यता का सूचक बन गया। वर्तमान युग में अस्त्र–शस्त्रों की भूख पशुता को दर्शाती है तथा इनकी प्रवृत्ति को रोकना मनुष्यता का प्रतीक है। घृणा पशुता कहलाई तथा संयम रखना, आदर करना धर्म कहलाया। अभ्यास और तप से मानवता को गौरवान्वित किया गया।

टिप्पणी

सफलता और चरित्र दोनों शब्द एक दूसरे के विपरीत हैं। मनुष्य अपने प्रयत्न से उपयोगी वस्तु को पा सकता है किंतु चारित्रिक गुणों में प्रेम, मित्रता, त्याग को शामिल किया जाता है। नाखून का स्वतः बढ़ना उस वृत्ति का परिणाम है जिससे सफलता प्राप्त की जा सकती है। उसको काट देने, निर्धारण करने में आत्मबंधन का फल है जिससे चरित्र का निर्माण होता है। नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें लेकिन पाशविक प्रवृत्ति नहीं बढ़ने दी जाए।

अपनी प्रगति जांचिए

11. हजारी प्रसाद द्विवेदी की पहली पुस्तक 'सूर साहित्य' किस सन् में प्रकाशित हुई?

    (क) सन् 1920 (ख) सन् 1925

    (ग) सन् 1930 (घ) सन् 1935

12. मनुष्य की सहज अंधता का सूचक क्या है?

    (क) नाखूनों का बढ़ना (ख) केश का बढ़ना

    (ग) पलकों का गिरना (घ) शरीर का बढ़ना

2.8 उत्तिष्ठ भारत : त्रिभुवननाथ शुक्ल

त्रिभुवननाथ शुक्ल का जन्म 13 जुलाई, 1953 को उत्तर प्रदेश के मधुकापुरा नामक गांव, जिला इलाहाबाद में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित रामचंद्र शुक्ल तथा माता का नाम सुखराजी देवी है। इनकी प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा अपने गांव के स्कूल से हुई। शासकीय महाकौशल महाविद्यालय से सन् 1974 में बी.ए. करने के बाद रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय से एम.ए., पीएच.डी. तथा डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। विद्यार्थी जीवन में शुक्ल गोल्ड मेडलिस्ट रहे। अपना अध्ययन पूरा करने के बाद रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर नियुक्त हुए। इस विश्वविद्यालय में शुक्ल विभिन्न पदों पर रहे। प्रोफेसर, संकाय प्रमुख तथा केंद्रीय पुस्तकालय के निदेशक रहे शुक्ल ने दुनिया भर में अपने ज्ञान और गंभीर अध्ययन का लोहा मनवाया। प्रो. शुक्ल ने प्रशासक के रूप में ख्याति अर्जित की। मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक के पद पर कई वर्षों तक रहे। हिंदी भाषा परिषद्, अखिल भारतीय साहित्य परिषद् जैसी प्रतिष्ठित संस्थाओं के अध्यक्ष नियुक्त हुए। अनेक संस्थाओं के नामित सदस्य के रूप में अपनी सेवा देने वाले प्रोफेसर शुक्ल मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद् के निदेशक का पद संभाल चुके हैं।

साहित्यिक परिचय

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल की ख्याति मुख्य रूप से भाषा वैज्ञानिक के रूप में रही है लेकिन इनके लेखन का क्षेत्र काफी व्यापक रहा है। इन्होंने कोश विज्ञान, अर्थ विज्ञान, अनुवाद, व्याकरण, शैली विज्ञान, वैदिक साहित्य, संस्कृत काव्य तथा मध्यकालीन काव्य जैसे विषयों पर प्रचुर लेखन किया है। हिंदी तथा संस्कृत साहित्य में समान अधिकार रखने वाले प्रोफेसर त्रिभुवननाथ शुक्ल ने 'रामचरितमानस के शब्दों का अर्थ तात्विक अध्ययन'

शीर्षक से पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में इन्होंने 'मानस' के एक–एक शब्द के अर्थ व्याप्ति को बेहद रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इन्होंने 'हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण तथा मानकीकरण' शीर्षक से उल्लेखनीय पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में प्रो. शुक्ल ने हिंदी भाषा को आधुनिक भाषा बनाने की विभिन्न प्रक्रियाओं, समस्याओं तथा समाधानों का जिक्र किया है। हिंदी भाषा का मानकीकरण एक विकट समस्या रही है। आज तक इस समस्या का निराकरण नहीं हो पाया था। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में उन तमाम अवरोधों को दूर करने तथा हिंदी भाषा को एकरूपता प्रदान करने के लिए सटीक समाधान प्रस्तुत किया है।

प्रो. शुक्ल ने मध्यकालीन कविता पर गहन शोध कार्य किया है। 'मध्यकालीन कविता का पाठ' शीर्षक से इनकी पुस्तक खूब चर्चा में रही। 'हेमचंद शब्दानुशासन', 'साहित्य शास्त्र के सौ वर्ष', 'हिंदी भाषा संरचना', 'भाषा कौशल एवं व्यक्तित्व विकास', 'बाल साहित्य की भूमिका', 'पर्यावरणीय अध्ययन' तथा 'हिंदी कम्प्यूटिंग' सहित पैंतालिस पुस्तकों का लेखन कार्य किया है। प्रो. शुक्ल 'साक्षात्कार' तथा 'हिंदी अनुशीलन' जैसी चर्चित पत्रिका के संपादक भी रहे तथा अनगिनत पुस्तकों का संपादन किया। 'बुंदेली तथा बघेली साहित्य का इतिहास' का संपादन उल्लेखनीय है।

साहित्यिक योगदान

भाषा वैज्ञानिक के रूप में प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल का अमूल्य योगदान है। कोश विज्ञान तथा भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान प्रो. शुक्ल ने भाषा अध्ययन को एक नया आयाम प्रदान किया है। हिंदी तथा संस्कृत आलोचना को समृद्ध करने वाले शुक्ल के विचारों में विवेकानंद का गहरा असर दिखाई पड़ता है। उन्होंने साहित्य में परंपरा तथा आधुनिकता को एक समान रूप से महत्व दिया। साहित्य के क्षेत्र में अनुपम योगदान के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों से डी.लिट् की मानद उपाधि प्राप्त हुई। इन्हें सुब्रह्मण्यम भारती सम्मान, हिंदी सेवी सारस्वत सम्मान, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' अलंकरण तथा विश्व तुलसी सम्मान जैसे अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाजा गया है।

मूल पाठ : उत्तिष्ठ भारत

दृश्य – 1

(मंच के अग्रभाग पर धीरे–धीरे प्रकाश वृत्त केन्द्रित होता है। नृत्य–मुद्रा में नृत्यांगना प्रकट होती है। पार्श्व में वीणा वादन, स्वर–लहरियाँ प्रतिध्वनित होती हैं। उद्घोषक का गीत–स्वर गूँजता है। नृत्यांगना का गीत के साथ अभिनंदन।)

पात्र

भारत ही मम जीवन धन
ज्योतिर्मय परम रमण
जल–थल, वन उपवन
तपोनिधि गिरि कानन
प्रपात–तर स्वर मधुवर
दिग–दिगन्तर चिर मुखर
मानुष मन मानव जीवन

टिप्पणी

ऋतंभरा के धवल पल
दामिनी के चरण चपल
ज्यों धारण रघुवर वल्कल
उज्ज्वलित तब चरण कमल
है नहीं कहीं जरा–मरण
है नहीं कहीं तामस समरण
है नहीं कहीं अंध क्षरण
केवल चिन्मय चिन्मय जीवन

(केवल चिन्मय चिन्मय जीवन, की आवृत्ति करते हुए नृत्यांगना का प्रस्थान।)

(क्षणिक अंधकार)

दृश्य–2

प्रकाश वृत्त मिस्टर बंसल की बैठक पर केन्द्रित होता है। नेपथ्य में डीजे पर बैंड–रॉक संगीत बज रहा है। मिसेस बंसल, आयु लगभग चालीस वर्ष, आधुनिक जीवन–शैली, चुस्त–दुरुस्त महिला कक्षा में टहल रही है। रुक–रुक कर ट्यूस–डांस करती है। बीच–बीच में चेहरे पर क्रोध के भाव तैर रहे हैं। कभी होंठ काटने का उपक्रम करती है। कभी पैर पटकती है तो कभी दरवाजे की ओर देखती है, जैसे, किसी की प्रतीक्षा कर रही हो।

मिसेस बंसल : (चिल्लाकर) कहाँ मर गए सब लोग? बंसी, अरे ओ बंसी....। ये भी कहाँ चला गया? जब भी आवाज देती हूँ, पता नहीं कहाँ चला जाता है यह बंसी? शाम होने वाली है। मेहमान आने वाले हैं। (रिमोट से टीवी ऑन करते हुए।) अभी तक कोई तैयारी नहीं है और यही टीवी भी.... वैसे तो सारा दिन चलते रहना है। (टीवी ऑन नहीं होता। वह पैर पटकने लगती है।) इसे भी आज ही खराब होना था। वक्त हो चला है। वक्त भी कितनी जल्दी बीत जाता है। किसी का इंतजार नहीं करता। सच ही कहते हैं गया वक्त वापस नहीं आता। (दीवार पर लगी घड़ी की ओर देखती है) सात बज रहे हैं। अब तक बंसी भी नहीं आया। (चिल्लाती है) अरे ओ बंसी.....। साहब भी अभी तक नहीं आए। (बंसी का प्रवेश। आयु लगभग तीस वर्ष। बण्डी–धोती पहना हुआ। काँधे पर गमछा। चेहरे पर बारीक मूँछें। गठा हुआ बदन। चपलता लिए हुए।)

बंसी : जी मालकिन! ऐसा है न कि आज सारा दिन कमली के साथ.....।

मिसेस बंसल : क्या कमली के साथ?

बंसी : मैडम जी! ऐसा है मैडम जी कि हम सारा दिन से पार्टी की तैयारी कर रहे हैं। कमली ने आपके लिए रसगुल्ले बनाए हैं, बहुत रसदार रसगुल्ले बनाती है कमली। आप चखेंगी तो अँगुलियाँ चाटती रह जाएँगी, हाँ।

मिसेस बंसल : बस....बस.... बहुत तारीफ मत कर।

बंसी : नहीं मैंडम जी। कमली कह रही है कि मालकिन को रसगुल्ले बहुत भाते हैं। रस ही रस भरा होता है गुल्लों में। मुँह में जाते ही घुल जाता है। एक बात और है मालकिन, कमली ने खासतौर पर आपके लिए भोपाली बटुए मँगाए हैं। कह रही है मेहमानों को एक–एक बटुआ गिफ्ट में दीजिए। मेहमान भी खुश हो जाएँगे। (हँसता है।) हें....हें....हें....हें....

टिप्पणी

मिसेस बंसल : कितनी बातें करता है रे बंसी तू....बिना बात के ही पटर–पटर करते रहता है। जी नहीं अघाता है? बात बनाना तो कोई तुझसे ही सीखे....अच्छा जा।

(बंसी जाने लगता है)

अरे सुन, कमली को जल्दी भेज दे।

(बंसी जाते–जाते रुकता है।)

बंसी : मालकिन गुल्ले तो तैयार हो गए हैं....इतने बड़े–बड़े गुल्ले हैं, बिल्कुल सफेद.... दूध की तरह....देखते ही मुँह में रस आ जाता है। लेकिन मालकिन, यह रस अलग से क्यों बनाया जाता है। जब मुँह में रस आ ही जाता है। बस गुल्ला मुँह में डालो रसगुल्ला अपने आप बन जाएगा। मैं तो चटखारे लगाते हुए खाता हूँ। वाह! क्या स्वादिष्ट लगता है। मिठाइयों में सबसे ज्यादा मुझे रसगुल्ले ही पसंद हैं।

मिसेस बंसल : तो तुमने पहले ही रस के बिना चख लिए होंगे। अच्छा अब जल्दी जा, वक्त बर्बाद मत कर। साहब लोग आने वाले हैं और तू है कि यहाँ बड़बड़ा रहा है। जा जल्दी जा।

बंसी : (जाते हुए) जाता हूँ मालकिन, लेकिन रस तो अभी बना ही नहीं। गुल्ले जरूर दो–चार चख लिए हैं। सफेद–सफेद, देखते ही मन मचलने लगता है। वाह! क्या स्वाद है गुल्लों में। ऐसा करो मालकिन, मेहमानों को गुल्ले ही परोस दो, रस की जरूरत नहीं। मुँह में रस आ ही जाता है। मेहमान भी खुश हो जाएँगे। तारीफ करेंगे, रस बनाने का खर्च भी बच जाएगा।

(नेपथ्य में बर्तन गिरने की आवाज आती है। बंसी कानों पर हाथ रखकर जीभ निकाल आँखें बंद करता है।)

हो गया सत्यानाश।

मिसेस बंसल : (चिल्लाती है।) अरे क्या हो गया? तोड़ दिया बर्तन, ये कमली भी बहुत....पिछले महीने इसने टी–सेट तोड़ दिया था, उसके पिछले महीने थर्मस तोड़ दिया था और आज पता नहीं क्या तोड़ दिया? (बंसी से) जा....देख तो क्या तोड़ा कमली की बच्ची ने?

बंसी : (जीभ दबाते हुए सिर खुजलाता है।) जी मालकिन (दर्शकों से) ये कमली भी हर महीने कुछ न कुछ तोड़ती ही रहती है और ये मालकिन तनखा में से काट लेती है। तनखा भी कम जो जाती है। कितनी बार कहा कि देखभाल कर काम किया कर किन्तु इस कमली को अकल ही नहीं है। (मालकिन से) लगता है जरूर रस न....न.. ..चाशनी का बर्तन गिर गया होगा।

मिसेस बंसल : (अफसोस के साथ) क्या? चाशनी का बर्तन! यानी रस....सत्यानाश कर दिया करमजली ने....जो नुकसान हुआ है इस महीने कमली की तनखा से ही इसकी भरपाई करूँगी। (बंसी से) जा–जल्दी जा।

(सिर दबाते हुए बंसी का प्रस्थान)

मिसेस बंसल : (चिंताग्रस्त आक्रोश के साथ) ओबेराय दम्पत्ति का अभी तक पता नहीं। जल्दी आने का कहा था। सभी को मैसेज किए हैं। भारतीयों की आदत सुधरने वाली नहीं है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है, समय की कीमत समझो तो सारे कार्य समय

टिप्पणी

पर होंगे और समय भी आपकी इज्जत करेगा। लेकिन नहीं, जनाब एक घंटा देर से चलेंगे और देर से आने के सत्रह बहाने बनाएँगे, गाड़ी पंक्चर हो गई। पेट्रोल लेने में देर हो गई। रास्ता जाम था। लंबे रास्ते से आना पड़ा और न जाने क्या–क्या? लो साढ़े सात बज रहे हैं, लेकिन....

(बेल बजती है)

आती हूँ। लगता है वो आ गए हैं। ये जनाब भी दो घंटे देर से चल रहे हैं। सबेरे ही कहा था जल्दी आना। कम से कम मेहमानों के आने के पहले आ जाना, जब खुद देर से आएँगे तो मेहमान क्यों न देर से आएँगे।

(दरवाजा खोलती है। मिस्टर बंसल का प्रवेश। हृष्ट–पुष्ट शरीर। लगभग 45 वर्ष की आयु। सूट पहने हुए हैं। हाथ में ब्रीफकेस है। थके होने का उपक्रम करते हैं। प्रवेश करते ही सोफे पर पसर जाते हैं। हाथ फैलाकर ऊपर पीछे की ओर करते हैं। सेंटर टेबल पर ही जूते सहित पैर पसारते हैं और टाई खोलने लगते हैं। मिसेस बंसल झुँझलाती हैं।)

आप तो बस, आते ही लाट साहब की तरह पसर गए। मेहमान आने वाले हैं। ऐसे काम नहीं चलेगा। उठो, जल्दी तैयार हो जाओ।

मिस्टर बंसल : कोई बात नहीं। थोड़ा सा आराम कर लूँ फिर तैयार हो जाऊँगा। मेहमानों के अभी आने का समय नहीं हुआ है। सभी अंग्रेजों की औलाद हैं। समय पर कोई नहीं आता। भारतीयों की आदत ही है लेट–लतीफी।

मिसेस बंसल : आप भी तो बस....खुद देर से आए हैं, दूसरों को नसीहत देते हैं। नहीं, नहीं। ऐसे काम नहीं चलेगा। कम से कम फ्रेश तो हो जाओ। आज तुम्हारे प्रमोशन की खुशी में पार्टी रखी है। ऐसे मुँह लटकाए रखोगे तो सारा मजा किरकिरा हो जाएगा।

मिस्टर बंसल : अच्छा बाबा, फ्रेश हो जाता हूँ।

(मिस्टर बंसल उठकर भीतर के दरवाजे से प्रस्थान करते हैं। आउटडोर की बेल बजती है। मिसेस बंसल दरवाजा खोलती हैं मिस्टर–मिसेस ओबेराय का प्रवेश।)

मिसेस बंसल : आइए मिसेस ओबेराय....। हम आप ही की प्रतीक्षा कर रहे थे। आने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई?

मिसेस ओबेराय : नमस्ते भाभी जी। दिक्कत तो नहीं हुई। बस, यों ही राजभवन से न्यू मार्केट तक जाम लगा हुआ था। शायद किसी मंत्री का काफिला निकल रहा था।

मिसेस बंसल : (दोनों से) नमस्ते, नमस्ते....आइए....आपका स्वागत है। सारा शहर इस जाम से परेशान है। कभी कोई नेता तो कभी कोई मंत्री, इससे तो जनता ही परेशान होती है। अव्यवस्था फैल जाती है। कानूनी व्यवस्था के हालात भी खराब हैं।

(आउटडोर की बेल फिर बजती है। मिसेस बंसल मुस्कराते हुए दरवाजा खोलती हैं। मिस्टर–मिसेस श्रीवास्तव तथा मिसेस–मिस्टर कुरैशी का प्रवेश। हाथों में बुके और उपहार हैं।)

सभी : नमस्ते भाभी जी।

मिसेस बंसल : नमस्ते, नमस्ते।

(मिस्टर बंसल का प्रवेश। नेपथ्य में मधुर संगीत बज रहा है।)

टिप्पणी

सभी : बधाई हो मिस्टर बंसल।

(सभी मेहमान मिस्टर बंसल को उपहार देते हैं। हाथ मिलाते हैं। गले मिलते हैं। तत्पश्चात् सोफे पर बैठते हैं।)

मिस्टर बंसल : आज इस खुशी के मौके पर हमने आत्मीय मित्रों के लिए एक छोटी–सी पार्टी का आयोजन किया है। मैं आप सभी मित्रों का तहेदिल से स्वागत और अभिनंदन करता हूँ। कृपया आप सभी मित्र पार्टी एंज्वाय करें। आइए, भीतर प्रांगण में चलिए।

(सभी भीतर के दरवाजे से अंदर जाते हैं। नेपथ्य में संगीत की स्वर–लहरियाँ गूँज उठती हैं। मेहमानों के ठहाके की आवाज नेपथ्य में गूँजती है। फिल्मी गीत ऊँची आवाज में सुनाई पड़ रहा है। तालियों की गड़गड़ाहट। बीच–बीच में प्लेट और चम्मचों के खटखट की आवाज आ रही है। गीत समाप्त होने पर मिसेस ओबेराय, मिसेस श्रीवास्तव, मिसेस कुरैशी, मैडम बंसल आदि बाहर मंच पर आती हैं।)

मिसेस ओबेराय : धन्यवाद मैडम बंसल। आज तो मजा आ गया। पार्टी हो तो ऐसी हो। दिल खोलकर आनंद उठाना ही पार्टी का मकसद होता है। यदि ये नौकर लोग बीच में आकर ऊल–जलूल हरकत न करते हो और भी मजा आता।

मिसेस बंसल : ये बंसी, मिस्टर बंसल के कार्यालय में चपरासी है। बड़े मजाकिया किस्म का है। इसकी पत्नी कमला, हमारे घर में काम करती है।

मिसेस श्रीवास्तव : ये झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले लोग भी हैं न... हम अमीरों की बराबरी करने की कोशिश करते हैं। ये लोग बहुत घटिया और बदतमीज किस्म के होते हैं। इन लोगों में जरा भी सहूर नहीं होता कि किसी की इज्जत कैसे की जाती है। जरूर मिसेस बंसल ने उन्हें मुँह लगा रखा होगा। वर्ना क्या मजाल कि ये लोग हम अमीरों के बीच दखल देते।

मिसेस ओबेराय : थोड़ा बहुत तो ठीक है, लेकिन नौकरों को इतनी छूट भी नहीं देनी चाहिए कि वे हमारे सिर पर ही सवार हो जाएँ। नौकरों को नौकर ही समझकर रखना चाहिए, मालिक समझकर नहीं। तभी तो ऐसा करते हैं ये लोग।

मिसेस श्रीवास्तव : हम लोग यही गलती करते हैं, हम इनके साथ उठते–बैठते हैं, इन्हें अपने परिवार का सदस्य ही मान बैठते हैं और ये लोग इसी का फायदा उठाकर हमारे बीच में खलल पैदा करते हैं। कभी–कभी तो ये लोग ऐसा व्यवहार करते हैं कि लगता है कि हम इनके नहीं, बल्कि ये ही हमारे मालिक हैं।

मिसेस ओबेराय : आप बिल्कुल ठीक कह रही हैं, मिसेस श्रीवास्तव। इन पर लगाम कसनी जरूरी है। भई, हम तो ऐसा ही करते हैं तभी तो हमारे नौकर हमसे सहमे–सहमे से रहते हैं।

मिसेस श्रीवास्तव : मैंने तो इनसे (मिस्टर श्रीवास्तव की ओर संकेत करते हुए) कह दिया है कि नौकरों से नौकरों जैसा व्यवहार करो, लेकिन ये हैं कि कभी मानते ही नहीं। ऐसा लगता है, ये नौकर ही हमारे मालिक हैं।

(मिस्टर कुरैशी अब तक महिलाओं की बातचीत सुन रहे थे। महिलाओं के विचार सुनकर वे सोफे से उठ खड़े हुए और बड़ी शालीनता से दोनों के पास चलकर गए।)

मिस्टर कुरैशी : (मिसेस श्रीवास्तव) माफ करना भाभीजी, मैं आपके विचारों से सहमत नहीं हूँ। निचले तबके के लोगों को इस तरह बेइज्जत करना हमारा धर्म नहीं है। मानते

हैं कि झुग्गी–झोपड़ी वाले निर्धन और गरीब होते हैं किंतु ये गरीब–निर्धन होकर भी बिना लाग–लपेट के हमारी सेवा करने में दिन–रात लगे रहे हैं।.... खैर... अच्छा यह बताओ, इनको गरीब–निर्धन किसने बनाया? हम अमीरों ने ही.... बताओ?

टिप्पणी

मिस्टर ओबेराय : अमीरों और गरीबों के बीच की दूरी कभी मिट नहीं सकती। जो अमीर हैं, अमीर ही कहलाएँगे और जो गरीब हैं, गरीब ही कहलाएँगे, किन्तु मिस्टर कुरैशी, मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि आजादी के बाद, कोई भी राजनीतिक–दल गरीबों के बिगड़े हुए हालात के प्रति गंभीर नहीं रहा। यह सारी अर्थव्यवस्था अमीरों और राजनीतिक–दलों के बीच दबी है।

मिस्टर कुरैशी : मेरे कहने का मतलब भी यही है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि हम भारत में गरीबों के बारे में क्या सोचते हैं। उनके पास न तो अवसर है न ही बचाव का कोई अन्य मार्ग और न ही खुद को ऊपर उठाने का कोई रास्ता दिखाई देता है। इन गरीब–निर्धनों का न तो कोई मित्र होता है और न कोई सहायता करने वाला ही।

मिस्टर ओबेराय : जब संदर्भ स्वामी विवेकानंद का चल रहा है तो मैं आपको यह बता दूँ कि विवेकानंद जी ने कहा है कि झोपड़–पट्टी गरीबी का प्रतीक है। हमारे भारत में गरीब लोग सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करते हैं जबकि उनके हाथ से निवाला कोई और छीनकर ले जाता है। उनके बच्चे भूखे सोते हैं। भारत में टनों गेहूँ के उत्पादन के बावजूद, आधा पेट भोजन भी इन गरीबों को नसीब नहीं हो पाता। ये निर्धन लोग ऐसा भोजन लेने के लिए विवश हैं जो आप अपने पालतू जानवरों को भी न दें।

(मिस्टर बंसल का प्रवेश)

मिस्टर बंसल : आप लोगों को यह क्या हो गया आज? गरीब–निर्धनों की बातें हो रही हैं।

मिस्टर ओबेराय : हम भारत की गरीबी पर चर्चा कर रहे थे। इस खुशी के मौके पर हम लोग स्वामी विवेकानंद के विचारों का अनुसरण करें और ये प्रार्थना करें कि सब लोग मिलकर एक आशा की किरण जगाएं। आज हम आनंद मना रहे हैं और गरीब भूखों मर रहे हैं। अंधेरे में प्रकाश की किरण फूटे। आओ, हम सब मिलकर भारत के करोड़ों गरीबों–निर्धनों के लिए प्रार्थना करें, जो गरीबों और जातीय भेदभाव से जूझ रहे हैं। हम उन गरीबजनों को जगाएं। उनमें साक्षरता का प्रकाश फैलाएं। हमें ईश्वर राह दिखाए कि हम गरीबों के प्रति निष्ठावान बनें। मैं अमीरों का आह्वान करता हूँ कि सब अमीर उठें, जानें और ये तय करें कि हम भारत के अमीर लोग, गरीबों की गरीबी हटाएँगे और उन्हें बराबरी का दर्जा देंगे।

सभी : उठो भारतवासियों, हम सब मिलकर भारत से गरीबी हटाएँ। गरीबों को बराबर का दर्जा दें। जागो फिर एक बार....

गीत

आओ युवकों देश जगाएँ
दानवता को दूर भगाएँ,
कहीं कराह रही मानवता
कहीं बज रही है शहनाई
क्रूर पिशाचों की करतूतें

भारत की छवि बहुत गिराई
इनका दमन करें हम मिलकर
दानवता को मार भगाएँ
आओ युवकों देश जगाएँ
गीता कुरान साथ में
बाइबिल और गुरुग्रंथ हाथ लें
शपथ करें हम भारत माँ की
मानवता का मान बढ़ाएँ
आओ युवकों देश जगाएँ।
घर–घर में रामायण हो
रामकथा का पारायण हो
भारत में माता हुलसी हो
घर घर में उनसे तुलसी हों
रामराज्य को फिर से लाएँ
आओ युवकों देश जगाएँ
दानवता को दूर भगाएँ
(क्षणिक अंधकार)

'उत्तिष्ठ भारत' नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन

'उत्तिष्ठ भारत' नाटक को तत्वों के आधार पर निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

कथानक

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल का नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' विवेकानंद के विचारों और आदर्शों को अपनाकर देश की उन्नति में सहयोगी बनने की भूमिका पर आधारित है। यह नाटक एक तरफ देश में कृषक–मजदूर की दयनीय स्थिति को रेखांकित करता है, दूसरी ओर स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को उभारता है।

नाटक शुरू होता है मिस्टर बंसल के घर में पार्टी के आयोजन से। मिस्टर बंसल का प्रमोशन हुआ है। इसी खुशी में उनकी पत्नी ने पार्टी का आयोजन किया है। इस पार्टी में शहर के जाने–माने अमीर और प्रतिष्ठित लोग शामिल होते हैं। पार्टी की तैयारी करने में घर की नौकरानी कमली और उसका पति बंसी मदद करता है। पार्टी खूब शानदार चल रही होती है। इसी बीच गरीबी और गरीबों के चरित्रों पर चर्चा शुरू हो जाती है। मिसेस श्रीवास्तव और मिसेस बंसल के मन में गरीबों के प्रति घृणा का भाव है, वहीं उनकी बातें सुनकर मिस्टर ओबेराय गरीबी उन्मूलन की बात करते हैं तथा वे आह्वान करते हैं कि गरीबी को खत्म करने के लिए संगठित होकर हम सभी को आगे आना चाहिए।

नाटक के अगले दृश्य में कमली और बंसी का घर का वातावरण है। वे दोनों पति–पत्नी मंत्रणा करते हैं कि आर्थिक समस्या का समाधान किस तरह से किया जाए? बंसी का मानना है कि गौरी की पढ़ाई छुड़वा दी जाए और इसे भी ठाकुर के घर में बर्तन साफ करने का काम पकड़वा दिया जाए। इसी बीच गौरी के स्कूल के शिक्षक

बंसी के घर आते हैं। वे गौरी के स्कूल न आने के बाबत गौरी के मां–बाप से सवाल पूछते हैं। वे अपनी असमर्थता जाहिर करते हैं तो शिक्षक सरकारी अनुदान की सहायता से गौरी को आगे पढ़ाई करने के लिए प्रेरित करते हैं।

टिप्पणी

नाटक के चौथे दृश्य में मिस्टर बंसल के दफ्तर का दृश्य है। यहां कुछ नेता किसानों की समस्या के संबंध में बातें करते हैं। फिर कुछ किसान अपनी समस्याएं लेकर मिस्टर बंसल के पास पहुंचते हैं। इसी बीच वह शिक्षक आ जाता है और स्कूल में गरीब बच्चों को सरकारी अनुदान देने के लिए आग्रह करता है। मिस्टर बंसल अनुदान के लिए आवेदन देने के लिए कहते हैं। शिक्षक विवेकानंद के आदर्शों को साझा करते हुए मिस्टर बंसल को बताता है कि पचास प्रतिशत से ज्यादा बच्चे पढ़ाई पूरी होने से पहले स्कूल छोड़ देते हैं। राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का अमूल्य योगदान होता है। राष्ट्र को विकसित करने के लिए शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर जोर देना होगा। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि भारतीय पढ़–लिख जाए। इस कारण उन्होंने भारत के नागरिकों को अनपढ़ ही बनाए रखा।

नाटक के पांचवें दृश्य में गौरी तथा उसके साथ पढ़ने वाले कुछ साथी वार्तालाप करते हैं। इस वार्तालाप के जरिये स्वामी विवेकानंद के आदर्शों को अपनाने के लिए संकल्प लेते हैं। इसी बीच फिर शिक्षक का प्रवेश होता है और गौरी के प्रथम श्रेणी में पास होने तथा उसके स्कॉलरशिप की मंजूरी की खुशखबरी सुनाता है। छठे दृश्य में बाहर से खून–खराबा तथा शोरगुल सुनाई पड़ता है। इस दृश्य में कुछ लोग आपस में देश की विकट स्थितियों पर चर्चा करते हैं और स्वामी विवेकानंद के बताए रास्ते पर चलकर ही उन्नति प्राप्त करने की बातें स्वीकार करते हैं। यहां समाज में जाति के नाम पर बंटे लोगों की निंदा मुख्य रूप से की गई है। वे लोग इस निष्कर्ष पर भी पहुंच जाते हैं कि नेताओं ने अपने निजी स्वार्थों के लिए देश को बांटकर रख दिया है।

नाटक के सातवें दृश्य में गौरी पढ़–लिखकर आई.ए.एस. बन जाती है। एक मजदूर की बेटी का आई.ए.एस बन जाना बड़ी बात होती है। गौरी को जब डाकिया रजिस्ट्री पकड़ाकर जाता है, तब उसे इस बात का अंदाजा नहीं रहता है कि आई.ए.एस. की परीक्षा पास होने की सूचना इस लिफाफे में बंद है। गौरी की आंखों में खुशी के आंसू छलकने लग जाते हैं। आठवें दृश्य में गौरी अपनी आई.ए.एस. की ट्रेनिंग पूरी कर लेती है और भोपाल में कलेक्टर के पद पर नियुक्त होती है। नौवें दृश्य में गौरी के साथी देश के उत्थान के लिए 'मानव सेवा केंद्र' नामक संस्थान की शुरुआत करते हैं। गौरी अपने शिक्षक शिवानंद के साथ मंच पर आसीन है। शिक्षक शिवानंद अपने भाषण में मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता की पैरवी करते हैं और भ्रष्टाचार को उखाड़ फेंकने का आह्वान करते हैं। वहीं गौरी 'मानव सेवा केंद्र' नामक एन.जी.ओ. को ईमानदारी, निष्ठा और आत्मविश्वास के साथ देश के उत्थान में सहयोग देने की प्रेरणा देती है। इसी के साथ नाटक का पटाक्षेप हो जाता है। नेपथ्य से 'उत्तिष्ठ भारत, उत्तिष्ठ भारत' का स्वर गूंजने लगता है।

यह नाटक मुख्यतः स्त्री शिक्षा पर केंद्रित है। देश का उत्थान स्त्री शिक्षा के बिना संभव नहीं है, यह 'उत्तिष्ठ भारत' का संदेश है।

टिप्पणी

चरित्र चित्रण

'उत्तिष्ट भारत' नाटक के नाटककार ने पात्रों का चरित्र–चित्रण निम्न प्रकार से किया है–

मिस्टर बंसल– 'उत्तिष्ठ भारत' में मिस्टर बंसल प्रमुख पात्र हैं। वे एक सरकारी अधिकारी हैं और उनके प्रमोशन की खुशी में एक पार्टी का आयोजन किया जाता है। वे बेहद सुलझे हुए इंसान हैं। देश की उन्नति के लिए किसानों की स्थिति सुधारने तथा स्त्री शिक्षा पर जोर देने की वकालत करते हैं। वे किसानों के पलायन रोकने, कृषि शिक्षा तथा कृषि के विकास के लिए उचित प्रबंध करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहते हैं।

शिक्षक शिवानंद– इस नाटक में शिक्षक शिवानंद स्वामी विवेकानंद का अनुयायी है। वे विवेकानंद के आदर्शों तथा सिद्धांतों को मानने वाले व्यक्ति हैं। उनका मानना है कि स्त्री शिक्षा के बगैर देश का उत्थान नहीं हो सकता है। उन्हीं के प्रयास से मजदूर घर की बेटी गौरी की पढ़ाई आगे बढ़ पाती है। वे लोगों को जागरूक करते हैं।

गौरी– नाटक के प्रमुख पात्रों में गौरी भी है। वह बंसी तथा कमली की बेटी है। गरीब घर में जन्म लेने के बावजूद पढ़ने–लिखने के लिए लालायित रहती है। पढ़ाई में कठिन मेहनत कर स्कॉलरशिप प्राप्त करती है और हर कक्षा में अव्वल आती है। वह पढ़–लिखकर अपने गृह जिले की कलेक्टर नियुक्त होती है। गौरी के चरित्र से यह संदेश संप्रेषित होता है कि ज्ञान के बल पर सब कुछ हासिल किया जा सकता है और समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। गौरी भी स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित रहती है।

मिसेस बंसल, मिसेस श्रीवास्तव, मिसेस ओबेराय– ये तीनों स्त्रियां उच्च वर्ग से ताल्लुक रखती हैं। मिसेस बंसल के घर में पार्टी का आयोजन होता है। इसी पार्टी में मिसेस श्रीवास्तव तथा मिसेस ओबेराय के बीच संवाद होता है। इन तीनों स्त्रियों के मन में गरीबों के प्रति घृणा का भाव है। मिसेस श्रीवास्तव का मानना है कि घरेलू नौकरों को अपने सिर पर नहीं बिठाना चाहिए। उनका स्पष्ट विचार है कि नौकरों से नौकरों जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। मिसेस श्रीवास्तव को लगता है कि झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले लोग बदतमीज और घटिया किस्म के होते हैं। मिसेस बंसल स्वामी विवेकानंद के विचारों से सहमत जरूर है लेकिन अपने नौकरों के प्रति बेहद कठोर है। यदि किसी नौकर से शीशे का बर्तन भी टूट जाता है तो वह उसके तनख्वाह से पैसे काट लेती है। मिसेस ओबेराय भी नाटक में अन्य उच्चवर्गीय स्त्रियों के स्वभाव से सहमत रहती है।

मिस्टर कुरैशी और मिस्टर ओबेराय– इस नाटक में मिस्टर कुरैशी तथा मिस्टर ओबेराय का चरित्र प्रगतिशील विचारों से ओत–प्रोत है। वे गरीबों के उत्थान के विषय में चर्चा करते हैं तथा स्वामी विवेकानंद के मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करते हैं। मिस्टर कुरैशी, मिस्टर बंसल के घर में आयोजित पार्टी में शामिल होने वाली स्त्री पात्रों के विचारों से असहमति दर्ज कराते हैं।

मिस्टर ओबेराय गरीबी उन्मूलन के लिए अमीर वर्ग को आगे आने का आह्वान करते हैं। वे गरीब जन को जागरूक बनाने तथा उन्हें शिक्षित करने की बात करते हैं। मिस्टर ओबेराय का मानना है कि अमीर लोग आनंद मना रहे हैं और गरीब जनता भूख से मर रही है।

बंसी और कमली– बंसी और कमली गौरी के माता–पिता हैं। वे दोनों मजदूर हैं लेकिन अपनी बेटी को शिक्षित करने के लिए तैयार हैं। गौरी उनकी बेटी है और वह पढ़–लिख कर आई.ए.एस. की परीक्षा पास करती है।

टिप्पणी

संवाद योजना

'उत्तिष्ठ भारत' नाटक का संवाद बेहद प्रभावशाली, आकर्षक तथा पात्रानुकूल है। नाटक के सभी पात्र सहज और स्वाभाविक ढंग से अपने संवाद अभिव्यक्त करते हैं। नाटक में बोले गए संवाद संवेदनात्मक आवेगों को सचेत करके रख देते हैं। हर पात्र की अपनी अलग परिस्थितियां होती हैं और उनका व्यक्तित्व भी भिन्न होता है। संवाद के माध्यम से ही पात्रों के व्यक्तित्व तथा मनःस्थितियों की जानकारी मिलती है। नाटक में बोले गए संवादों से कथा का विकास होता है। 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के संवाद इतने प्रभावशाली हैं कि प्रारंभ से अपना अमिट प्रभाव छोड़ने में सफल हो जाते हैं। नाटक की शुरुआत में ही मिसेस बंसल का संवाद है– "(चिल्लाकर) कहाँ मर गए सब लोग? बंसी, अरे ओ बंसी. ..। ये भी कहां चला गया? जब भी आवाज देती हूँ, पता नहीं कहाँ चला जाता है यह बंसी।" नाटक के शुरुआती संवाद ही सामान्य बोलचाल के लहजे में होते हैं। संवाद के माध्यम से मिसेस बंसल का मनोविज्ञान भी समझ में आ जाता है। वह घरेलू नौकर को आवाज इस अंदाज में लगाती है मानो घर में काम करने वाले नौकरों की कोई इज्जत नहीं है। उसकी मेहनत के प्रति जरा भी सम्मान का भाव नहीं है।

मिसेस बंसल जब बंसी के बातूनी स्वभाव से ऊब कर कहती है– "कितनी बातें करता है रे बंसी तू.... बिना बात के ही पटर–पटर करते रहता है। जी नहीं अघाता है? बात बनाना तो कोई तुझसे सीखे।" इस तरह के संवादों से दृश्य में सजीवता का संचार होता है। कहीं कोई बनावटीपन नहीं झलकता है, कहीं कृत्रिमता का आभास नहीं है बल्कि इस तरह के संवादों के माध्यम से एक खास तरह की नाटकीयता भी उत्पन्न होती है। नाटककार ने ऐसे ही सहज और संप्रेषणीय संवादों के माध्यम से कथानक में गतिशीलता पैदा करने का प्रयास किया है। बंसी अपनी मालकिन के स्वभाव को कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करता है कि हास्य रस उत्पन्न हो जाता है। एक उदाहरण के माध्यम से इस तरह की संवाद योजना को बखूबी समझा जा सकता है– "जी मालकिन (दर्शकों से) ये कमली भी हर महीने कुछ–न–कुछ तोड़ती ही रहती है और ये मालकिन तनखा में काट लेती है। तनखा भी कम हो जाती है। कितनी बार कहा कि देख–भालकर काम किया कर किंतु इस कमली को अकल ही नहीं है।" इस तरह से कहे गए संवादों के जरिये नाटककार हास्य उत्पन्न कराते हैं और मालिक वर्ग के शोषण जाल को बहुत सहजता से उभारकर रख भी देते हैं। बंसी द्वारा कहे गए संक्षिप्त संवाद से मिसेस बंसल का चरित्र स्पष्ट हो जाता है।

इसी तरह नाटककार ने संवादों के जरिये सभी वर्ग के चरित्रों को उभारा है। एक तरफ जब मिसेस बंसल को गरीब बंसी या किसी अन्य नौकर की वजह से किसी तरह का नुकसान उठाना पड़ता है, तब वह उसी की तनख्वाह से काटकर अपने नुकसान की भरपाई करती है, वहीं जब खुद पर कोई बात आ जाए, तब आदर्श की पोटली खोल कर रखने लग जाती है। एक प्रसंग में मिसेस बंसल का संवाद देखिए– "स्वामी विवेकानंद ने कहा है, समय की कीमत समझो तो सारे कार्य समय पर होंगे और समय भी आपकी इज्जत करेगा। लेकिन नहीं, जनाब एक घंटा देर से चलेंगे और देर से आने के सत्रह बहाने बनाएंगे! गाड़ी पंक्चर हो गई। पेट्रोल लेने में देर हो गई। रास्ता जाम था। लंबे रास्ते से आना पड़ा और न जाने क्या–क्या?" मिसेस बंसल ने बेहद साधारण तरीके से शिकायत भरे लहजे में इस संवाद को कहा है। वास्तव में इसी सहजता में कहे गए संवादों से असाधारण प्रभाव उत्पन्न हो गया है। मिसेस बंसल के

माध्यम से नाटककार ने उच्च वर्ग के अंतर्द्वंद्व के साथ–साथ इस वर्ग की तमाम खामियों तथा कमियों में बेहद सरल तरीके से प्रस्तुत कर दिया है। नाटककार ने अपने इस नाटक में अमीर वर्ग की कमजोरियों तथा गरीब वर्ग की शक्तियों को व्यंजित करने का प्रयास किया है।

इस नाटक के संवादों में पैनापन है। हर संवाद अपनी सार्थकता साबित करता है। मिसेस बंसल के घर में आयोजित पार्टी के अवसर पर अनेक जाने–माने लोग उपस्थित हुए हैं। इसी पार्टी में मिसेस श्रीवास्तव जैसी अभिजात्य किस्म की महिला भी है जो अपने संवादों के जरिये अपने मन में गरीब वर्ग के प्रति पाली घृणा को अभिव्यक्त कर देती है। नाटककार ने इस तरह के संवादों की योजना कर अमीर वर्ग की स्थिति तथा उसकी पक्षधरता को बेहद साफगोई के साथ उकेरने का प्रयास किया है। मिसेस श्रीवास्तव का संवाद देखिए– "ये झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले लोग भी हैं न... हम अमीरों की बराबरी करने की कोशिश करते हैं। ये लोग बहुत घटिया और बदतमीज किस्म के होते हैं। इन लोगों में जरा भी सहूर नहीं होता कि किसी की इज्जत कैसे की जाती है। जरूर मिसेस बंसल ने उन्हें मुंह लगा रखा होगा। वर्ना क्या मजाल कि ये लोग अमीरों के बीच दखल देते।"

इस तरह के संवादों से एक तरफ मिसेस श्रीवास्तव की मानसिकता उजागर होती है, दूसरी तरफ नाटक के प्रभाव में वृद्धि होती है। नाटककार त्रिभुवननाथ शुक्ल ने अपने नाटक 'उत्तिष्ठ भारत' के माध्यम से ऐसे संवादों की संरचना की है जिससे अमीर तथा गरीब के बीच की खाई स्पष्ट नजर आती है। नाटक के दूसरे दृश्य में अमीर वर्ग की मानसिकता को बेहद प्रभावी ढंग से उभारने में नाटककार सफल रहे हैं। नाटक के संवाद में भाव सघनता भी है और एक खास तरह की लयात्मकता भी है। इसी कारण से इस नाटक में मंचीय सफलता प्राप्त करने की संभावना में वृद्धि होती है। इस नाटक के संवादों में कहीं भावुकता नहीं दिखाई पड़ती है और न ही कहीं अनावश्यक संवादों का प्रयोग हुआ है। इस नाटक का संवाद अपनी सार्थकता सिद्ध करने में पूरी तरह से सफल रहा है।

भाषा शैली

'उत्तिष्ठ भारत' नाटक की भाषा सहज और सपाट है लेकिन इसी सहजता और सपाटबयानी में नाटककार ने गजब की नाटकीयता को उभारा है। नाटक के प्रत्येक वाक्य में घनीभूत भावबोध उत्पन्न कराने की क्षमता है। हर एक संवाद को इतनी सहजता से बोला गया है कि पात्रों का व्यक्तित्व, मनोविज्ञान तथा परिस्थितियां उभर आती हैं। त्रिभुवननाथ शुक्ल ने पात्रानुकूल भाषा की संरचना की है। इस नाटक में एक तरफ अमीर वर्ग है, दूसरी तरफ गरीब तबका। इन दोनों वर्गों की भाषा, बोलने का लहजा तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए नाटककार ने भाषिक संयोजन का सृजन किया है। मिस्टर ओबेराय का एक कथन देखिए– "जब संदर्भ स्वामी विवेकानंद का चल रहा है तो मैं आपको यह बता दूं कि विवेकानंद जी ने कहा है कि झोपड़–पट्टी गरीबी का प्रतीक है। हमारे भारत में गरीब लोग सुबह से शाम तक कड़ी मेहनत करते हैं जबकि उनके हाथ से निवाला कोई और छीनकर ले जाता है। उनके बच्चे भूखे सोते हैं। भारत में टनों गेहूं के उत्पादन के बावजूद, आधा पेट भोजन भी इन गरीबों को नसीब नहीं हो पाता। ये निर्धन लोग ऐसा भोजन लेने के लिए विवश हैं जो आप अपने पालतू जानवरों को भी न दें।"

टिप्पणी

इस तरह से यथाप्रसंग नाटककार की भाषा संयोजन में बौद्धिक चिंतन साफ झलकता है। फिर भी भाषा में तनिक भी दुरुहता नहीं है। जहां–जहां नाटक के किसी प्रसंग में बौद्धिक विचारों की व्यंजना हुई है, वहां–वहां अनुकूल वातावरण का निर्माण भी किया गया है। नाटक में विवेकानंद तथा सयाजी के संवादों का संयोजन है। उन प्रसंगों में नाटककार ने स्वामी विवेकानंद की वास्तविक भाषा को प्रस्तुत करने का अनूठा प्रयास है। समूची दुनिया जानती है कि स्वामी विवेकानंद की भाषा की पकड़ अद्‌भुत थी। जब वे बोलना शुरू करते थे, तब सारी दुनिया बिना किसी अवरोध के उन्हें सुनना पसंद करती थी। उनकी भाषा में जादुई आकर्षण था। नाटककार ने स्वामी विवेकानंद तथा सयाजी के आपस में हुए संवाद की कल्पना की है। एक उदाहरण देखें– "संसार की उपेक्षा न हो। प्राचीन ज्ञान के साथ हम नए ज्ञान को भी जोड़ें। देश में विज्ञान का महाविद्यालय भी खुलना चाहिए। कल–कारखाने खुलें। उद्योग फैलें। वेद भी पढ़ाएं तो कल–कारखाने और उद्योग भी.... युवाओं को औद्योगिक शिक्षा आवश्यक है। तब ही समाज एवं देश का विकास संभव है।"

इस तरह के संवादों को बेहद सतर्क होकर नाटककार ने प्रस्तुत किया है। संस्कृतनिष्ठ शब्दों के संयोजन से भाषा में वास्तविकता का समावेश देखा जा सकता है।

नाटककार ने अपने इस नाटक में कुछ ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया है जो गरीब होने के साथ–साथ कम पढ़े–लिखे भी हैं। उन प्रसंगों में भाषा को उसी के अनुरूप ढालने का उपक्रम किया गया है। गौरी के माता–पिता गरीब और अनपढ़ हैं। उनके संवादों में गंवईपन का बोध सहज हो जाता है। गौरी की मां कमली के एक संवाद के उदाहरण से इसे समझा जा सकता है– "मजूरी करते–करते उमर गुजर गई। हाड़–मांस गल गयो। ईश्वर अब हमरी सुन लियो।" नाटककार की भाषाई पकड़ जबर्दस्त है। उन्होंने नाटक के संवादों में व्यापक परिवर्तन किया है। इस नाटक में भाषा के कई स्तरों का समावेश किया गया है। नाटककार ने भाषा की संवेदनशीलता को इस तरह से बरतने का प्रयास किया है कि पात्रों का चारित्रिक गुण भी उभरकर सामने उपस्थित हो जाता है।

'उत्तिष्ठ भारत' के नाट्य भाषा में प्रवाह है, स्वाभाविकता है और नाटकीयता भी है। इस कारण नाटक की भाषा में अपूर्व प्रभाव उत्पन्न होता है। नाटककार ने नाट्य बिंबों का भी सफल संयोजन किया है। इस कारण नाटक में बोले गए संवादों की अर्थ व्यापकता में खासी वृद्धि हुई है और विभिन्न पात्रों की मनोवृत्तियां भी प्रत्यक्षतः प्रकट हुई हैं।

उद्देश्य

स्त्री शिक्षा के बिना राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है। देश से गरीबी मिटाने के लिए शिक्षा का प्रचार–प्रसार आवश्यक है। 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के माध्यम से नाटककार विवेकानंद के सिद्धांतों तथा उनके विचारों को स्थापित करते हैं और स्त्री शिक्षा तथा संगठनात्मक तरीके से गरीबी उन्मूलन की वकालत करते हैं। इस नाटक के जरिये यह संदेश भी संप्रेषित किया गया है कि यदि गरीब परिवार की लड़कियां शिक्षा प्राप्त करने लग जाए, तब देश की उन्नति में वे बड़ी भूमिका निभा सकती हैं। नाटक की मुख्य पात्र गौरी अपनी मेहनत तथा लगन के बल पर आई.ए.एस. जैसी कठिन परीक्षा पास कर एक बेहतर समाज के निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाती है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. किसके बिना राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है?

    (क) प्रौढ़ शिक्षा (ख) तकनीकी शिक्षा

    (ग) स्त्री शिक्षा (घ) राजनीति शिक्षा

14. हिंदी तथा संस्कृत आलोचना को समृद्ध करने वाले शुक्ल के विचारों में किसका गहरा असर दिखाई पड़ता है?

    (क) विवेकानंद (ख) रामकृष्ण

    (ग) रामचंद्र शुक्ल (घ) विष्णु प्रभाकर

2.9 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (ग)
4. (क)
5. (ग)
6. (ख)
7. (घ)
8. (घ)
9. (घ)
10. (ख)
11. (ग)
12. (क)
13. (ग)
14. (क)

2.10 सारांश

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'अंधेर नगरी' अत्यंत संक्षिप्त कलेवर का हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण एक नाटक है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक परिवेश पर तीखे कटाक्ष किए गए हैं। ये कटाक्ष समय के साथ पुराने नहीं पड़े बल्कि आज की परिस्थितियों में भी अनुकूल और सटीक हैं। इसके कथानक में कोई विशेष गंभीरता नहीं है। इस नाटक में मूल्यहीन, अमानवीय और अराजक व्यवस्था प्रणाली को इस प्रकार प्रकट किया गया है कि शासन की अंधव्यवस्था सामने आ जाती है।

'अंधेर नगरी' नाटक का कथानक निश्चित और सुविचारित योजना का परिणाम है। लेखक ने अपने युग के लोगों की शिक्षा, मनोवृत्ति और रुचियों को ध्यान में रखकर इस नाटक का कथानक अति सरल और लघु आकार का निश्चित किया था।

टिप्पणी

'अंधेर नगरी' में छः अंक हैं। जो आकार में काफी छोटे हैं। उन्हें अलग–अलग स्थान के आधार पर बांटा गया है। हर अंक एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। पिछली कथा को उसके द्वारा गति प्राप्त होती है और अंतिम अंक में नाटक का चरम उत्कर्ष प्राप्त हो जाता है और चौपट राजा अपनी इच्छा से मरने के लिए फांसी के तख्ते पर जा खड़ा होता है। नाटक के हर अंक के साथ पाठक और दर्शक का मन निरन्तर जिज्ञासा से भरता जाता है और अन्तिम अंक की समाप्ति के साथ ही वह कथानक के निरन्तर बदलाव और चौपट राजा के निर्णय के कारण ठहाका लगाकर हँस पड़ता है। अंकों के बीच कहीं भी कथानक को शिथिलता नहीं आने दी है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की कथावस्तु इतिहास के स्वर्णयुग गुप्तकाल से संबंधित है। इस नाटक के द्वारा तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति का पता चलता है। चंद्रगुप्त की वीरता, ध्रुवस्वामिनी का स्वाभिमान, पुरोहित का धर्मनिष्ठ जागरूक व्यक्तित्व, सभासदों का अन्याय के प्रति विद्रोह, न्यायपूर्ण निर्णय आदि सभी बातें तत्कालीन युग की गौरव गाथा कहती हैं।

ध्रुवस्वामिनी वस्तुतः स्त्री प्रधान नाटक है। इस नाटक को लिखने का उद्देश्य आधुनिक नारी की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हुए एक जटिल प्रश्न का समाधान देना था। ध्रुवस्वामिनी आधुनिक नारी के रूप में समाज की रूढ़ियों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध है।

'दीपदान' एकांकी का प्रारंभ पन्ना और कुंवर उदय सिंह के संवादों से शुरू होता है। एकांकी की शुरुआत में ही चरित्रों द्वारा कहे गए संवाद प्रभावशाली और सधे हुए परिलक्षित होते हैं। पन्ना का ममत्व एकांकी के संवाद से समझा जा सकता है। वह चित्तौड़ के उत्तराधिकारी की संरक्षक है लेकिन एक मां की तरह कुंवर उदय सिंह का पालन–पोषण करती है।

एकांकी की पृष्ठभूमि मध्यकालीन है। सन् 1536 ई. में चितौड़ के राजवंश की कथा के माध्यम से एकांकीकार ने देश–प्रेम के भाव को उजागर करने का प्रयास किया है। इस कारण इसके संवाद परिस्थिति अनुकूल रचे गए हैं। इस एकांकी में प्रेरणादायक संवादों की भरमार है। इस एकांकी का उद्देश्य देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति और अपनी मातृभूमि के लिए जीवन के बलिदान को रेखांकित करना है।

'वापसी' एकांकी भारत–पाकिस्तान के बंटवारे के बाद दोनों देशों में शुरू हुए युद्ध (1965) के पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। यह एकांकी युद्ध के दौरान एक रात की घटना पर आधारित है।

युद्ध की अपनी आवश्यकता हो सकती है, यह एक राजनैतिक मसला है। 'वापसी' का पहला उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है कि दो मुल्कों की सरहदें जमीन के टुकड़े को विभाजित कर सकती हैं लेकिन मनुष्यता को विभाजित नहीं कर सकती हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का निबंध 'करुणा' मनोविकार विषयक निबंधों में उत्कृष्ट है। इस निबंध में उन्होंने 'करुणा' जैसे मनोभाव पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि करुणा की नींव उसी वक्त पड़ जाती है जब बच्चे को

संबंध ज्ञान होने लगता है। बच्चा अपने अनुभवों के द्वारा और फिर 'कार्य–कारण संबंध से अभ्यस्त होने पर' दूसरे के दुखों का अनुमान करता है।

ललित निबंधकार, सांस्कृतिक चेतना के समर्थक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध में बाल जिज्ञासा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समय की मांग, मानव व पशु में भिन्नता, वर्तमान युग में मनुष्य की छटपटाहट, सफलता व चरित्र में अंतर स्पष्ट किया है।

संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है। ठीक इसी प्रकार मानव का भी अतीत, इतिहास की दास्तां बयान करता है। जब मनुष्य असभ्य बनमानुष समान था उसे नाखूनों की आवश्यकता होती थी, वे उसकी जीवन रक्षा का कार्य करते थे। उसके शत्रु को पछाड़ने में नाखूनों की आवश्यकता होती थी। धीरे–धीरे मनुष्य पत्थरों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगा।

'उत्तिष्ठ भारत' नाटक के माध्यम से नाटककार विवेकानंद के सिद्धांतों तथा उनके विचारों को स्थापित करते हैं और स्त्री शिक्षा तथा संगठनात्मक तरीके से गरीबी उन्मूलन की वकालत करते हैं। इस नाटक के जरिये यह संदेश भी संप्रेषित किया गया है कि यदि गरीब परिवार की लड़कियां शिक्षा प्राप्त करने लग जाए, तब देश की उन्नति में वे बड़ी भूमिका निभा सकती हैं। नाटक की मुख्य पात्र गौरी अपनी मेहनत तथा लगन के बल पर आई.ए.एस. जैसी कठिन परीक्षा पास कर एक बेहतर समाज के निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाती है।

2.11 मुख्य शब्दावली

- **करुणा** : दया, अनुकंपा।
- **संसर्ग** : संयोग, मेल।
- **मुरौवत** : उदारता, इनसानियत।
- **कवायद** : कार्य विधि।
- **दुराचार** : निदंनीय आचरण।
- **प्रतिकार** : बदला चुकाना, विरोध करना।
- **शीलवान** : अच्छे आचरण वाला, सुशील।
- **मातहत** : अधीन कर्मचारी।
- **पाषंड** : पाखंड।
- **अवलम्बित** : आश्रित।

2.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'अंधेर नगरी' नाटक के आधार पर चौपट राजा की चारित्रिक विशेषताओं को समझाइए।
2. 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के उद्देश्य का प्रतिपादन कीजिए।

3. 'दीपदान' एकांकी में लेखक ने क्या भाव उजागर किया है?
4. विष्णु प्रभाकर के साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।
5. निबंध 'करुणा' का सार संक्षेप में लिखिए।
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
7. त्रिभुवन शुक्ल का साहित्यिक परिचय दीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. नाटक के तत्वों के आधार पर 'अंधेर नगरी' की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
2. 'ध्रुवस्वामिनी' की तात्विक विवेचना कीजिए।
3. 'दीपदान' एकांकी की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. 'वापसी' एकांकी का सार अपने शब्दों में लिखिए।
5. 'करुणा' निबंध की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए।
6. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबंध की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
7. 'उत्तिष्ठ भारत' नाटक की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

2.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
3. *समकालीन हिंदी साहित्यः विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
6. *हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास,* हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. *छायावाद,* डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
9. *आधुनिक हिंदी साहित्य,* अज्ञेय, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।
10. *हिंदी वाङ्मय बीसवीं शती,* डॉ. नगेंद्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
11. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. रामनिवास शुक्ल, मंचन पब्लिकेशन, रोहतक।
12. *हिंदी का सुबोध इतिहास,* गुलाबराय, लक्ष्मी पब्लिकेशन, आगरा।
13. *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां,* डॉ. शिवकुमार शर्मा।

इकाई 3 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास (नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा वृत्तांत)

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास
3.3 नाटक : इतिहास एवं प्रवृत्तियां
3.4 एकांकी : इतिहास एवं प्रवृत्तियां
3.5 निबंध
3.6 रेखाचित्र
3.7 संस्मरण
3.8 आत्मकथा
3.9 यात्रा वृत्तांत
3.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.11 सारांश
3.12 मुख्य शब्दावली
3.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.14 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

आधुनिक युग को गद्य युग के नाम से जाना जाता है। इसका कारण यह है कि गद्य की जितनी विधाओं का विकास आधुनिक युग में हुआ, उतना पूर्व में कभी नहीं हुआ। हिन्दी गद्य का बहुमुखी विकास भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में ही खड़ी बोली गद्य साहित्य की विविध विधाओं के विकास का ऐतिहासिक कार्य प्रारंभ हुआ। भारतेंदु युग के पूर्व पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर परिव्याप्त हो चुकी थी। साहित्य के क्षेत्र में यह एक आंदोलन का रूप लेने लगा और भारतेंदु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि संवाहक बने। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने इस साहित्यिक आंदोलन का नेतृत्व किया और अपने निबंधों, नाटकों तथा भाषणों के द्वारा जनता में जागरण का अलख जगाना प्रारंभ किया। उनके पीछे साहित्यकारों की एक ऐसी फौज तैयार हुई जिसने न केवल आधुनिक गद्य के रूप को सजाया–संवारा, बल्कि गद्य की विविध विधाओं के द्वारा सांस्कृतिक जागरण के स्वरूप से जनता की चित्तवृत्ति में मौलिक परिवर्तन लाने का प्रयास भी किया। इसलिए भारतेंदुकालीन साहित्य को सांस्कृतिक जागरण का साहित्य कहा जाता है।

द्विवेदी युग में प्रत्येक साहित्यिक विधा का अंतर्वर्ती प्रवाह बन गया। यहां आकर खड़ी बोली विकसित और परिमार्जित रूप में प्रयुक्त होने लगी। इस युग में सभी प्रकार

की गद्य विधाओं का आरंभ एवं विकास हुआ। द्विवेदी युग के पश्चात छायावादी युग में देश राजनीतिक उथल–पुथल से नई करवटें ले रहा था। राष्ट्रीयता के दायित्व बोध से पूरित साहित्यकार भी अपनी लेखनी के माध्यम से जनता को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे थे। इस युग में गद्य विधाओं का यथार्थोन्मुखी विकास हुआ। विभिन्न गद्य विधाओं के प्रणयन में अभूतपूर्व प्रगति हुई। स्वतंत्रता के बाद लेखकों के समक्ष ज्वलंत समस्याएं खड़ी थीं। भूख, महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी आदि की मार से समाज में एक ऐसा माहौल बन गया जहां हर व्यक्ति संघर्ष कर रहा था। अब व्यक्ति का संघर्ष बाहर का न होकर अपने भीतर का था। इसलिए व्यक्ति अंतर्मुखी और स्वकेंद्रित हो गया। फलतः इस युग के लेखकों को रचना की एक व्यापक जमीन मिली। परिस्थितियों की भिन्नता ने लेखन के क्षेत्र में कई नई विधाओं को जन्म दिया। इन नई गद्य विधाओं के प्रणयन से साहित्य का फलक विस्तार लेने लगा। उपन्यास, कहानी, नाटक एवं निबंध तो पहले से ही बहुत लोकप्रिय विधाएं थीं, किंतु कालांतर में संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा, साक्षात्कार, यात्रा–साहित्य, पत्र–साहित्य और डायरी साहित्य भी लोकप्रिय हो गए। वर्तमान में इन विधाओं में नियमित साहित्य सृजन हो रहा है। यद्यपि परिस्थिति परिवर्तन के साथ–साथ इन विधाओं के विषय भी बदलते रहे, किंतु जन–जीवन से इनका गहरा नाता निरंतर ही बना रहा।

कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए भी न केवल सर्वथा नए प्रतीक, उपमान और बिंब प्रयुक्त हुए बल्कि फ्लैश बैक, चेतना प्रवाह आदि शैलियों के प्रयोग में गद्य का वह रूप भी विकसित हुआ जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक चित्रण की नई पद्धति विकसित हुई और मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को अभिव्यक्ति का नया आधार प्राप्त हुआ। शिल्प और शैली की दृष्टि से हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य विकसित होता गया। इस इकाई में हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाओं के उद्‌भव और विकास का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिन्दी गद्य की लोकप्रिय विधाओं से परिचित हो पाएंगे;
- हिन्दी नाटक एवं एकांकी के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;
- हिन्दी निबंध विधा के विकास का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- संस्मरण एवं रेखाचित्र के बीच अंतर स्पष्ट कर पाएंगे;
- आत्मकथा के स्वरूप की पहचान कर पाएंगे;
- यात्रा वृत्तांत के महत्व को प्रतिपादित कर पाएंगे।

3.2 हिन्दी गद्य विधाओं का उद्‌भव और विकास

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी में गद्य साहित्य इतनी न्यून मात्रा तथा अविकसित दशा में मिलता है कि वह प्रायः नगण्य–सा समझा जाता है। गद्य के विकास में देरी को लेकर

विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रत्येक भाषा के समान हिन्दी में भी पद्य का विकास पहले हुआ। संस्कृत तथा परवर्ती भाषाओं में पद्य का ही महत्व था, हिन्दी में भी इसी का अनुकरण किया गया। किंतु यह भ्रामक धारणा है। पद्य का विकास होने का कारण इसका भाव लालित्य माना जाता है, जबकि गद्य को शुष्क एवं नीरस माना जाता है।

वस्तुतः साहित्य में 'काव्य' संज्ञा का प्रयोग गद्य एवं पद्य दोनों के लिए ही किया गया। साथ ही गद्य को कवियों की कसौटी भी माना गया है जैसे– 'गद्यं कविनामं निकषं वदन्ति'। इस प्रकार गद्य की उपादेयता और अधिक बढ़ जाती है।

यहां प्रश्न है कि संस्कृत की गद्य परंपरा परवर्ती भाषाओं में विकसित क्यों नहीं हो पाई? इसका उत्तर यह है कि जब किसी युग विशेष में जीवन का दृष्टिकोण बौद्धिकतापरक यथार्थवादी, वस्तुवादी एवं व्यावहारिक अधिक होता है, तो उससे गद्य को अधिक प्रोत्साहन मिलता है, जबकि इसके विपरीत जीवन में भावुकता, तर्कशून्यता, आध्यात्मिकता एवं काल्पनिकता की प्रतिष्ठा होने से अभिव्यक्ति पद्य का माध्यम बनती है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में मुद्रण के प्रचलन, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना धार्मिक एवं बौद्धिक आंदोलनों के उत्थान तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार के कारण जीवन में जैसे–जैसे बौद्धिकता, ज्ञान, तर्क एवं चिंतन की प्रतिष्ठा बढ़ी, वैसे–वैसे गद्य साहित्य का भी विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात तो हिन्दी में गद्य साहित्य की इतनी उन्नति हुई कि इतिहासकारों ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य निम्न रूपों में मिलता है– (1) राजस्थानी गद्य (2) मैथिली गद्य (3) ब्रज भाषा गद्य तथा (4) खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

1. **राजस्थानी गद्य**– राजस्थानी गद्य की प्राचीनतम रचनाएं तेरहवीं शताब्दी की हैं, जिनमें 'आराधना', 'अतिचार' एवं 'बाल शिक्षा' उल्लेखनीय हैं। ये रचनाएं मुनि जिनविजय द्वारा 'प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ' में संगृहीत हैं। इन रचनाओं को हिन्दी गद्य की प्रारंभिक अवस्था की सूचक कृतियों के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। 14वीं सदी में रचित अनेक राजस्थानी गद्य रचनाएं अगरचंद नाहटा के पास सुरक्षित हैं। इनमें 'धनपाल कथा' व तत्व विचार प्रमुख हैं। इसी प्रकार 15वीं सदी की एक अन्य रचना 'पृथ्वीचंद्र–चरित' का भी विवरण है। राजस्थानी गद्य की भाषा–शैली में पर्याप्त अंतर मिलता है।
2. **मैथिली गद्य**– मैथिली गद्य की भी दीर्घ परंपरा मिलती है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ ज्योतिरीश्वर कृत 'वर्ण–रत्नाकर' है, जिसका रचनाकाल 1324 ई. माना जाता है। यह वस्तुतः भारतीय काव्यशास्त्र, कलाशास्त्र एवं ज्ञान–विज्ञान का कोश है, जिसमें विभिन्न विषयों का वर्णन काव्यशास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। प्रसिद्ध गीतिकार विद्यापति ठाकुर ने अपनी दो गद्य रचनाओं 'कीर्तिलता' एवं 'कीर्तिपताका' द्वारा गद्य–परंपरा को आगे बढ़ाया। यह गद्य–पद्य मिश्रित ऐतिहासिक काव्य है। मैथिली गद्य में तत्सम शब्दों की बहुलता है।

3. **ब्रज भाषा गद्य**– ब्रज भाषा के गद्य–साहित्य को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– (1) मौलिक ग्रंथ, (2) टीका साहित्य तथा (3) अनूदित ग्रंथ। मौलिक ग्रंथ में गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' प्रमुख है। ब्रज भाषा गद्य के विकास में सर्वाधिक योगदान पुष्टि–संप्रदाय के भक्त लेखकों ने दिया। गोस्वामी विट्‌ठलनाथ द्वारा रचित 'श्रृंगाररस–मंडल', 'यमुनाष्टक', 'नवरत्न सटीक' प्रमुख हैं। चतुर्भुज दास द्वारा रचित 'षटऋतु की वार्ता', गोकुलनाथ द्वारा रचित 'चौरासी वैष्णवनें की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवनें की वार्ता' आदि प्रमुख हैं।

   वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के कुछ भक्तों ने भी गद्य लिख कर रचनाएं प्रस्तुत की हैं, जिनमें नाभादास कृत 'अष्टयाम', यशवंतसिंह कृत 'सिद्धांत बोध' आदि उल्लेखनीय हैं। कुछ लेखकों ने काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर विचार करने के उद्देश्य से भी गद्यात्मक रचनाएं प्रस्तुत कीं।

   टीका साहित्य के अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य प्रकार के ग्रंथों की टीकाओं के रूप में लिखित गद्य रचनाएं ब्रज भाषा में मिलती हैं। इनमें प्रमुख हैं– शिक्षाग्रंथ की टीका, हित चौरासी की टीका, रस रहस्य सटीक, बिहारी सतसई टीका, भाषामृत, अलंकार रत्नाकर तथा भक्तमाल की टीकाएं आदि।

   ब्रज भाषा गद्य में संस्कृत तथा अन्य भाषाओं से अनूदित ग्रंथ भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। इन अनुवाद ग्रंथों की भाषा–शैली पूर्वोक्त टीकाओं की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्रवाहपूर्ण है। अस्तु ब्रज भाषा में गद्य–साहित्य पर्याप्त है पर उसमें साहित्यिकता एवं कलात्मकता की दृष्टि से उच्चकोटि का साहित्य नहीं है।

4. **खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य** – खड़ी बोली गद्य का प्रारंभिक रूप दक्षिणी–साहित्य में मिलता है। दक्षिणी के साहित्यकारों ने अपनी बोली को दक्खिनी हिन्दी, हिंदवी, देहलवी, जबान हिंदुस्तान आदि नामों से पुकारा है। किंतु यह खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य है। दक्षिण के गद्य लेखकों में गेसूदराज, शाह बुरहानुद्‌दीन वजही, शम्सुल उश्शक है।

   उत्तरी भारत में खड़ी बोली गद्य की परंपरा का सूत्रपात सत्रहवीं–अठारहवीं सदी से होता है। खड़ी बोली गद्य की प्राचीनतम रचना 'चंद छंद बरनन की महिमा' है। अठारहवीं सदी की दो प्रसिद्ध रचनाएं 'भाषायोगवशिष्ठ' एवं 'पद्‌मपुराण' हैं। इनके रचयिता क्रमशः रामप्रसाद निरंजनी तथा पं. दौलतराम हैं।

   उन्नीसवीं शताब्दी के चार प्रमुख लेखक मुंशी सदासुखलाल, इंशाअल्ला खां, लल्लूलाल तथा सदल मिश्र हैं। सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की। सदल मिश्र द्वारा रचित 'नासिकेतोपाख्यान', इंशा अल्ला खां द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूलाल की 'माधवविलास', 'बैताल पचीसी', और 'प्रेमसागर' प्रसिद्ध हैं। लल्लूलाल की भाषा उर्दू–फारसी मिश्रित है, जबकि सदल मिश्र की रचना संस्कृतनिष्ठ है। इंशाअल्ला खां की रचना 'हिंदवी' से प्रभावित है।

ईसाई–प्रचारकों का योगदान

ईसाई–प्रचारकों ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया है। विदेशी पादरियों ने भी इस कार्य में लेखकों का सहयोग प्राप्त किया तथा विभिन्न विषयों पर शताधिक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ईसाई–प्रचारकों ने गद्य–शैली के विकास की दृष्टि से भले ही विशेष सफलता प्राप्त न की हो, किंतु हिन्दी गद्य को विषय–विस्तार प्रदान करने एवं गद्य लेखन के प्रयासों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया।

ब्रह्म समाज का योगदान

हिन्दी गद्य के विकास में ब्रह्म समाज एवं राजा राममोहन राय का महत्वपूर्ण योगदान था। राजा राममोहन राय ने वेदांत–सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा 'बंगदूत' नामक पत्रिका निकाली। उन्होंने बंगाली होते हुए भी हिन्दी को अपनाकर अपनी व्यापक राष्ट्रीयता का भी परिचय दिया। उन्होंने 'सुधाकर', 'बुद्धिप्रकाश' आदि पत्रिकाएं निकालीं।

दो राजाओं का योगदान

आधुनिक काल के आरंभिक गद्य लेखकों में दो व्यक्तियों राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद तथा लक्ष्मणसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शिवप्रसाद सितारेहिंद ने 'बनारस अखबार' निकाला। उनका झुकाव उर्दू मिश्रित हिन्दी की ओर था। उनके प्रारंभिक ग्रंथ हैं– 'मानवधर्मसार', 'उपनिषदसार' आदि। राजा लक्ष्मणसिंह विशुद्ध हिन्दी के समर्थक थे। उन्होंने ब्रज भाषा को प्रोत्साहित किया।

आर्य समाज का योगदान

स्वामी दयानंद सरस्वती की सामाजिक संस्था आर्य समाज ने भी हिन्दी गद्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। दयानंद सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना करके हिन्दी के विकास में योगदान दिया। आगे चलकर आर्य समाज ने पत्र–पत्रिकाओं, प्रवचनों, उपदेशों, जीवन–चरितों के माध्यम से हिन्दी साहित्य प्रस्तुत किया। वस्तुतः आर्य समाज ने गद्य की विभिन्न विधाओं एवं उनके विभिन्न माध्यमों को अपने प्रचार का साधन बनाते हुए हिन्दी गद्य साहित्य की उन्नति में पर्याप्त योगदान दिया।

भारतेंदु युग

हिन्दी गद्य के विकास में तथा भारतेंदु युग की स्थापना में भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रमुख स्थान है। भारतेंदु जी ने गद्य–शैली को परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हुए उसका मार्ग निश्चित किया तो दूसरी ओर उन्होंने निबंध, नाटक, इतिहास, आलोचना, संस्मरण, यात्रा–विवरण आदि गद्य रूपों की परंपरा का प्रवर्तन किया। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों– प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्‌ट, श्री निवासदास, राधाकृष्ण दास, सुधाकर द्विवेदी, कार्तिकप्रसाद खत्री, राधाचरण गोस्वामी, बद्रीनारायण चौधरी, बालमुकुंद गुप्त आदि ने भी गद्य के विकास में विभिन्न प्रकार से योगदान दिया।

द्विवेदी युग

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में नई गति महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयासों से आई। वे सन् 1900 में 'सरस्वती' के संपादक नियुक्त हुए। द्विवेदी जी ने भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का कार्य किया। गद्य के क्षेत्र में भाषा की शुद्धता, शब्दरूपों की एकरूपता, व्याकरण के

दोष–परिष्कार आदि की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने ऐतिहासिक, राजनीतिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और भौगोलिक विषयों पर अपने निबंध लिखे। द्विवेदी जी के समकालीन अन्य गद्य लेखकों में डॉ. श्यामसुंदर दास, माधवप्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पद्‌मसिंह शर्मा, मिश्रबंधु, बालमुकुंद गुप्त, गोपालराम गहमरी, लाला भगवानदीन प्रमुख हैं।

शुक्ल युग

हिन्दी गद्य के इस उत्कर्ष में जहां निबंध–समालोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, गुलाबराय जैसे प्रतिष्ठित लेखक थे, तो नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद जैसी उत्कृष्ट प्रतिभा थी, कथा साहित्य में प्रेमचंद जैसे शिखरस्थ साहित्यकार थे। गद्य की प्रांजलता, प्रौढ़ता और सामर्थ्य की दृष्टि से शुक्ल युग में महत्वपूर्ण कार्य हुए। उक्त लेखकों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, राहुल सांकृत्यायन, वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, सेठ गोविन्ददास, हरिकृष्ण प्रेमी ने विशेष योगदान दिया है।

शुक्लोत्तर युग

शुक्लोत्तर युग में हिन्दी गद्य का विविधमुखी विस्तार हुआ, उसका आकलन कर पाना सीमित पंक्तियों में संभव नहीं। समाचारपत्रों एवं पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिन्दी गद्य में निरंतर श्रीवृद्धि होती गई। वर्तमान में हिन्दी गद्य के क्षेत्र में विभिन्न गद्य शैलियों का विकास हुआ। नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी के अतिरिक्त समालोचना, रिपोर्ताज, गद्यगीत, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा–साहित्य, पत्र–साहित्य हिन्दी गद्य की अन्य लोकप्रिय विधाएं हैं। इन विधाओं की प्रगति हो रही है तथा उनके विकास की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

वस्तुतः हिन्दी एक जीवित भाषा है जिसके बोलने वालों में पर्याप्त प्रतिभा, अद्‌भुत कर्मठता एवं निरंतर विकास की संभावनाएं हैं।

स्वाधीनता आंदोलन और हिन्दी गद्य साहित्य

साहित्य समाज का सच्चा प्रतिबिंब होता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक परिस्थिति साहित्य को दिशा देती है। हिन्दी साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। स्वाधीनता को लेकर किए गए संघर्ष ने साहित्य को दिशा दी, साथ ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए सामाजिक परिवर्तन भी साहित्य को प्रभावित करते रहे। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जन–जन में वैचारिक अभियान जगाने में तत्कालीन साहित्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सच्ची क्रांति तो वैचारिक क्रांति थी, विचारों को झकझोरने और विदेशी सत्ता के खिलाफ एकजुट होने का काम इस काल में रचे गद्य ने किया। जिसके फलस्वरूप कई नए काव्यान्दोलन दिखाई दिए। साथ ही यथार्थवादी गद्य साहित्य भी प्रकाश में आया।

सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। 1757 के प्लासी युद्ध, 1764 के बक्सर युद्ध से अंग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ें मजबूत कर लीं, तत्पश्चात 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के विफल होने के बाद अंग्रेज सशक्त हो गए थे। 1858 के बाद भारत का शासन ब्रिटेन की महारानी

के अधीन हो गया। इस बीच भारत का शासन चलाने के लिए निरंतर वायसराय नियुक्त किए गए, साथ ही 1909, 1919, 1935 के अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश शासन भारत पर अपनी सत्ता निरंतर मजबूत कर रहा था। ब्रिटिश शासन की समाप्ति हेतु क्रांति और अहिंसा दोनों मार्ग अपनाए जा रहे थे। एक ओर जहां भगतसिंह, राजगुरु, चंद्रशेखर आजाद व सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी सक्रिय थे, वहीं दूसरी ओर महात्मा गांधी, मौलाना आजाद एवं वल्लभभाई पटेल भी सत्य और अहिंसा के मार्ग पर अडिग थे। गांधी जी ने अहिंसा को शस्त्र बनाकर असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन का आह्‌वान किया। सहित्य द्वारा भी प्रकारांतर से जनजागरण की मशाल जगाने का कार्य जारी था। एक ओर अंग्रेजी और उर्दू को मान्यता देने की वकालत हो रही थी तो दूसरी ओर खड़ी बोली गद्य जन–जन तक अपनी पहुंच बना रहा था।

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के निर्माण में महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान करने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की महत्वपूर्ण भूमिका है। द्विवेदी युग में आकर स्वाधीनता आंदोलन अधिक शक्तिशाली हो गया था। भारतीय राजनीति में यह नौरोजी, गोखले और तिलक का युग था। पूरी भारतीय चेतना ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादी शक्तियों को देश से बाहर खदेड़ देने के लिए संकल्पबद्ध रूप में सामने आई। भारतीयता की तलाश में राम, कृष्ण, शिवजी आदि को अपनाकर एक नए रूप में साहित्य प्रकट हुआ। नारी जागरण संबंधी आंदोलनों की सीधी प्रतिध्वनि 'प्रियप्रवास', 'मिलन', 'यशोधरा', 'साकेत' जैसे काव्यों में सुनाई दी। काव्य से होती हुई स्वाधीनता आंदोलन की यह लौ गद्य की ओर प्रवृत्त हुई।

महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका न केवल हिन्दी नवजागरण की दिशा में मील के पत्थर के समान रही अपितु भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को गति व बल देने में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा। नवजागरण की दिशा में महावीर प्रसाद द्विवेदी की सबसे बड़ी देन काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी के प्रतिष्ठित करना है। गद्य और पद्य दोनों के लिए खड़ी बोली हिन्दी को सर्वमान्य बनाने के साथ–साथ उन्होंने खड़ी बोली गद्य को व्याकरणसम्मत रूप दिया, एक मानक भाषा के रूप में उसे आकार प्रदान किया। इसके अलावा हिन्दी पाठकों का मानसिक विकास कर उन्हें समसामयिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, आर्थिक हलचलों के प्रति जाग्रत करने का कार्य भी महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया।

आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी साहित्य को अनेक ऐसे रचनाकार प्रदान किए जिनके साहित्य ने स्वाधीनता आंदोलन में रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य किया। मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल व प्रेमचंद जैसे हिन्दी के पुरोधा महावीर प्रसाद द्विवेदी की अनुपम देन हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय जनमानस में अपनी अस्मिता व स्वाभिमान का बोध कराकर उन्हें हीन भाव से मुक्त किया। वहीं प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन के जो चित्र साकार हुए और सामाजिक विद्रोह के स्वर उनकी कहानियों व उपन्यासों में सुनाई दिए, वह द्विवेदी जी की ही प्रेरणा के परिणाम थे।

प्रेमचंद का गद्य जीवन की कहानी कहता हुआ आगे बढ़ता रहा है। एक आदमी के जीवन के जितने भी आयाम हो सकते हैं उन सबको प्रेमचंद का गद्य ताकता हुआ चलता रहा। आज भी देश की अर्थव्यवस्था कृषि एवं गांवों पर टिकी हुई है। प्रेमचंद ने गांवों की समस्याओं को सबसे अधिक उठाया है। वे ऐसे लेखक हैं जिन्होंने भाषा को गढ़ा है। प्रेमचंद ने साहित्य का आस्वाद बदला। हिन्दी की जहां–जहां पहुंच होगी बिना प्रेमचंद के वहां भारत के ग्रामीणों के जीवन को समझना आसान नहीं होगा।

महात्मा गांधी के उद्‌बोधन पर प्रेमचंद ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। बाद में उन्होंने 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन किया। 'हंस' उनकी अपनी पत्रिका थी। प्रेमचंद ने लगभग 300 कहानियां और 14 उपन्यास लिखे। उनके उपन्यासों में 'गोदान', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'मनोरमा', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'वरदान', 'गबन' और 'सेवासदन' हिन्दी में और उर्दू में 'बाजार–ए–हुस्न' शामिल हैं। 'मंगलसूत्र' नामक अपनी कृति को वे पूरा नहीं कर सके। उनकी कहानियों में 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह', 'मंत्र', 'नशा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'बूढ़ी काकी', 'बड़े भाई साहब', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दारोगा', 'रामलीला', 'चोरी', 'जुर्माना', 'सवा सेर गेहूं', अलग्योझा, 'वज्रपात', 'ठाकुर का कुआं', 'दूध का दाम' और 'कफन' आदि प्रमुख हैं। उनके नाटकों में कर्बला व तजुर्बा हैं। वे एक सफल पत्र लेखक एवं पत्रकार भी थे।

प्रेमचंद ने भारतीय किसान के हित को केंद्र में रखकर सामंती साम्राज्वादी शोषण की जड़ों को पहचानते हुए अपना लेखन किया। बनारस से मासिक 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया और इस पत्रिका के लिए उन्होंने अपना जीवन खपा दिया। अभाव, बीमारी, अंग्रेज सरकार का विरोध, क्या–क्या उन्हें नहीं झेलना पड़ा।

उधर जयशंकर प्रसाद के माध्यम से 'भारतीयता' भिन्न सांस्कृतिक सार के रूप में निर्मित हो रही थी। 'हंस', 'इंदु', 'हिन्दी गल्प माला' जैसी पत्रिकाएं आधुनिक भारत की पुनर्रचना के शक्ति स्रोतों को अपने आदर्शों के अनुरूप खोज रही थीं। बीसवीं शताब्दी के इस आरंभिक दौर के बनारस में विविध साहित्यिक हलचलें थीं। काशी में उस समय मैथिलीशरण गुप्त, जैनेन्द्र, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे रचनाकारों का आना–जाना और परस्पर संवाद था। इसके अतिरिक्त शिवपूजन सहाय, उग्र, शांतिप्रिय द्विवेदी और विनोद शंकर व्यास जैसे रचनाकार यहां थे। साहित्य और यथार्थ के रिश्ते को समझने की बेचैनियों के कई रूप थे। प्रसाद और जैनेन्द्र में ही नहीं, प्रेमचंद में भी यथार्थ और यथार्थवाद संबंधी उलझनें बनी हुई थीं।

दूसरी तरफ स्वाधीनता आंदोलन में विशेष भूमिका निभाने वाले हिन्दी पत्रकारिता जगत के नींव के पत्थर 'आज' व 'प्रताप' जैसे पत्रों के संपादक क्रमशः बाबूराव विष्णु पराड़कर व गणेश शंकर विद्यार्थी ने भी महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा पाकर पत्रकारिता जगत में प्रवेश किया। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने स्वयं स्वीकार किया है कि– "सन् 1906 से, जब मैंने स्वयं पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, प्रतिमास 'सरस्वती' का अध्ययन मेरा एक कर्तव्य हो गया। मैं 'सरस्वती' देखा करता था, संपादन सीखने के लिए।" गणेश शंकर विद्यार्थी ने तो अपना साहित्यिक जीवन 'सरस्वती' के सहायक संपादक की हैसियत से ही प्रारंभ किया। इन सब लोगों द्वारा ज्वलंत मुद्दों पर लिखे गए आलेखों ने हिन्दी गद्य के प्रसार को नई दिशा दी।

द्विवेदी जी मुसलमानों, अछूतों और स्त्रियों में शिक्षा प्रसार के समर्थक थे। 'सरस्वती' में अनेक लेख इस संदर्भ में छपते रहते थे। स्त्रियों और अछूतों की तरह भारतीय समाज के एक अभिन्न व उपेक्षित अंग– आदिवासियों से संबंधित अनेक लेख 'सरस्वती' में उन्होंने प्रकाशित किए। वे जानते थे कि प्राचीन संस्कृति पर गर्व राष्ट्रीय आत्मसम्मान का अभिन्न अंग है और स्वाधीनता आंदोलन के लिए यह आत्मसम्मान की भावना अत्यंत मूल्यवान है। इसीलिए 'वेद' शीर्षक निंबध में वे लिखते हैं–"वेद हम लोगों का सबसे श्रेष्ठ और सबसे पुराना ग्रंथ है। वह इतना पुराना है कि ईसाइयों का बाइबिल, मुसलमानों का कुरान, पारसियों की जेंद–अवेस्ता और बौद्धों के त्रिपिटक आदि सारे धर्मग्रंथ प्राचीनता में उसकी बराबरी नहीं कर सकते।" इसी प्रकार उन्होंने पुरातत्व संबंधी अनेक लेख लिखे। इनके माध्यम से उन्होंने भारतीयों की सोई अस्मिता और स्वाभिमान को जाग्रत करने का महती कार्य किया। उन्होंने भारत के स्वर्णिम अतीत का परिचय करवाते हुए भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को रेखांकित किया, जिससे भारतीय नवजागरण को खाद–पानी मिला।

खड़ी बोली में गद्य साहित्य लिखे जाने से भारत की भाषा समस्या का समाधान तो हुआ ही साथ ही इसने साहित्य को दरबारी संस्कृति की कारा से मुक्त कर लोकजागरणवादी परंपरा से जोड़ा। हिन्दी साहित्य में साहित्येतर विषयों के माध्यम से भारतीय जनमानस को झकझोरकर स्वदेशाभिमान जाग्रत किया।

'सरस्वती' के एक लेख में वे कहते हैं–"यूरोप के कुछ मदांध मनुष्य समझते हैं कि परमेश्वर ने एशिया के निवासियों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए ही उनकी सृष्टि की है। जिस एशिया ने बुद्ध, राम, कृष्ण, ईशा, कन्फ्यूशियस, रवींद्रनाथ और जगदीश चंद्र बसु को उत्पन्न किया है, उसने दूसरों की गुलामी का ठेका नहीं ले रखा है।" इस प्रकार जो कार्य तत्कालीन समाज सुधारक व राजनेता अपने सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों के माध्यम से कर रहे थे, वही कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने साहित्य के माध्यम से कर रहे थे। उनके लेखों ने तत्कालीन गद्य लेखकों को उत्प्रेरित किया एवं उनका मार्गदर्शन किया।

रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक चेतना का विकास स्वाधीनता आंदोलन के साथ ही प्रारंभ हुआ। 1857 का महासंग्राम, प्रेमचंद–निराला–रामचंद्र शुक्ल की आकांक्षाएं, प्रगतिशील आंदोलन और मार्क्सवादी विचारधारा आदि– वे बुनियादी स्रोत हैं, जिनसे उनकी आलोचनात्मक दृष्टि निर्मित हुई थी। उनकी नवजागरण की धारणा बुनियादी तौर पर साम्राज्यवाद विरोधी धारणा है। उन्होंने आजीवन इस साम्राज्यवादी प्रचार का विरोध किया कि अंग्रेज भारत का विकास करने आए थे या उनकी कोई प्रगतिशील भूमिका थी। गद्य के सिलसिले में उनका लेख 'शैलीकार बालमुकुंद गुप्त' महत्वपूर्ण है। गद्य में वह किन विशेषताओं को आकर्षक मानते थे, इसका पता इस निबंध से चलता है। उन्होंने लिखा है, "वे (बालमुकुंद गुप्त) शब्दों के अनुपम पारखी थे। हिन्दी के साधारण शब्द उनके वाक्यों में नई अभिव्यंजना शक्ति से दीप्त हो उठते थे।" इसके अलावा, "उनके वाक्यों में सहज बांकपन रहता है। उपमान ढूंढ़ने में उन्हें श्रम नहीं करना पड़ता। व्यंग्यपूर्ण गद्य में उनके उपमान, विरोधी पक्ष को भी परम हास्यास्पद बना देते हैं।" इस शैली का उपयोग भी उनके दिमाग में रहता है। गुलाम भारत में उनकी

भूमिका की निशानदेही करते हुए रामविलास जी लिखते हैं कि–"अपने व्यंग्य शरों से उन्होंने प्रतापी ब्रिटिश राज्य का आतंक छिन्न–भिन्न कर दिया। साम्राज्यवादियों के तर्कजाल की तमाम असंगतियां उन्होंने जनता के सामने प्रकट कर दीं। अपनी निर्भीकता से उन्होंने दूसरों में यह मनोबल उत्पन्न किया कि वे भी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध बोलें'। इस दृष्टि से प्रतापनारायण मिश्र के निबंध भी तत्कालीन गद्य साहित्य के श्रेष्ठ उदाहरण कहे जा सकते हैं।

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का उदय भी ऐसे युग और परिवेश में हुआ जब देश को उनकी परम और उत्कट आवश्यकता थी। राजा राममोहन राय से आरंभ हुए भारतीय नवजागरण का उन्नयन दिनकर जैसे विलक्षण शलाका–पुरुष द्वारा हुआ। दिनकर का योगदान न केवल पराधीन भारत के प्राणों में पौरुष फूंकने वाले कवि के रूप में है, बल्कि एक गंभीर गद्य–लेखक और वैश्विक मानवता के महान चिंतक के रूप में भी रहा है। हिन्दी के 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', और 'रश्मिरथी' समेत 33 काव्य कृतियों के रचयिता और 'राष्ट्रकवि' के विशेषण से विभूषित डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' एक उत्कृष्ट गद्यकार भी थे। उनकी पुस्तकों की कुल संख्या 60 बताई जाती है, जिनमें सत्ताईस गद्य ग्रंथ हैं। इनमें आधी पुस्तकों में निबंध या निबंध के ढंग की चीजें संकलित हैं। दिनकर जी के लगभग एक सौ पच्चीस निबंध संकलित हैं। दिनकर जी सन् 1940 के आसपास गद्य लेखन की ओर गंभीरता से प्रवृत्त हुए। उनका पहला संकलन 'मिट्‌टी की ओर' 1946 में प्रकाशित हुआ।

गद्य में जहां 'संस्कृति के चार अध्याय' उनकी शीर्षस्थ कृति है, वहीं काव्य में 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' अपने युग की कविता के प्रतिमान हैं। भारतीय नवजागरण व भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से दिनकर का सृजन प्रभावित होता है एवं उसके एक अंग के रूप में उन्हें प्रभावित भी करता है। विज्ञान के अंधाधुंध विकास और उपनिवेशवाद–साम्राज्यवाद के चरम दुष्परिणाम, द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में मानवता के सम्मुख आई चुनौतियों से जूझने का साहस भी दिनकर के सृजन में मौजूद है। शौर्य, सौंदर्य, वाग्मिता, शब्द–विवेक दिनकर के कृतित्व की मूल पहचान है। चिरंतन भारतीय मनीषा और बहुलता, उदारतावादी, लोकतांत्रिक सोच, साम्प्रदायिक भावना और सामाजिक न्याय की पुरजोर आवाज उठाता उनका कृतित्व भारतीय सृजन–कोश की अक्षय निधि है।

ऐतिहासिक परिदृश्य में नवजागरण कई स्तरों पर हुआ। उत्तर–मध्यकाल के रीतिवादी दौर में पंडितराज जगन्नाथ ने अपनी रचना के साथ–साथ अपने जीवन संघर्ष से काशी के कर्मकांड विरोध का अध्याय लिखा किंतु यह संभवतः समूचे इतिहास का यथास्थितिवाद को मजबूती देने वाला दौर था। यही कारण था कि भारतेंदु ने अपना सबसे पहला और जरूरी कार्य, रीतिवाद विरोध के रूप में निश्चित किया था। भारतेंदु हिन्दी नवजागरण की बहुत मजबूत कड़ी थे। 'भारत दुर्दशा' का जैसा सजीव चित्रण उन्होंने किया वह अपूर्व एवं अद्वितीय है। भारतेंदु मंडल की छटा देखिए– बालकृष्ण भट्‌ट, प्रेमधन, राधाचरण गोस्वमी, प्रताप नारायण मिश्र– सभी गहरी रचनात्मक मैत्री में अभिन्न। साहित्य उनके लिए यश साधना या आत्म प्रकाशन भर नहीं था बल्कि समाज को भीतर से बदलने वाला हथियार था। 'कवि वचन सुधा', 'बाल बोधिनी', 'हरिश्चन्द्र

चंद्रिका', 'काशी पत्रिका' जैसी पत्र–पत्रिकाएं साहित्यिक–सामाजिक मुद्दों पर सक्रिय और गंभीर थीं। भारतेंदु मंडल के रूढ़िवाद विरोध का आलम यह कि 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक में एक चरित्र अभिनीत करते हुए बालकृष्ण भट्‌ट ने पिता का श्राद्ध कर दिया था, यह घटना कल्पनातीत है कि उन्हें कितना अस्वीकार, कितनी निंदा झेलनी पड़ी होगी।

उस युग के लेखकों में समाज की पुनर्रचना के लिए रूढ़िभंजन के ऐसे साहस की कमी नहीं थी। साम्राज्यवाद विरोध के साथ भारत की स्वाधीनता की बड़ी स्पष्ट आकांक्षा भारतेंदु में व्यक्त हुई है कि– 'स्वतत्व निज भारत गहें'। एक अलख जगाई जा रही थी जिसमें निज भाषा उन्नति सहित आर्थिक–सामाजिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के साथ कितनी संस्थाएं, अखबार, पत्रिकाएं, रंगमंच, लोकविधाएं आदि साम्राज्यवाद के विरोध के स्वर को दूर तक ले जा रहे थे। यह विरासत अपने पूरे अग्रगामी सार के साथ प्रेमचंद, प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, शिव प्रसाद मिश्र और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसी विभूतियों में फलीभूत हुई है। इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौरान गद्य साहित्य पर्याप्त मात्रा में पुष्पित और पल्लवित हुआ।

देश विभाजन और हिन्दी गद्य साहित्य

सन् 1947 का सूर्योदय भारत के लिए आजादी लेकर आया, किंतु साथ ही भारत विभाजन की विभीषिका को भी राष्ट्र को झेलना पड़ा। देश दो हिस्सों, भारत और पाकिस्तान में बंट गया। फलस्वरूप अनेक भीषण दंगे हुए। सन् 1948, 1965 एवं 1971 में हुए भारत–पाक युद्ध इसी विभाजन के परिणाम रहे।

स्वाधीनता आंदोलन एवं देश विभाजन की त्रासदी से तत्कालीन गद्य साहित्य अछूता न रहा और साहित्य ने समाज को निरंतर दिशा देने का कार्य भी किया। स्वाधीनता आंदोलन के शुरूआती दौर में हिन्दी साहित्य में 'भारतेंदु युग' रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के कुशल नेतृत्व में भारतेंदु मंडल के लेखकों ने राष्ट्रभक्ति, समाजसुधार, नवजागरण का संदेश दिया। 'भारत दुर्दशा' कृति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'द्विवेदी युग' को दिशा दी तथा भाषा के परिष्कार का कार्य किया। बालमुकुंद गुप्त, बालकृष्ण भट्‌ट, किशोरीलाल गोस्वामी ने अनेक निबंधों, उपन्यासों व कहानियों का लेखन किया। तत्पश्चात जयशंकर प्रसाद व प्रेमचंद का साहित्य में अवतरण हुआ। जयशंकर प्रसाद के नाटकों जैसे– चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, ध्रुवस्वामिनी आदि में इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय मिलता है। प्रसाद जी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने नाटकों को माध्यम से राष्ट्रजागरण एवं भारतीय संस्कृति के गौरव को स्थापित करने का प्रयास किया। साहित्य एवं समाज दोनों ही प्रसाद के आभारी रहेंगे। प्रेमचंद जिन्हें 'कथा सम्राट' एवं 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि दी जाती है, स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। प्रेमचंद की कहानियां तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का सही प्रतिबिंब हैं। उनके उपन्यासों जैसे गोदान, गबन, कर्मभूमि, रंगभूमि आदि में शोषक–शोषित संबंध, राष्ट्रीय आंदोलन व क्रांति की चेतना दिखाई देती है। इसी प्रकार उनकी कहानियां जैसे मंत्र, कफन, पूस की रात, अलग्योझा, दो बैलों की जोड़ी, आत्माराम, बड़े घर की बेटी, ईदगाह आदि भी तत्कालीन समाज का सच्चा चित्र हैं।

इसी कड़ी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि आलोचकों ने आलोचना के क्षेत्र में निरंतर कार्य किया।

छायावादी लेखकों ने तत्कालीन मनुष्य की पीड़ा और निराशा का अंकन किया। इस काल को सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रयास कह सकते हैं। तत्पश्चात प्रगतिवादी काल में साहित्यिक आंदोलन हुआ जिसमें मानव को उसकी यथार्थ दशा से अवगत कराने के अनन्तर प्रगति अथवा उत्कर्ष की प्रेरणा दी गई। प्रगतिवादी साहित्यिक आंदोलन का उद्देश्य साहित्य में यथार्थवाद की स्थापना करना था। जीवन और समाज की वास्तविकता को साहित्य में यथावत चित्रित कर नवीन समाज, नए मानव और नत्य साहित्य की सर्जना करना ही इसका अभीष्ट था। सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष, यथार्थवाद पर बल, विश्वबंधुत्व का भाव, साम्यवादी व्यवस्था का यशोगान, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद तथा सामंतवाद का विरोध तथा सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति इस काल की प्रधान विशेषताएं हैं।

स्वतंत्रता के उपरांत हिन्दी साहित्य में वस्तुगत वैविध्य आया। शिल्प की दृष्टि से अनेक नए प्रयोग हुए। स्वातंत्रयोत्तर नाटक साहित्य में पौराणिक ऐतिहासिक, समस्या नाटक, एकांकी लिखे गए। हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'शपथ', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'दशाश्वमेघ', उदयशंकर भट्‌ट का 'शक विजय', गोविंदवल्लभ पंत कृत 'ययाति', विष्णु प्रभाकर कृत 'दृष्टि की खोज', लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'मादा कैक्टस', मोहन राकेश कृत 'लहरों के राजहंस', 'आधे–अधूरे, तथा 'आषाढ़ का एक दिन' प्रमुख हैं।

विभाजन के बाद नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे', शिवप्रसाद सिंह का 'घाटियां गूंजती हैं', मन्नू भंडारी कृत 'बिना दीवारों का घर', भीष्म साहनी का 'तमस' तथा 'हानूश', सुरेंद्र वर्मा का 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक', श्रीमती कुसुम कुमार का 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

स्वतंत्रता के बाद के एकांकीकारों में उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्‌ट, भगवती चरण वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर, हरिकृष्ण प्रेमी प्रसिद्ध हैं। निबंध लेखकों में डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. संपूर्णानंद, इलाचंद जोशी अग्रगण्य हैं। ललित निबंध भी लिखे गए। उपन्यास लेखन में प्रेमचंद के अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेंद्र कुमार, यशपाल, अमृतलाल नागर का नाम प्रमुख हैं। 'बूंद और समुद्र', 'झूठा–सच', 'शेखर एक जीवनी', 'मैला आंचल', 'बलचनमा' आदि लोकप्रिय उपन्यास रचे गए।

स्वतंत्रता व विभाजन के बाद कहानी के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। नई कहानी, अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी तथा समानांतर कहानी आदि कई प्रकार के नाम प्रचलित हुए। आलोचना के भी कई रूप दिखाई देते हैं, जिनमें प्रगतिवादी, मनोविश्लेषणवादी, अंतश्चेतनावादी तथा सैद्धांतिक आलोचनाएं अधिक प्रसिद्ध हैं। डॉ. नगेंद्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह कुछ प्रसिद्ध आलोचक में शामिल हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य की अन्य गद्य विधाओं, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, पत्र–साहित्य आदि का भी पर्याप्त विकास हुआ। उक्त विधाओं के विकास के कारण ही आधुनिक काल को 'गद्य–काल' का नाम दिया गया।

स्वाधीन भारत का जीवन यथार्थ और हिन्दी गद्य साहित्य

प्रत्येक युग में समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं। स्वतंत्रता के परवर्ती युग में परंपरागत सामाजिक मान्यताएं टूटने लगीं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा पाने लगा। परंपरागत मूल्यों के प्रति युवा पीढ़ी के मन में वितृष्णा पैदा हुई। व्यक्तिवादी चिंतन के कारण परंपरागत पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन हुआ। इसी प्रकार धर्म, संस्कृति एवं समाज के प्रति भी आस्था बदली। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष होने लगा। संयुक्त परिवार प्रणाली टूटने लगी। औद्योगिकीकरण से नगरीय सभ्यता का विकास हुआ।

पराधीन भारत के साहित्यकारों के सम्मुख 'भारत की स्वाधीनता' का ठोस लक्ष्य था लेकिन स्वाधीन भारत के साहित्यकार के सामने एक नहीं कई जटिल चुनौतियां थीं। प्रसिद्ध साहित्यकार यशपाल जैन ने इस संबंध में कहा था कि "विदेशी दासता तो समाप्त हो चुकी है लेकिन व्यवस्थाओं की दासता से भारतवासी मुक्त नहीं हो पाए हैं। जब तक सर्वसाधाराण का शोषण बना रहता है तब तक जनगण की स्वतंत्रता मिथ्या है। यहां मात्र अधिकार का हस्तांतरण हुआ है। 'ट्रांसफर ऑफ पावर' और जनगण की स्वतंत्रता में अंतर है।" जनगण की स्वतंत्रता में साहित्यकार के सहायक होने की बात करते हुए यशपाल जी ने कहा कि "समाज के दुःख को साहित्यकार बारीकी से समझें व लिखें, मानवीय दृष्टि से उन्हें समझाकर वे समस्याओं को सुलझाने का मार्ग बनावें, ...जनता का सबसे बड़ा शत्रु अंधविश्वास है। इसे चकनाचूर करने के लिए साहित्यकार अपनी लेखनी का सदुपयोग करें।"

स्वाधीन भारत के गद्य लेखकों में यशपाल जी की चिंता मुखर रूप में दिखाई देती है। स्वयं यशपाल जैन ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में मजदूरों की समस्याओं को उठाया है। उनके 'झूठा सच' के जयदेवपुरी और 'मनुष्य के रूप' के भूषण को आलोचक यशपाल जी की प्रतिमूर्ति के रूप में देखते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक, सामाजिक जटिलताओं के कारण सामाजिक जीवन की परिकल्पना पूर्णतः परिवर्तित हो चुकी थी। मानव मूल्यों में ह्रास हुआ। 'अपने–अपने अजनबी' (अज्ञेय), 'सूरज का सातवां छोड़ा' (धर्मवीर भारती), 'शेखर एक जीवनी' (अज्ञेय), 'पथ की खोज' (देवराज), 'आखिरी दांव' (भगवती चरण वर्मा) आदि उपन्यासों में अकेलेपन, कुंठा, संत्रास और मानसिक यातानाओं का चित्रण मिलता है। 'धर्मपुत्र' (चतुरसेन शास्त्री) सांप्रदायिक दंगों का चित्र प्रस्तुत करता है। 'मनुष्य के रूप' (यशपाल) में जाति वर्ग भेद का अंकन है। 'गिरती दीवारें (उपेंद्रनाथ अश्क), 'हजूर' (रांगेय राघव), 'बीज' (अमृतराय), 'उखड़े हुए लोग' (राजेंद्र यादव) युवा पीढ़ी के संघर्ष का अंकन करते हैं।

इसी प्रकार नाटकों में भी व्यक्ति, संघर्ष व पारिवारिक विघटन के चित्र हैं। 'टूटते परिवेश' (विष्णु प्रभाकर), 'छठा बेटा' (अश्क), 'कमला' (उदयशंकर भट्ट), 'आधी रात' (लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'मिस्टर अभिमन्यु' (लक्ष्मीनारायण लाल) आदि नाटक पारिवारिक संबंधों में विघटन, सामाजिक समस्याओं के चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिंदू–मुस्लिम वैमनस्य 'रामलीला विजय' (बलदेव प्रसाद) का प्रमुख कथानक है। 'त्रिशंकु' (ब्रजमोहन सहाय) जैसे नाटक राजनीति की आलोचना करते हैं। 'अंजो दीदी' (अश्क), 'आधे–अधूरे'

(मोहन रोकश) आदि नाटक, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं तो जटिल मानवीय रिश्तों का भी जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं।

स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ को अपनी व्यंग्य रचनाओं में उभारने के लिए हरिशंकर परसाई का स्थान शीर्ष पर है। प्रेमचंद को जिस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौर का प्रतिनिधि लेखक माना जाता है उसी प्रकार हरिशंकर परसाई स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रतिनिधि लेखक हैं। मुक्तिबोध की तरह फैंटेसी उनका सबसे प्रिय माध्यम है। वे बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के ठीक वैसे ही एकमात्र प्रतिनिधि कथाकार और गद्यलेखक हैं, जैसे कि मुक्तिबोध एकमात्र प्रतिनिधि कवि। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की देश और दुनिया की सभी घटनाओं, आंदोलनों, मनोवृत्तियों और महत्वपूर्ण चरित्रों के कलात्मक व्यंग्य–चित्र उनकी रचनाओं में मिल जाएंगे। चंद शाब्दिक रेखाओं से वे एक भरा–पूरा चित्र मूर्त कर देते हैं। उनकी भाषा की तरलता और उसका क्षिप्र प्रवाह इस चित्र को गतिशील बनाकर और भी जीवंत कर देते हैं।

निराला के शब्दों में "गद्य अगर जीवन संग्राम की भाषा है, तो व्यंग्य इस संग्राम का सबसे शक्तिशाली शस्त्र"। हरिशंकर परसाई (1922–1995) के अचूक हाथों इस शस्त्र के इतने सटीक और शक्तिशाली प्रहार हुए हैं कि देश, दुनिया और समाज की विसंगति और विरूपता का कोई भी कोना और कोई भी क्षेत्र उसकी सीमा में आने से नहीं बचा है। उनकी रचनाएं शब्दों की दुनिया से उठाकर सीधे कर्म के क्षेत्र में ला खड़ा करने की गजब की क्षमता रखती हैं। यह असाधारण क्षमता और अभूतपूर्व शक्ति उन्हें उनकी विशिष्ट भाषा–शैली, मौलिक कलात्मक पद्धति और किसी भी परिघटना या चरित्र के द्वंद्वात्मक विश्लेषण में अपूर्व सिद्धि से मिली है।

हरिशंकर परसाई वर्तमानता के रचनाकार हैं। उनका साहित्य बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारत का है। यह साहित्य इस काल के साहित्य की पहचान है। परसाई ने वर्तमान समस्याओं को ही अपने लेखन का आधार बनाया है। आधुनिक काल के किसी अन्य रचनाकार ने वर्तमान समस्याओं तक ही अपने को इतना व्यक्त नहीं रखा। वर्तमान समस्याओं को लिखते समय रचनाकार उन्हीं समस्याओं पर कलम चलाते हैं जिस पर लोगों का ध्यान केंद्रित हो चुका है। ये सीमित वर्तमान के रचनाकार हैं। वर्तमान के 'मामूलीपन' या 'रोजमर्रा' को रचना में इतना प्रतिष्ठित पहले किसी और ने नहीं किया था। यह प्रगतिशीलता का विकास है। जीवन की सामान्य बातों को रचना में स्थान देकर भारतेंदु ने ही हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का प्रवर्तन किया था। वह आधुनिकता प्रगतिशीलता भी थी। बालमुकुंद गुप्त द्वारा लिखित 'शिवशंभु के चिट्ठे' में हम इसी वर्तमान के मामूलीपन का प्रयोग पाते हैं। किंतु स्वातंत्र्योत्तर भारत की विशिष्ट स्थितियों में इस रोजमर्रा के मामूलीपन के महत्व में गुणात्मक परिवर्तन हो गया है। हिन्दी में यह मामूलीपन कविता में नागार्जुन और गद्य में हरिशंकर परसाई के लेखन में सबसे ज्यादा दिखलाई पड़ता है। परसाई का गद्य विधा की दृष्टि से यह अत्यंत नवीन प्रयोग है। यह बालमुकुंद गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' से भी भिन्न है, क्योंकि परसाई की रचना में सतर्क बोध आद्यांत साथ रहता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति जितनी जटिल तथा छद्‌मपूर्ण है, परसाई की दृष्टि भी उतनी ही भेदक है। यहां ईमानदारी तो है किंतु वह मध्यकालीन वीरोचित

तेवर से रहित है। परसाई की ईमानदारी आदर्श से प्रेरित है किंतु आदर्शवादी नहीं। परसाई की रचना को आजादी के बाद की स्थितियों से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता। आजादी के बाद की स्थितियों से परसाई का लेखन बहुत प्रभावित हुआ। यह बात कमोवेश तो स्वातंत्र्योत्तर भारत के सभी प्रसिद्ध रचनाकारों के बारे में कही जा सकती है, किंतु सबसे ज्यादा यह लागू होती है परसाई के बारे में। साहित्येतर स्थितियां रचनात्मक अनिवार्यता निर्मित करती हैं और महान साहित्य अनिवार्य होता है। परसाई के लेखन में रोजमर्रा का मामूलीपन अनिवार्य भी बन गया हैं। उनके प्रचुर और पर्याप्त लेखन का आधार अतिसामान्य, परिचित, वर्तमानकालिक, प्रत्यक्ष जीवन जगत है लेकिन उसका कोई अंश फालतू या महत्वहीन नहीं। भाव–परिधि का यह विस्तार अभिभूतकारी और आश्चर्यजनक है। पढ़ते समय वे जितना सहज लगते हैं विचार करने पर उतने ही जटिल। व्यंग्य निबंधों का यह महाकाव्यात्मक प्रभाव हिन्दी की नई उपलब्धि है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ बनता–बिगड़ता हुआ सक्रिय रूप से परसाई के निबंधों में विचित्र है। सतर्क वैज्ञानिक बोध परसाई के रचनाकर्म का प्रधान साधन है। वे इस बोध से संस्थानों, रूढ़ियों, आचरण आदि के टुकड़े कर देते हैं और उनका व्यंग्य वास्तविकता प्रकट कर देता है। अमानवीयता की अनुभूति करुणा जगाती है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्वाधीनता आंदोलन के सिद्धांत गायब नहीं हो गए हैं परंतु उनका इस्तेमाल किया जाता है मुखौटों के रूप में। कथनी और करनी में भिन्नता नहीं, विपरीतता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में कथनी–करनी की इस विपरीतता और नाटकीयता को परसाई जी ने अपने व्यंग्य निबंधों में जीवंत किया है। उनके व्यंग्य अधिक अर्थ–भूमि पर स्थित हैं और वे अधिक भाव–भूमि घेरते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो परसाई के व्यंग्य से मनोविकारों का 'व्यायाम' होता है।

स्वाधीनता के पूर्व भारतीयों ने जीवन के घुटन भरे दिन देखे। हिन्दी के सफलतम स्वाधीनोत्तर उपन्यासों का विषय भी यही रहा है। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल', यशपाल का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'झूठा सच', भगवतीचरण वर्मा का 'भूले–बिसरे चित्र', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', नरेश मेहता का 'यह पथ बंधु था', भीष्म साहनी का 'तमस', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', मंजूर एहतेशाम का 'सूखा बरगद' आदि ऐसे उल्लेखनीय उपन्यास हैं, जिनमें इन स्थितियों के विविध पहलू गहराई से व्यक्त हुए हैं। कहानियों में मोहन राकेश की 'एक ठहरा हुआ चाकू', 'मलवे का मालिक' तथा 'परमात्मा का कुत्ता' उन भयावह दिनों की मार्मिक स्मृतियों को साकार करने वाली कहानियां हैं।

हिन्दी कहानियों का संसार विशाल है; परंतु जिन कहानियों ने भारतीय जीवन के बहुआयामी परिवर्तन, मूल्य चेतना, स्त्रियों का घर से बाहर आकर पुरुषों के साथ ही समस्त क्षेत्रों में भाग लेना एवं इसके अनेक पहलुओं, घर और दफ्तर, टूटते हुए परिवार, अकेलेपन और संत्रास की अनुभूतियों को अपने में समेटा है तथा उस तीखे एहसास को वाणी दी, उनमें से कुछ का उल्लेख यहां किया जा रहा है– उपेंद्रनाथ अश्क–'कांकड़ा का तेली', 'डाची', यशपाल–'आदमी का बच्चा', भीष्म साहनी–'चीफ की दावत', अमरकांत–'जिंदगी और जोंक', तथा 'दोपहर का भोजन', उषा प्रियंवदा–'वापसी',

फणीश्वरनाथ रेणु–'तीसरी कसम', 'लालपान की बेगम', तथा 'अगिन खोर', कमलेश्वर–'दिल्ली में एक मौत', राजेंद्र यावद–'लक्ष्मी जहां कैद है', शिवप्रसाद सिंह–'कर्मनाशा की हार', शेखर जोशी–'कोसी का घटवार', मार्कण्डेय–'हंसा जाई अकेला', मन्नू भंडारी– 'यही सच है', धर्मवीर भारती–'गुल की बन्नो', कृष्णा सोबती–'यारों के यार', विष्णु प्रभाकर–'धरती अब भी घूम रही है', मेहरून्निसा परवेज–'उसका घर', निर्मल वर्मा–'परिंदे', प्रभु जोशी–'पितृऋण', राजकमल चौधरी–'जलता हुआ मकान', तथा 'एक अनार, एक बीमार', दूधनाथसिंह–'रीछ' आदि कहानियों में स्वाधीनोत्तर भारत के जीवन में तेजी से आने वाले अंतर्विरोधों को वाणी मिली है। इस दिशा में क्षमतावान नए लेखकों की भी कमी नहीं है। महिला लेखिकाओं में ममता कालिया, जया यादवानी, सूर्यबाला, चंद्रकांता, मणिका मोहिनी, मेहरून्निसा परवेज, शिवानी आदि उल्लेखनीय हैं।

आज की कहानी उस सड़ी हुई मानसिकता या परंपरा के प्रति बगावत है जो व्यक्ति के विवेक की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। अज्ञेय ने इस विषय पर 'रोज' जैसी प्रभावशाली कहानी लिखी थी–आज उसका विशद विस्तार हुआ है। शुचिता में बंधी हुई नारी के मूल्यांकन के प्रतिमान बदले हैं। योग्यता एवं दक्षता उसके मूल्यांकन के ठीक वैसे ही प्रतिमान हैं जैसे पुरुषों के। शराबी और परगामी पति की आंसू बहा–बहाकर प्रतीक्षा करने वाली, मार खाने वाली, विवाह के बाद ससुराल की देहरी के भीतर पांव रखने वाली और लाश के रूप में अर्थी पर निकलने वाली औरत, अपनी सत्ता में निराकारता को सार्थक मानने वाली औरत, आज नई भूमिका में है। लज्जा उसका आभूषण नहीं और ना ही मातृत्व उसकी चरम सफलता। उसके चारों ओर की खिड़कियां खुली हैं, जो बंद हैं उसके विरुद्ध उसका संघर्ष जारी है।

हिन्दी उपन्यासों में भी स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ की जीवंत प्रस्तुति हई है। भारतीय जीवन के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि पक्षों में व्याप्त होते तनावों एवं अंतर्संघर्षों को उसकी व्यापक परिधि में प्रस्तुत किया गया है। सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परिवेश में जीवन के बदलते मानदंडों और परिवर्तन के रेखांकन को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासों में राहुल सांकृत्यायन के प्राक् ऐतिहासिक विषयों पर लिखे उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा', रांगेयराघव का 'मुर्दों का टीला', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'टेराकोटा', यशपाल का 'दिव्या', वृंदावन लाल वर्मा का 'झांसी की रानी' तथा 'मृगनयनी', राजीव सक्सेना का 'पणिपुत्री सोमा', चतुरसेन शास्त्री का 'वयम रक्षामः', तथा 'वैशाली की नगरवधू', जानकीवल्लभ शास्त्री का 'कालिदास', वीरेंद्र कुमार जैन का 'अनुत्तर योगी', नरेंद्र कोहली के 'रामायण' और 'महाभारत' से संबद्ध उपन्यास तथा अमृतलाल नागर का 'खंजन नयन', और 'मानस का हंस' आदि उल्लेखनीय हैं। रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'पथ का पाप' में स्वाधीन भारत के ग्रामीण जीवन में आये बदलावों एवं धार्मिक रूढ़ियों का मार्मिक चित्रण किया है।

भारत जैसा विशाल देश एक साथ कई युगों, संस्कृतियों, मान्यताओं और विचारधाराओं में जीवन व्यतीत करता है। इन उपन्यासों में एक ओर ग्रामीण जीवन का पिछड़ापन व्यक्त हो रहा है तो दूसरी ओर उत्तर आधुनिकता की बात भी की जा रही है। 'बूंद और समुद्र' की चित्रा राजदान, वनकन्या और ताई उसके अलग–अलग छोर हैं। इसी प्रकार यशपाल के 'झूठा सच' की तारा जो अनेक बलात्कारों के बावजूद विकट–से–विकट परिस्थितियों से समझौता नहीं करती हुई अपने करियर की ऊंचाइयों

पर पहुंचती है, वहीं बंती परंपरा की देहरी पर अपना सिर पटकती–पटकती जान दे दती है। मनोहर श्याम जोशी के उत्तर आधुनिकता की सड़क से गुजरती नायिका एक ही साथ माता आनंदमयी, छिन्नमस्ता और कल्याणी सबकुछ है, वहां नैतिकता–अनैतिकता की समस्त अवधारणाएं गड्‌ड–मड्‌ड हो गई हैं। नागार्जुन का 'बलचनामा', 'दुखमोचन', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', रामदास मिश्र का 'पानी के प्राचीर और दिशा' का यथार्थ देखने योग्य है। आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' में भारतीय ग्रामीण जीवन के अनेकानेक रूप अभिव्यक्त हैं। कृष्णासोबती के 'जिंदगीनामा' में स्वाधीनता पूर्व का पंजाब मुखरित हो उठा है। धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' में मध्यवर्ग की व्यथा और जगदंबा प्रसाद दीक्षित के 'मुर्दाघर' का विडंबना पूर्ण संघर्ष अलग–अलग स्तरों पर घटित होता है। निर्मल वर्मा का सारा कृतित्व पाश्चात्य स्मृतिगंध से परिव्याप्त है। अकेलापन उसकी नायिका है और स्मृतियां उसका जीवन। उपेंद्रनाथ अश्क का 'गिरती दीवारें', इलाचंद्र जोशी का 'जहाज का पंछी', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मा', उदय शंकर भट्‌ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य', मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' तथा 'महाभोज', बलदेव वैद का 'उसका बचपन', उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका', राही मासूम रजा का 'आधा गांव', मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', देवेश ठाकुर का 'भ्रम भंग', बदी उज्जमा का 'एक चूहे की मौत', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश', सुरेंद्र वर्मा का 'उसे चांद चाहिए', विनोद कुमार का 'नौकर की कमीज', वीरेंद्र जैन का 'डूब', प्रभाकर माचवे का 'सांचा', गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया', ममता कालिया का 'बेघर' आदि उपन्यास भारतीय जीवन के अलग–अलग आयाम प्रस्तुत करते हैं।

धर्मवीर भारती की कृति 'अंधायुग' में उच्चकोटि की कविता तथा नाटक दोनों का समान रूप से समावेश हुआ है। इसके कथ्य में अपने युग की गहरी पकड़ है। युद्धोपरांत युग, जो मूल्य विभ्रांत है, तथा जिसका नेतृत्व एक अंधे के अधीन है–इस विडंबना और नियति का पूरे नाटक में गहरा एहसास व्यंजित हुआ। दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' त्याग की निरर्थकता के तीखे बोध से परिपूरित है। अगले नाटककारों में मोहन राकेश प्रमुख हैं। उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में अपनी जमीन से कटे हुए आदमी के तीखे एहसास को कालिदास के माध्यम से व्यक्त किया गया है। इसमें स्वयं राकेश के विस्थापन की व्यथा का गहरा एहसास है। 'आधे–अधूरे' उनके अन्य नाटकों में एक नई तलाश का नाटक है, जिसमें जो प्राप्त है, वह स्त्री की अतृप्ति का कारण है और नया उसे धीरे–धीरे अधूरेपन के बोध से भर देता है। सुरेंद्र वर्मा का नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' इस खोज और अतृप्ति का दूसरा पहलू है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', ललित सहगल का 'हत्या एक आकार की', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', भीष्म साहनी का 'आलमगीर', नंदकिशोर आचार्य का 'जिल्ले सुब्हानी' आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं जिनमें स्वाधीन भारत के जीवन यथार्थ का सजीव चित्रण किया गया है।

दलित एवं स्त्री चेतना और हिन्दी गद्य साहित्य

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में 'दलित' से अभिप्राय उन लोगों से है जिन्हें जन्म, जाति या वर्णगत भेदभाव के कारण शताब्दियों तक सामाजिक न्याय और मानवाधिकार

से वंचित रहना पड़ा है। मुख्य रूप से वर्ण व्यवस्था में शूद्र समझी जाने वाली जातियां, छुआछूत की प्रथा के शिकार अछूत, हरिजन और गिरिजन दलित वर्ग के अंतर्गत आते हैं। सामाजिक विडंबना यह है कि मध्यकाल में स्त्री को भी इसी प्रकार के भेदभावपूर्ण व्यवहार का शिकार होना पड़ा; इसलिए इस वर्ग में संपूर्ण समाज की आधी आबादी समझी जानेवाली स्त्री जाति भी शामिल है। हम दलित विमर्श की बात करते हैं तो एक ओर तो हम इसका संबंध भूमंडलीकरण के साथ उभरे उत्तर आधुनिक विमर्श से जोड़ते हैं तथा दूसरी ओर उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण के उस अधूरे रह गए पक्ष के साथ जोड़ते हैं जिसका नेतृत्व राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, बालगंगाधर तिलक और महात्मा गांधी जैसी महान विभूतियों ने किया।

भारत के संविधान में अनुच्छेद 15 (2बी) के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया कि जाति के आधार पर भारत के किसी भी नागरिक के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसके अलावा लंबे समय तक सामाजिक शोषण और दमन का शिकार रही हरिजन और गिरिजन जातियों को 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में अलग से सूचीबद्ध किया गया ताकि इनके लिए सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सके। इन प्रयासों के सुपरिणाम आने लगे हैं जिनमें से एक है भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य की नई प्रवृत्ति का विकास।

भारत ही नहीं पूरे दक्षिण एशिया में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में चली मानवाधिकारों की हवा ने दलित चेतना को प्रवाहित करने में बड़ा योगदान दिया है। इस क्षेत्र के दलित साहित्यकार जहां एक ओर परंपरागत काव्यशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र को अपर्याप्त मानते हुए साहित्य की नई कसौटी की खोज कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर वे अफ्रीका और अमेरिका की अश्वेत जातियों के साहित्य से भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। काव्यभाषा में भी इससे सुनिश्चित परिवर्तन आया है, क्योंकि दलित साहित्य मनोरंजन और आनंद के लिए नहीं, समाज को झकझोरने और जगाने के लिए लिखा जा रहा है। इसीलिए कभी–कभी उसका तेवर प्रगतिशील और जनपक्षीय साहित्य के अन्य आंदोलनों के समान प्रतीत होता है।

दलित साहित्य संबंधी सर्वाधिक विवाद इस बात को लेकर रहा है कि दलित कौन है और दलित साहित्य का लेखक कौन हो सकता है? वैज्ञानिक अर्थों में सामाजिक दमन व उत्पीड़न का शिकार हर व्यक्ति दलित है। भारतीय सामाजिक संदर्भ में जाति और छुआछूत के आधार पर निम्न जाति समझा जाने वाला व्यक्ति दलित है। कुछ दलित लेखक सिर्फ दलित जाति में पैदा हुए लेखक को ही दलित लेखक मानते हैं जबकि कई लेखकों का यह मानना है कि दलित जीवन को संवेदना व प्रतिबद्धता से समझकर प्रेमचंद जैसा कोई भी मानवतावादी लेखक दलित जीवन पर प्रामाणिकता से लिख सकता है।

प्रेमचंद के साहित्य में हमें दलित चेतना के स्वर दिखाई देते हैं। यह विषय विवाद का हो सकता है कि प्रेमचंद के साहित्य को दलित साहित्य माना जाए या नहीं। कुछ साल पहले कुछ दलित लेखकों ने प्रेमचंद की 125वीं जन्मतिथि के अवसर पर दिल्ली में 'रंगभूमि' की प्रतियां जला दीं और कुछ वामपंथी लेखकों ने भी इस घटना का समर्थन किया। हम इन सब विवादों से परे हटकर साहित्य में प्रस्तुत दलित चेतना

पर विचार कर रहे हैं। इसके लिए किसी लेखक का दलित होना योग्यता नहीं मानी जानी चाहिए।

आज दलित समाज की समस्या केवल अस्पृश्यता नहीं बल्कि उससे कहीं बड़ी चुनौतियां उनके सम्मुख खड़ी हैं। आर्थिक शोषण, व्यभिचार, गरीबी, अपराध, अशिक्षा, विषमता जैसी अनेक समस्याओं से वे जूझ रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद के साहित्य में ये सभी समस्याएं उजागर हुई हैं। सन् 1936 तक के काल–खंड में वे उन सभी समस्याओं को अपने साहित्य में उठाते नजर आते हैं जिनसे आज का दलित समाज जूझ रहा है।

दलित स्त्री चेतना में प्रेमचंद के साहित्य का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। उन्होंने अपनी कहानियों में जो मुद्दे उठाए वे आज भी प्रासंगिक हैं। नारी का जीवन सामाजिक बंधनों एवं पुरुषों के कठोर अनुशासन में गुजरता था। पुरुष आज भी किस प्रकार अपने लम्पट एवं कुटिल व्यवहार से प्रेम का अभिनय कर स्त्रियों को अपने जाल में फांस लेते हैं और विश्वासघात करते हैं इसका बखूबी वर्णन प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'जादू' में दो बहनों के संवाद के माध्यम से किया है। इसमें बड़ी बहन नीला छोटी बहन मीना को उसी लम्पट पुरुष के प्रेमजाल में फंसने से आगाह करती है जिसकी हवस का शिकार वह स्वयं हो चुकी है। 'गोदान' की मालती भी अपने अंतर व बाहर के अंतर्द्वंद्व से जूझती नजर आती है।

प्रेमचंद की कहानियों 'ठाकुर का कुआं', 'मंदिर' और 'सद्‌गति' में अस्पृश्यता की समस्या को प्रबलता से उठाया गया है। प्रेमचंद ने 'मंदिर' कहानी 1927 में, 'सद्‌गति' 1937 में तथा 'ठाकुर का कुआं' 1932 में लिखी थी। अपने उपन्यास 'रंगभूमि' और 'गोदान' में उन्होंने सामाजिक–आर्थिक शोषण की पराकाष्ठा का स्पर्श किया है। प्रेमचंद दलितों की शिक्षा के पक्षधर थे। 'सौभाग्य के कोड़े' कहानी में उन्होंने नथुवा नामक एक अनाथ भंगी युवक की व्यथा का वर्णन किया है। प्रेमचंद के समय भारतीय समाज में अंग्रेजी सत्ता की गुलामी और पूंजीवादी शोषण दोनों का बाहुल्य था। अपने साहित्य में उन्होंने इन दोनों को वाणी दी। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या को तो उठाया ही, साथ ही दलितों के संगठित होकर संघर्ष करने का व्यापक चित्रण किया है। 'प्रेमाश्रम' में अछूतों से बेगार लिए जाने व किसानों द्वारा भी उनसे बुरा व्यवहार किए जाने का चित्रण किया गया है। 'गबन' के दलित पात्र स्वयं को निम्न जाति का न समझ कर जाति गौरव का परिचय देते हैं।

इधर मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' (1979 में प्रकाशित) में भारतीय समाज के उपेक्षित वर्ग दलितों के उत्पीड़न की व्यथा व्यक्त हुई है कि किस प्रकार राजनैतिक दल अपने स्वार्थ के लिए शतरंजी चाल चलते हैं और उनका उत्पीड़न करते हैं।

हंस के संपादक राजेंद्र यादव दलित शब्द को काफी व्यापक दायरे में देखते हैं। वे स्त्रियों को भी दलित मानते हैं। पिछड़ी जातियों को भी दलितों में शामिल करते हैं। 'सारा आकाश', 'उखड़े लोग' तथा 'शह और मात' जैसे उपन्यासों के रचयिता राजेंद्र यादव ने प्रेमचंद द्वारा 1930 में प्रकाशित पत्रिका 'हंस' का पुनर्प्रकाशन आरंभ करके साहित्यिक मूल्यों को एक नई दिशा दी। यह अकेली ऐसी पत्रिका है जिसके संपादकीय पर तमाम प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाएं किसी न किसी रूप में बहस करती नजर आती हैं।

राजेंद्र यादव ने बड़ी बेबाकी से सामंती मूल्यों पर प्रहार किया और दलित व नारी विमर्श को हिन्दी साहित्य जगत में चर्चा का मुख्य विषय बनाने का श्रेय भी उनको है। इस पत्रिका ने दलित और स्त्री विमर्श को एक नई जमीन दी।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय दलित साहित्य का आरंभ महाराष्ट्र में मराठी भाषा से हुआ। 1960 के आसपास मराठी में 'दलित' शब्द ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई तथा 'अस्मिता' व 'अस्मितादर्श' पत्रिकाएं तथा औरंगाबाद नगर दलित साहित्य की आधारभूमि बना। दलित लेखन की चर्चा मराठी साहित्य तक सीमित न रहकर लगभग पूरी भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश तक व्याप्त हो चुकी है।

आधुनिक काल में हिन्दी में सितंबर, 1914 को 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'डोम की कविता', 'अछूत की शिकायत' से दलित लेखन की शुरुआत मानी जाती है। हीरा डोम वाराणसी के थे इससे अधिक जानकारी नहीं मिलती, उनकी यह कविता भोजपुरी उपभाषा में है।

दलित समाज की पीड़ा सर्वप्रथम 15वीं–16वीं शताब्दी में भक्तिकाल के संत कवियों की रचनाओं में ध्वनित हुई थी। कबीर की रचनाएं इसका प्रमाण हैं। हिन्दी कथा साहित्य में दलित जीवन को केंद्र में रखकर अनेक कहानियां, उपन्यास तथा इतर विधाओं में भी साहित्य लिखा गया। प्रेमचंद के उपन्यास और कहानिया में 'सद्‌गति', 'ठाकुर का कुआं', 'कफन', तथा 'पूस की रात' आदि में दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। पांडेय बेचन शर्मा कृत 'बुधुआ की बेटी', निराला कृत 'कुल्ली भाट' तथा 'चतुरी चमार', अमृतलाल नागर कृत 'नाच्यौ बहुत गोपाल', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', उदयशंकर भट्‌ट का 'सागर', 'लहरें' और मनुष्य', रेणु का 'मैला आंचल', भैरवप्रसाद गुप्त का 'सती मैया का चौरा', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', भीष्म साहनी कृत 'बसंती', रमणिका गुप्ता का लघु उपन्यास 'सीता और मौसी', मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास, जगदीशचंद्र कृत 'धरती धन न अपना', 'नरकुंड में वास' तथा 'जमीन अपनी तो थी', गिरिराज किशोर कृत 'परिशिष्ट', मधुकर सिंह कृत 'उत्तरगाथा', मन्नू भंडारी कृत 'महाभोज', मनमोहन पाठक कृत 'गगन घटा गहरायी', पन्नी सिंह कृत 'पाथरघाटी का शोर', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' आदि उपन्यासों व शिवमूर्ति, संजीव, हबीब कैफी, ह्रदयेश आदि की कहानियों में दलित जीवन की पीड़ाएं अंकित हुई हैं।

दलित समूह व नारी दोनों उत्पीड़ित हैं, किंतु उत्पीड़न के ढंग व तौर–तरीके भिन्न हो सकते हैं। दलित नारी व उच्चवर्गीय नारी, लिंगभेद के आधार पर समान रूप से उत्पीड़ित हैं किंतु वर्गीय आधार पर दलित नारी, उच्चवर्गीय नारी के हाथों उत्पीड़ित होती है। इसी प्रकार दलितसमूह वर्गीय व जातिगत आधार पर कथित उच्चवर्गों से उत्पीड़ित होते हैं, किंतु उनकी अपनी सामाजिक संरचनाएं दलितों द्वारा ही दलितों के उत्पीड़न की स्थितियां भी पैदा करती हैं।

दलित चेतना की बात आते ही महादेवी वर्मा का लेखन संसार याद आ जाता है। महादेवी के साहित्य में दलितवर्ग का संघर्ष पग–पग पर मुखरित हुआ है। महादेवी के रेखाचित्रों में दलितों के द्वारा दलितों के उत्पीड़न की गाथाएं मिलती हैं। महादेवी के नारी विमर्श को लेकर काफी चर्चाएं हुई हैं, लेकिन उनके दलित विमर्श पर एकाध टिप्पणी के अतिरिक्त कोई विशेष चर्चा नहीं मिलती। यहां हम उनका विश्लेषण कर रहे हैं–

महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' (1941) तथा 'स्मृति की रेखाएं' उस समय की गद्य कृतियां हैं जब दलित जीवन पर चर्चा–विमर्श, साहित्य या चेतना के रूप में विशेष उजागर नहीं हुई थी। महादेवी के साहित्य में निम्नवर्ग के दुख–दैन्यपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति उनके रेखाचित्रों में हुई है। उन्होंने इनमें समाज के उन व्यक्तियों को अपनाया है, जिन्हें समाज दीन–दलित मानकर सदैव उपेक्षा की दृष्टि से देखता आया है। वैसे तो उनकी ममता, करुणा और सहानुभूति को प्राप्त करने वाले समाज के सभी दीन–दलित रहे, परंतु समाज द्वारा प्रताड़ित नारी ही इसकी सर्वाधिक अधिकारिणी रही है। अतः इस आधार पर महादेवी जी के इन रेखाचित्रों को समाज के दो आधारस्तंभ स्त्री और पुरुष वर्ग में बांट सकते हैं अर्थात एक दलित स्त्री अपने विभिन्न रूपों में विधवा, बाल–विधवा, भंगिन सबिया, कर्मठ पर्वतीय बाला लक्ष्मी, भक्ति, अशिक्षित, अनपढ़ परंतु सेवापरायण नारियां अपनी स्थिति एवं गुणों के साथ मौजूद हैं। दूसरा दलित पुरुष जिनमें रामा (नौकर) सब्जी बेचने वाला अंधा अलोपी, बदलू कुम्हार, चीनी फेरीवाला, ठाकुर आदि ऐसे पात्र हैं जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा हमारे ऊपर इतना प्रभाव डालते हैं कि हम उन्हें भुला नहीं पाते।

हिन्दी के प्रतिष्ठित उपन्यासकार गिरिराज किशोर ने समाज में जाति विभाजन और दलित समस्या को लेकर गंभीर लेखन किया है। अपने उपन्यास 'यथाप्रस्तावित' एवं 'परिशिष्ट' में उन्होंने संस्थाओं में दलित छात्रों के साथ किए जाने वाले अमानवीय व्यवहार को केंद्रीय विषय बनाया है। 300 पृष्ठों के इस उपन्यास का प्रकाशन 1984 में हुआ। संपूर्ण उपन्यास में लेखक की संवेदना दलित चरित्रों के साथ रहती है।

दलित चेतना पर कृष्णदत्त पालीवाल की पुस्तक 'उत्तर आधुनिकतावाद और दलित विमर्श' भी एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसमें लेखक एक सर्वथा नवीन समतामूलक, शोषण मुक्त, आत्मसम्मान से परिपूर्ण समाज बनाने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में 1980 के बाद कई दलित आत्मकथाएं आईं और चर्चित हुईं। (मोहन नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान), दलित साहित्य की वार्षिकी का प्रकाशन आरंभ हुआ (जयप्रकाश कर्दम–1999), दलित कविता सामने आई (ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराज सिंह बेचैन, रजतरानी, सुदेश तनवीर), दलित पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ (अपेक्षा, शंबूक, युद्धरत आम आदमी), दलित उपन्यासों की रचना हुई (छप्परः जयप्रकाश कर्दम, 1994) तथा समीक्षा के क्षेत्र में दलित विमर्श को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई। इतना ही नहीं, हिन्दी साहित्य के इतिहास का दलित विमर्श की दृष्टि से पुनर्पाठ भी आरंभ हुआ जिसके परिणामस्वरूप भक्ति साहित्य का नई दृष्टि से व्याख्यान किया गया। बीसवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन भी दलित चेतना के संदर्भ में होने लगा है।

स्त्री चेतना और हिन्दी गद्य साहित्य

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध को भारतीय 'नारी–जागरण' एवं उत्तरार्ध को 'नारी–प्रगति' का युग कहा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा, व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं आत्मनिर्भरता से नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चली है। आज की नारी के सामने अनेक तार्किक, सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर की चाह में 'स्त्री चेतना' अथवा 'स्त्री विमर्श' को स्वर मिला।

एक लंबी पुरातन व्यवस्था को तोड़कर, जनसंघर्ष से जुड़कर कदम–कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना नारी अस्मिता की पहचान बन गया है। जनसंचार, पत्रकारिता, शिक्षा, तकनीकी क्षेत्र, व्यापार तथा अन्य क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

स्त्री चेतना व स्त्री लेखन कई प्रयोगों की गलियों से गुजरता हुआ एक नई संस्कृति के रास्ते प्रवेश करता है। बौद्धिक और भावनात्मक रूप से जकड़े प्रेम की तलाश करती स्त्री तथा स्वविकास को अधिक महत्व देती हुई विवाह संस्था में विश्वास करती स्त्री के संघर्षों को मुखर करती रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं।

स्त्री साहित्य से संबंधित कहानियों में चंद्रकांता की 'मेरी मां कहा करती थी', ममता कालिया की 'पच्चीस साल की लड़की', दुर्गा सहाय की 'जिरह', क्षमा शर्मा की 'कमीज पहन रहा है' प्रमुख हैं। इन कहानियों में बदलते संबंध, अपसंस्कृति व यौन–संबंधों का वर्णन है। नारी चेतना से संबंधित उपन्यासों में मृदुला गर्ग द्वारा रचित 'चितकोबरा', 'अनित्य' तथा 'कठगुलाब', उषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'पचपन खंभे लाल दीवारें' तथा 'रुकोगी नहीं राधिका', चित्रा मुद्‌गल द्वारा रचित 'आवाँ', नासिरा शर्मा द्वारा रचित 'सात नदियां: एक समंदर', 'जिंदा मुहावरे' तथा 'अक्षयवट', प्रभा खेतान द्वारा रचित 'आओ पेपे घर चलें', 'छिन्मस्ता', 'अपने–अपने चेहरे' तथा 'पीली आंधी', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', मैत्रेयी पुष्पा का 'स्मृति दंश', 'इदन्नमम', 'चाक' तथा 'अल्मा कबूतरी', कृष्णा सोबती का 'दिलो–दानिश' तथा 'समय सरगम' और शिवानी तथा मालती जोशी की रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

महिला सशक्तिकरण की गूंज

सन् 1980 के बाद का समय महिला सशक्तिकरण का भी समय है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कदमताल करते हुए स्त्रियों ने नवीन क्षितिजों को स्पर्श किया है। परंपरागत क्षेत्रों के साथ गैर–परंपरागत क्षेत्रों, सेना, कृषि, उड्‌डयन, व्यवसाय आदि में भी उनकी हिस्सेदारी बढ़ रही है। राजनीति में भी उन्होंने अपने लिए अधिक 'स्थान' की मांग करनी शुरू कर दी है। आठवें दशक के अंत में और नवें दशक के शुरुआती दौर में महिला लेखकों की एक बड़ी जमात ने तीव्र अनुभूति, नवीन दृष्टि और रचनात्मक सरोकारों के साथ स्त्री मन और स्त्री जीवन का प्रामाणिक चित्र खींचा है।

अनिता भारती की 'एक थी कोठेवाली' की शिक्षिका गीता, दलित अस्मिता की पुख्ता पहचान के साथ सामने आकर सवर्ण अध्यापिकाओं को चुनौती देती है। गीता में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान कूट–कूटकर भरा है, जो जातिगत संकीर्णता को पार कर बौद्धिक और योग्यता के स्तर पर सवर्ण बुद्धिजीवियों को चुनौती देती है।

समकालीन कहानियां स्त्री अस्मिता की लड़ाई का एक ऐसा पक्ष भी सामने लाती हैं, जहां स्त्रियां अपने यौन–शोषण और शारीरिक–शोषण के विरुद्ध उठ खड़ी हुई हैं। सदियों से अस्पृश्य समझे जाने वाले समाज की स्त्रियां भोगी जाती रही हैं। अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें बेबस और लाचार बना दिया था किंतु अब उसके सब्र का बांध टूट गया है। वह इसके खिलाफ विद्रोह करने लगी है। वह भी अन्य स्त्रियों की तरह ही है, फिर उसकी इज्जत क्यों नहीं होती? वह अब दलितपन के

कारण लुटना नहीं चाहती। उसका धैर्य आक्रोश बनके फूट पड़ा है। अपनी अस्मिता की रक्षा में उसने हथियार भी उठा लिए हैं। इस तरह ये कहानियां स्त्री चेतना को नया आयाम देती हैं।

कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी', उषा प्रियंवदा की 'पचपन खंभे–लाल दीवारें', मन्नू भंडारी की कहानियां– 'बंद दराजों का साथ', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'अकेली' तथा 'नई नौकरी' स्त्री सुबोधिनी परंपरा और विद्रोह के संधिकाल में खड़ी स्त्री की कहानियां हैं। इन कहानियों का विश्लेषण करें तो उस समय की स्त्री की सामाजिक स्थिति को बखूबी पहचाना जा सकता है। लेकिन महिला रचनाकारों की यह त्रयी जब तक रचनारत थी, इन्हें महिला लेखन के खांचे में नहीं डाला गया। उनकी कहानियों का जिक्र या समीक्षा मुख्यधारा के रचनाकारों के साथ ही की गई।

इसके बाद 75 के आसपास जब महिलाओं की एक बड़ी जमात ने अपनी धाक जमानी शुरू की तो समीक्षकों के लिए कोई विकल्प नहीं रह गया क्योंकि इसे अनदेखा करना संभव नहीं था। संवेदना के स्तर पर ये रचनाएं आश्चर्यजनक रूप से भिन्न थीं और इसमें मूलभूत अंतर वही था जो एक स्त्री और पुरुष में भावनात्मक और वैचारिक धरातल पर होता है।

पिछले बीस सालों में अगर कुल कहानियों के विषय का विभाजन करें तो हम पाएंगे कि सबसे ज्यादा कहानियां स्त्री के मुद्दों पर ही रची गई हैं। उपन्यास के क्षेत्र में स्त्री समस्याओं पर लिखे गए उपन्यासों की एक बेहद उर्वरा जमीन हिन्दी के रचनात्मक साहित्य में देखी गई है।

कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' एक अक्खड़ और दबंग औरत की एकांतिक तस्वीर प्रस्तुत करती है। उषा प्रियंवदा की 'रुकोगी नहीं, राधिका', 'पचपन खंभे लाल दीवारें' और 'शेष यात्रा' में परंपरा और रूढ़ियों के द्वंद्व में फंसी एक आधुनिक स्त्री द्वारा अपनी अस्मिता को ढूंढ़ने का प्रयास है।

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' हिन्दी साहित्य में एक मील का पत्थर है, जो अपने समय से आगे की कहानी कहता है और हर समय का सच होने के कारण कालातीत भी है। शकुन के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि औरत और मां के इस द्वंद्व में वह न पूरी तरह औरत बनकर जी सकी, न पूरी तरह मां बनकर। .... क्या वह केवल शकुन की त्रासदी है? अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह नकारती हुई, अपने मातृत्व के लिए संबंधों के सारे नकारात्मक पक्षों को पीछे धकेलती है या उन्हें अनदेखा करती है। हिंदुस्तान की हजारों औरतों की यही त्रासदी है। अलग होने के बाद बच्चों की त्रासदी की कल्पना मात्र से हिंदुस्तान के नब्बे प्रतिशत विवाह टूटने से बच जाते हैं। 'आपका बंटी' सिर्फ बच्चे की त्रासदी का उपन्यास नहीं है। इसमें शकुन की समस्या को भी बहुत गहराई के साथ उठाया गया है। सन् 1980–85 के बाद हिन्दी में स्त्री विषयक उपन्यासों की जैसे बाढ़ सी आ गई।

ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर' और 'एक पत्नी के नोट्स' में एक मध्यवर्गीय पढ़ी–लिखी महिला का भी अपने को पति द्वारा एक सामान्य औरत समझकर व्यवहार किया जाना और गाहे–बगाहे व्यंग्यों का शिकार होना तथाकथित प्रगतिशील और पढ़े–लिखे वर्ग को बेनकाब करता है। मृदुला गर्ग की 'अनित्य' में दो महत्वपूर्ण स्त्री

पात्रों में से एक काजल एक नारीवादी प्राध्यापक की तरह उभरती है, जो अनलिखे इतिहास को दुबारा लिखना चाहती है, भगतसिंह के सिद्धांतों पर विश्वास करती है और उसे पढ़ाती है। हालांकि वह उनके कोर्स में नहीं है। संगीता एक वेश्या की बेटी है लेकिन अपने सिद्धांत नहीं खोती और अपनी अस्मिता के साथ खड़ी रहती है।

मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा' और 'मैं और मैं' जिसमें एक औरत और एक लेखिका के दोनों पहलुओं की कशमकश का बड़ी बारीकी से चित्रण किया गया है। इन सबसे बढ़कर मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' है जिसमें स्त्रियों के इतने विभिन्न रंग, रूप और शेड्स हैं कि स्त्री विमर्श की कई अवधारणाओं की पोथी लिखी जा सकती है।

चित्रा मुद्‌गल का 'एक जमीन अपनी' और 'आवाँ' महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। 'आवाँ' में एक सामाजिक कार्यकर्ता की जमीनी लड़ाई के संघर्ष का पहली बार हिन्दी साहित्य में इतना सचेत और बेबाक चित्रण हुआ है। मृणाल पांडे का 'पटरंगपुरपुराण' पढ़कर लगता है कि पूरा एक शहर ऐसी औरतों के नजरिए से देखा–परखा और बयान किया जा रहा है जो अपने घूंघट उलटाकर और अपने खिड़की–झरोखे खोलकर बड़ी पैनी निगाह से कस्बे में होने वाले हर क्रिया–कलाप का जायजा ले रही हैं।

मेहरुन्निसा परवेज का 'कोरजा', जिसमें आदिवासी परिप्रेक्ष्य में एक स्त्री की त्रासदी का वर्णन है, सूर्यबाला का 'मेरे संधि पत्र', मंजुल भगत का 'अनारो' तथा 'गजी' जिसमें पहली बार एक कामकाजी नौकरानी के रोटी–रोजी के संघर्ष के साथ–साथ उसकी ताकत और स्वाभिमान को रेखांकित किया गया है। 'खातुल' जिसमें अपने मुल्क से बेदखल हुआ किरदार मर्द का नहीं, औरत का है जिसे मुहाजिर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अफगानिस्तान से भागकर आई यह शरणार्थी एक कमसिन बच्ची है। जंग के तमाम हादसे और खौफनाक मंजर भुगतने के बाद भी वह अपना मुल्क छोड़कर भागना नहीं चाहती बल्कि उसे आजाद कराने में कुर्बान होना चाहती है।

कमल कुमार के 'यह खबर नहीं' में सत्ता और प्रभुत्वशाली वर्ग के बीच किस तरह से एक प्रतिभाशाली लड़की की अस्मिता को कुचला जाता है, इसका रोमांचकारी यथार्थ वर्णन है। हाल ही में प्रकाशित उनका उपन्यास 'मैं घूमर नाचूं' राजस्थान की एक बाल–विधवा के चरित्र को प्रस्तुत करता है और स्त्री आजादी की गूंज को ध्वनित करता है।

नासिरा शर्मा का 'शाल्मली', जिसमें घर और बाहर अपने अधिकार मांगती आजादी के बाद की उभरती एक अलग किस्म की स्वतंत्रचेता स्त्री है जो पति से संवाद चाहती है, बरबारी का दर्जा चाहती है, प्रेम की मांग करती है जो उसका हक है। इस पात्र का सृजन बेहद सूझबूझ से किया गया है और यह पात्र आधुनिक स्त्री के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। नासिरा का एक और उपन्यास, 'ठीकरे की मंगनी' जिसमें बचपन में बिना पैसे के लेन–देन के मंगनी हो जाती है और लड़का बड़ा होने पर शादी करने से मुकर जाता है। इस पर कद्दावर औरत टूटती नहीं, वह अपना एक घर बनाती है, एक वजूद हासिल करती है और मर्द के लौटने पर उसे दुबारा कुबूल नहीं करती। 'कुइयां जान' उपन्यास में पानी की समस्या केंद्र में है पर इस समस्या से रू–ब–रू होती

हैं औरतें। इस उपन्यास का सबसे खूबसरूत पहलू यह है कि औरतों के सामाजिक सरोकार उभर कर आते हैं और औरतें पर्यावरण के मुद्दे पर बात करती हैं।

शिवानी के उपन्यास न सिर्फ शिक्षित मध्यवर्गीय/उच्चवर्गीय स्त्री के संघर्षपूर्ण जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं, बल्कि ग्रामीण महिलाओं के कठिन जीवन और जटिल संबंधों का भी जीवंत चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

राजी सेठ का 'तत्सम', चंद्रकांता का 'अपने अपने कोणार्क' तथा 'कथा सतीसर' स्त्री विमर्श की प्रमुख रचनाएं हैं। गीतांजलि श्री का 'माई' भी उल्लेखनीय है, जिसमें गांव–कस्बे की एक औरत अपने बच्चों और परिवार के लिए खुद को तिल–तिल होम करती है पर उसका मिटना ही उसके बच्चों में विद्रोह की चिंगारी और अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी रखने का जज्बा जगा जाता है।

प्रभा खेतान के उपन्यास 'पीली आंधी' तथा 'छिन्नमस्ता' महत्वपूर्ण हैं। 'छिन्नमस्ता' में परंपरागत दकियानूसी मारवाड़ी परिवार की एक लड़की का बागी निकल आना कैसे पूरे समाज को उसके खिलाफ खड़ा कर देता है, का एक संपूर्ण दस्तावेज है।

मैत्रेयी पुष्पा के बहुचर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' तथा 'चाक' बदलते स्त्री–पुरुष संबंधों का जटिल चित्रण है। मधु कांकरिया का 'सलाम आखिरी' भी इस लिहाज से महत्वपूर्ण है। 'सेज पर संस्कृत' में जैन साध्वियों का धर्म के नाम पर शोषण दबा–छिपा कर रखे जाने का उल्लेख है पर युवा पीढ़ी की एक जैन लड़की शोषण के खिलाफ उठ खड़ी होती है। अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी', अनामिका का 'दस द्वारे का पिंजरा' महत्वपूर्ण रचनाएं हैं, जिसमें पिछली सदी की औरतों का आज के परिप्रेक्ष्य में कद्दावर होने का सम्पूर्ण वर्णन है।

आज हिन्दी गद्य साहित्य में स्त्री चेतना के स्वर पूरे जोश के साथ उभरते दिखाई दे रहे हैं। आज की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री चेतना की सजीवता को प्रमुखता से अनुभव किया जा सकता है।

जनजातीय चेतना और हिन्दी गद्य साहित्य

जनजाति शब्द दो शब्दों जन और जाति से मिलकर बना है, इसका शाब्दिक अर्थ है– जंगली और पहाड़ी स्थानों में रहने वाली जातियां। दुनिया के लगभग सभी देशों में जनजातीय समुदाय का अस्तित्व है। भारत की जनजातियों पर अगर विचार किया जाए तो इसमें 'असम' से लेकर 'केरल' तक की जनजातियां हैं। जनजातियों की दृष्टि से उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारंखड और पश्चिम बंगाल में जनजातियों की संख्या पूर्वोत्तर भारत की तुलना में कम हैं। भारत सरकार द्वारा इन्हें भारत के संविधान की पांचवीं अनुसूची में 'अनुसूचित–जनजाति' के रूप में मान्यता प्राप्त है।

हिन्दी गद्य साहित्य में जनजातीय चेतना

साहित्य हमें संवेदनशील बनाता है। जनजातीय साहित्य जीवन का साहित्य है। यह प्रकृति का सहयोगी, ऊंच–नीच, भेदभाव व छल–कपट से दूर है। वह समाज की नई–नई विचारधाराओं से परिचित हुआ है, जिनके परिप्रेक्ष्य में यह अपनी नई पुरानी परिस्थितियों को तौलने लगा है। उसमें अपने होने न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान

स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यही बोध उनके साहित्य में झलकता है।

आज के इस दौर में दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श जितनी तेजी से अपनी चेतना के स्वर को मुखरित कर रहे हैं, लगभग उसी रूप में जनजातीय–विमर्श भी अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रहा है। जनजातीय साहित्य प्रायः सभी साहित्यिक विधाओं में अपनी पहचान बना रहा है। हिन्दी साहिय के अंतर्गत कई जनजाति केंद्रित उपन्यास लिखे गए परंतु स्वतंत्रता के बाद ही इनकी संख्या में वृद्धि आई है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य के अंतर्गत जनजातियों के जीवन को लेकर लिखे गए प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपन्यासों में जनजातीय समाज का संपूर्ण परिवेश उभर कर आया है। जनजातीय जीवन को सजीव करने वाले उपन्यास और उनके रचनाकार निम्नांकित हैं–

'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा), 'कगार की आग', 'महासागर में निकोबार द्वीप' और 'सुराज' (हिमांशु जोशी), 'कब तक पुकारूं' और 'धरती मेरा घर' (रांगेय राघव), 'काला पादरी' (तेजिंदर), 'गाथा भोगनपुरी' (किशोर कुमार सिन्हा), 'जंगल के आस–पास' (राकेश वत्स), 'जंगल के फूल', 'सूरज किरण की छांव', 'घोटुल', तथा 'जाने कितनी आंखें' (राजेंद्र अवस्थी), 'जहां बांस फूलते हैं' (श्री प्रकाश मिश्र), 'जो इतिहास में नहीं' और 'पहाड़ पर कोहरा' (राकेश कुमार सिंह), 'पांव तले की दूब' और 'सावधान नीचे आग है' (संजीव), 'पाकर जाति का शोर' (पुन्नी सिंह), 'मीगाघाटी' (सोहन शर्मा), 'रेत' (भगवानदास मोरवाल), 'पलाश के फूल' (संतोष प्रीतम), 'वन के मन में' (योगेंद्रनाथ सिंह), 'धूनी तपे तीर' (हरिराम मीणा), 'शैलेष' (शिव प्रसाद सिंह), 'आदिवासी हैं तो समर शेष है' (नितिन कुमार), 'मोर झाल' (श्याम परमार), 'खलीकों की बस्ती' (शिव कुमार श्रीवास्तव), 'मादल का दर्द' (श्याम व्यास), 'सांप और सीढ़ी', 'कस्तूरी' और 'सालवनों के द्वीप' (शानी), 'सागर लहरें और मनुष्य' (उदयशंकर भट्ट), 'चौथी मुट्ठी' (शैलेष मटियानी), 'मौन जाही' और 'जंगल के गीत' (पीटर पाल एक्का), 'कोहरे में खोये चांदी के पहाड़' (जयप्रकाश भारती), 'उत्तर पूर्व', (लालबहादुर वर्मा), 'पहाड़िन' (नारायण), 'अख्य बाला' (ब्रजनंदन सहाय), 'भारत बनाम इंडिया' और 'हस्तक्षेप' (श्रवण कुमार गोस्वामी), 'गुनिया' (कुरमा)।

इन जनजातीय परक उपन्यासों में जनजातियों को केंद्र में रख कर रचना की गई है, परंतु आज कई उपन्यास ऐसे हैं जो बाजार में उपलब्ध नहीं हैं। कुछ प्रमुख हिन्दी उपन्यासों का परिचयात्मक विवेचन इस प्रकार है–

रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूं' में करनट कबीलों के जीवन यथार्थ का अनेक पक्षों में अंकन हुआ है। इसमें उन्होंने समाज के सर्वथा उपेक्षित उस वर्ग का चित्रण अत्यंत सरल और रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, जिसे सभ्य समाज 'नट' या 'करनट' कहकर पुकारता है। इन कबीलों की कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। करनटों में यह छूट है। वहां कोई बुराई 'सेक्स' के आधार पर नहीं मानी जाती। उपन्यासकार इस भाव को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, "औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा–भला क्या? कौन नहीं करती? नहीं तो मार–मार कर खाल उड़ा देगा दरोगा और तेरे बाप और

खसम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कमरा न रहेगा तो क्या करेगी? फिर भी तो पेट भरने को यही करना होगा?" उपन्यास का केंद्रीय विषय करनट समाज खानाबदोश, घोर उत्पीड़ित एवं शोषित है। यह उपन्यास संपूर्ण भारतीय ग्रामीण परिवेश को अपने साथ लेकर चलता हुआ प्रतीत होता है जिसमें करनटों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

सोहन शर्मा की 'मीणाघाटी' उपन्यास का कथा परिवेश राजस्थान की मेवाड़ रियासत का है। रियासत में बसे भील, मीणा, छोटे किसान तथा सामान्य जनता अंग्रेज हाकिमों और रजवाड़ों के दोहरे शोषण की शिकार है। मेवाड़ के अरावली पर्वत की मीणा घाटी के मील–मीणें शोषण और जुल्म के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष का शंखनाद करने वाले विद्रोही मील सरदार 'अमरा' के रूप में इस उपन्यास में एक ऐसा पात्र सजीव हुआ है जो भावी पीढ़ियों के लिए आदर्श बना रहेगा।

किशोर कुमार सिन्हा द्वारा रचित उपन्यास 'गाथा भोगनपुरी' एक बंधुआ मजदूर की कहानी है। उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड से संबंधित वह उपन्यास बंधुआ मजदूरों की करुण गाथा कहता है। यह एक ऐसे युवा प्रशासनिक अधिकारी की कथा है जो अपने आस–पास मजदूरों और आदिवासियों को अन्याय से पिसते, शोषित होते देखता है और उनका पक्ष लेने का जोखिम उठाता है। उपन्यास में आदिवासियों की बस्ती को उपन्यासकार ने अत्यंत जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है, "गांव का तीसरा हिस्सा, जो कि इन दोनों हिस्सों से काफी दूर था, आदिवासियों का हिस्सा था। वहां मकान नाम की कोई चीज नहीं थी। सब झोपड़े थे। इन झोपड़ों की संख्या घटती–बढ़ती थी, क्योंकि ये आदिवासी एक जगह ज्यादा दिन टिककर रहने के आदी नहीं थे। जंगल के खुले वातावरण में पले–बसे ये लोग अभी तक पक्के बंद मकानों में रहने के आदी नहीं हो पाए थे... जंगल की लकड़ी बीनना, शहद इकट्‌ठा करना, जंगली जानवरों को शिकार, तेंदु की पत्ती, कहीं–कहीं खेती– बस यही सब था, जो ये लोग करते थे।"

राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' में झारखंड में रहने वाली जनजातियों के शोषण की करुण कथा है। यह झारखंड के वर्तमान जनजातीय जीवन पर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है। अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद झारखंड के जंगलों में एक नई शोषक संस्कृति का उदय हुआ। अंग्रेजों ने अपने शासन के समय झारखंड के मूल निवासियों के 'जल–जंगल–जमीन' के पारंपरिक अधिकारों को छीनकर उन्हें इन सभी चीजों से बेदखल कर दिया। आजादी के कई वर्षों बाद भी आदिवासियों की समस्याओं और प्रश्नों की स्थितियों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है, इसकी पुष्टि उपन्यास की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है, "आजादी के बाद आदिवासियों के कल्याण की सैकड़ों योजनाएं बनी हैं पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आबंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुंच रहा। कई योजनाएं कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएं तो फाइलों की कब्र में ही दफन हो गईं..., यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और

लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा–कटा रहेगा।" इन आदिवासियों पर इतने अत्याचार व शोषण हुए परंतु इन लोगों ने अपनी जनजीवन की जड़ें अपनी भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, मिथक और आस्थाओं को छोड़ा नहीं। आज भी इनकी संस्कृति अपने आप में समृद्ध है।

संजीव द्वारा रचित 'जंगल जहां शुरू होता है' में थारू जनजाति के सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र थारू जनजाति का नायक 'काली' देश की पुलिस, प्रशासन और राजनीति में हताश व निराश हो कर डाकू बनने को मजबूर हो जाता है, परंतु वे अपनी मन की गाथा को इन शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं, "कुमार साहब आपकी और हमारी क्या बिसात है, इस जंगल में? इस जंगल का कोई नियम नहीं है, पता नहीं कब, कौन, कैसे, कारण या अकारण ही हम पर वार कर बैठे। यह 'कौन' वह आश्रय भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं, जहां जान बचाने को हम सिर घुसेड़ रहे हैं, वे दिन भर की थकान को दूर करने के लिए रात को नृत्य अवश्य करते हैं।" बीस–एक थारू बालाएं कुछ किशोरियां, कुछ जवान। सभी नंगे पांव, मगर सुंदरता में सभी एक से बढ़कर एक..., सभी नई रंग–बिरंगी साड़ियों में। न कोई साज, न कोई घुंघरू, फिर भी झमक चला है समटा–

"के जईहें हाजीपुर, के जइहें पटना,
से के जइहें....
अरे के जइहें अरे बेतिया नौकरिया,
के जइहें....?"

तेजिंदर कृत 'काला पादरी' उपन्यास मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्र में घटित घटनाओं और जंगलों के आस–पास सांस लेते जीवन की विवरणात्मक, संवेदनशील और सूक्ष्मता से परिपूर्ण कहानी है। यह उपन्यास यथार्थ के एक अनजाने दुर्गम इलाके की अंतर्यात्रा का अनूठा और प्रामाणिक विवरण है। उपन्यास में धर्मांतरण, राजनैतिक, आर्थिक आदि व्यवस्था के साथ ही साथ आदिवासियों की दयनीय स्थिति को अत्यंत जीवंत रूप में प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। भूख से तड़पते आदिवासियों की स्थिति को उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है– "साहब, रात में बच्चा मर गया। उसकी मां ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी मां भी मर गई। उसने भी कई दिनों से कुछ नहीं खाया था... आदिवासी पिछले कई दिनों से जहरीली जंगली बूटियां खा रहे हैं और जिले के भीतरी इलाकों में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर, उनका मांस तक खा रहे हैं।"

श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहां बांस फूलते हैं' में उत्तर–पूर्व में व्याप्त विद्रोह और असंतोष की समस्या को उजागर करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने मिजोरम में व्याप्त असंतोष, विक्षोभ के कारणों को पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखने और समझने का प्रयास किया है। उपन्यास के शीर्षक की ओर संकेत करते हुए लेखक लिखते हैं, "मिजोरम में जनश्रुति है कि हर पचास साल की आवृत्ति

पर यहां के बांस फूलते हैं। उनके बीजों को खाकर चूहे बहुत बच्चे पैदा करते हैं, जो फसल खा जाते हैं और मिजोरम में अकाल पड़ जाता है। ऐसा ही अकाल 1958 में पड़ा था, जिसके परिणामस्वरूप 1966 का व्रिदोह हुआ।" इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में मिजो समाज के अंतरंग पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' बुंदेलखंड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरी जाति के जीवन को उपन्यास का विषय बनाकर मार्मिक चित्रण किया है। कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में और स्त्रियां शराब की भट्टियों पर या किसी के बिस्तर पर। उपन्यास की प्रमुख पात्र कदमबाई अपनी बेटी को इन कार्यों को करने से नहीं रोकती और कहती है, "उसका दारू बेचना, चोरी करना, बार–बार जेल जाना... हमारी बिरादरी का कारोबार यही है, इसमें बुरा क्या है?" मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में कबूतरी जाति के रहन–सहन, खान–पान एवं संस्कृति की विभिन्न पहलुओं को अत्यंत मार्मिक रूप में दर्शाया है।

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' नामक उपन्यास के केंद्र में गुरु और मां नलिन्या की संतान कंजर और उसका जीवन है। अपने लोक विश्वास व लोकाचारों की धुरी पर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती एक विमुक्त जनजाति। कंजर जनजाति का इतिहास उपन्यास की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–'कंजर यानी कननन्वरा, काननचर अर्थात जंगलों में घूमने वाला।.... कंजरों की सात उपजातियां हैं, किंतु हैं मुख्य चार ही–अंधति कुछबंध, जो झाड़ू बनाते हैं' पत्थरकट, जो पत्थर काटते हैं, जल्लाद, जो मरे हुए जानवरों को उठाने के साथ–साथ फांसी भी देते हैं और रच्छबंध, जो जुलाहों का करघा बनाते हैं। उपन्यास में लेखक ने संपूर्ण कंजर जातियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवंत रूप देने का प्रयास किया है।

जाने माने लेखक, स्तंभकार और जनसंचार माध्यमों के मामलों में सरकार के सलाहकार रहे मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित बी.जी. वर्गीस द्वारा लिखित 'सुरक्षा और आक्रोश' (अनुवाद) का उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। इस पुस्तक में भारत के जातीय संघर्ष और विद्रोह का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने जनजातीय समाज में अशांति और संघर्षों को उत्पन्न करने वाली असुरक्षा की पड़ताल कर सुरक्षा के नए दृष्टिकोण की तलाश की है। देश के उत्तरपूर्व की स्थितियों को उन्होंने 'उत्तर–पूर्व में संघर्ष', 'नगा समस्या', 'अशांत मणिपुर', 'मिजोरम का भिन्न मार्ग', 'त्रिपुरा की प्रसव पीड़ा', 'छत्तीसगढ़ और सलवा जुडूम का उदय' आदि शीर्षकों के तहत वर्णित किया है। इस पुस्तक में आज के जनजातीय समाज के दैनिक संघर्ष को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इधर जनजातीय समाज का अंकन करने वाली कई रचनाएं प्रकाश में आ रही हैं। इस संदर्भ में बस्तर के जनजातीय जीवन और संस्कृति पर राजीव रंजन प्रसाद द्वारा लिखित उपन्यास 'आमचो बस्तर' का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है। इस पुस्तक में बस्तर के वनवासियों के जीवन का सजीव चित्रण किया गया है। वनवासी शांति, उत्सव और उल्लास के साथ जीवन जीने में यकीन रखते हैं। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपी तस्वीर ही पूरे बस्तर की कहानी बयान करती है। लेखक राजीव रंजन प्रसाद ने इस उपन्यास में नक्सल हिंसा और आतंक से जूझते बस्तर अंचल की

कथा को ऐतिहासिक मिथकों का प्रयोग करते हुए समसामयिकता के साथ प्रस्तुत किया है। पुस्तक में बस्तर अंचल की कला, संस्कृति, परंपरा और भाषा जैसे विषयों को स्पर्श करते हुए नक्सल हिंसा की वजह से इस अंचल के सामाजिक आर्थिक विकास में हो रहे विपरीत प्रभावों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी गद्य रचनाकारों ने प्रभावपूर्ण ढंग से जनजातीय चेतना को स्वर दिए हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. स्वामी दयानंद सरस्वती ने किस लोकप्रिय ग्रंथ की रचना की?

   (क) सत्यार्थ प्रकाश (ख) सुख सागर

   (ग) प्रेम सागर (घ) मानव धर्म सार

2. राष्ट्रकवि किसे कहा जाता है?

   (क) सुमित्रानंदन पंत (ख) महादेवी वर्मा

   (ग) महावीर प्रसाद द्विवेदी (घ) रामधारी सिंह 'दिनकर'

3.3 नाटक : इतिहास एवं प्रवृत्तियां

हिन्दी नाटक साहित्य का उद्‌भव कब से माना जाए, इस पर विद्वानों में मतभेद है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपने शोध में संवत् 1289 में लिखे गए 'गाय सुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है। भारतेंदु जी ने अपने पिता गोपालचंद्र द्वारा लिखे 'नहुष' नाटक (1814 ई.) को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित नाटक 'आनंद रघुनंदन' को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। डॉ. सोमनाथ गुप्त, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बाबू गुलाब राय आदि विद्वानों ने इसे संस्कृत शैली का प्रथम हिन्दी नाटक माना है। डॉ. विजयेंद्र स्नातक तथा डॉ. कृष्णलाल ने 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना।

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग के आरंभ से होता है। सन् 1850 से अब तक के नाटक साहित्य के विकास को चार चरणों में विभाजित कर समझा जा सकता है। ये चरण निम्नवत हैं–

1. भारतेंदु युग (1850 से 1900 ई.)
2. संधि युग (1901 से 1920 ई.)
3. प्रसाद युग (1921 से 1936 ई.)
4. प्रसादोत्तर युग (1937 से अब तक)

1. भारतेंदु युग

हिन्दी में नाट्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्त्तन भारतेंदु ने किया। भारतेंदु युग नवोत्थान का युग था। भारतेंदु देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक दुर्दशा से

आहत थे। अतः साहित्य के माध्यम से उन्होंने समाज को जाग्रत करने का संकल्प लिया। समाज को जगाने में नाटक सबसे प्रबल साधन सिद्ध होता है। भारतेंदु ने इस तथ्य को पहचाना और नैराश्य के अंधकार में आशा का दीप जलाने के लिए प्रयत्नशील हुए।

मौलिक नाटक

भारतेंदु जी की मौलिक कृतियों में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेमयोगिनी', 'विषस्यविषमौषधम्', 'चंद्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी' व 'सती प्रताप' हैं। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'प्रेम योगिनी', और 'पाखण्ड विडम्बना' में धार्मिक रूढ़ियों और विडंबनाओं से ग्रस्त समाज के पाखंड, आडंबर, भ्रष्टाचार आदि का नाटकीय आख्यान हुआ है।

भारतेंदु युग में अंग्रेजों ने बहुत से राजाओं से उनका शासन छीनकर उनका राज्य अपने अधीन कर लिया था। अंग्रेजों की इस नीति की प्रशंसा पर गुलामी के भय के द्वंद्व की परिकल्पना 'विषस्यविषमौषधम्' प्रहसन में साकार हो उठी है। देशोद्धार की भावना का संघर्ष भारतेंदु जी के कहीं अधिक सफल नाटकों 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' में घोर निराशा के भाव के साथ प्रस्तुत होता है। 'भारत दुर्दशा' में भारत के प्राचीन उत्कर्ष और वर्तमान अधःपतन का दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है–

रोवहु सब मिलि के, आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।

भारतेंदु ने राजनीतिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में नौकरशाही की सटीक आलोचना करते हुए 'अंधेर नगरी' प्रहसन लिखा है। 'अंधेर नगरी' के चौपट राजा को फांसी दिलाकर नाटककार कामना करता है कि कभी इस अयोग्य राजा की तरह नौकरशाही भी समाप्त होगी और देश में कुशासन की समाप्ति होगी। अंग्रेजों के शासन से देश मुक्ति की कामना ही 'नीलदेवी' नाटक में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभरती है। साथ ही तत्कालीन समाज में तीव्रता से उठ रहे 'नारी स्वातंत्र्य' पक्ष के द्वंद्व को भी प्रस्तुत किया है।

'चन्द्रावली' और 'सती प्रताप' प्रेम की कोमल अभिव्यंजना से अभिभूत नाटक है। 'चन्द्रावली' में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन है। 'सती प्रताप' में भी पति–प्रेम का अनुकरणीय उज्ज्वल आदर्श है। इस प्रकार भारतेंदु के नाटकों में भी प्रेम–धारा तथा श्रृंगारिक मोहकता का वातावरण बना रहा है।

अनूदित और रूपांतरित नाटक

भारतेंदु ने अंग्रेजी, बांग्ला तथा संस्कृत के हिन्दी अनुवाद भी किए, जिनमें 'रत्नावली नाटिका', 'पाखण्ड विडम्बना', 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'धमंजय–विजय', 'कर्पूर मंजरी', 'मुद्रा राक्षस' तथा 'दुर्लभ बंधु' आदि हैं। अंग्रेजी से किए गए अनुवादों में भारतेंदु की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने उनमें भारतीय वातावरण एवं पात्रों का समावेश किया है। सभी नाटकों में मानव हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीतों की योजना की है।

नाट्यशास्त्र के गंभीर अध्ययन के उपरांत भारतेंदु ने 'नाटक' निबंध लिख कर नाटक का सैद्धांतिक विवेचन भी किया है। उन्होंने सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना ही नहीं की, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया है। उनके नाटकों में जीवन और कला, सुन्दरं और शिवं, मनोरंजन और लोक सेवा का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। भारतेंदु अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि वे अद्‌भुत नेतृत्व शक्ति से युक्त थे। वे साहित्य के क्षेत्र में प्रेरणा के स्रोत थे। फलतः अपने युग के साहित्यकारों और नाटक तथा रंगमंच की गतिविधियों को प्रभावित करने में सफल रहे। इसके परिणामस्वरूप प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, लाला श्रीनिवास दास, देवकीनंदन त्रिपाठी आदि बहुसंख्य नाटककारों ने उनके प्रभाव में नाट्य रचना की। यह भी विचारणीय है कि भारतेंदु मंडल के नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, समस्या प्रधान, प्रेम प्रधान, राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक आदि सभी कोटियों के नाटक लिखे। इस युग में लिखे गए नाटक परिमाण और वैविध्य की दृष्टि से विपुल हैं।

इस युग में लिखे गए पौराणिक धारा नाटकों में रामचरित, कृष्णचरित संबंधी तथा पौराणिक आख्यानों से संबंधी नाटक लिखे गए। इस धारा के प्रमुख नाटककारों में देवकीनंदन खत्री 'सीता हरण' और 'रामलीला', शीतल प्रसाद त्रिपाठी कृत 'रामचरित्र नाटक', अंबिकादत्त व्यास कृत 'ललिता', हरिहरदत्त दुबे कृत 'महारास', खड्‌गबहादुर मल्ल कृत 'कल्पवृक्ष', सूर्यनारायण सिंह कृत 'श्यामानुराग नाटिका', अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मणी परिणय', गजराजसिंह कृत 'द्रौपदी हरण', श्री निवासदास कृत 'प्रह्‌लाद चरित्र', बालकृष्ण भट्‌ट कृत 'नल–दमयन्ती स्वयंवर' और शालिग्राम लाल कृत 'अभिमन्यु' प्रसिद्ध हैं।

ऐतिहासिक नाटक धारा का प्रारंभ 'नीलदेवी' से होता है। ऐतिहासिक नाटकों में श्रीनिवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर', राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर' और राधाकृष्ण दास कृत 'महाराणा प्रताप' ने विशेष ख्याति प्राप्त की।

समस्या प्रधान नाटकों में बाल–विवाह–निषेध, पर्दा–प्रथा का विरोध और विधवा–विवाह तथा स्त्री शिक्षा का समर्थन किया गया। श्री राधाचरणदास कृत 'दुःखिनी बाला', प्रताप नारायण मिश्र कृत 'काल कौतुक', बालकृष्ण भट्‌ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम', काशीनाथ खत्री कृत 'विधवा विवाह', बाबू गोपालराम गहमरी कृत 'विद्या विनोद' आदि नाटक नारी समस्याओं को केंद्र बिंदु मानकर लिखे गए। इन समस्या प्रधान नाटकों का मूल स्वर समाज सुधार है।

प्रेम प्रधान रोमानी नाटकों में श्रीनिवास दास कृत 'रणधीर प्रेममोहिनी', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'मयंक मंजरी' और 'प्रणयिनी परिणय' आदि उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रीय और व्यंग्यात्मक नाटकों की परंपरा 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि द्वारा चलाई गई थी। उसका मूल कारण सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से उपस्थित संक्रांति काल ही था। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट से नवजागरण का आलोक विकीर्ण हो रहा था। भारतेंदु युगीन नाटककारों ने इस जागरण को अभिव्यक्त करने

के लिए प्रहसनों को चुना। इस युग में राष्ट्रीय विचारधारा को उजागर करने वाले खड्गबहादुर मल्ल कृत 'भारत आरत', अंबिकादत्त व्यास कृत 'भारत सौभाग्य', गोपालराम गहमरी कृत 'देश दशा', देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'भारत हरण' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। आलोच्य युग के अनेक सफल प्रहसनों में से बालकृष्ण भट्‌ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम', विश्वानन्दन त्रिपाठी कृत 'महा अंधेर नगरी', राधाचरण गोस्वामी कृत 'बूढ़े मुंह मुंहासे', राधाकृष्ण दास कृत 'देशी कुतिया बिलायती बोल' आदि प्रहसनों को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

आलोच्य युग के नाटक साहित्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग के नाटक विषय–वैविध्य से पूर्ण हैं। भारतेंदु युग के नाम से अभिहित इस संक्रांति काल में उत्पन्न अनेक युग प्रश्नों, यथा– कर, आलस्य, पारस्परिक फूट, मद्यमपान, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, धार्मिक अंधविश्वास, पाखंड, छूआ–छूत, आर्थिक शोषण, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, वेश्या गमन आदि को नाटकों का विषय बनाया गया। ऐसा नहीं है कि किसी एक नाटक में इनमें से एक या दो बातों को लिया गया हो, पर अवसर पाते ही सभी बातें एक ही नाटक में गुम्फित हुई हैं। इससे कथानक में भले ही शिथिलता आ गई हो किंतु जन जीवन की विसंगति अवश्य स्पष्ट हो जाती है। नाटकों में प्रधान रूप से समाज में व्याप्त अशांति और व्यग्रता का चित्रण हुआ है। नाटककार अपने युग के प्रति बड़े सजग दिखाई पड़ते हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से भारतेंदु कालीन नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए लिखे गए। साथ ही पाश्चात्य नाट्य शास्त्र का प्रभाव भी इन पर लक्षित होता है। पाश्चात्य ट्रेजडी की पद्धति पर दुखांत नाटक लिखने की परंपरा भारतेंदु के 'नीलदेवी' नाटक से आरंभ हुई। इस युग के नाटक एक ओर पारसी कंपनियों की अश्लीलता और फूहड़पन की प्रतिक्रिया स्वरूप उठे थे तो दूसरी ओर पाश्चात्य और पूर्व की सभ्यता की टकराहट के परिणामस्वरूप। अभिनेयता की दृष्टि से ये नाटक अत्यधिक सफल हैं। भारतेंदु तथा उनके सहयोगी स्वयं नाटकों में भाग लेते थे और हिन्दी रंगमंच को स्थापित करने के लिए उत्सुक थे। नाटकों के माध्यम से वे जागरण का संदेश देना चाहते थे। इसी कारण भारतेंदु काल में विरचित ये नाटक सुदृढ़ सामाजिक पृष्ठभूमि पर अवस्थित थे।

2. संधियुग

भारतेंदु के अवसान के साथ परवर्ती युग में नाटक के ह्रास के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अपने युग की समस्याओं को नाट्य रूप प्रदान करने का जो अदम्य साहस भारतेंदु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके दर्शन द्विवेदी युग में नहीं होते। इसके कई कारण थे। प्रथम तो हिन्दी के नाटककारों में नाटक के सूक्ष्म नियमों एवं विधियों की योजना की क्षमता न थी। दूसरे, नाटकों के इस उदयकाल की सामाजिक स्थिति विक्षोभ पैदा करने वाली थी। इस प्रवृत्ति ने कुछ कर बैठने की प्रेरणा तो दी किंतु भावों और विचारों को घटनाओं के साथ कलात्मक ढंग से नियोजित करने के लिए मानसिक संतुलन नहीं प्रदान किया। तीसरे, आर्य समाज के आंदोलन से लेखकों

पर सुधारवादी जीवन दृष्टि और शास्त्रार्थ शैली का प्रभाव पड़ा जो निश्चय ही नाटकों के कलात्मक विकास में बाधक सिद्ध हुआ। चौथे, पाश्चात्य 'कॉमेडी' के अंधानुकरण के कारण भारतेंदु के उपरांत हिन्दी साहित्य में ही प्रहसनों की प्रवृत्ति तीव्रता से पनप उठी। प्रहसनों की वृद्धि ने साहित्यिक एवं कलात्मक अभिनयपूर्ण नाटकों की रचना में व्याघात उपस्थित किया। पांचवें, द्विवेदी युग नैतिकता और सुधार का युग था। नैतिकता और आदर्श के प्रतिस्थापन में इनका दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भांति उदारवादी था अतएव भारतेंदु युग की नवीनता परवर्ती युग के स्वभाव के अनुकूल न थी। कठोर नीतिवादी अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद के फलस्वरूप द्विवेदी युग भारतेंदु युग की परंपरा को अग्रसर नहीं कर सका।

उपर्युक्त सभी कारणों के फलस्वरूप आलोच्य युग में मौलिक नाटकों की संख्या बहुत कम है, अनुवाद कार्य पर अधिक बल रहा है। मौलिक नाटकों में साहित्य की दो धाराएं प्रमुख हैं– 1. साहित्यिक नाटक (शौकिया रंगमंच), 2. मनोरंजन प्रधान नाटक (व्यावसायिक पारसी रंगमंच)।

साहित्यिक नाट्य धारा को विकसित करने के उद्देश्य से अनेक नाटक मंडलियों की स्थापना की गई; जैसे प्रयास की 'हिन्दी नाटक मंडली', कलकत्ते की 'नगरी नाटक मंडल', मुज्जफ्फरपुर की 'नवयुवक समिति' आदि। इनमें 'हिन्दी नाट्य समति' सबसे अधिक पुरानी थी। सन् 1893 ई. में यह 'रामलीला नाटक मंडली' के रूप में स्थापित हुई थी। इसके संस्थापकों में प्रमुख थे– पंडित माधव शुक्ल जो स्वयं अच्छे अभिनेता और रंगकर्मी थे और जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार प्रसार के लिए नाटकों को सशक्त माध्यम बनाया था। किंतु हिन्दी रंगमंच साधन और समुचित संरक्षण के अभाव में तथा जनता की सस्ती रुचि के कारण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाया। फलतः नाटक का साहित्यिक रूप ही सामने आया। संख्या की दृष्टि से आलोच्य काल में लिखे गए नाटक कम नहीं हैं, किंतु मौलिक नाटकों के नाम पर ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों को ही नाटकों में या कथोपकथन में परिवर्तित कर दिया गया।

द्विवेदी युग में इन वृत्तियों के उत्कर्ष के लिए पौराणिक आख्यानों को निःसंकोच ग्रहण किया गया। आलोच्य युग में पौराणिक नाटकों के तीन वर्ग देखने को मिलते हैं–कृष्णचरित संबंधी, रामचरित संबंधी तथा अन्य पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं से संबंधित। कृष्णचरित संबंधी नाटकों में राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा', ब्रजनंदन सहाय कृत 'उद्धव', नारायण मिश्र कृत 'कंसवध', शिव नंदन सहाय कृत 'सुदामा' और बनवारीलाल कृत 'कृष्ण तथा कंस वध' उल्लेखनीय हैं। रामचरित संबंधी नाटकों में रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बड़ा', गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्रा' और गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक', नारायण सहाय कृत 'रामलीला' और रामगुलाम लाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' उल्लेखनीय हैं। अन्य पौराणिक घटनाओं से संबंधित नाटकों में महावीर सिंह का 'नल दमयन्ती', सुदर्शनाचार्य का 'अनार्य जल चरित', बांके बिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका', बालकृष्ण भट्ट का 'वेणुसंहार', लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी', हनुमंत सिंह का 'सती चरित्र', शिवनंदन मिश्र का 'शकुंतला', जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन' तथा माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' महत्वपूर्ण हैं।

इन नाटकों का विषय पौराणिक होते हुए भी इनमें पारसी रंगमंच के अनुरूप मनोरंजन उत्पन्न करने के लिए हास–परिहास, शोखी और छेड़छाड़ के वातावरण का ही आधार ग्रहण किया गया है।

पौराणिक नाटकों के साथ ही इस काल में कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे गए जिनमें गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर जय माल', शालिग्राम का 'पुरु विक्रम', वृंदावनलाल वर्मा का 'सेनापति ऊदल', कृष्णप्रकाश सिंह का 'पन्ना', बद्रीनाथ भट्‌ट का 'चंद्रगुप्त', जयशंकर प्रसाद का 'राज्यश्री' आदि प्रमुख हैं।

मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। इस काल में संस्कृत, बांग्ला एवं पाश्चात्य नाटकों के अनुवाद हुए।

संस्कृत से लाला सीताराम ने 'नागानंद', 'मृच्छकटिक', 'महावीर चरित', 'उत्तररामचरित', 'मालती माधव' और 'मालविकाग्निमित्र' और कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तररामचरित' का अनुवाद किया। अंग्रेजी से शेक्सपीयर के नाटकों 'हैमलेट', 'रिचर्ड द्वितीय', 'मैकबेथ' आदि का हिन्दी में अनुवाद भी लाला सीताराम ने किया। फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार मोलियर के नाटकों को लल्लीप्रसाद पांडेय और गंगाप्रसाद श्रीवास्तव ने अंग्रेजी के माध्यम से अनूदित किया।

बांग्ला नाटकों के समर्थ अनुवादकों में गोपालराम गहमरी, रामचंद्र वर्मा तथा रूप नारायण पांडे हैं। भारतेंदु युग तथा प्रसाद युग को जोड़ने वाले बीच के वर्षों में कोई उल्लेखनीय नाटक नहीं मिलता।

3. प्रसाद युग

प्रसाद का आगमन नाट्य रचना में व्याप्त गतिरोध को समाप्त करने वाले युग प्रवर्तक व्यक्तित्व के रूप में हुआ। उन्होंने एक प्रवर्तक के रूप में कविता, नाटक तथा निबंध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया। प्रसाद की आरंभिक नाट्य कृतियां सज्जन, कल्याणी परिणय, प्रायश्चित, करुणालय और राज्यश्री, द्विवेदी युग की सीमा के अंतर्गत आते हैं। प्रसाद के इन नाटकों में उनका परंपरागत रूप तथा प्रयोगों में भटकती हुई नाट्य दृष्टि ही प्रमुखता से उभर कर सामने आती है। नाटक रचना का प्रारंभिक काल होने के कारण इन कृतियों में प्रसाद की नाट्य कला का स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया है, वह अपनी दिशा खोजता प्रतीत होता है। यह दिशा उन्हें विशाख, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, एक घूंट, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी में प्राप्त हुई। इन नाटकों में प्रसाद ने अपनी विलक्षणता और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

'प्रायश्चित' हिन्दी का प्रथम दुखांत मौलिक रूपक है। शिल्प विधान की दृष्टि से प्रसाद ने इसमें सर्वप्रथम पाश्चात्य नाट्य शिल्प को अपनाने का प्रयास किया है। सही अर्थों में 'राज्यश्री' प्रसाद का प्रथम उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक है। 'विशाख' प्रसाद के पूर्ववर्ती और परवर्ती नाटकों में एक विभेदक रेखा है। इसका कथानक साधारण होते हुए भी देश की तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है। यद्यपि प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक ही हैं परंतु इतिहास की

पीठिका में वर्तमान की समस्याओं को वाणी देने का विचार प्रसाद ने सर्वप्रथम 'विशाख' नाटक में व्यक्त किया है। भूमिका में वे लिखते हैं, "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने में बहुत प्रयास किया है।" और यह वर्तमान स्थिति परतंत्र भारत के राजनैतिक सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई थी। अपनी सत्ता को स्थायी बनाए रखने के लिए ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीयों में फूट डालने के लिए संप्रदायवाद, प्रांतीयवाद के हथकंडे प्रसाद से छिपे नहीं थे। अतः इतिहास की पीठिका पर उन्होंने वर्तमान के इन प्रश्नों को यथार्थ दृष्टि से उभारते हुए समन्वयवादी आदर्श समाधान प्रस्तुत किए। युगीन सांप्रदायिक प्रभावों को आत्मसात करते हुए प्रसाद ने अपने नाटकों में ब्राह्मण व बौद्ध धार्मिक संघर्षों को रूपायित किया है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक आर्यों और नागजाति तथा आर्य–नाग संघर्ष की पृष्ठभूमि में रचा गया है। 'अजातशत्रु' में आर्य जनपदों का पारस्परिक संघर्ष परोक्ष रूप में युगीन सांप्रदायिक संघर्षों का ही प्रतिरूप है। इस प्रकार अपनी इन प्रौढ़ कृतियों में प्रसाद ने जातीय, क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक भेदों को मिटाकर व्यापक राष्ट्रीयता का आह्‌वान किया है। इस दृष्टि से 'स्कन्दगुप्त' और 'चंद्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद की अंतिम कृति है। अन्य नाटकों में प्रसाद विशेष रूप से राजनैतिक प्रश्नों के यथार्थ से जूझते रहे हैं परंतु 'ध्रुवस्वामिनी' में सामाजिक जीवन की वर्तमान युगीन नारी समस्या पर बौद्धिक विचार–विमर्श कर यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है।

प्रसाद जी ने हिन्दी नाटक की प्रवाहमान धारा को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा किया। अपने नाटकों द्वारा प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के भव्य रूप की झांकी दिखाकर राष्ट्रीय आंदोलन के साथ–साथ अपने देश के अधुनातन निर्माण की पीठिका भी प्रस्तुत की है। भारतेंदु ने अपने नाटकों में जिस प्राचीन भारतीय संस्कृति की स्मृति को भारत की सोई हुई जनता के हृदय में जगाया था, प्रसाद के नाटकों ने उसी संस्कृति के उदात्त और मानवीय रूप पर अपनी भावी संस्कृति के निर्माण की चेतना प्रदान की।

प्रसाद जी ने अपने नाटकों की रचना स्वच्छंदतावादी नाट्य प्रणालियों को आधार बनाकर और उनके मूलभूत तत्वों, कल्पना, भावुकता, सौंदर्य प्रेम, अतीत के प्रति अनुराग, उच्चादर्शों के प्रति मोह तथा शैली शिल्प की स्वच्छंदता आदि को ग्रहण किया। किंतु ऐसे साहित्यिक नाटकों के अनुरूप रंगमच हिन्दी में नहीं था। इसलिए अन्य सभी दृष्टियों से सफल होते हुए भी प्रसाद के नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नहीं हो सके।

प्रसादयुगीन अन्य नाटक एवं नाटककार

आधुनिक हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में जयशंकर प्रसाद के बाद हरिकृष्ण प्रेमी को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्रसाद युग में 'प्रेमी' ने 'स्वर्ण विहान', 'रक्षा बंधन', 'पाताल विजय', 'प्रतिशोध', 'शिवासाधना' आदि नाटक लिखे। इनमें 'स्वर्ण विहान' गीति नाट्य है और शेष गद्य नाटक। प्रसाद ने जहां प्राचीन भारत का चित्रण करते हुए सत्व, प्रेम, अहिंसा व त्याग का संदेश दिया, वहां प्रेमी जी ने मुस्लिम युगीन भारत को नाट्य

विषय के रूप में ग्रहण करते हुए हिंदू–मुस्लिम एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के उत्थान और संगठन के लिए इनके नाटक राष्ट्रीय भावना का संचार करने वाले हैं। प्रेमी जी प्रसाद की परंपरा के अनुयायी हैं। परंतु उन्होंने प्रसाद जी की भांति अपने नाटकों को साहित्यिक और पाठ्य ही न रख कर उनको रंगमंच के योग्य भी बनाया। साहित्यिकता और रंगमंचीयता का समन्वय ही उनके नाटकों की विशेषता है।

इस युग में धार्मिक–पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की रचना अत्यधिक हुई। इन नाटकों में कलात्मक विकास विशेष रूप से नहीं हुआ, किंतु युग की नवीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर कई नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। धार्मिक पौराणिक नाटककारों में अबिंकादत्त त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, सेठ गोविंदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद युग में इतिहास का आधार लेकर अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं प्रस्तुत की गईं। इस समय के नाटककारों की प्रवृत्ति इतिहास की ओर विशेष रूप से गई क्योंकि यह युग पुनरुत्थान और नवजागरणवादी प्रवृत्तियों से अनुप्राणित था। फलतः जन साधारण में अपने गौरवपूर्ण इतिहास तथा अपनी महान सांस्कृतिक चेतना का संदेश देना इन नाटककारों ने अपना कर्तव्य समझा। इस काल की ऐतिहासिक कृतियों में गणेशदत्त इंद्र कृत 'महाराणा संग्रामसिंह', भंवरलाल सोनी कृत 'वीर कुमार छत्रसाल', चंद्रराज भंडारी कृत 'सम्राट अशोक', ज्ञानचंद्र शास्त्री कृत 'जयश्री', प्रेमचंद्र कृत 'कर्बला', जिनेश्वर प्रसाद भायल कृत 'भारत गौरव अर्थात सम्राट चंद्रगुप्त', दशरथ ओझा कृत 'चितौड़ की देवी' और 'प्रियदर्शी सम्राट अशोक', चतुरसेन शास्त्री कृत 'उपसर्ग' और 'अमर राठौर', उदयशंकर भट्‌ट कृत 'विक्रमादित्य' आदि शामिल हैं। इन नाटककारों ने आदर्शवादी प्रवृत्ति के बावजूद स्वाभाविकता का बराबर ध्यान रखा और कल्पना तथा मनोविज्ञान की सहायता से प्राचीन काल की घटनाओं और चरित्रों को स्वाभाविकता के साथ चित्रित करने की चेष्टा की।

सामाजिक नाटकों की रचना भी बहुतायत में हुई। सामाजिक नाटकों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' और 'हिंदू विधवा नाटक', प्रेमचंद कृत 'संग्राम', ईश्वरी प्रसाद शर्मा कृत 'कृषक दुर्दशा', सुदर्शन कृत 'अंजना', गोविंदबल्लभ पंत कृत 'कंजूस की खोपड़ी', बैजनाथ चावला कृत 'भारत का आधुनिक समाज', नमेश्वरी प्रसाद 'राम' कृत 'अछूतोद्धार' प्रमुख हैं।

प्रसाद युग में श्रृंगार प्रधान नाटकों का प्रायः ह्रास हो गया था। थोड़ी–बहुत प्रतीकवादी परंपरा चल रही थी, किंतु उसकी गति बहुत धीमी थी। प्रतीक का महत्व वस्तुतः सांकेतिक अर्थ में है। इस अवधि में प्रसाद की 'कामना' के पश्चात सुमित्रानंदन पंत कृत 'ज्योत्सना' इस शैली की उल्लेखनीय रचना है। इसमें पंत की रंगीन कल्पनामयी झांकी का मनोरम स्वरूप व्यक्त होता है। इस युग के हास्य–व्यंग्य नाटकों में जी.पी. श्रीवास्तव का 'दुमदार आदमी', 'गड़बड़ झाला', 'नाक में दम उर्फ जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मियां की जूती मियां के सर', 'भूलचूक', 'चोर के घर छिछोर' 'चाल बेढ़ब', 'साहित्य का सपूत', 'स्वामी चौखटानंद' आदि प्रसिद्ध हैं। इस युग में कतिपय गीति–नाटकों की भी रचना हुई। इसमें प्रमुख हैं– मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ',

हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'स्वर्ण विहान', भगवतीचरण वर्मा कृत 'तारा', उदयशंकर भट्‌ट कृत 'मत्स्यगंधा' और 'विश्वामित्र' आदि।

प्रसाद युग हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति लेकर आया। इस युग के नाटकों में राष्ट्रीय जागरण एवं सांस्कृतिक चेतना का सजीव चित्रण हुआ है। किंतु रंगमंच से लोगों की दृष्टि हट गई थी। कथ्य के स्तर पर वे देश की तत्कालीन समस्याओं से जुड़े थे। इतिहास के माध्यम से अपने युग की यथार्थ समस्याओं को अंकित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

4. प्रसादोत्तर युगीन नाटक (1937 से अब तक)

प्रसादोत्तर युगीन नाटक यथार्थ की ओर अधिक उन्मुख दिखाई पड़ते हैं। परतंत्र भारत के सामने एक विशिष्ट उद्देश्य था राष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति और विदेशी शासकों के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना, फलस्वरूप व्यापक स्तर पर पुनरुत्थान एवं पुनर्जागरण की लहर फैल गई। इस समूचे काल में पुनर्जागरण की शक्तियों का प्रभाव होने के कारण चेतना के स्तर पर भावुक आवेशात्मक आदर्शवादी प्रवृत्तियों से आक्रांत होना नाटककारों के लिए स्वाभाविक था। यही कारण है कि प्रसादोत्तर काल तक किंचित परिवर्तनों के साथ सभी रचनाकारों की दृष्टि मूलतः आस्था, मर्यादा और गौरव के उच्चादर्शों से मंडित रही। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी नाट्य साहित्य में इब्सन एवं शॉ द्वारा प्रवर्तित यथार्थवादी नाट्यान्दोलन ने भारतीय नाट्य साहित्य की गतिविधियों को भी प्रेरित एवं प्रभावित किया। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्रसाद के विरोध में समस्या नाटकों का सूत्रपात करके बुद्धिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों का लेखन प्रसाद युग में ही प्रारंभ किया था। उनके 'अशोक', 'संन्यासी', 'मुक्ति का ठहराव', 'राक्षस का मंदिर', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', 'आधी रात' आदि नाटक इसी काल के हैं। किंतु मिश्र के इन नाटकों में भारतेंदु और प्रसाद की नाट्यधारा से भिन्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। मिश्र जी नवीन चेतना के अग्रदूत माने जाते हैं। डारविन द्वारा प्रतिपादित विकासवादी सिद्धांत, फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत और मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांतों ने यूरोप को ही नहीं भारतीय जीवन पद्धति को भी प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप जीवन में आस्था और श्रद्धा की बजाय तर्क को प्रोत्साहन मिला। पश्चिम में इस प्रकार की बौद्धिक चेतना ने समस्या नाटक को जन्म दिया। उन्हीं की प्रेरणा से मिश्र जी ने हिन्दी नाटकों में भावुकता, रसात्मकता और आनंद के स्थान पर तर्क और बौद्धिकता का समावेश किया। 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में पश्चिम के उन्मुक्त प्रेम पर भारतीय दाम्पत्य विधान की विजय दिखाई गई। 'राक्षस का मंदिर' मिश्र जी का प्रयोगात्मक नाटक है। इसमें इब्सन की यथार्थवादी और शेक्सपीयर की स्वच्छंदतावादी नाट्य पद्धति का समन्वय देखने को मिलता है।

मिश्र जी के नाटकों के साथ हिन्दी नाटक के विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आया है। मिश्र जी के सभी नाटक तीन अंकों के हैं। इनमें इब्सन नाट्य पद्धति का अनुसरण कर किसी भी अंक में बाह्यतः कोई दृश्य विभाजन नहीं रखा गया है यद्यपि दृश्य परिवर्तन की सूचना यत्र–तत्र अवश्य दे दी जाती है।

उपेंद्रनाथ 'अश्क' उन नाटककारों में हैं जिन्होंने प्रसादोत्तर काल में नाट्य परंपरा को निर्भीक और बुनियादी यथार्थ की मुद्रा प्रदान की। उनके प्रमुख नाटक हैं–'जय पराजय', 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैदी', 'उड़ान', 'भंवर', 'आदि मार्ग', 'पैंतरे', 'अलग अलग रास्ते', 'अंजो दीदी', 'आदर्श और यथार्थ' आदि। अश्क जी के प्रायः सभी नाटकों में विकसित नाट्य कला के दर्शन होते हैं। वस्तु विन्यास की दृष्टि से इनके नाटक सुगठित, स्वाभाविक, संतुलन एवं चुस्त बन पड़े हैं। उच्च मध्य वर्गीय समाज की रूढ़ियों, दुर्बलताओं, उनके जीवन में व्याप्त 'कृत्रिमता', दिखावे और ढोंग का पर्दाफाश करना उनके नाटकों का मूलभूत कथ्य है। यह कथ्य समाज के स्थूल यथार्थ से संबंधित है। कथ्य की स्थूलता और सतही प्रगतिशील यथार्थवादिता ही अश्क के नाटकों की सीमा है, तथापि स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के सम्मोहन से हिन्दी नाटक को मुक्त करने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। उनकी विशेषता इस बात में है कि उन्होंने जीवन और समाज को एक आलोचक की दृष्टि से देखा है। इनके अनेक नाटक मंचित तथा रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं। इनका योगदान हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिए एक विशेष उपलब्धि है।

आलोच्य युग में कुछ पुराने खेमे के नाटककार; यथा– सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' आदि भी नाट्य साहित्य को समृद्ध करते रहे। सेठ गोविंददास ने 'कर्ण', 'शशि गुप्त' आदि पौराणिक नाटकों और 'हिंसा और अहिंसा', 'संतोष कहां' आदि सामाजिक नाटकों की रचना की। हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' और 'बंधन' सामाजिक नाटक हैं। गोविंद वल्लभ पंत ने आलोच्य युग में 'अंतःपुराण का छिद्र', 'सिंदूर बिंदी' और 'ययाति' नाटकों की रचना की। जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द का 'समर्पण' और 'गौतम नन्द' ख्याति प्राप्त रचनाएं हैं।

इसी काल में स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक में परिवर्तन की एक नई स्थिति दिखाई देती है। प्रसादोत्तर नाटक पहले चरण में यथार्थवादी प्रवृत्ति से अनुप्राणित हुआ और उसके साथ ही समस्यामूलक नाटक का आविर्भाव हुआ, किंतु स्वतंत्रता के बाद सामाजिक यथार्थ और समस्या के प्रति जागरूकता के साथ–साथ नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के कई नए आयाम उभरे। इसके अतिरिक्त स्थूल यथार्थ के प्रति नाटककार के दृष्टिकोण में भी अंतर आया।

युगीन परिवेश के ऐतिहासिक संदर्भों में पांचवें दशक तक जीवन के समस्या–संकुल न होने पर भी आम जनता की स्थिति में सुधार और परिवर्तन आने की अभी धुंधली सी आशा दिखाई दे रही थी परंतु छठे दशक के बाद से मीठे मोहक सपने चकनाचूर हो गए। जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल आदि नाटककारों ने अपनी ऐतिहासिक एवं सामाजिक रचनाओं द्वारा कुछ सीमाओं के साथ यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया। जगदीश चंद्र माथुर ने 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा' तथा 'दशरथ नन्दन' आदि नाटकों की रचना की। इन नाटकों में क्रमशः मार्क्स एवं फ्रायड के प्रभावसूत्रों को आत्मसात करते हुए छायावादी रोमानी कथा स्थितियों की सृष्टि यथार्थवादी एवं आदर्शवादी धरातल पर की गई है। 'कोणार्क' में कलाकार एवं सत्ता के संघर्ष की समस्या धर्मपद के तार्किक उपकथनों के माध्यम से विश्लेषित हुई है परंतु 'शारदीया'

एवं 'पहला राजा' की समस्याएं प्रगतिशील एवं ह्रासशील मूल्यों के संघर्ष की भूमि पर अवतरित होते हुए भी बौद्धिक एवं तार्किक प्रक्रिया के अभाव में यथार्थवादी कला की दृष्टि चिंतन शक्ति को उद्‌बुद्ध नहीं करती क्योंकि माथुर का विशेष बल आंतरिक अनुभूतियों एवं मानवीय संवेदना को जगाने पर है।

पाश्चात्य प्रभाव से स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक ने जो नए आयाम ग्रहण किए, उनकी प्रथम अभिव्यक्ति धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में प्रकट हुई। पश्चिम में दो महायुद्धों के बाद नाटक के क्षेत्र में कथ्य और शिल्प के अनेक प्रयोग हुए। इसके साथ ही युद्ध की परिस्थितियों के कारण जीवन मूल्यों में भी बड़ा भारी परिवर्तन आया, उसकी अभिव्यक्ति भी नाटक में हुई।

डॉ. धर्मवीर 'भारती' के 'अंधा युग' गीति–नाटक ने हिन्दी गीति नाट्य परंपरा को एक नया मोड़ दिया है। इसमें नाटककार ने महाभारत के युद्ध को अनीति, अमर्यादा और अर्द्ध– सत्य से मुक्त माना है। इसीलिए उन्होंने उस काल को अंधायुग कहा है। इस नाटक में मिथकीय पद्धति द्वारा विगत और शाक्त का समन्वय कर, निरंतरता में आस्था उत्पन्न करने का सघन प्रयास किया गया है। 'अंधायुग' के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत के 'रजतशिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' में संगृहीत गीति नाट्य, गिरजाकुमार माथुर का 'कल्पान्तर', 'सृष्टि की सांझ', 'लौह देवता', 'संघर्ष', 'विकलांगों का देश' और 'बादली का शाप' तथा दुष्यन्तकुमार का गीतिनाटक 'एक कंठ विषपायी' आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल के नाटकों में 'अंधा कुआं', 'मादा कैक्टस', 'तीन आंखों वाली मछली', 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर', 'रक्त कमल', 'रात रानी', 'दर्पण', 'सूर्यमुख', 'कलंकी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'करफ्यू', 'यक्ष प्रश्न' आदि प्रमुख हैं। 'अंधा कुआं' में आर्थिक संघर्ष के कारण उत्पन्न ग्राम्य जीवन के सामाजिक और पारिवारिक द्वंद्व का चित्रण है। 'मादा कैक्टस', 'सुंदर रस', 'सूखा सरोवर' और 'रक्त कमल' उनके प्रतीक नाटक हैं। 'तोता मैना' नाटक टेकनीक के नए प्रयोगों को प्रस्तुत करता है। यह नाटक लोकवृत्त पर आधारित है। 'दर्पण', 'रात रानी' समस्यात्मक नाटक हैं। 'दर्पण' में मनुष्य को अपने वास्तविक रूप की तलाश में भटकते हुए दिखाया गया है।

मोहन राकेश ने हिन्दी नाटकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर एक नए युग की स्थापना की है। उनके 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे–अधूरे' नाटक निश्चय ही ऐसे आलोक स्तंभ हैं जो सुदूर भविष्य में भी हिन्दी नाटक को एक नवीन गति दिशा प्रदान करते रहेंगे। मानवीय संबंधों में विघटन के कारण टूटते हुए व्यक्ति के आभ्यंतर यथार्थ का चित्रण करना इन नाटकों का केंद्रीय कथ्य एवं मूल स्वर है। 'आषाढ़ का एक दिन' कवि कालिदास और उसकी बाल–संगिनी मल्लिका के प्रेम और संघर्ष की कथा पर आधारित है। कालिदास अपने परिवेश एवं मल्लिका से कट जाने के कारण जीवन के नए अर्थ की तलाश में निकल पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' अश्वघोष के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सौन्दरानन्द' पर आधारित है। इस नाटक का नंद सुंदरी और गौतम दोनों से निरपेक्ष हो जाने के बाद अलगाव की स्थिति में आंतरिक सत्य की

सही तलाश करने के लिए चल पड़ता है, अतः उनका जीवन बोध अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमिका पर ही उभरा है। राकेश की दृष्टि का यह यथार्थ जीवन अर्थों की खोज तक ही सीमित है। किसी परिणति तक पहुंचना राकेश का अभीष्ट भी नहीं है। इसी कारण उनके समस्त नाटकों का समापन किसी निश्चित अंत पर पहुंचकर नहीं होता। 'आधे अधूरे' द्वारा आधुनिक जीवन से साक्षात्कार कराया गया है, इसमें महानगर के मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण है। आज के परिवार की टूटन और चुक गए आपसी संबंधों को इस नाटक में बड़े सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश ने अपनी नाट्य सृष्टि में अंतर्निहित यथार्थ को पकड़ने की चेष्टा की है। सभी नाटक रंगमंचीय संभावनाओं से पूर्ण हैं। प्रसाद जी के बाद सर्वाधिक सशक्त नाटककार हम मोहन राकेश को ही कह सकते हैं।

मोहन राकेश के बाद सुरेंद्र वर्मा के नाटक 'द्रोपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक', 'आठवां सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं।

अधुनातन नाटककार मुद्राराक्षस, लक्ष्मीकांत वर्मा, मणि मधुकर, शंकर शेष और भीष्म साहनी भी क्रमशः अपने नाटकों 'योर्स फेथफुली', 'तेंदुआ', 'मरजीवा', 'रोशनी एक नई है', 'रसगंधर्व', 'एक और द्रोणाचार्य' तथा 'हानूश' के माध्यम से व्यवस्था से संदर्भित समाज एवं व्यक्ति के बाह्य एवं आंतरिक यथार्थ संबंधी प्रश्नों से जूझ रहे हैं। इन्होंने जहां एक ओर वर्ग–वैषम्यों की चेतना को जाग्रत करके व्यवस्था के ह्रासशील रूपों का यथार्थ चित्रण किया है वहीं सत्ता के दबाव में पिस रहे आम आदमी की करुण नियति और उससे उत्पन्न संत्रास का भी रूपायन किया है। नए नाटककार सत्यदेव दुबे, रमेश उपाध्याय, रामेश्वर प्रेम, शरद जोशी, गिरिराज किशोर, सुशील कुमार सिंह, बलराज पंडित, मृदुला गर्ग, सुदर्शन चोपड़ा, प्रभात कुमार भट्‌टाचार्य, गंगा प्रसाद विमल, रमेश बक्षी, भगवतीचरण वर्मा, इंद्रजीत भाटिया नए नाटक लिख कर आंतरिक यथार्थ बोध की संपुष्टि में योग दे रहे हैं।

आज की हिन्दी नाटकों की उपलब्धि पर विचार करें तो हम पाते हैं कि हिन्दी नाटक ने अपनी निरर्थकता और कलाहीनता के घेरे को तोड़कर उल्लेखनीय सर्जनात्मकता प्राप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाया है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. भारतेंदु के पिता ने कौन–सा नाटक लिखा था?

(क) आनंद रघुनंदन (ख) नहुष

(ग) भारत दुर्दशा (घ) इनमें से कोई नहीं

4. निम्न में से जयशंकर प्रसाद की अंतिम कृति कौन–सी है?

(क) स्कन्दगुप्त (ख) चंद्रगुप्त

(ग) ध्रुवस्वामिनी (घ) अजातशत्रु

3.4 एकांकी : इतिहास एवं प्रवृत्तियां

एकांकी अर्थात एक अंक के नाटक ने आज नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। विज्ञान के फलस्वरूप मानव के समय और शक्ति की बचत हुई है। फिर भी जीवन संघर्ष में मानव की दौड़–धूप लगातार जारी है। जीवन की त्रस्तता और व्यस्तता के कारण आधुनिक मानव के पास इतना समय नहीं है कि वह बड़े–बड़े नाटकों, उपन्यासों, महाकाव्यों आदि का संपूर्णतः रसास्वादन कर सके और इसलिए गीत, कहानी, एकांकी आदि साहित्य के लघु रूपों को अपनाया जा रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी एकांकी के विकास–क्रम को निम्नलिखित प्रमुख काल–खंडों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भारतेंदु–द्विवेदी युग
2. प्रसाद युग
3. प्रसादोत्तर युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

भारतेंदु–द्विवेदी युग

जिस प्रकार भारतेंदु हिन्दी में अनेकांकी नाटकों के लिखने वालों में प्रथम नाटककार माने जाते हैं उसी प्रकार हिन्दी में सबसे पहला एकांकी भी उन्होंने ही लिखा। यद्यपि इस संबंध में विद्वानों में मतभेद अवश्य हैं। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि के मत में भारतेंदु तथा उनके समकालीन एकांकीकारों के एक अंक वाले नाटकों में संस्कृत में एक अंक वाले रूपकों का प्रभाव है। वास्तव में वे एकांकीकार किसी 'एकांकी' विधा का नाम तक नहीं जानते थे। इसके विपरीत डॉ. सत्येंद्र, प्रो. लालताप्रसाद, प्रो. रामचरण महेंद्र आदि ने भारतेंदु को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार माना है। डॉ. सत्येंद्र ने लिखा है कि "यद्यपि एकांकी के नाम से भारतेंदु परिचित नहीं थे और उसे साहित्य का अलग अंग नहीं मानते थे, किंतु आज के विकसित एकांकियों की साहित्य–धारा में जो प्रथमावस्था हो सकती है, वह भारतेंदु के एक अंक वाले नाटकों में स्वतः मिलती है। अतः भारतेंदु जी को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि .... भारतेंदु जी के लिखे मौलिक नाटकों में से 'चंद्रावली' और 'अंधेर नगरी' दो नाटक हैं, शेष सब एकांकी।" अस्तु, भारतेंदु प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875 ई.) से हिन्दी एकांकी का प्रारंभ माना जा सकता है।

आलोच्य युग में विषयगत दृष्टिकोण को सामने रखकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियां उभरीं। समाज में प्रचलित प्राचीन परंपराओं, कुप्रथाओं एवं स्वस्थ सामाजिक विकास में बाधक रीति–रिवाजों को दूर करने का प्रयास उन सामाजिक समस्या–प्रधान रचनाओं के माध्यम से किया गया। इन एकांकीकारों ने

जहां सामाजिक कुरीतियों पर हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण प्रहार किए वहीं सामाजिक नवनिर्माण के लिए भी समाज को प्रेरित एवं जाग्रत किया। इन रचनाओं के पात्र भारतीय जन–जीवन के जीवित एवं सजीव पात्र हैं जिनके संवादों द्वारा भारतीय भद्र जीवन में प्रविष्ट पाखंड एवं व्यभिचार का भंडाफोड़ होता है।

भारतेंदुकालीन एकांकियों की धार्मिक, पौराणिक धारा के अंतर्गत लिखे गए एकांकियों में धार्मिक कथानकों के आधार पर भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी विचारधारा प्रस्तुत की गई है। इस क्षेत्र में भारतेंदु जी के 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'धनंजय', लाला श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरित्र', बदरीनारायण प्रेमधन का 'प्रयाग रामागमन', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' और 'सती चंद्रवली', बालकृष्ण भट्ट का 'दमयंती स्वयंवर', जैनेंद्र किशोर का 'सोभावती' अथवा 'धर्मवती', कार्तिक प्रसाद का 'ऊषाहरण', 'गंगोत्तरी', 'द्रौपदी चीर हरण' और 'निस्सहाय हिंदू', मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या का 'प्रह्लाद', खड्गबहादुर मल्ल का 'हरतालिका' आदि में धार्मिक कथानकों पर आधारित पौराणिक एकांकियों के माध्यम से सांस्कृतिक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया।

इस युग में हास्यव्यंग्य प्रधान एकांकी सर्वाधिक लिखे गए जो प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। ये प्रहसन धार्मिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विषयों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। इन प्रहसनों पर पारसी रंगमंच का सर्वाधिक प्रभाव है, इसलिए उच्चकोटि का हास्य एवं व्यंग्य इनमें नहीं मिलता। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में बाल–विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यागमन, मद्यपान, विलासप्रियता आदि पर व्यंग्य किया गया है और धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक संकीर्णता और उसकी आड़ में किया पाखंड, पंडागिरी, कर्मकांड, ज्योतिषियों की धोखेबाजी आदि पर आक्षेप किए गए हैं। इस प्रकार के एकांकियों में कमलाचरण मिश्र का 'अद्‌भुत नाटक', श्री जगन्नाथ का 'वर्ण व्यवस्था', माधोप्रसाद का 'वैसाखनंदन', घनश्यामदास का 'वृद्धावस्था विवाह', दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'प्रभात मिलन', अम्बिदादत्त व्यास का 'गौ–संकट' और 'मन की उमंग', देवकीनंदन त्रिपाठी का 'जय नरसिंह की', 'सैकड़ों में दस–दस', 'कलयुगी जनेऊ', 'कलियुगी विवाह', 'एक एक के तीन तीन', 'बैल छः टके का', 'वेश्याविलास' आदि, बालकृष्ण का 'शिक्षादान', खड्गबहादुर मल्ल का 'भारत–आरत' आदि उल्लेखनीय हैं।

ये रचनाएं वास्तव में एक अंक के नाटक ही हैं। एकांकी की परंपरा में आते हुए भी इन्हें सभी दृष्टियों से पूर्ण 'एकांकी' नहीं कहा जा सकता। इनमें एकांकी के कुछ तत्व अवश्य पाए जा सकते हैं। इस युग के एकांकीकारों ने शैली को निखारने की ओर ध्यान न देकर समाज–सुधार पर ध्यान दिया।

प्रसाद–युग

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास संदर्भ में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग अलग–अलग दो युगों के रूप में मान्य होने पर भी हिन्दी एकांकी के विकास की दृष्टि से एक ही माने जाते हैं क्योंकि द्विवेदी युग में नाट्यकला की स्थिति में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई और न ही ऐसा प्रतिभासंपन्न एकांकीकार इस युग में हुआ जो इस युग की हिन्दी को एकांकी के क्षेत्र में प्रमुखता दिलाता। अतः हिन्दी एकांकी के विकास की दृष्टि से द्वितीय युग प्रसाद युग के नाम से जाना जाता है। इस संदर्भ में आधुनिक एकांकी साहित्य की प्रथम

मौलिक कृति के रूप में प्रसाद के 'एक घूंट' का उल्लेख किया जा सकता है। यह रचना सन् 1929 में प्रकाशित हुई। यहीं से हम एकांकी के शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखते हैं। फिर भी एकांकी साहित्य में इसके स्थान और महत्व पर विद्वानों में काफी मतभेद है। परंतु पुरानी नाट्य परंपरा के आदर्श पर 'एक घूंट' एकांकी की जो नव्यतर प्रवृत्तियां मिलती हैं, उनके आधार पर उसको आधुनिक एकांकी के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा। रसोद्रेक के लिए संगीत–व्यवस्था, संस्कृत नाट्य प्रणाली का विदूषक, स्वगत कथन आदि प्राचीन परंपराओं के निर्वाह के साथ ही स्थल की एकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण, गतिशील कथानक आदि आधुनिक एकांकी सभी विशेषताएं 'एक घूंट' में मिलती हैं। अतः भारतेंदु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली है तो उसे पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय प्रसाद जी को ही है।

वास्तव में आधुनिक ढंग से हिन्दी एकांकियों का विकास प्रसाद युग में ही हुआ क्योंकि इस युग में कुछ युगांतकारी नवीन प्रयोग एकांकी क्षेत्र में हुए। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखना प्रारंभ किया तथा पाश्चात्य तकनीक को अपनाया। स्पष्टतः इस युग में एकांकी नाटकों में पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों की प्रेरणा एवं प्रभाव विद्यमान है। पाश्चात्य नाटककारों, हैनरिक इब्सन, गाल्सवर्दी तथा बर्नाड शॉ आदि का प्रभाव इस युग के एकांकियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ा तथा इससे एकांकी साहित्य को परिपक्वता की स्थिति पर पहुंचने में सहायता मिली।

आलोच्य युग के एकांकियों में अभिनव तत्वों की मान्यता परिलक्षित होती है। अंकों के स्थान पर एकांकी में दृश्यों का प्रयोग हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी संस्कृत परिपाटी पर रचे गए थे, इस युग में वे नवीन रूपों में विकसित होने लगे। प्राचीनता का मोह छोड़कर नवीन ढंग के एकांकी नाटक लिखे गए जो कथानक की दृष्टि से मानव जीवन के अत्यधिक निकट थे। प्राचीन कथावस्तु में जो कृत्रिमता होती थी उसके स्थान पर सामाजिक, पारिवारिक एवं दैनिक समस्याओं को एकांकी का विषय बनाना प्रारंभ किया गया। ये रचनाएं यथार्थवाद के निकट आईं। प्राचीन कृत्रिम प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, प्राचीन रंगमंच एवं अस्वाभाविकता के बहिष्कार का स्वर इस युग की रचनाओं में प्रमुखतया प्राप्त होता है। नई समस्याएं, विचारधारा एवं गद्यात्मक शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारंभ हुआ।

प्रसाद युग में जिन सामाजिक एकांकियों की रचना हुई उन पर युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। प्रसाद युगीन एकांकीकारों का आलोच्य युग की अन्य नवीन समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित हुआ।

तत्कालीन समाज की नग्न विकृतियों का चित्रण करने वाले अनेक एकांकियों की रचना इस युग में हुई। जीवानंद शर्मा कृत 'बाला का विवाह', हरिकृष्ण शर्मा कृत 'बुढ़ाऊ का ब्याह', जी.पी. श्रीवास्तव रचित 'गड़बड़झाला' और 'भूलचूक, रामसिंह वर्मा कृत 'रेशमी रूमाल', श्री बदरीनाथ भट्ट कृत 'विवाह विज्ञापन', डॉ. सत्येंद्र कृत 'बलिदान' आदि प्रमुख हैं।

इस युग के एकांकियों में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। मंगल प्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह', सुदर्शन कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा', 'राजपूत की हार' तथा 'जब आंखें खुलती हैं' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एकांकी रचनाएं हैं।

प्रसाद युगीन एकांकीकारों ने अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना करके भारतीय जनता को प्राचीन भारतीय गौरव एवं अतीत के स्वरूप का स्मरण कराया। मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह' में राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य प्रेम तथा भारतीय अतीत के गौरवशाली स्वरूप की प्रतिष्ठा है। श्री आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'नूरजहां', 'चाणक्य और चंद्रगुप्त', 'शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी' ऐतिहासिक कृतियां हैं। श्री ब्रजलाल शास्त्री रचित 'निला', 'दुर्गावती', 'पद्‌मिनी', 'पन्ना', 'तारा', 'किरण देवी' आदि ऐतिहासिक आदर्शवाद से प्रभावित अतीत गौरव को स्पष्ट करने वाली रचनाएं हैं। श्री सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार', 'प्रताप प्रतिज्ञा' आदि में राजपूती शौर्य, राजपूती स्त्रियों का स्वदेश हित हेतु कर्तव्य का पालन एवं देश प्रेम की भावना का प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। सेठ गोविंददास ने तो बहुत ही बड़ी संख्या में ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है।

धार्मिक पौराणिक एकांकी धारा को प्रवाहित करने में राधेश्याम कथावाचक कृत 'कृष्ण–सुदामा', 'शांति के दूत भगवान', 'सेवक के रूप में भगवान कृष्ण', जयदेव शर्मा रचित 'न्याय और अन्याय', जयशंकर प्रसाद कृत 'सज्जन' और 'करुणालय', आनंदी प्रसाद कृत 'पार्वती और सीता', चतुरसेन शास्त्री कृत 'सीताराम', 'राधा–कृष्ण', हरिश्चंद्र–शैव्या' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रसाद युग में कुछ एकांकीकारों ने धार्मिक पौराणिक एकांकी की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इस युग ने आगामी एकांकीकारों को एक ठोस आधारभूमि प्रदान की जिसमें आधुनिक एकांकी साहित्य और भी स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ।

प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर युग में यद्यपि एकांकी की अनेक प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिला है तथापि सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति पर लगभग सभी युगीन एकांकीकारों ने अपनी लेखनी चलाई। प्रस्तुत युग के प्रमुख एकांकीकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने तो अनेक सामाजिक समस्या प्रधान एकांकियों की रचना करके हिन्दी एकांकी साहित्य को बहुमूल्य धरोहर प्रदान की है। इन्होंने जीवन की वास्तविकता को अपने एकांकियों का आधार बनाया। इस दृष्टि से इनके 'एक तोले अफीम की कीमत', 'अठारह जुलाई की शाम', 'दस मिनट', 'स्वर्ग का कमरा', 'जवानी की डिब्बी', 'आंखों का आकाश', 'नहीं का रहस्य', 'रंगीन स्वप्न' आदि एकांकी सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्मा जी के समान उपेंद्रनाथ 'अश्क' का ध्यान भी विविध वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर गया। इनकी एकांकी रचनाओं में 'चरवाहे', 'चिलमन', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पहेली', 'सूखी डाली', 'अंधी गली', 'तूफान से पहले' आदि सामाजिक दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री शंभुदयाल सक्सेना रचित 'कन्यादान', 'नेहरू के बाद', 'मुर्दों का व्यापार', 'नया समाज', 'नया हल नया खेत', 'सगाई', 'मृत्युदान' आदि एकांकी सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बादलों के पार', 'वाणी मंदिर', 'सेवा मंदिर', 'घर या होटल', 'निष्ठुर न्याय' आदि एकांकी रचनाओं में विविध सामाजिक समस्याओं का अंकन किया है जिनमें विधवा समस्या, नारी की आधुनिकता, वर्ग वैषम्य, जातीय बंधन की संकीर्णता, प्राचीन परंपराओं एवं मान्यताओं की अर्थहीनता, पुरुष की वासना लोलुपता एवं दुश्चरित्रता

आदि का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। भगवतीचरण वर्मा कृत 'मैं और केवल मैं', 'चौपाल में', तथा 'बुझता दीपक' में पीड़ित मानव की अंतर्वेदना का करुण स्वर उभर कर सामने आया है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'नया समाज', 'अमर ज्योति' तथा 'गांव का देवता' आदि रचनाएं सामाजिक समस्या प्रधान हैं। श्री सद्‌गुरुचरण अवस्थी ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों को उपयुक्त एवं उचित तर्कों की कसौटी पर कसकर उनको समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया, जिनमें बुद्धि, तर्क एवं विवेक का प्राधान्य है। इस दृष्टि से 'हां में नहीं का रहस्य', 'खद्दर', 'वे दोनों' आदि विशेष महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त चंद्रगुप्त विद्यालंकार रचित 'प्यास' तथा 'दीनू', श्री यज्ञदत्त शर्मा कृत 'छोटी बात', 'साथ', 'दुविधा', एस.सी. खत्री रचित 'बंदर की खोपड़ी', 'प्यारे सपने', श्री सज्जाद जहीर रचित 'बीमार' आदि रचनाओं में सामाजिक जीवन के सत्य को उभारते हुए इसका सर्वपक्षीय चित्रण किया गया है।

प्रसादोत्तर युग राजनीतिक क्रांति का युग था। गांधी जी का प्रभाव राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से पड़ रहा था। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र भी राजनीतिक क्रांति को कुचलने के लिए तीव्र गति से चल रहा था। एकांकीकारों ने तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं एवं गतिविधियों का चित्रण करना तथा देशवासियों में देश प्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को प्रबल करना अपना महान कर्तव्य समझा।

आलोच्य युग में कुछ देशद्रोही वैयक्तिक स्वार्थों के कारण ब्रिटिश शासकों का साथ दे रहे थे। ऐसे देशद्रोहियों को देशभक्ति की शिक्षा देने की दृष्टि से एकांकीकारों ने ऐतिहासिक पात्रों के आदर्श एवं त्यागमय चरित्र को प्रस्तुत करके प्राचीन भारतीय गौरव की ओर ध्यान भी आकर्षित करवाया। डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में 'चारुमित्र', 'पृथ्वीराज की आंखें', 'दीपदान', 'रात का रहस्य', 'प्रतिशोध', 'राज श्री' आदि प्रमुख हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने 'कलिंग विजय' तथा 'शारदीया' शीर्षक एकांकियों की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की है तथा भारतीय सांस्कृतिक वातावरण का प्रभावोत्पादक स्वरूप चित्रित किया है। राष्ट्रीय ऐतिहासिक भावना पर 'सिकंदर', 'जेरुसलम' आदि एकांकियों की रचना करके भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने देश प्रेम का परिचय दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी रचित 'मान मंदिर', 'न्याय मंदिर', 'मातृभूमि का मान', 'प्रेम अंधा है', 'रूपशिखा' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत ऐतिहासिक रचनाएं हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा रचित 'प्रतिशोध' तथा 'हेलन' में भारत के गौरवमय अतीत की झांकी प्रस्तुत की गई है। डॉ. सत्येंद्र रचित 'कुणाल', 'प्रायश्चित', 'विक्रम का आत्ममेघ' में प्राचीन कथानक लेकर स्वस्थ तथा तार्किक विचारधारा को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा, अतीत कालीन भारतीय गौरव की महत्ता तथा नागरिकों के चारित्रिक बल की अभिवृद्धि करने वाले आदर्श पात्रों की सृष्टि करके लेखक ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में सहयोग प्रदान किया है। गिरिजाकुमार माथुर रचित 'विषपान', 'कमल और रोटी', 'वासवदत्ता' आदि में देशभक्तिपूर्ण आत्म बलिदान तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किए गए शौर्यपूर्ण कार्यों का चित्रण है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'संघमित्रा', 'सिंहल विजय', 'नेत्रदान', 'तथागत' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसादोत्तर युग में अनेक एकांकीकारों

ने बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर एकांकियों की रचना करके प्राचीन भारतीय गौरव को वर्तमान के समक्ष रखा है।

आलोच्य युग में अनेक एकांकीकारों ने अनेक हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकियों की रचना करके विभिन्न सम–सामयिक समस्याओं का अभिव्यक्तिकरण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन एकांकीकारों ने उन विभिन्न समस्याओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया जो सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए अभिशाप बनी हुई थीं। उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने विशेष रूप से इस श्रेणी के एकांकियों की रचना की।

मनोवैज्ञानिक एकांकी की प्रवृत्ति का जन्म प्रसादोत्तर युग में आकर हुआ क्योंकि इस समय तक मनोविज्ञान विषय का पर्याप्त विकास हो चुका था। पाश्चात्य एकांकीकारों के प्रभावस्वरूप हिन्दी एकांकीकारों ने भी पात्रों के मन की गहराइयों में पहुंचकर उनके मनोभावों के चित्रण को परमावश्यक समझा। जगदीशचंद्र माथुर रचित 'मकड़ी का जाला', भुवनेश्वर प्रसाद रचित 'ऊसर', 'प्रतिमा का विवाह' तथा 'लाटरी' आदि मनोविश्लेषण प्रधान मनोवैज्ञानिक रचनाएं हैं।

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग में एकांकी साहित्य का एक स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है। अनेक पाश्चात्य नाटककारों जैसे इब्सन, शॉ, गाल्सवर्दी, चेखव आदि एकांकीकारों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रारंभ हो गया था। इन अंग्रेजी एकांकियों के हिन्दी अनुवादों की मांग रेडियो के क्षेत्र में अधिक थी। इस प्रकार आलोच्य युगीन एकांकीकारों ने विभिन्न नवीन प्रयोगों के द्वारा हिन्दी एकांकी साहित्य को समृद्धशाली बनाया।

स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से अब तक)

हिन्दी एकांकी के विकास की चौथी अवस्था में हिन्दी एकांकियों पर रेडियो का प्रभाव बड़ी गहराई से पड़ा है। रेडियो नाटकों के रूप में नाटकों का नवीन रूप हमारे समक्ष आया। एक सरल व सस्ती मनोरंजन का माध्यम होने के कारण श्रोतागण इसमें रुचि लेने लगे। इसलिए रेडियो एकांकियों की मांग इस युग में अधिक रही।

आलोच्य युग प्रत्येक दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तनों का युग था। इसमें पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियों का समुचित उत्कर्ष हुआ। इस युग में सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न पक्षीय परिवर्तनों और विकास का यथार्थपरक चित्रण करते हुए जहां एक ओर प्रमुख सामाजिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया गया वहां सामाजिक विघटन के कारणों का भी विश्लेषण हुआ। इन एकांकीकारों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर जोरदार शब्दों में की गई टीका टिप्पणी इस तथ्य का द्योतक है कि इन एकांकीकारों का सामाजिक दृष्टिकोण सुधारवादी है। इस क्षेत्र में विनोद रस्तोगी रचित 'बहू की विदा', कणाद ऋषि भटनागर रचित 'नया रास्ता' तथा 'अपना घर' दहेज की कुप्रथा का पर्दाफाश करते हैं। प्रस्तुत युग के सामाजिक एकांकी में विनोद रस्तोगी, जयनाथ नलिन, लक्ष्मीनारायण लाल, राजाराम शास्त्री, कैलाश देव, विष्णु प्रभाकर माचवे, रेवतीशरण शर्मा, श्री चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, कृष्ण किशोर, करतार सिंह दुग्गल, स्वरूप कुमार बख्शी, गोविंद लाल माथुर आदि ने समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों के चित्र खींचे हैं। इस

युग के एकांकीकारों का यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं मानवीय मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह रहा है। विष्णु प्रभाकर के एकांकियों में 'बंधन मुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध' तथा 'इनसान', 'वीर पूजा' आदि प्रमुख हैं।

आलोच्य युग के हिन्दी एकांकी में राजनीतिक जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, बंगाल का अकाल, भुखमरी, फासीवाद का विरोध, जागीरदारी और देशी नरेशों का जीवन यापन तथा अन्य अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं प्रकट हुई हैं। जयनाथ नलिन की राष्ट्रीय रचनाओं में सृजनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। देश की स्वतंत्रता, इसके लिए किया हुआ बलिदान, सर्वोच्य त्याग, सतत उद्योग एवं कर्म की आवश्यकता के महत्व का प्रतिपादन इनकी रचनाओं में हुआ है। इनके 'विद्रोही की गिरफ्तारी', 'देश की मिट्‌टी', 'युग के बाद', 'लाल दिन' आदि राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण एकांकी हैं। विष्णु प्रभाकर ने जो राजनीतिक भावना से परिपूर्ण एकांकी लिखे उनमें राजनीतिक उथल–पुथल, समाज पर राजनीतिक प्रभाव, स्वतंत्रता आंदोलन तथा राजनीतिक गौरव का चित्रांकन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर युग में अन्य अनेक प्रतिभासंपन्न एकांकीकार भी हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी एकांकी को संपन्न एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

संक्षिप्त रूप में, हिन्दी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखे गए वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित हुआ जो निश्चित रूप से प्रगति युग कहा जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. हिन्दी एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु की किस रचना से माना जाता है?

(क) प्रेमयोगिनी (ख) सत्य हरिश्चंद्र

(ग) धनंजय (घ) इनमें से कोई नहीं

6. एकांकी साहित्य की प्रथम मौलिक कृति किसे माना जाता है?

(क) प्रताप प्रतिज्ञा (ख) एक घूंट

(ग) दीपदान (घ) वापसी

3.5 निबंध

गद्य साहित्य की विविध विधाओं के साथ ही हिन्दी निबंध लेखन की शुरुआत भी भारतेंदु युग से होती है तथा इसके विकासक्रम को चार सोपानों में विभक्त किया जाता है–

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)
2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से सन् 1920 तक)

3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)

4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)

हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अधिकांश निंबध 'भारतेंदु ग्रंथावली' भाग 3, 'भारतेंदु कला' भाग 4 तथा 'भारतेंदु के निबंध' में संकलित हैं। भारतेंदु के निबंधों के विषय ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा इतिहास, धर्म, दर्शन, पुरातत्व आदि तक व्याप्त हैं। उन्होंने विषय को प्रस्तुत करने में व्यंग्य विनोद की शैली को प्रमुखता दी है, जिससे निबंधों में शुष्कता नहीं आ पाई है। भाषा सर्वत्र सधी हुई तथा विषयानुरूप है। 'खुशी', 'होली', 'त्योहार', 'सूर्योदय', 'भूकम्प', 'स्वर्ग में विचार सभा', 'कंकड़ स्तोत्र', 'अंग्रेजी स्तोत्र' आदि अनेक कतिपय प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय निबंध हैं।

भारतेंदु युग के दूसरे महत्वपूर्ण निबंधकार पं. बालकृष्ण भट्‌ट हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार एडीसन से की है। भट्‌ट जी की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप उनके निबंधों में उभर कर आया है। भट्‌ट जी ने अपने जीवन काल में सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, नैतिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर एक हजार से ऊपर निबंध लिखे थे। इसमें से कुछ 'साहित्य सुमन' तथा 'भट्‌ट निबंधावली' (भाग एक एवं दो) में संकलित हैं। 'नाक', 'कान', 'बातचीत' जैसे साधारण से प्रतीत होने वाले विषयों पर निबंध लिखने में इन्हें महारथ हासिल थी। हास्य–व्यंग्य और गंभीरता का जैसा सहज संगुंफन इनके यहां है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इनके व्यंग्य मन पर सीधी चोट करते हैं। इनमें शैलीगत वैविध्य भी पर्याप्त मात्रा में है।

भारतेंदु युग के तीसरे उल्लेखनीय निबंधकार पं. प्रताप नारायण मिश्र हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार स्टली से की है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निबंधों में जिस व्यंग्य विनोदपूर्ण शैली का समावेश किया था उसका समुचित विकास करने वाले निबंधकारों में पं. प्रताप नारायण मिश्र का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। हास्य–व्यंग्य के प्रति इनका कितना सम्मान था इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इन्होंने अपने निबंधों के शीर्षक तक ऐसे रखे हैं जिनसे पाठक इनकी इस विशेषता से अनायास परिचित हो जाता है, 'बंदरों की सभा', 'सोने का डंडा और पोंडा', 'समझदार की मौत' आदि शीर्षक इसी कथन की पुष्टि करते हैं। 'बात', 'दांत', 'आप', '1', '2' जैसे अत्यंत सामान्य से प्रतीत होने वाले विषयों पर चमत्कारपूर्ण निबंध लिखने में भी इन्हें कमाल हासिल था। 'निबंध नवनीत', 'प्रताप पीयूष' और 'प्रताप समीक्षा' इनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं।

भारतेंदु युग के अन्य लेखकों में यदि बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' शब्द विन्यास की अद्‌भुत छटा तथा आनुप्रासिक शब्दावली के लिए प्रख्यात हैं तो पं. मोहन लाल विष्णु लाल पांड्या सामयिक घटनाओं तथा भौगोलिक विवरणों से भरपूर निबंध लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। पं. अंबिका दत्त व्यास, काशीनाथ खत्री, पं. महादेव दूबे, पं. मुरलीधर पाठक, पं. हरिमुकुंद शर्मा, पं. हरिश्चंद्र उपाध्याय आदि इस युग के कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं।

भारतेंदु युगीन निबंध साहित्य विषयवस्तु तथा रचना शिल्प, दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे गए। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक आदि सभी का विषयानुरूप प्रयोग किया गया। हास्य–व्यंग्यात्मक शैली तो इस युग की एक अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता है। इस युग के प्रायः सभी निबंधकार अपने युग की विभिन्न प्रत्रिकाओं के संपादक थे। इस युग का अधिकांश निबंध साहित्य 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद चंद्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'आनंद कादंबिनी', 'मित्र विलास', 'भारत बंधु', 'भारत जीवन' आदि में प्रकाशित हुआ है। इसका एक स्वाभाविक एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि इस युग के निबंधकारों की भाषा अत्यंत सधी हुई है। परिणामतः हिन्दी निबंध साहित्य का यह पहला सोपान अपने सामान्य विषय चयन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण प्रत्येक सहृदय पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ता है।

2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से सन् 1920 तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान सन् 1901 से सन् 1920 तक माना जाता है। इस युग का लगभग संपूर्ण साहित्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का परिणाम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं सन् 1901 में बेकन के तेईस निबंधों के हिन्दी अनुवाद किए थे जो सरस्वती पत्रिका में छपे थे। सन् 1903 में तो उन्होंने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार भी संभाल लिया था। इस दायित्व का निर्वाह उन्होंने सन् 1920 तक किया। आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य अनेक लेखकों ने इस कालखंड के निबंध साहित्य को समृद्ध किया उनमें सर्वश्री माधव प्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, बाल मुकुंद गुप्त, अध्यापक पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं. पद्‌म सिंह शर्मा, मिश्रबंधु, गणेश शंकर विद्यार्थी, गौरी शंकर हीरा चंद ओझा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. श्याम सुंदर दास प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक कुशल संपादक, सुधी आलोचक तथा उपयोगितावादी निबंधकार थे। निबंध लेखक के रूप में उनका उद्देश्य पाठकों का ज्ञान वर्द्धन करना था। अतएव उन्होंने अपने निबंधों के विषय भी प्रायः ऐसे चुने हैं जो पाठक को नई जानकारी देने वाले हैं। 'जर्मनी में संस्कृत भाषा का अध्ययन–अध्यापन', 'सर विलियम जोंस ने संस्कृत कैसी सीखी', 'कवि कर्तव्य', 'कवि और कविता' आदि निबंधों के शीर्षक तक इस कथन की पुष्टि करते हैं। 'हंस का नीर–क्षीर विवेक', 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता', 'महाकवि माघ की राजनीति' आदि उनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। आचार्य द्विवेदी का निबंध साहित्य 'रसज्ञ रंजन', 'संचयन', 'साहित्य सीकर', 'लेखांजलि' आदि संग्रहों में संकलित है।

पं. माधव प्रसाद मिश्र ने सांस्कृतिक तथा विचारप्रधान निबंध लिखने के साथ–साथ भावप्रधान निबंध भी पर्याप्त मात्रा में लिखे। 'सब मिट्‌टी हो गया' इनका सर्वश्रेष्ठ निबंध माना जाता है। 'रामलीला', 'जीवन संग्राम में विजय पाने के उपाय', 'आत्माराम की टें टें' इनके कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंध हैं। तार्किक शैली, तत्सम प्रधान पदावली, पद–पद पर उद्धरण इनकी निबंध शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। इनके निबंध 'माधव प्रसाद मिश्र निबंध माला' में संकलित हैं।

द्विवेदी युग के निबंधकारों में सबसे प्रखर व्यक्तित्व बालमुकुंद गुप्त का है। गुप्त जी पत्रकार थे तथा 'भारत मित्र' का संपादन करते थे। इससे पूर्व ये उर्दू के कई पत्रों का संपादन कर चुके थे। अतएव ये हिन्दी में उर्दू की व्यंग्य शैली को साथ लेकर आए। इनकी प्रसिद्धि भी मुख्यतः सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर लिखे गए उन व्यंग्यात्मक निबंधों के कारण है जो 'शिव शंभु का चिट्‌ठा' तथा 'चिट्‌ठे और खत' में संकलित हैं। इसमें 'शिव शंभु का चिट्‌ठा' अधिक लोकप्रिय है। इस चिट्‌ठे में लॉर्ड कर्जन के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध लिखे गए वे आठ निबंध संकलित हैं जो 'भारत मित्र' तथा 'जमाना' पत्र–पत्रिकाओं में सन् 1904 से सन् 1905 ई. तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। ये चिट्‌ठे अपने समय में कितने लोकप्रिय थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब ज्योतींद्रनाथ बनर्जी ने इन्हें अंग्रेजी में अनूदित करके प्रकाशित किया तो पूरा संस्करण हाथों–हाथ बिक गया। ये रचनाएं पाठक को तद्‌युगीन राजनीतिक चेतना से ही परिचित नहीं करातीं अपितु हिन्दी भाषा की व्यंजना शक्ति एवं संप्रेषणीयता का अत्यंत पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह ने इस युग के निबंध साहित्य को नीरस निर्वैयक्तिकता से मुक्त करके भावावेश एवं कल्पना की एक ऐसी उड़ान दी है जिसका विकास हमें छायावाद में देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में, अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से मनुष्य के भावना जगत को छूना चाहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी शैलीगत विशेषताओं को उद्‌घाटित करते हुए लिखा है, "उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य साहित्य में नई चीज थी। ....भाषा और भाव की एक नई विभूति उन्होंने सामने रखी।" 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' तथा 'कन्यादान' इनके अत्यंत प्रसिद्ध निबंध हैं। इन्होंने कुल आठ निबंध लिखे हैं जो 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक' के निबंध में संकलित हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह के समान चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने भी बहुत थोड़े निबंध लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित थे तथा सप्रमाण एवं अधिकारपूर्वक लिखने में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि इन्होंने गूढ़ शास्त्रीय विषयों से लेकर सामान्य विषयों तक पर साधिकार लिखा है। अर्थगर्भित वक्र शैली तथा पांडित्यपूर्ण हास का जैसा सुखद सम्मिश्रण उनके लेखन में मिलता है वैसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है। 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' तथा 'न्याय बेटा' इनके उल्लेखनीय निबंध हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के भाव एवं मनोविकार संबंधी निबंध तथा 'कविता क्या है' आदि कतिपय अन्य निबंध इसी युग में प्रकाशित हुए। उन्होंने अपने निबंधों में गंभीर विचारात्मक चिंतन, तार्किक क्रम तथा प्रभावी व्यंजना पर बल दिया और इस प्रकार निबंध को लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विद्या के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके निबंधकार रूप का पूर्ण उत्कर्ष छायावाद युग में देखने को मिलता है क्योंकि तभी उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'चिंतामणि भाग 1' तथा 'चिंतामणि भाग 2' का प्रकाश हुआ।

सर्वश्री गोविंदनारायण मिश्र, पं. पद्‌मसिंह शर्मा, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा डॉ. श्यामसुंदर दास इस युग के अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं। पं. गोविंदनारायण मिश्र ने साहित्यिक एवं सामयिक विषयों पर निबंध लिखे।

पं. पद्‌म सिंह शर्मा बहुभाषाविद् थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं में इनकी एक समान गति थी। इन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, कथात्मक, भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे किंतु इन सभी में इनकी विनोदप्रियता का गुण एक समान है।

प्रसिद्ध पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ श्री गणेश शंकर विद्यार्थी अपने वैयक्तिक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। बोल–चाल की सामान्य भाषा तथा आत्मव्यंजक वक्रता प्रधान शैली इनके निबंध लेखन की मूल विशेषताएं हैं। त्याग और बलिदान संबंधी विषयों पर इन्होंने जो निबंध लिखे हैं, वे पाठक को अभिभूत कर देते हैं।

डॉ. श्याम सुंदर दास इस युग के विचारात्मक निबंधकार हैं। इन्होंने प्रायः भाषा एवं साहित्य विषयक निबंध ही अधिक लिखे हैं। इनका सारा ध्यान इस बात की ओर केंद्रित रहा है कि विश्वविद्यालयों में हिन्दी को उच्च शिक्षा के अनुरूप गौरव प्राप्त हो सके। 'समाज और साहित्य', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', 'हमारी भाषा', 'हिन्दी गद्य के आदि आचार्य' इनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। कथ्य का स्पष्ट एवं विश्लेषणात्मक विवेचन इनकी निबंध शैली के उल्लेखनीय गुण हैं।

इस युग में साहित्य और भाषा विषयक ही नहीं अपितु इतिहास एवं पुरातत्व, भूगोल, धर्म, अध्यात्म, विज्ञान आदि से संबद्ध विषयों पर काफी निबंध लिखे गए। इस युग में भाषा परिष्कार पर पर्याप्त बल दिया गया।

3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का तीसरा सोपान 1921 से 1940 तक माना जाता है कुछ आलोचकों ने इस युग को छायावाद और कुछ ने उत्कर्ष काल की संज्ञा दी है।

इस युग के सर्वप्रमुख निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं। उनके अतिरिक्त सर्वश्री बाबू गुलाबराय, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', शांतिप्रिय द्विवेदी, वियोगी हरि आदि अन्य अनेक निबंधकारों ने इस युग के निबंध साहित्य को समृद्ध किया। शांतिप्रिय द्विवेदी तथा बाबू गुलाबराय का कृतित्व परवर्ती युग में भी देखने को मिलता है।

हालांकि शुक्ल जी के भाव एवं मनोविकार विषयक निबंध सन् 1912 से 1919 की कालावधि के मध्य प्रकाशित हो चुके थे। इस युग में उनके निबंधों का संग्रह 'विचार–वीथि' प्रकाशित हुआ। कालांतर में इस संग्रह के निबंध अपने परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिवर्द्धित रूप में 'चिंतामणि' में संकलित हो गए। चिंतामणि भाग दो के तीन आलोचनात्मक निबंध तथा जायसी ग्रंथावली, भ्रमरगीत सार आदि की भूमिका के रूप में लिखे गए समालोचनात्मक निबंध भी इसी युग में प्रकाशित हुए। आचार्य शुक्ल का निबंध साहित्य उनकी आंतरिक प्रेरणा तथा अभिरुचि का परिणाम है। निबंध कला के क्षेत्र में शुक्ल जी का योगदान यह है कि उन्होंने निबंध को सामान्य लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। शुक्ल जी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंध उनके मनोवैज्ञानिक निबंध हैं। मानव मन की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म एवं सुव्यवस्थित विवेचन करने में उन्हें महारत हासिल है। क्रोध कैसे पैदा होता है, उसका फैलाव किस प्रकार होता है, किन परिस्थितियों में वह वैर में परिणत हो जाता

है, आदि बातों को बड़ी खूबसूरती के साथ शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी की खूबी यह है कि विभिन्न मानव वृत्तियों का विवेचन करते समय उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि यह विवेचन मनोविज्ञान की पुस्तक के समान नीरस एवं बोझिल न बन जाए।

बाबू गुलाबराय इस युग के ऐसे निबंधकार हैं जिनका लेखन द्विवेदी युग में प्रारंभ हुआ था और जिन्होंने इस युग में पर्याप्त मात्रा में लिखने के साथ–साथ शुक्लोत्तर युग में भी खूब लिखा। इन्होंने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य–व्यंग्यमूलक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे। वैयक्तिकता, अनुभूति–गहनता, व्यंग्य–विनोद तथा सुबोधता इनकी निबंध शैली के कुछ प्रमुख गुण हैं। 'ठलुआ क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएं' इनके निबंधों के कुछ उल्लेखनीय प्रतिनिधि संकलन हैं।

शुक्ल युग के जिन निबंधकारों ने वैयक्तिकता को निबंध कला का एक अनिवार्य गुण मानते हुए उसे अपने निबंधों में प्रमुख स्थान दिया उनमें पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये एक बहु पठित व्यक्ति थे तथा इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इस अध्ययन का प्रभाव इनके निबंधों पर भी पड़ा है। आध्यात्मिक एवं आलोचनात्मक निबंधों पर इन्होंने खूब खुलकर लिखा है। इनके निबंधों की भाषा में शुद्धता के प्रति आग्रह दिखलाई देता है किंतु इससे वह बोझिल नहीं बनी है। 'पंच पात्र', 'विश्व साहित्य', 'मकरंद बिंदु', 'कुछ और कुछ', 'बख्शी जी के निबंध' आदि संग्रहों में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

इस युग में सियारामशरण गुप्त ने अत्यंत हृदयग्राही निबंध लिखे। सावधानीपूर्वक किसी प्रसंग या प्रतीक का चयन करते हुए गांधीवादी दर्शन को ग्रामीण जीवन एवं ग्राम्य प्रकृति के साथ प्रस्तुत करने में सियारामशरण को स्पृहणीय सफलता प्राप्त हुई है। यत्र–तत्र निर्मल हास्य के छींटे तो सोने में सुहागे का काम करते हैं। 'शुष्कोवृक्षः', 'घूंघट', 'घोड़ागाड़ी', 'छुट्‌टी', 'ऋणी', 'एक दिन' आदि इनके कुछ उल्लेखनीय निबंध हैं। 'झूठ सच' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है।

छायावादी कवियों में सर्वाधिक निबंध सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखे। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि पक्ष का सहज समन्वय है, हास्य व्यंग्य का मर्मस्पर्शी विधान है, कविसुलभ भावात्मकता एवं चित्रमयता है। कथ्य की दृष्टि से इनके निबंधों का बहुलांश साहित्य समीक्षा से संबद्ध है तो शैली की दृष्टि से इनके यहां बहुविध प्रयोग मिलते हैं। 'पंत जी और पल्लव', 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म', 'मेरे गीत और मेरी कला', 'रूप और नारी', 'चरखा', 'महात्मा जी', 'नेहरू जी से एक भेंट' इनके कतिपय उल्लेखनीय निबंध हैं। 'प्रबंध पक्ष', 'प्रबंध प्रतिमा', 'प्रबंध पूर्णिमा', 'चाबुक', 'चयन' आदि इनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत ऐसे छायावादी कवि हैं जो निबंध लेखन के क्षेत्र में क्रमशः 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', 'शृंखला की कड़ियां' तथा 'गद्य–पद्य' नाम्नी कृतियों के कारण स्मरण किए जाते हैं। जयशंकर प्रसाद के निबंध उनके व्यापक अध्ययन और सूक्ष्म चिंतन के परिचायक हैं तो महादेवी वर्मा के निबंधों में भारतीय नारी की समस्याओं के मार्मिक चित्र उकेरे गए हैं। पंत के निबंध विचार प्रधान होते हुए भी कवित्वपूर्ण गद्य शैली के परिचायक हैं।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपने भावात्मक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। हास्य–व्यंग्य की मीठी चुटकियों से समवेत इनके निबंध में छोटे–छोटे वाक्यों तथा बोलचाल की भाषा का ऐसा सधा हुआ प्रयोग है कि सामाजिक परिस्थितियों का एक प्रभावी चित्र अनायास निर्मित होता चलता है। 'बुढ़ापा' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध निबंध है तथा 'व्यक्तिगत' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। भावात्मक निबंध लिखने वालों में सर्वश्री रायकृष्ण दास, वियोगी हरि तथा शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम भी स्मरणीय है।

वस्तुतः भारतेंदु ने जिस निबंध कला का ढांचा खड़ा किया पं. बालकृष्ण भट्‌ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी ने पूर्ण संस्कार किया वही निबंध इस काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन के अभिनव तत्वों के साथ विकसित हुए।

4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का चौथा सोपान सन् 1941 से अब तक माना जाता है। कालावधि की दृष्टि से यह कालखंड सबसे बड़ा है। इस कालखंड के पहले दो दशकों तक निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव रहा। किंतु, बाद के दो दशकों में भावात्मक तथा व्यंग्य विनोदपरक निबंधों का लेखन हुआ। इस प्रकार आलोच्य युग के निबंध साहित्य को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. विचारात्मक निबंध
2. भावात्मक निबंध
3. हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध।

इस युग के विचारात्मक निबंध दो प्रकार के हैं। उनका एक रूप तो वह है जहां वे समीक्षाशास्त्र से जुड़े रहे हैं और दूसरा वह है जिसमें चतुर्दिक फैली समस्याओं को स्वतंत्र चिंतन के साथ जोड़ा गया है। विचारात्मक निबंधों पर साहित्यशास्त्र, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद आदि चिंतन सरणियों का पर्याप्त दबाव रहा है। इसी प्रकार से भावात्मक निबंधों के भी अनेक रंग हैं। यदि कहीं वे सांस्कृतिक विरासत तथा नवीन जीवन–बोध को लेकर चले हैं तो कहीं घुमक्कड़ी जीवन से प्राप्त लोक जीवन की गमक लिए हुए हैं। कहीं भावात्मकता का बाहुल्य है तो कहीं सांस्कृतिक स्वर प्रधान हो गया है। हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट की गई है।

विचारात्मक निबंधों के क्षेत्र में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. नगेंद्र की पहचान उनके समीक्षात्मक निबंधों के कारण बनी तो जैनेंद्र ने स्वतंत्र चिंतन के माध्यम से अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। नवीन जीवन–बोध को सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त करते हुए विचारात्मकता तथा भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में प्रतिफलित हुआ तो सामाजिक विसंगतियों को हरिशंकर परसाई ने बहुत प्रभावी ढंग से उभारा।

आलोच्य युग में एक लंबे समय तक समीक्षात्मक निबंधों की धूम रही। इस प्रकार के निबंधों पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल की निबंध शैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता

है। इस वर्ग के निबंधकारों में पहला उल्लेखनीय नाम नंददुलारे वाजपेयी का है। उनके प्रारंभिक निबंध छायावादी काव्य से संबद्ध थे जिसमें उन्होंने उसके अंतः सौंदर्य को उद्‌घाटित करते हुए उसकी उपलब्धियों और संभावनाओं का सफल संधान किया था। तदनंतर उन्होंने अपने निबंधों में साहित्यकार की अंर्तवृत्तियों का विश्लेषण किया। साहित्य को किसी वाद से जोड़ना उन्हें कभी काम्य नहीं रहा। आस्था तथा मानव संबंधों की संपन्नता को उन्होंने उच्चकोटि के साहित्य का एक अनिवार्य तत्व माना। अपने जीवन काल में उन्होंने शताधिक निबंध लिखे जो 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', 'नया साहित्य : नए प्रश्न', 'प्रकीर्णिका', 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' आदि पुस्तकों में संकलित है।

शांतिप्रिय द्विवेदी ने आचार्य नंददुलारे वाजपेयी से सर्वथा भिन्न प्रकार के निबंध लिखे। उन्होंने साहित्य समीक्षा के साथ–साथ साहित्येतर विषयों पर भी निबंध लिखे। व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए संस्कारिता को एक अनिवार्य उपकरण मानते हुए उन्होंने अपने कथ्य का आत्मीयतापूर्ण प्रतिपादन किया। 'वृन्त और विकास', 'धरातल', 'साकल्य', 'आधान', 'चारिका', 'समवेत' आदि में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। शांतिप्रिय द्विवेदी के समान रामधारीसिंह दिनकर ने भी अपने वैचारिक चिंतन का आत्मीय प्रतिपादन किया। उनके निबंधों में मानवीय आस्था अत्यंत सहज ढंग से प्रतिफलित हुई है। 'अर्द्ध नारीश्वर', 'मिट्‌टी की ओर', 'रेती के फूल' आदि संग्रहों में संकलित निबंधों में उनकी यह आस्था अत्यंत सहज ढंग से उभर कर आई है।

नंददुलारे वाजपेयी तथा शांतिप्रिय द्विवेदी के समान डॉ. नगेंद्र की प्रारंभिक पहचान भी छायावादी काव्य के समर्थ समीक्षक के रूप में हुई। समीक्षात्मक निबंध लेखन के क्षेत्र में उन्होंने वैयक्तिकता के स्वर को बरकरार रखा। 'यौवन के द्वार पर', 'वाणी के न्याय मंदिर में', 'हिन्दी उपन्यास' आदि निबंधों में इस स्वर को साफ पहचाना जा सकता है। लेकिन यह आत्मत्व धीरे–धीरे कम होता चला गया और अंततः उनके निबंधों ने विशुद्ध समीक्षात्मक रूप ले लिया। विषय का सुविचारित तार्किक विभाजन, तदनंतर सुबोध स्पष्ट विवेचन और अंत में समग्र मूल्यांकन इनकी निबंध शैली की मुख्य विशेषताएं हैं। 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण', 'अनुसंधान और आलोचना', 'आलोचक की आस्था' आदि इनके प्रतिनिधि निबंध हैं जो आगे चलकर 'आस्था के चरण' में समवेत रूप में प्रकाशित हुए हैं।

निबंधकार के रूप में जैनेंद्र की पहचान उनके स्वतंत्र चिंतनपरक निबंधों से बनी है। उन्होंने धर्म और संस्कृत से लेकर काम, प्रेम, विवाह आदि नानाबिध विषयों पर निबंध लिखे हैं। जैनेंद्र का दार्शनिक चिंतन एकदम निजी है किंतु गांधीवादी होने के कारण उस पर सत्य, अहिंसा, आत्मसमर्पण ओर हृदय परिवर्तन का गहरा रंग है। निजीपन के गुण ने उनके निबंधों को नीरस नहीं होने दिया है। 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय' और 'प्रेम', 'सोच–विचार', 'मंथन', 'इतस्ततः' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

वैयक्तिकता के संस्पर्श से संपृक्त निबंध लिखने वालों में अज्ञेय का नाम भी शीर्ष पर है। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'सब रंग और कुछ राग', 'भवन्ति', 'लिखि

कागद कोरे', 'अंतरा' उनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं। उनके प्रारंभिक निबंध मनोविश्लेषणवाद के आधार बना कर लिखे गए हैं। उन पर फ्रायड, एडलर तथा जुंग के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समय के साथ–साथ अनेक विचारों में क्लिष्टता आती चली गई और उन्होंने समाज, संस्कृति और वैयक्तिक मान्यताओं के संबंध में सूक्ष्म चिंतन से ओत–प्रोत निबंध लिखे।

मनोविश्लेषण को आधार बनाकर निबंध लिखने की जो पहल अज्ञेय ने की थी उसे इलाचंद्र जोशी तथा डॉ. देवराज उपाध्याय ने गतिशील रखा। 'साहित्य सर्जना', 'विवेचना', 'साहित्य संतरण', 'विश्लेषण' और 'साहित्य चिंतन' इलाचंद्र जोशी के निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

इस युग में मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर भी निबंध लिखे गए। इस धारा का उन्नयन प्रो. प्रकाशचंद्र गुप्त ने किया। शास्त्रीय वाग्जाल और पांडित्य प्रदर्शन से अलग रह कर सरल एवं स्पष्ट विवेचना करना इनके लेखन की उल्लेखनीय विशेषता है। 'नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। शिवदान सिंह चौहान ने अपने गंभीर और संतुलित लेखन के माध्यम से प्रगतिशील लेखन के आंदोलन को गतिशील रखा। निर्वैयक्तिक शैली में लिखे गए इनके निबंधों में वैज्ञानिक विवेचन तथा मताग्रह की वैचारिक प्रवृत्ति मिलती है। 'साहित्यानुशीलन', 'प्रगतिवाद', 'आलोचना के मान' आदि में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। यशपाल तथा भगवत शरण उपाध्याय ने भी जीवन और साहित्य को इसी दृष्टि से देखा–परखा। यशपाल ने समाज की सड़ी–गली रूढ़ियों तथा ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का जोरदार खंडन किया। यशपाल के प्रतिनिधि निबंध 'न्याय का संघर्ष' और 'बात–बात में बात' में संकलित है तथा भगवतशरण उपाध्याय के प्रतिनिधि निबंध 'ठूंठा आम', 'सांस्कृतिक निबंध' एवं 'साहित्य और कला' में संकलित है।

छायावादोत्तर युग में निबंध लेखन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण पहचान बनाने वाले निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वोपरि है। साहित्यिक–सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त इनके निबंधों में कथ्य की अनौपचारिकता और शैली की सादगी के साथ–साथ विद्वत्ता, गंभीरता और सरसता का मणिकांचन योग मिलता है। विचारात्मकता और भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य इनके निबंधों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। प्राचीन साहित्य और संस्कृति में पूरी तरह रचे–बसे होने के बावजूद ये कहीं भी मोहासक्त नहीं दिखते। इनकी दृष्टि में अतीत की सार्थकता भविष्य निर्माण के उपयोग में है। 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'कुटज' उनके कतिपय बहु प्रसिद्ध निबंध हैं। 'विचार और वितर्क', 'अशोक के फूल', 'कल्पता' और 'कुटज' में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने हजारी प्रसाद द्विवेदी से भिन्न प्रकृति के भावप्रधान निबंधों की रचना की। माखनलाल चतुर्वेदी के निबंधों में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना को भावात्मक शैली में रूपायित किया गया है। इनके निबंधों को पढ़ते समय गद्य में काव्य का–सा आनंद मिलता है। 'अमीर–इरादे, गरीब इरादे' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है। बेनीपुरी के निबंधों

में भावात्मकता का स्वर समाजवाद की धुरी पर अवलंबित है। इनके निबंधों में भारतीय ग्राम जीवन का हृदयग्राही अंकन है। 'वन्दे वीणा विनायको' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की भावात्मकता प्रेरणा के स्वर को अपने केंद्र में लिए हुए है। आत्मपरकता के साथ–साथ तटस्थता तथा भावुकता के साथ व्यंग्य के सन्निवेश ने इनके निबंधों को अत्यंत प्रीतिकर बना दिया है। 'जिंदगी मुस्कराई' तथा 'बाजे पायलिया के घुंघरू' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

भावात्मक निबंधों को घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों से समृद्ध करने वाले निबंधकारों में राहुल सांकृत्यायन, देवेंद्र सत्यार्थी और भदन्त आनंद कौसल्यायन के नाम उल्लेखनीय हैं। देवेंद्र सत्यार्थी के निबंध माटी की महक और लोकजीवन की गमक लिए हुए है।

भदन्त आनंद कौसल्यायन के निबंध भी उनके घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों को निबद्ध किए हुए हैं। ये अपने कथ्य को दृष्टांत कथाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। मानवता इनके निबंधों का मूल स्वर है। इनके निबंधों में संस्मरण का तत्व अत्यंत घुला–मिला है। 'जो मैं भूल न सका', 'जो मुझे लिखना पड़ा' तथा 'रेल का टिकट' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलन है।

मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित निबंधों की जिस परंपरा की शुरुआत प्रकाश चंद्र गुप्त ने की थी उसे डॉ. रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा डॉ. नामवर सिंह ने विकसित किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध शैली को आगे बढ़ाने वाले निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेर नाथ राय के नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। विद्यानिवास मिश्र संस्कृत के प्रकांड पंडित और पश्चिमी साहित्य के अच्छे अध्येता हैं। अतएव उनके निबंधों में प्राचीनता और नवीनता का सहज मिश्रण है। 'छितवन की छांह', 'तुम चंदन हम पानी', 'कदम्ब की फूली डाल', 'आंगन का पंछी और बनजारा मन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कुबेरनाथ राय नई पीढ़ी के समर्थ निबंधकार हैं। उनके निबंधों में आंचलिकता के साथ–साथ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय का वैभव अत्यंत रमणीय ढंग से अनुस्यूत है। 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गंध मादन', 'विषाद योग', 'मायाबीज' आदि उनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

ललित निबंधों के क्षेत्र में डॉ. धर्मवीर भारती के 'ठेले पर हिमालय', 'कहानी अनकहनी' तथा 'पश्यंती' नामक निबंध संग्रहों का महत्वपूर्ण स्थान है। हल्के–फुल्के व्यंग्य विनोद के माध्यम से हिपोक्रेसी का पर्दाफाश करने में वे माहिर हैं। भाषा एकदम आडंबरहीन और सटीक है।

आधुनिक युग के निंबध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंगत्मक निबंधों की रही है लकिन हिन्दी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नए लेखकों का आगमन कम हुआ है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा सोपान कब से कब तक माना जाता है?

(क) 1868 से 1900 तक (ख) 1901 से 1920 तक

(ग) 1921 से 1940 तक (घ) इनमें से कोई नहीं

8. 'बंदरों की सभा' नामक निबंध के लेखक का क्या नाम है?

(क) प्रताप नारायण मिश्र (ख) आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

(ग) डॉ. नगेंद्र (घ) सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

3.6 रेखाचित्र

रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है जिसमें किसी विषय–विशेष का उसकी बाह्य विशेषताओं को उभारते हुए विभिन्न संक्षिप्त घटनाओं को समेटते हुए, शब्द रेखाओं के माध्यम से सजीव, सरस, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्र उभारा जाता है। इसका कार्य यह है कि वह वर्णित पात्र के रूप–सौंदर्य तथा विभिन्न परिस्थितियों में उसके द्वारा की गई विभिन्न घटनाओं की सहायता से उसके चरित्र का एक प्रभावपूर्ण एवं संवेदनशील चित्र अंकित कर दे। डॉ. मक्खनलाल शर्मा की मान्यता है– ''जिस प्रकार चित्र का उद्देश्य किसी भाव विशेष को द्रष्टा के हृदय में जाग्रत कर देना होता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र भी इतिहास, घटना, मनोविज्ञान, वातावरण आदि की सहायता से अभीष्ट भाव की अनुभूति करा देता है और थोड़ी देर के लिए पाठक एक नवीन मानसिक अवस्था प्राप्त कर रसमग्न हो जाता है।''

रेखाचित्र का जन्म–कुछ विद्वान पद्मसिंह शर्मा को रेखाचित्र का जनक मानते हैं। किंतु स्वतंत्र रूप से और 'रेखाचित्र' नाम से इसका श्रीगणेश करने का श्रेय श्रीराम शर्मा को ही है। इनके *'बोलती प्रतिमा'* शीर्षक में कई रेखाचित्र हैं जिनमें से *'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव', 'वे जीते कैसे हैं'* आदि उनके सुंदर रेखाचित्र हैं।

रेखाचित्र की विकास–यात्रा–यह यात्रा पर्याप्त सुपुष्ट एवं लंबी है। कुछ प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित रेखाचित्रकारों का परिचय यहां प्रस्तुत है–

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंध भी इसी कोटि के माने जाते हैं। ये निबंध हैं– *'रामलाल पांडे', 'चक्करदार चोरी', 'एक पुरानी कथा', 'बंदर की शिक्षा', 'शौर्य की कथा', 'कुंज–बिहारी'* आदि।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार– रेखाचित्र निबंध अधिकतर व्यक्ति–वैशिष्ट्य से युक्त होते हैं, इनमें हास्य, विनोद, व्यंग्य–वक्रता, चुटकी–चकोटी का पुट रहता है। ये निबंध इसी प्रकार के हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी महान शैलीकार थे। परिणामतः उनका योग पाकर साहित्य–रचना का यह रूप चमक उठा। उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए। 'लाल

तारा', 'माटी की मूरत', गेहूं और गुलाब'। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है– ''रेखाचित्र को इतने साज–संवार के साथ गढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रख सका। शैलियां बदलती रहती हैं, कहीं संस्मरणात्मकता, कहीं नाटकीयता, कहीं डायरी, पर भाषा सर्वत्र सहज चली हुई होती है, जिसमें छोटे–छोटे भाव भीने वाक्य पाठकों को मुग्ध किए रहते हैं।"

देवेंद्र सत्यार्थी ने भावात्मक रेखाचित्रों का सृजन किया। उनका संग्रह है 'रेखाएं बोल उठीं' जिसमें *'रेखाएं बोल उठीं', 'सौंदर्य बोध', 'आज मेरा जन्म दिन है', 'रवींद्रनाथ ठाकुर', 'अच्छे–भले आदमी की बात', 'चिरनूतन चित्र', 'दादा–दादी'* आदि श्रेष्ठ हैं।

रेखाचित्र को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने में बनारसीदास चतुर्वेदी का भी योगदान कम नहीं है। उन्होंने एक ओर तो उत्कृष्ट कोटि के चालीस रेखाचित्र लिखे, दूसरी ओर उनकी भूमिका में प्रकाश भी डाला– ''जिस प्रकार अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लेंस बढ़िया और फिल्म भी काफी सेंसिटिव होनी चाहिए उसी प्रकार साफ चित्र के लिए रेखाचित्र में विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भावुकतापूर्ण हृदय दोनों का सामंजस्य होना चाहिए, संवेदनशीलता, विवेक और संतुलन– इन सब गुणों की आवश्यकता है।"

महादेवी वर्मा के कई संग्रह प्रकाशित हुए– *'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं'* और *'पथ के साथी'* आदि। कुछ विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र मानते हैं।

प्रकाशचंद्र गुप्त के *'पुरानी स्मृतियां'* और *'नए स्केच'* संग्रह भी महत्वपूर्ण हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार– ''इन्होंने पूर्ण आत्मीयता और कलापूर्ण ढंग से इनको संवारा है। इन्होंने सड़क, नगर, मौहल्ला आदि निर्जीव वस्तुओं में मान, अभिमान, ईर्ष्या–द्वेष, स्नेह, छल–कपट, घृणा–ग्लानि आदि मानवीय भावों का आरोपण कर उन्हें मानव की सहानुभूति और प्यार का पात्र बना दिया है।'' गुप्तजी ने कुछ ऐसे रेखाचित्र भी लिखे हैं जिनमें निबंध और रिपोर्ताज के मिले–जुले रूप उभरे हैं। इनकी रचनाओं में राजनीतिक चेतना, समाजवादी दृष्टिकोण, स्नेह, सहानुभूति, करुणा आदि का प्राधान्य है।

'विशाल भारत' पत्रिका के शहीद अंक में विभिन्न लेखकों ने शहीदों के अनेक ऐसे सुंदर रेखाचित्र लिखे थे जिनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व, चरित्र, वेषभूषा कलात्मक ढंग से व्यंजित हो उठा था। 'हंस' ने रेखाचित्र विशेषांक (1939) प्रकाशित किया। इन विशेषांकों से रेखाचित्र विधा को पर्याप्त बल प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित रेखाचित्रकार भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), हवलदार त्रिपाठी सहृदय (रांची का दासौड़ प्रताप), राधा राधिकारमण सिंह (टूटा तारा), देवेंद्र सत्यार्थी (रेखाएं बोल उठीं), सत्यजीत वर्मा (एलबम), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें), इंद्र विद्यावाचस्पति (मैं इनका ऋणी हूं), सेठ गोविंददास (स्मृति कण), आचार्य विनय मोहन शर्मा (रेखा और रंग), चंद्रमौलि बख्शी (संन्यासी बाबा), रामप्रकाश कपूर (अंजो दीदी), हरिशंकर परसाई (बोलती रेखाएं), डॉ. भटनागर (विकृत रेखाएं, धुंधले चित्र संकलन) हैं।

इसके अतिरिक्त संस्मरणात्मक रेखाचित्र और शुद्ध रेखाचित्र लेखकों में बाबू वृंदावन लाल वर्मा, सुरेंद्र दीक्षित, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, बेढव बनारसी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रेमनारायण टंडन, शिवपूजन सहाय, सत्यवती मलिक, रघुवीर सहाय, अविनाश,

विद्या माथुर, राजेंद्र कुशवाह, निरंजन नाथ आचार्य, सुरेंद्र दीक्षित, हर्षदेव मालवीय, प्रभाकर माचवे, राहुल सांकृत्यायन, उदयशंकर भट्ट, रेणु, मदन वात्स्यायन, कपिल, मेहताब अली, निर्मल वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि भी उल्लेखनीय हैं।

रेखाचित्र एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और इनकी तालिका भी पर्याप्त लंबी है। फिर भी अभी उत्कृष्ट कोटि के रेखाचित्रों की कमी बनी हुई है। निस्संदेह कुछ रचनाएं ऐसी हैं जिन पर गर्व किया जा सकता है। इसका भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि उसकी पूर्व पीठिका जो बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लेखकों द्वारा निर्मित हुई है, श्रेष्ठ है। यह विधा रोचकता के समावेश के कारण, कहानी के समकक्ष ठहरती है अतः जीवनी, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि से अधिक महत्वपूर्ण है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. स्वतंत्र रूप से रेखाचित्र का श्री गणेश करने का श्रेय किसे दिया जाता है?
   (क) पद्मसिंह शर्मा (ख) रामवृक्ष बेनीपुरी
   (ग) जगदीश चंद्र माथुर (घ) श्रीराम शर्मा
10. 'रेखाएं बोल उठीं' रेखाचित्र के लेखक का नाम क्या है?
   (क) देवेंद्र सत्यार्थी (ख) महादेवी वर्मा
   (ग) हरिशंकर परसाई (घ) इनमें से कोई नहीं

3.7 संस्मरण

'संस्मरण' का शाब्दिक अर्थ होता है– 'सम्यक स्मरण'। सम्यक स्मरण के मूल में होता है– गंभीर चिंतन। मानव जीवन की कटु, तिक्त एवं मधुर स्मृतियां, अनुभूति और संवेदना का संसर्ग प्राप्त करके जब हृदय से निकलती हैं, तब वे संस्मरण का रूप धारण कर लेती हैं। संस्मरण आधुनिक गद्य–साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है।

संस्मरण की परिभाषा

1. ''संस्मरण लिखने वाला शब्दों द्वारा जीवन की विविध घटनाओं, व्यक्तियों और दृश्यों का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है कि पाठक के सम्मुख वह व्यक्ति, वातावरण या प्रसंग साकार हो उठता है। गद्य में लिखे गए इसी चित्र को संस्मरण कहते हैं।''

   –डॉ. कृष्णदेव शर्मा

2. ''भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से रंगकर रोचक ढंग से यथार्थ में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कह सकते हैं।''

   –डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

3. एक अन्य परिभाषा के अनुसार, ''संस्मरण गद्य–साहित्य की उस आत्मनिष्ठ विधा को कहते हैं, जिसमें लेखक अपने जीवन की अनंत स्मृतियों में से कुछ विशिष्ट अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अलंकृत करके लाक्षणिक शैली में आत्मीय राग एवं निजी विशिष्टताओं का संबल लेकर रोचक तथा आकर्षक रूप से चित्रित करता है।''

संस्मरण विधा का विकास

भारतेंदु युग में किसी उल्लेखनीय संस्मरण के प्रकाशन का साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता। द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से अनेक रोचक संस्मरण प्रकाश में आए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत', 'सभा की सभ्यता' और विज्ञानाचार्य बसु ने 'विज्ञान मंदिर' शीर्षकों से संस्मरण लिखे। इनके अतिरिक्त रामकुमार खेमका ने 'इधर–उधर की बातें', काशी प्रसाद जायसवाल ने 'इंग्लैंड के देहात में', 'महाराज बनारस का कुआं', भोलादत्त पांडेय ने मेरी नई दुनिया संबंधित 'राम कहानी' की रचना करके संस्मरण साहित्य को विकसित किया। जगद्‌बिहारी सेठ, पांडुरंग, खान खोजे, प्यारेलाल मिश्र आदि ने भी संस्मरण लिखे। इनका उद्देश्य अधिकतर भारतीय पाठकों को पश्चिमी जगत की जानकारी प्रदान करना था। हरिऔध जी के विविध संस्मरण भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हैं जिनका साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है।

द्विवेदी युग के उपरांत एक ओर 'सरस्वती' में राजकुमार खेमका, कृपानाथ मिश्र, रामनारायण मिश्र, भगवान दीन दुबे, रामेश्वरी नेहरू, श्रीमन्नारायण अग्रवाल के यात्रावृत्त–मूलक संस्मरण प्रकाशित हुए तो दूसरी ओर विशाल भारत, सुधा और माधुरी में आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसीदास चतुर्वेदी, मंगलदेव शर्मा के क्रमशः स्वामी श्रद्धानंद, बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाक और पद्‌म सिंह शर्मा से संबद्ध जीवनीपरक संस्मरण छपे। सुधा में इलाचंद्र जोशी रचित 'मेरी प्राथमिक जीवन की स्मृतियां' प्रकाशित हुई। वृंदावनलाल वर्मा के कुछ संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं।

इस काल में कुछ संस्मरण–संकलन भी प्रकाशित हुए। शिवराम पांडेय, श्री राम शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त तथा शिवनारायण टंडन रचित मदनमोहन के संबंध में पुरानी स्मृतियां, शिकार, क्रांतियुग के संस्मरण, झलक आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं। बाबूराम विष्णुराव पराड़कर द्वारा संपादित 'हंस' का 'प्रेमचंद स्मृति अंक' हिन्दी के संस्मरण–साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

सन् 1907 में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पं. प्रताप नारायण मिश्र के संस्मरण लिखकर इस विधा का सूत्रपात किया, पर इसका व्यवस्थित रूप सन् 1920 के पश्चात माना जाता है। इसके विकास में *'माधुरी'* और *'विशाल भारत'* पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. त्रिगुणायत इसका प्रथम लेखक सत्यदेव परिव्राजक को स्वीकार करते हैं। सन् 1905 के आसपास आपने अमेरिका की यात्रा की और उस यात्रा से संबंधित संस्मरणों का सजीव वर्णन किया जो भाव तथा प्रभाव दोनों से परिपूर्ण हैं।

1938 के बाद के संस्मरण

इस युग के संस्मरण तथा रेखाचित्र लेखन में बनारसीदास चतुर्वेदी का विशिष्ट स्थान है। इन्होंने 1946 में 'मधुकर' के रेखाचित्र विशेषांक का संपादन किया। हमारे आराध्य (1952) और संस्मरण (1953) शीर्षक से प्रकाशित संग्रहों में इनके अधिकांश स्मरण संपर्क में आने वाले लोगों के अनुभव हैं।

इस युग के कई विख्यात संस्मरण लेखक हैं– पं. सुंदरलाल (बालकृष्ण भट्ट से संबंधित संस्मरण *'विशाल भारत'* में), श्री अमृतलाल चतुर्वेदी (मेरे प्रारंभिक जीवन की स्मृतियां), श्रीनिवास शास्त्री (मेरी जीवन स्मृतियां), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी (श्रीधर पाठक विषयक संस्मरण), रूपनारायण पांडेय (द्विवेदी जी), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक संस्मरण), राजा राधिकारमण सिंह ('वे और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि), बाबू श्याम सुंदर (लाला भगवान दीन पर), रामदास गौड़ (राय देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर) आदि ने सुंदर संस्मरण लिखे हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ अच्छे संस्मरण लिखे हैं। पद्मसिंह शर्मा ने *'पद्मराग'* शीर्षक के अंतर्गत सुंदर संस्मरण लिखे। महादेवी वर्मा ने *'पथ के साथी'* नामक संकलन में प्रसाद, पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सियाराम गुप्त आदि पर संस्मरण लिखे हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार– इनमें संस्मरण के साथ–साथ रेखाचित्र की विशेषताओं का समावेश होने के कारण उनके प्रभाव और मार्मिकता में आशातीत वृद्धि हुई है।

इस युग में संस्मरण का रूप और निखरा। महादेवी जी के संस्मरण इस विधा को पर्याप्त निखार चुके थे। इसी क्रम में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरण भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने लोकमान्य तिलक से लेकर जवाहर लाल नेहरू और सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी, वैज्ञानिक डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर और साहित्यकारों में 'जैनेंद्र' पर भी लिखा।

इस क्रम में अन्य स्मरणीय नाम हैं– श्रीमती शिवरानी (प्रेमचंद : घर में), श्रीनारायण चतुर्वेदी (गुप्त का हास्य व्यंग्य), रामवृक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारें), शांतिप्रिय द्विवेदी (पदचिह्न), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (दीप जले शंख बजे), आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (मृत्युंजय रवींद्रनाथ), रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियां), शंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), काका साहब कालेलकर (स्मरण यात्रा), माखनलाल चतुर्वेदी (समय के घाव), राहुल सांकृत्यायन (बचपन की स्मृतियां), रामनाथ सुमन (हमारे नेता), जैनेंद्र (वे और वे), पं. किशोरी दास बाजपेयी (बालकृष्ण भट्ट), देवेंद्र सत्यार्थी (रेखाएं बोल उठीं), भगवतशरण उपाध्याय (मैंने देखा), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), राय कृष्णदास (जवाहर भाई), उपेंद्रनाथ अश्क (ज्यादा अपनी कम पराई) आदि।

भगवती प्रसाद बाजपेयी (महाप्राण निराला), विनयमोहन शर्मा (लक्ष्मीचंद्र बाजपेयी), देवेंद्र सत्यार्थी (बलराज साहनी), जगदीशचंद्र जैन (चीन की दीवार), डॉ. महादेव साहा (सुनीति कुमार चटर्जी), कुसुमाकर (उग्रजी), मोहनसिंह सेंगर (मानवेंद्र राय), मणिका देवी (उस्ताद अलाउद्दीन खां), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें), डॉ. नगेंद्र (चेतना के

बिंब), दिनकर (लोकदेव नेहरू), बच्चन (नए–पुराने झरोखे), ओंकार शरद (लंका महाराजिन), क्षेमचंद्र सुमन (विभिन्न साहित्यकारों के संस्मरण), डॉ. भगवानदास माहौर के क्रांतिकारी बंधुओं पर ('देश की धरोहर' के अंतर्गत)।

इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवंश, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विष्णुकांत शास्त्री के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

11. 'पथ के साथी' संस्मरण के रचनाकार का क्या नाम है?

    (क) आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (ख) महादेवी वर्मा

    (ग) रामवृक्ष बेनीपुरी (घ) श्रीराम शर्मा

12. सन् 1907 में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने किसके संस्मरण लिखकर इस विधा का सूत्रपात किया?

    (क) बनारसीदास चतुर्वेदी (ख) पद्‌मसिंह शर्मा

    (ग) पं. प्रतापनारायण मिश्र (घ) इनमें से कोई नहीं

3.8 आत्मकथा

संस्मरण और जीवनी के समान ही आत्मकथा भी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लिखा गया वह आख्यान, वृत्तांत या वर्णन है जो वह बड़ी बेबाकी से अपने जीवन के बारे में प्रस्तुत करता है। प्रायः यह व्यक्ति कोई दार्शनिक, विचारक, चिंतक, समाज–सुधारक, उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ या कलाकार होता है जो अपने जीवनानुभव, अनुभूत तथ्यों, परिचित तथ्यों, मान्यताओं आदि को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिशा–निर्देशन करना चाहता है। यह बात दूसरी है कि *'आत्म–प्रशंसा'* की भावना भी कुछ आत्मकथाओं में हो सकती है।

आत्मकथा का साहित्य में विशेष महत्व है। पाश्चात्य विचारक डॉ. ई. एस. बेटरा के अनुसार, ''आत्मचरित की भांति अनोखा, अद्‌भुत तथा चमत्कारयुक्त संग्रहालय अन्य कोई साहित्य का रूप नहीं है।''

आत्मकथा का स्वरूप

यद्यपि इस पर कम ही विचार हुआ है, फिर भी कतिपय विद्वानों की निम्न मान्यता है–

1. ''आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वप्न–सृष्टि नहीं करता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे–मीठे, उजले–अंधेरे, प्रसन्न–विषण्ण, साधारण–असाधारण संचरण पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करता है।''

–डॉ. भगवतशरण भारद्वाज

2. ''आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सफलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्‌घाटन में समर्थ होता है।''

–डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

आत्मकथा का उद्‌भव

हिन्दी में आत्मकथा साहित्य प्रायः कम है। भारतेंदु युग में अनेक महापुरुषों ने आत्मकथाओं का प्रणयन किया। इस दृष्टि से महर्षि दयानंद के स्वलिखित जीवन चरित को आत्मकथा कहा जा सकता है। आत्मकथा में प्रायः संपूर्ण जीवन का या जीवन के किसी विशिष्ट अंश का क्रमबद्ध वर्णन होता है। इस ढंग की पहली आत्मकथा जैन कवि बनारसीदास की 'अर्द्धकथानक' मानी जाती है। भारतेंदु ने *'कुछ आप बीती–कुछ जग बीती'* में अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयास किया था, पर पूर्ण न हो सकी। इसी क्रम में सन् 1901 में पं. अंबिकादत्त व्यास ने *'निज वृत्तांत'* लिखा। हिन्दी की आरंभिक आत्मकथा में स्वामी श्रद्धानंद द्वारा रचित *'कल्याण का पथिक'* महत्वपूर्ण मानी जाती है।

धार्मिक प्रवृत्ति–प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

इस प्रकार की आत्मकथाओं में आत्म–निवेदन और आत्म–निग्रहण के साथ–साथ उन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन को प्रभावित किया था। इस श्रेणी की उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं– वियोगी हरि *(मेरा जीवन–प्रवाह),* स्वामी दयाल संन्यासी *(प्रवासी की आत्मकथा),* हरिभाऊ उपाध्याय *(साधना के पथ पर),* स्वामी सत्यदेव परिव्राजक (स्वतंत्रता की खोज)।

राजनीतिक प्रवृत्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने अनेक श्रेष्ठ पुरुषों को राजनीति की ओर प्रेरित किया। जीवन में न जाने कितने उतार–चढ़ाव आए, कितनी पीड़ा और विषमता को उन्होंने भोगा। इसका लेखा–जोखा इन आत्मकथाओं में अंकित है– महात्मा गांधी *(मेरी कहानी),* पंत नेहरू *(मेरी आत्मकथा),* डॉ. राजेंद्र प्रसाद *(मेरी आत्मकथा),* वीर सावरकर और भाई परमानंद की भी कुछ रचनाएं कारावास–यात्रा पर हैं *(काले पानी की कारावास कहानी, रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा)*।

कलाकार के जीवन की आत्मकथाएं

कला एक साधना मार्ग है, इस साधना में कष्ट, साधनाकाल की अनुभूतियां आदि होती हैं। इनका भावात्मक शैली में चित्रण इस प्रकार की आत्मकथाओं में होता है। इस कोटि की उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं– देवेंद्र सत्यार्थी *(चांद सूरज के बीच),* कन्हैयालाल मुंशी *(स्वप्न सिद्धि की खोज में),* बाबू गुलाबराय *(हमारी जीवन की असफलताएं),* डॉ. श्यामसुंदरदास *(मेरी आत्म–कहानी),* राहुल सांकृत्यायन *(मेरी जीवन–यात्रा),* आचार्य चतुरसेन शास्त्री *(यादों की परछाइयां),* बेचन शर्मा 'उग्र' *(अपनी खबर),* बच्चन *(क्या भूलूं क्या याद करूं),* यशपाल *(सिंहावलोकन),* शांतिप्रिय

द्विवेदी *(परिव्राजक की प्रजा),* पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी *(मेरी अपनी कथा),* सेठ गोविंददास *(आत्म–निरीक्षण),* पं. किशोरीदास बाजपेयी *(साहित्यिक जीवन के संस्मरण),* छविनाथ पांडे *(अपनी बात),* वृंदावन लाल वर्मा *(अपनी कहानी),* डॉ. संपूर्णानंद *(कुछ स्मृतियां और स्फुट विचार),* उपेंद्रनाथ अश्क *(ज्यादा अपनी कम पराई)*।

इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था, परंतु उनकी बीच में ही मृत्यु हो जाने के कारण यह प्रयास पूर्ण न हो सका। प्रेमचंद ने 'हंस' का 'आत्मकथा अंक' निकाला था, जिसमें अनेक साहित्यकारों ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथाएं या उनके कुछ विशिष्ट अंश लिखे थे।

यह मानते हुए कि यह साहित्य लघु परिमाण में है फिर भी इसे साहित्य का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

आत्मकथा लेखन एवं महिलाएं

आत्मकथा लेखन में आज की महिलाएं अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के लिए चर्चा में हैं। यूं तो आत्मकथा लेखन की शुरुआत भी पहले हो चुकी थी, किंतु प्रकाश में नहीं आई। 'सरला : एक विधवा की आत्म जीवनी' (2009) में प्रकाशित हुई जबकि यह धारावाहिक रूप में 1915 में ही 'स्त्री दर्पण' में प्रकाशित हो चुकी थी। उसमें लेखिका की जगह एक 'दुखिनी बाला' का नाम छपता था। आज लेखिकाएं अपने जीवन का समग्र चित्रण बेबाकी से अपनी आत्मकथाओं में कर रही हैं। दिनेश नंदिनी डालमिया की आत्मकथा चार भागों में है, जिसमें मारवाड़ी परिवार के अंतःपुर का चित्रण है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी जीवन कथा को उपन्यास के रूप में लिखा है। 'कस्तूरी कुंडल बसे' में जीवन के यथार्थ को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है। अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट', अजीत कौर की 'खानाबदोश' बहुत चर्चित आत्कथा रहीं। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी' भी चर्चित कृति है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा भाग है। इनके साथ अन्य भाषाओं से अनूदित महिला आत्मकथाएं भी अपनी साहसिक अभिव्यक्ति के कारण निरंतर चर्चा में रही हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

13. 'क्या भूलूं क्या याद करूं' किसकी आत्मकथा है?

(क) राहुल सांकृत्यायन (ख) बाबू गुलाब राय

(ग) हरिवंश राय बच्चन (घ) इनमें से कोई नहीं

14. 'मेरा जीवन प्रवाह' किस लेखक की आत्मकथा है?

(क) वियोगी हरि (ख) स्वामी दयाल संन्यासी

(ग) हरिभाऊ उपाध्याय (घ) स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

3.9 यात्रा वृत्तांत

विभिन्न विद्वानों द्वारा साहित्य जगत में यात्रा साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन किया गया। सुविधा के लिए हम निम्न रूप में इसकी चर्चा कर सकते हैं–

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' (1871–1879) के अंकों में स्वलिखित सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा आदि प्रकाशित की। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'गया यात्रा' और 'विलायत यात्रा' लिखी, जो 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुई। श्रीमती हरदेवी (लंदन यात्रा), भगवानदास वर्मा (लंदन का यात्री), दामोदर शास्त्री (मेरी पूर्व और दक्षिण दिग्यात्रा, ब्रज विनोद) आदि ने भी यात्रा ग्रंथ लिखे। कल्याण चंद्र और विभु मिश्र ने 'बद्रीकेदार यात्रा' और 'ब्रजयात्रा' में पद्य का प्रयोग किया।

द्विवेदी युग

इस युग में अनेक अच्छे यात्रा विवरण प्रकाशित हुए। मंगलानंद (मॉरीशस यात्रा), श्रीधर पाठक (देहरादून–शिमला यात्रा), उमा नेहरू (युद्ध क्षेत्र की सैर), लोचन प्रसाद पांडेय (हमारी यात्रा) के यात्रा संस्मरण काफी लोकप्रिय हुए। इनके अतिरिक्त देवकी प्रसाद खत्री ने 'बद्रीनाथ यात्रा', गोपालराम गहमरी ने 'लंका यात्रा', ठाकुर गदाधर सिंह ने 'चीन में तेरह मास' पुस्तकों में अपने–अपने यात्रा वृत्त प्रस्तुत किए। यात्रा लेखन की दृष्टि से स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने 'मेरी कैलाश यात्रा' में कैलाश मानसरोवर के प्राकृतिक सौंदर्य का तथा 'अमेरिका दर्शन' तथा 'अमेरिका भ्रमण' में अमेरिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का पर्याप्त विशद, तथ्यपूर्ण एवं रोचक वर्णन किया है।

द्विवेदी–परवर्ती युग का यात्रा–साहित्य

इस युग में रामनारायण मिश्र ने 'यूरोप यात्रा में छह मास' (1932) के अंतर्गत यूरोप के दर्शनीय स्थानों तथा वहां की शिक्षा पद्धति का अच्छा वर्णन किया है। गणेश नारायण सोमानी कृत 'मेरी यूरोप यात्रा' में उनके द्वारा अपनी पुत्री को लिखे गए पत्र संकलित हैं। सत्यदेव परिव्राजक के इस युग में भी अनेक यात्रा वृत्त प्रकाशित हुए। यथा–'मेरी जर्मन यात्रा', 'यात्री मित्र', 'यूरोप की सुखद स्मृतियां', 'ज्ञान के उद्यान में', 'नई दुनिया के मेरे अद्भुत संस्मरण', 'अमरीका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी' इत्यादि।

इस संदर्भ में शिवप्रसाद गुप्त (पृथ्वी प्रदक्षिणा), जवाहरलाल नेहरू (रूस की सैर) के नाम भी यात्रा साहित्य लेखक के रूप में उल्लेखनीय हैं।

यात्रा वृत्त लेखन में राहुल सांकृत्यायन का स्थान अन्यतम है। उनकी 'तिब्बत में सवा वर्ष', 'मेरी यूरोप यात्रा', 'मेरी तिब्बत यात्रा' आदि रचनाएं वर्ण्य स्थलों का ऐसा सजीव भौगोलिक तथा सामाजिक चित्र प्रस्तुत करती हैं कि पाठक स्वयं को लेखक के

साथ उपस्थित अनुभव करता है। सेठ गोविंददास ने 'हमारा प्रधान उपनिवेश' में दक्षिण अफ्रीका की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का संपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

प्रो. मनोरंजन ने 'उत्तराखंड के पथ पर' में बद्री–केदार यात्रा का औपन्यासिक शैली में वर्णन किया है। केदाररूप राय कृत 'हमारी विलायत यात्रा' में यूरोप के दर्शनीय स्थलों, विशेषतः प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है।

उत्तरवर्ती युग में भी सत्यदेव परिव्राजक ने 'मेरी पांचवीं जर्मन यात्रा' लिखी। कन्हैयालाल मिश्र आर्योपदेशक ने 'मेरी इराक यात्रा', संतराम ने 'स्वदेश विदेश यात्रा' आदि पुस्तकों की रचना की। इसमें आस्ट्रेलिया यात्रा संबंधी अंश श्रीमती रामेश्वरी नेहरू द्वारा लिखित है। जवाहरलाल नेहरू द्वारा 1953 में लिखित 'आंखों देखा रूस' भी यात्रा साहित्य में उल्लेखनीय है।

यात्रा लेखन में राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे आगे है। 'मेरी लद्दाख यात्रा' (1939), 'किन्नर देश में' (1948), 'राहुल यात्रावली', 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' (1956) आदि उनके प्रसिद्ध यात्रा वृत्त हैं। उन्होंने 1949 में 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख कर पर्यटकों एवं यायावरों का मार्गदर्शन भी किया। सेठ गोविंददास कृत 'सुदूर दक्षिणपूर्व' (1951), 'पृथ्वी परिक्रमा' (1954) आदि पुस्तकों में विदेशी यात्राओं का मर्मस्पर्शी चित्रण है।

स्वामी सत्यभक्त ने 'मेरी अफ्रीका यात्रा', कर्नल सज्जन सिंह ने 'लद्दाख यात्रा की डायरी', सूर्यनारायण व्यास ने 'सागर–प्रवास', रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'पैरों में पंख बांधकर' तथा 'उड़ते चलो' (डायरी शैली) लिखकर हिन्दी में यात्रा साहित्य को समृद्ध किया है। इनके अतिरिक्त श्री यशपाल ने 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में सोवियत संघ और पूंजीवादी देशों का तथा 'राहबीती' में पूर्वी यूरोप के देशों का सशक्त एवं जीवंत यात्रा वृत्त प्रस्तुत किया है।

रामधारीसिंह दिनकर के यात्रा वृत्त 'देश विदेश' और 'मेरी यात्राएं' में संकलित हैं। भगवतशरण उपाध्याय कृत 'वह दुनिया' (1952) तथा 'कलकत्ता से पीकिंग' में संकलित अधिकांश यात्रा वर्णन रेखाचित्र शैली में लिखे गए हैं। डॉ. सत्यनारायण रचित 'आवारे की यूरोप यात्रा' (1940) तथा 'युद्ध यात्रा' भी उल्लेखनीय यात्रा वृत्त है।

अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद' (1953) तथा 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) में मनोरम प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है। यशपाल जैन की 'जय अमर नाथ' तथा 'उत्तराखंड के पथ पर' नामक कृतियों में उनकी पर्वतीय यात्राओं के रोचक वृत्तांत हैं। इनकी 'रूस में छयालीस दिन' और 'दक्षिण–पूर्वी एशियायी देश में' (1960) नामक यात्रा विवरण प्रस्तुत किया है। विष्णु प्रभाकर रचित 'हंसते निर्झर दहकती मिट्‌टी' (1966) भी साहित्यिक दृष्टि से उल्लेखनीय यात्रा वृत्त है।

इनके अतिरिक्त रामकृष्ण रघुनाथ खांडिलकर कृत 'हालैंड में पच्चीस दिन' तथा 'बदलते रूप में', डॉ. नगेंद्र कृत 'तंत्रालोक से यंत्रालोक तक' (1968) तथा 'अप्रवासी की यात्राएं' (1972), मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्‌टान तक', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पारि उतरि उतरि कहि जैछै' एवं क्षितीश वेदालंकार कृत 'बंगलादेश' आदि पठनीय यात्रा वृत्तांत हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी में विदेशी यात्रा वृत्त संबंधी अधिक सामग्री है। प्रकृति के सुंदर चित्रों का भी अच्छा चित्रण है। शैली की दृष्टि से इन यात्रा वृत्तों में निबंध, डायरी तथा पत्र शैली का प्रयोग हुआ है।

अपनी प्रगति जांचिए

15. यात्रा वृत्तांत लेखन में किसका नाम उल्लेखनीय रूप से लिया जाता है?

    (क) विभु मिश्र (ख) राहुल सांकृत्यायन

    (ग) बालकृष्ण भट्‌ट (घ) प्रतापनारायण मिश्र

16. 'अरे यायावर रहेगा याद' यात्रा वृत्तांत किसने लिखा है?

    (क) मोहन राकेश (ख) अज्ञेय

    (ग) यशपाल जैन (घ) इनमें से कोई नहीं

3.10 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (ख)
8. (क)
9. (घ)
10. (क)
11. (ख)
12. (ग)
13. (ग)
14. (क)
15. (ख)
16. (ख)

3.11 सारांश

राष्ट्रीय जागृति के साथ ही हिन्दी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में सृजन कार्य प्रारंभ हो गया। इसी क्रम में नाटक लिखे जाने लगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस बात को स्वीकार किया कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।'' भारतेंदुजी के असमय अवसान से हिन्दी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध–सा आ गया था। यद्यपि, अनूदित नाटकों की कमी न थी। नाट्य शिल्प में जैसा विकास और भावबोध में जैसा विस्तार अपेक्षित था, वह भारतेंदु जी के अवसान के बाद और जयशंकर प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व नहीं आ सका। भारतेंदु युग में हिन्दी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगांतरकारी प्रतिभा लेकर आए। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से हिन्दी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। जयशंकर प्रसाद के पश्चात नाटक साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य, दोनों शैलियों का यथायोग्य प्रयोग कर अनेक नाटकों की रचना की गई। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच का अच्छा विकास हुआ है। दिल्ली में स्थापित 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' तथा कोलकाता, मुंबई आदि नगरों में स्थापित नाटक केंद्रों से हिन्दी नाटक की रचना और मंचन के लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। कथा और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी नाटकों का विकास बहुमुखी रहा है और तकनीक की दृष्टि से नाटक में नित्य नये प्रयोग हो रहे हैं। वर्तमान नाटक अधिकतर मनोवैज्ञानिक और समस्या प्रधान होते जा रहे हैं।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। एकांकी ने नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। बड़े नाटक में वर्णित विस्तृत जीवन के विपरीत इसमें जीवन की एकरूपता, कसावट, चरित्र–चित्रण की तीव्र और संक्षिप्त रूप–रेखा, कुतूहल की चरम सीमा होती है। हिन्दी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखे गए वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थे। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित रूप से प्रगतिशील युग कहा जा सकता है।

निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा, तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किए किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इसी युग में भाषा के मानक रूप और चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिन्दी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिन्दी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत–गौरव, विदेशी शासन के प्रति

आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। भारतेंदु से लेकर द्विवेदी युग से होते हुए हिन्दी निबंध लेखन की यात्रा शुक्ल और शुक्लोत्तर युग में अपने चरम उत्कर्ष पर रही। इधर के वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिन्दी साहित्य में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण और रेखाचित्र साहित्य का भी विकास हुआ। जीवनी और आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधाएं जहां रचनाकार के व्यक्तिगत जीवन और सुख–दुख का परिचय देती हैं तो संस्मरण और रेखाचित्र रचनाकार के इर्द–गिर्द रहे लोगों, परिवेश, यादों तथा अनुभवों का रोचक चित्र प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से पूर्णतः आंदोलित था। देश से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए जनता उद्विग्न हो उठी थी। रचनाकार स्वतंत्रता पूर्व की परिस्थितियों में जहां राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत–प्रोत थे वहीं स्वतंत्रता पश्चात की परिस्थितियों में आधुनिकीकरण के प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हो गए। हिन्दी गद्य साहित्य का पूर्ण विकास आधुनिक काल की देन है। काव्य या पद्य रचनाओं में यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं प्रगतिवाद की विचारधारा नवीन प्रयोगों को प्रोत्साहित करने लगी। दलित चेतना, स्त्री के समानता अधिकार एवं शोषण जैसे विषय रचनाओं का आकार ग्रहण करने लगे। जनजातीय पिछड़े वर्गों के उत्थान में नित नवीन रचनाकारों का उदय होने लगा। देश एवं विदेश में हिन्दी का सम्मान बढ़ने लगा। हिन्दी की क्लिष्ट भाषा शैली खड़ी बोली के रूप में साधारण बोलचाल की भाषा बनकर कृतियों के आशय को पाठकों के लिए सर्वग्राही बनाने लगी। महिला एवं जनजाति के रचनाकार हिन्दी साहित्य में अपना वर्चस्व स्थापित करने लगे। आलोचकों के लिए समय की मांग को समझकर इन नव उदित रचनाकारों को महत्व देना आवश्यक हो गया।

हिन्दी के उत्थान में आधुनिक काल के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। हिन्दी का आधुनिक काल भूमंडलीकरण के विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति से अत्यंत प्रभावित है। हम कह सकते हैं राष्ट्रभाषा हिन्दी निज भाषा के रूप में राष्ट्र को गौरवान्वित कर रही है।

3.12 मुख्य शब्दावली

- **यायावर** : घुमक्कड़
- **त्रिपथगा** : तीन चरणों वाला, तीन पदों वाला, गंगा नदी
- **स्वातंत्र्योत्तर** : स्वतंत्रता के बाद
- **अंतर्द्वंद्व** : आंतरिक संघर्ष
- **आलोचना** : समीक्षा करना, देखना

- **परिमार्जित** : त्रुटि रहित
- **अनुसंधानपरक** : खोज युक्त, अन्वेषण युक्त
- **समसामयिकता** : समकालीन
- **सार्वदेशिकता** : सब देशों से संबद्ध
- **अभिहित** : उल्लिखित, कहा हुआ
- **हीला** : बहाना, धोखा
- **कसीदा** : किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा
- **मुसाहिब** : सभासद
- **अवधारणा** : विचारधारा।
- **सापेक्षिक** : जिसमें किसी की अपेक्षा हो।
- **पृष्ठभूमि** : पीछे का दृश्य या पहले की बातें।
- **व्याकरणसम्मत** : भाषा के व्याकरण के अनुसार।
- **अभिव्यंजना** : आंतरिक अनुभूति का साहित्य में चित्रण।
- **साम्प्रदायिक** : संप्रदाय संबंधी।
- **छिन्नमस्ता** : एक देवी जो अपना सिर हथेली पर रखकर रक्तधारा पीती हुई मानी जाती है।
- **व्यभिचार** : दुष्कर्म, दुराचार।
- **उत्पीड़ित** : सताया हुआ, दबाया हुआ।
- **भूमंडलीकरण** : वैश्विक रूप में विस्तार।
- **अतिशयोक्ति** : बढ़ा–चढ़ाकर कहना।
- **अतिक्रमण** : सीमा या मर्यादा का उल्लंघन।
- **साहित्यानुशीलन** : साहित्य का गम्भीर अध्ययन या सतत मनन
- **कुत्सित** : निंदित, नीच
- **संप्रेषण** : भावों को अभिव्यक्त करना, प्रेषित करना।

3.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी नाटक और रंगमंच के वर्तमान स्वरूप की समीक्षा अपने शब्दों में कीजिए।
2. एकांकी से आप क्या समझते हैं? अपने पसंदीदा एकांकी को आधार बनाते हुए एकांकी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3. राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

4. आधुनिक काल से पूर्व गद्य के विभिन्न रूपों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. प्रेमचंद ने अपनी कहानियों व उपन्यासों में किस वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी गद्य विधाओं के उद्‌भव और विकास पर समीक्षात्मक निबंध लिखिए।
2. 'गद्यकाल' से क्या तात्पर्य है? हिन्दी गद्य के विकास में किन साहित्यकारों ने विशेष योगदान दिया?
3. हिन्दी नाटक साहित्य के ऐतिहासिक विकास क्रम का विस्तृत वर्णन करते हुए प्रमुख नाटकों के महत्व का विवेचन कीजिए।
4. स्वातंत्र्योत्तर युगीन एकांकियों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनमें मौजूद युगीन बोध को परिभाषित कीजिए।
5. हिन्दी साहित्य में निबंध लेखन की विधा के विकास में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग के योगदान का विवेचन कीजिए।
6. रेखाचित्र से आप क्या समझते हैं? संस्मरण से वह किस प्रकार भिन्न है, स्पष्ट कीजिए।
7. 'संस्मरण गद्य साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है' कैसे? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
8. आत्मकथा का लेखक अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के उद्‌घाटन में कितना सफल हो पाता है? प्रसिद्ध आत्मकथाओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए समझाइए।
9. जीवन के विकास एवं ज्ञानवर्धन में यात्रावृत्तांत के महत्व को समझाइए।

3.14 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।
3. *समकालीन हिंदी साहित्यः विविध परिप्रेक्ष्य,* दर्पण प्रकाशन।
4. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
6. *हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास,* हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. *छायावाद,* डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
9. *आधुनिक हिंदी साहित्य,* अज्ञेय, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।
10. *हिंदी वाङ्मय बीसवीं शती,* डॉ. नगेंद्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
11. *हिंदी साहित्य का इतिहास,* डॉ. रामनिवास शुक्ल, मंचन पब्लिकेशन, रोहतक।
12. *हिंदी का सुबोध इतिहास,* गुलाबराय, लक्ष्मी पब्लिकेशन, आगरा।
13. *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां,* डॉ. शिवकुमार शर्मा।

इकाई 4 मालवी, बघेली और बुंदेली भाषा साहित्य

इकाई 4 भाग (अ) : मालवी भाषा
परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

इकाई 4 भाग (ब) बघेली भाषा
परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

इकाई 4 भाग (स) बुंदेली भाषा
परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

इकाई 4 भाग (अ) : मालवी भाषा : परिचय, इतिहास एवं मालवी भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 हिंदी साहित्य की जनपदीय बोलियों का परिचय (मालवी, बघेली, बुंदेली)
  4.2.1 मालवी भाषा का परिचय
  4.2.2 मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय
  4.2.3 मालवी साहित्य का इतिहास
  4.2.4 मालवी भाषा का सीमा–क्षेत्र
4.3 मालवी भाषा के कवियों का परिचय, रचनाओं का मूलपाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 सन्त पीपा
  4.3.2 आनन्दराव दुबे
  4.3.3 बालकवि बैरागी
  4.3.4 नरहरि पटेल
4.4 मालवी भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.1 संत पीपा
  4.4.2 आनन्दराव दुबे
  4.4.3 बालकवि बैरागी
  4.4.4 नरहरि पटेल
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

हिंदी साहित्य में लोक साहित्य जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही लोक से जुड़ा रहता है। वह अपनी भाषा, रीतियों, परम्पराओं और विश्वासों को लोक से ही ग्रहण करता है।

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और संस्कृति की संवाहक भी होती है। भाषा समाज की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। जन–जन तक ज्ञान का प्रसार करने और ज्ञान को अर्थपूर्ण बनाने का काम भाषा का ही है। अंचल विशेष में लोगों के बीच विचारों के आदान–प्रदान के माध्यम को बोली कहते हैं। बोली में सहजता होती है– जीवन के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करने की उसमें असीम शक्ति होती है। बोली का क्षेत्र सीमित होता है और उसमें सतत् परिवर्तन आता रहता है। इसी आधार पर कहा जाता है कि "कोस–कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वानी"। मालवी भी एक बोली है जो एक निश्चित क्षेत्र में बोली जाती है।

इस इकाई के अन्तर्गत मालवी भाषा और मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय, इतिहास तथा सीमा क्षेत्र का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ में मालवी भाषा के कवि संत पीपा, आनंदराव दुबे, बालकवि बैरागी, नरहरि पटेल आदि का जीवन परिचय और इनकी रचनाओं से भी अवगत कराया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिंदी साहित्य की जनपदीय बोलियों से परिचित हो पाएंगे;
- भाषा के महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत हो पाएंगे;
- मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- मालवी भाषा साहित्य के इतिहास तथा सीमा क्षेत्र को जान पाएंगे;
- मालवी साहित्य के कवियों के जीवन परिचय, उनके साहित्यिक योगदान एवं आलोचनात्मक विवेचन को समझ पाएंगे।

4.2 हिंदी साहित्य की जनपदीय बोलियों का परिचय (मालवी, बघेली, बुंदेली)

हिंदी की अनेक बोलियां (उपभाषाएं) हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपुरी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, झारखंडी, कुमाऊंनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये हिंदी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिंदी की बोलियां और उन बोलियों की उपबोलियां हैं। जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है। मोटे तौर पर हिंद (भारत) की किसी भाषा को 'हिंदी' कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। पर वर्तमानकाल में सामान्यतः इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड की भाषा के लिए होता है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण–पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं– पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

बघेली भाषा

बघेली हिंदी की एक बोली है जो भारत के बघेलखंड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, उमरिया, एवं अनूपपुर में; उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में तथा छत्तीसगढ़ के बिलासपुर एवं कोरिया जनपदों में बोली जाती है। इसे "बघेलखंडी", "रिमही" और "रिवई" भी कहा जाता है।

बुंदेली भाषा

बुंदेलखंड के निवासियों द्वारा बोली जाने वाली बोली बुंदेली है। यह कहना बहुत कठिन है कि बुंदेली कितनी पुरानी बोली है लेकिन ठेठ बुंदेली के शब्द अनूठे हैं जो सादियों से आज तक प्रयोग में हैं। केवल संस्कृत या हिंदी पढ़ने वालों को उनके अर्थ समझना कठिन है। ऐसे सैकड़ों शब्द जो बुंदेली के निजी हैं, उनके अर्थ केवल हिंदी जानने वाले नहीं बतला सकते किंतु बांग्ला या मैथिली बोलने वाले आसानी से बता सकते हैं। प्राचीन काल में बुंदेली में शासकीय पत्र व्यवहार, संदेश, बीजक, राजपत्र, मैत्री संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यह भी जाता है कि औरंगजेब और शिवाजी भी क्षेत्र के हिंदू राजाओं से बुंदेली में ही पत्र व्यवहार करते थे। ठेठ बुंदेली का शब्दकोश भी हिंदी से अलग है और माना जाता है कि वह संस्कृत पर आधारित नहीं है। एक–एक क्षण के लिए अलग–अलग शब्द हैं। गीतों में प्रकृति के वर्णन के लिए, अकेली संध्या के लिए बुंदेली में इक्कीस शब्द हैं। बुंदेली में वैविध्य है, इसमें बांदा का अक्खड़पन है और नरसिंहपुर की मधुरता भी है। डॉ. वीरेंद्र वर्मा ने हिंदी भाषा का इतिहास नामक ग्रंथ में लिखा है कि बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। शुद्ध रूप में यह झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट तथा छिंदवाड़ा विदिशा के कुछ भागों में पाए जाते हैं। यह भाषा कुछ–कुछ बांदा के हिस्से में भी बोली जाती है।

बोली

प्रत्येक प्राणी के हृदय में परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के भावों का उदय हुआ करता है और इन भावों को दूसरों पर प्रकट करने की भी प्रत्येक प्राणी को आवश्यकता होती है। एक समय वह था जब मनुष्य एक विकसित और शक्ति सम्पन्न प्राणी नहीं था। वह जंगलों में रहता था और जंगली जानवरों का शिकार कर उन्हीं के चर्म से अपने शरीर को ढकता था। संकेत ही उसके भाव प्रकाशन थे, जिसके चिह्न आज भी गुफाओं, कंदराओं में पाए जाते हैं परन्तु धीरे–धीरे वह आगे बढ़ा और सभ्यता की ओर चला। उसने अपनी भाव प्रकाशन प्रणाली में उन्नति की और जीभ, कंठ, आदि का सहारा लेकर उसने नई–नई ध्वनियों को जन्म दिया। ये ध्वनियां ही भाषा के नाम से पुकारी जाने लगीं। प्रत्येक भाषा का विकास बोलियों से ही होता है। जब बोलियों के व्याकरण का मानकीकरण हो जाता है और उस बोली के बोलने या लिखने वाले इसका ठीक से अनुकरण करते हुए व्यवहार करते हैं तथा वह बोली भावाभिव्यक्ति में इतनी सक्षम हो जाती है कि लिखित साहित्य का रूप धारण कर सके तो उसे भाषा का स्तर प्राप्त हो जाता है। किसी बोली का महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि सामाजिक व्यवहार और शिक्षा व साहित्य में उसका क्या महत्व है। अनेक बोलियां मिलकर किसी एक भाषा को समृद्ध करती हैं। इसी प्रकार एक समृद्ध भाषा अपनी बोलियों को समृद्ध करती है। अतः कहा जा सकता है कि भाषा व बोलियां परस्पर एक दूसरे को समृद्ध करते हैं। पशु–पक्षी अपनी भावाभिव्यक्तियों के लिए जिन ध्वनियों का प्रयोग करते हैं उन्हें भी बोली कहते हैं। इन बोलियों का भी नाम होता है जैसे शेर की बोली को दहाड़ना कहते हैं, हाथी की बोली को चिंघाड़ना और घोड़े की बोली को हिनहिनाना।

भाषा

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त करते हैं और इसके लिए हम वाचिक ध्वनियों का उपयोग करते हैं। भाषा मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है जिनके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वयं एक व्यवस्था में मिलकर एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं। व्यक्त नाद की वह समष्टि जिसकी सहायता से किसी एक समाज या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह जिनके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है। इस समय सारे संसार में प्रायः हजारों प्रकार की भाषाएं बोली जाती हैं जो साधारणतः अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आतीं। अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा अच्छी तरह नहीं आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग–अलग शाखाएं स्थापित की हैं और उन शाखाओं के भी अनेक वर्ग–उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी–बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथवा बोलियों को रखा है। जैसे हमारी हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय आर्य शाखा की एक भाषा है; और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएं या बोलियां हैं। पास–पास बोली जानेवाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है; और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी–बड़ी भाषाओं में भी है जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है। संसार की सभी बातों की भांति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है; और इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कृत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है। सामान्यतः भाषा को वैचारिक आदान–प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आभ्यंतर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं वह हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और अपने इतिहास तथा परम्परा से विच्छिन्न है। प्रायः भाषा को लिखित रूप में व्यक्त करने के लिए लिपियों की सहायता लेनी पड़ती है। भाषा और लिपि, भावाभिव्यक्ति के दो अभिन्न पहलू हैं। एक भाषा कई लिपियों में लिखी जा सकती है और दो या अधिक भाषाओं की एक ही लिपि हो सकती है। उदाहरणार्थ पंजाबी, गुरूमुखी तथा शाहमुखी दोनों में लिखी जाती हैं जबकि हिंदी, मराठी, संस्कृत, नेपाली इत्यादि सभी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

4.2.1 मालवी भाषा का परिचय

मालवी भारत के मालवा क्षेत्र की भाषा है। मालवा भारत भूमि के हृदय स्थल के रूप में सुविख्यात है। मालवा क्षेत्र का भू–भाग अत्यंत विस्तृत है। पूर्व दिशा में बेतवा (वेत्रवती) नदी, उत्तर–पश्चिम में चम्बल (चर्मण्यवती) और दक्षिण में पुण्य सलिला नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मालवा है। मालवा क्षेत्र मध्यप्रदेश और राजस्थान के लगभग

बीस जिलों में विस्तार लिए हुए हैं। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं। प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा की पुस्तक 'मालवी भाषा और साहित्य' के अनुसार, वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्यप्रदेश के उज्जैन संभाग के आगर मालवा, नीमच, मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इंदौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इंदौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहोर, राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खंडवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित हैं। इन जिलों में हरदा, होशंगाबाद, बैतूल, छिन्दवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं। सातवीं शती में जब ह्वेनसांग भारत आया था तो वह मालवा के पर्यावरण और लोकजीवन से बहुत प्रभावित हुआ था। तब उसने दर्ज भी किया, "इनकी भाषा मनोहर और सुस्पष्ट है।" मालवा समृद्धि एवं सुख से भरपूर क्षेत्र माना जाता है। 'देश मालवा गहन गंभीर, डग–डग रोटी पग–पग नीर' जैसी उक्ति लोक–जीवन में प्रचलित है। जीवन की यही विशिष्टताएं मालवा के इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला आदि में प्रतिबिम्बित हुई हैं। लोककलाओं के रस से मालवांचल सराबोर है। मालवा क्षेत्र के जल पर्यावरण और सदैव सुकाल की अवस्था पर संत कवि सुन्दर दास लिखते हैं–

वृच्छ अनंत सुनीर वहंत सु सुंदर संत विराजै तहीं तें।
नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सु मालव देस भलो सबहीं तें।

मालवा क्षेत्र सांस्कृतिक और व्यावसायिक दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध और सुसम्पन्न रहा है। सुदूर अतीत से यहां प्रवाहमान नदियों, स्थानीय भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता के रहते मालवी की अलग–अलग छटाएं लोकजीवन में दिखाई देती हैं। इन्हीं से मालवी के अलग–अलग क्षेत्रीय रूप या विविध उपबोलियां अस्तित्व में आई हैं। एक प्रसिद्ध उक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है, "बारा कोस पे वाणी बदले, पांच कोस पे पाणी।" मालवी का केन्द्र उज्जैन, इंदौर, देवास और उसके आसपास का क्षेत्र है। इसी मध्यवर्ती मालवी को आदर्श या केंद्रीय मालवी कहा जाता है, जो अन्य निकटवर्ती बोलियों के प्रभाव से प्रायः अछूती है। आगर मालवा जिला तो प्रसिद्ध ही मालवा उपनाम से है क्योंकि जानकारों के अनुसार बहुत ज्यादा हद तक केंद्रीय या आदर्श मालवी इस जिले में ही बोली जाती है। केंद्रीय या आदर्श मालवी के अलावा मालवी के कई उपभेद या उपबोलियां भी अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

4.2.2 मालवी भाषा की उपबोलियों का परिचय

केंद्रीय या आदर्श मालवी के अलावा मालवी के कई उपभेद या उपबोलियां अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। मालवी की प्रमुख उपबोली के रूपों का परिचय यहां अभीष्ट है–

1. केंद्रीय या आदर्श मालवी
2. सोंधवाड़ी
3. रजवाड़ी
4. दशोरी या दशपुरी
5. उमठवाड़ी
6. भीली

1. केंद्रीय या आदर्श मालवी– इंदौर–उज्जैन जिले शुद्ध मालवी के मध्यवर्ती या केंद्रीय क्षेत्र कहे जाएंगे। अन्य क्षेत्रों की मालवी बोली पर विभिन्न निकटवर्ती बोलियों जैसे बुंदेलखंडी, गुजराती, मेवाड़ी, हाड़ौती, निमाड़ी आदि बोलियों का पर्याप्त प्रभाव है। भाषा का अपना विशिष्ट व्याकरणिक आधार होता है, किंतु बोली में पर्याप्त व्याकरणिक स्वतंत्रता होती है। केंद्रीय मालवी को मानक मालवीय कहा जा सकता है, जिसकी विशिष्टताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

1. इसमें 'ओ'कार बहुल प्रवृत्ति पाई जाती है। सामान्यतः 'आ' कारान्त शब्दों को 'ओ' कारान्त उच्चारित करते हैं। यह एक वचन का द्योतक होता है।यदि 'आ'कारांत शब्द का प्रयोग होगा तो वह बहुवचन का सूचक होता है। उदाहरण– गड्डे का मालवी एक वचन 'खाड़ो' तथा बहुवचन 'खाड़ा' या 'खाड़ा ना' होता है। कुछ अन्य उदाहरण हैं–घोड़ो, रामो, लाड़ो, घड़ो आदि।
2. कई शब्दों में 'इ' का उच्चारण 'अ' ध्वनि में परिवर्तित हो जाता है।

   उदाहरण– मिट्टी–मट्टी, हरिण– हरण, दिन –दन आदि।
3. कई स्थानों पर 'उ' ध्वनि भी 'अ' में बदल जाती है।

   उदाहरण– कुँवर–कँवर, ठाकुर– ठाकर आदि।
4. महाप्राण ध्वनियों को भी प्रायः बदल दिया जाता है।

   उदाहरण– काढ़ा– काड़ा, भी–बी, दूध– दूद आदि।
5. 'स' के स्थान पर 'ह' उच्चारण करने की भी प्रवृत्ति है।

   उदाहरण– समझयो–हमझयो, सूदो–हूदो, साथे–हाथे आदि।
6. 'य' और 'ब' को 'ज' और 'व' में करके बोलने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है।

   उदाहरण– यदि –जदि या जद, बातों करोंगा–बाताँ कराँगा।
7. शुद्ध मालवी में दन्त्य 'न' मूर्धन्य 'ण' में परिवर्तित नहीं होता। मालवी के अन्य उपभेदों में 'न' का 'ण' में परिवर्तन हो जाता है।
8. 'और' शब्द के लिए 'अने','अन' आदि शब्दों का भी प्रयोग व्यापक है।

   उदाहरण– रोटी अने दाल, माँ अने बाप आदि।
9. शब्द विकृत करने की प्रृवत्ति भी पाई जाती है।

   उदाहरण–किसन–किसन्यो, बालक– बालूड़ो, रूपया–रूपट्टी आदि।

ध्वनि तत्व की दृष्टि से देखें तो हिंदी की तुलना में मालवी में स्वरों की संख्या कम है। इसमें औ,ओ, में तथा ऐ,ए में परिवर्तित हो जाता है, क्योंकि औ तथा ऐ ध्वनियों का अभाव है। जहां तक व्यंजन ध्वनियों का प्रश्न है –स, श,ष के स्थान पर मालवी में 'स' का उपयोग होता है। मंदसौर क्षेत्र में 'श' का प्रयोग होता है। रजवाड़ी और सोंधवाड़ी में 'स' का 'ह' भी हो जाता है। हिंदी के समान मालवी में भी 'ऋ' का उच्चारण रि ही होता है। आदर्श ग्राम्य मालवी में 'ल' का भी उच्चारण होता है। मानक मालवी के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, उपसर्ग आदि का परिचय यहां दिया जा रहा है।

संज्ञा रूप– मालवी में संज्ञा रूप बहुधा हिंदी जैसे ही हैं। हीनता, लघुता या घृणा प्रकट करने वाले संज्ञा शब्दों में ड़ा प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे टुकड़ों, गामड़ो, बापड़ो आदि। परन्तु इनके पछेड़ो, कराड़ो जैसे अनेक अपवाद भी प्राप्त होते हैं।

वचन– मालवी में हिंदी के समान एकवचन और बहुवचन हैं। बहुवचन बनाने के लिए होन और ना प्रत्यय लगाया जाता है। स्त्रीलिंग में याँ प्रत्यय लगाते हैं। जैसे– लोगहोन, लोगाना या लोगायाँ आदि।

कारक– कर्ता, संबंध और संबोधन कारक के अतिरिक्त मालवी के सब कारक हिंदी से भिन्न हैं। जैसे–

कारक	**कारक चिन्ह**
कर्ता	ने
कर्म	को
करण और अपादान	से, ती
संप्रदान	सारू, वास्ते। कारणे, ताँड़ लोक गीतों में प्रयुक्त होता है।
अधिकरण	में, पर, उप्पर, पे
संबंध	का, के, की/रा, रे, री
संबोधन	आरे, ए, ओ

लिंग रचना : मालवी में भी हिंदी के समान दो लिंग होते हैं– पुल्लिग और स्त्रीलिंग।

पुल्लिग और स्त्रीलिंग के प्रयोग के नियम भी हिंदी के समान ही हैं। कई बार स्त्रीलिंग बहुवचन का प्रयोग पुल्लिग जैसा होता है–

बेन तम काँ से आया?

वी काँ से आया?

कुछ विदेशी शब्द के प्रयोग दोनों ही लिगों में पाए जाते हैं।

हवा जाज भोत नीची है।

हवाजाज भोत ऊँचो है।

विशेषण

मालवी में विशेषण की रचना भी बहुधा हिंदी जैसी ही है। हिंदी के समान उनमें भी लिंग, वचन, कारक के अनुसार परिवर्तन होते हैं और मालवी संज्ञा के समान पुल्लिग में विशेषण एकवचन में ओकारांत ही होता है। जैसे– कालो, गोरो, लंगड़ो, टूँटो, खरो, खोटो।

सर्वनाम–

हिंदी के समान मालवी में सर्वनाम के प्रयोग के अनुसार छह प्रकार हैं:–

सर्वनाम	**एकवचन**	**बहुवचन**
1. पुरुषवाचक सर्वनाम		
*उत्तम पुरुष	म्हूँ, में	हम, म्हें
*मध्यम पुरुष	तम, तू, थने	तम, तमारे, आपके
*अन्य पुरुष	ऊ	वी

2. निश्चयवाचक सर्वनाम	यो,ऊ	इ, वी
3. प्रश्नवाचक सर्वनाम	किने, कुण	किनाने
4. संबंधवाचक सर्वनाम	जो	जिन, जिनाने
5. अनिश्चयवाचक सर्वनाम	कोई	–
6. साकल्यवाची सर्वनाम	सब,सगला	–

क्रियापदः

मालवी क्रिया पदों का विभाजन प्रायः हिंदी क्रिया पदों के समान ही होता है। मालवी ओकारांत होता है। प्रेरणार्थक में आव प्रत्यय जोड़ा जाता है।

भणनो –भणावनो। कभी–कभी आड़ प्रत्यय भी जोड़ा जाता है–जीमनो–जिमाड़नो। नामधातु के लिए 'नो' प्रत्यय भी संज्ञा या विशेषण के अंत में जोड़ा जाता है। जैसे–घोल–घोलनो

मालवी में संयुक्त क्रियाएं दो प्रकार से बनाई जाती हैं–

(क) धातु से धातु को मिलाकर

जैसे–कई ग्यो,रई ग्यो, पोंची ग्यो

(ख) धातु से पहले कोई संज्ञा, क्रियाजात विशेष्य या कृदंत पद जोड़कर।

जैसे–बुलावो देनो,खूँटे बाँधनो,आड़ो फरनो

क्रिया के रूप विकारः–

वचन, काल, पुरुष, लिंग, वाच्य के कारण क्रिया का रूप विकार होता है।

उदाहरण–1. वाच्य– कर्तृ वाच्य – हमने न्हइल्यो है। छोरी रोटी पोइरी है।

कर्म वाच्य– कपड़ा सिवई रिया है।

भाव वाच्य– म्हार से चल्यो नी जावे।

2. काल–मालवी में भूत, वर्तमान और भविष्य काल प्रयुक्त होते हैं।

(क) मालवी में सामान्य क्रियाएं ओकारांत होती हैं।

(ख) अंतिम 'अ' को 'य' में बदलकर सामान्य भूत काल की क्रियाएं बनाई जाती हैं।

(ग) एकाक्षरी धातुओं से सामान्य भूतकाल बनाने के लिए उसमें 'या' लगा देना पड़ता है।

(घ) सामान्य भूतकाल की क्रियाएं लिंगों, वचनों और पुरुषों में अपरिवर्तित बनी रहती हैं।

(ङ) किसी भी काल की बहुधा क्रियाओं के तृतीय पुरुष के दोनों समान रूप होते हैं।

(च) सामान्य भूतकाल की क्रिया में 'हे' लगाने से वह आसन्न भूतकाल की क्रिया बन जाती है, जो सभी लिंग, वचन और पुरुष में समान रूप से रहती है।

(छ) बहुधा ओकारांत एकवचन क्रियाएं बहुवचन में आकारांत हो जाती हैं।

(ज) मालवी में तात्कालिक वर्तमान काल के रूप पड़ीर्यो,जइर्यो,लिखिर्यो होते हैं जो हिंदी और राजस्थानी से भिन्न हैं।

अविकारी या अव्वय बहुधा हिंदी के समान हैं।

उपसर्ग

तत्सम उपसर्ग

अप–अपजस

को–कु–कोजस

उप–उपराम

अ–अजाण्यो,अलूणो

तद्भव उपसर्ग

निर– निरमोइलो

अद–अदवेंड्यो

सत–सतगुरू

स– सभाव

समास–

मालवी में हिंदी जैसी पूरी समास पद्धति प्राप्त होती है।

प्रत्यय–

मालवी में फारसी प्रत्यय प्रचलित हैं।

जैसे–इस– परवरिस या परवरस।

आनो–हरजानो,नथरानो।

गर–गार–कलइगर,मदतगार।

खानो–सफाखानो, छापाखानो आदि।

कहावतें

कहावतों तथा मुहावरों से भाषा की शक्ति का बोध होता है। मालवी में कहावतों को ओखाणा या केवाड़ा कहते हैं।

1. आँदो उठेने घरका ने कूटे।
   (स्वजनों को ही परेशान करना)
2. एक लकड़ी का दो बटका।
   (टूट कर अनेक होना, विभाजन)
3. कान काटणा।
   (निपुण, चालाक)
4. घरे घर गारा का चूला
   (सबके घर एक सी स्थिति)
5. राजा का व्याव में पटेल को व्याव
   (बड़े काम के साथ छोटा भी हो जाना)

इस प्रकार मालवी में कहावतों, मुहावरों, लोकोक्तियों, पहेलियों का विपुल भंडार है।

2. सोंधवाड़ी– सोंधवाड़ी बोली और संस्कृति अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। भाषिक प्रवृत्ति के साथ ही लोकजीवन के आयामों की दृष्टि से मालवा का यह अंचल प्रायः उपेक्षित ही रहा है, लेकिन हाल के दशकों में डॉ. प्रहलादचंद जोशी के सतत प्रयासों से इस दिशा में पर्याप्त उपलब्धियाँ हासिल हो गई हैं। डॉ. जोशी की पुस्तक 'सोंधवाड़ी साहित्य, संस्कृति और व्याकरण' इस बोली के वैशिष्ट्य को उजागर करने में मील का पत्थर साबित हो रही है। सोंधवाड़ का सीमांकन काली सिंध और चंबल के मध्य तथा आसपास के क्षेत्र में माना जाता है। यहां की बोली का माधुर्य देखते ही बनता है। एक लोकश्रुत दोहा है–

सिन्ध अरे चामल परे हरवा बोले बोल।
लेंगों चूड़ो लाख को कामण मोंगा मोल।।

सोंधिया राजपूत समाज की बहुलता लिए यह क्षेत्र मालवा और राजस्थान की संधि रेखा के आसपास है, जिसका विस्तार उज्जैन और शाजापुर जिले के उत्तरी भाग, पूर्वी मंदसौर और आलोट (रतलाम) से लेकर राजस्थान के झालावाड़ जिले के दक्षिणी हिस्से तक है। कुल मिलाकर सोंधवाड़ अंचल मध्य प्रदेश के पांच जिलों– शाजापुर, उज्जैन, रतलाम, राजगढ़, मंदसौर जिले और राजस्थान के झालावाड़ जिले के हिस्सों को समेटता है।

3. रजवाड़ी– रजवाड़ी या रांगड़ी भी मालवी की एक महत्वपूर्ण उपबोली है। डॉ. ग्रियर्सन ने 1907 में राजस्थानी एवं मालवी का भाषाई सर्वेक्षण किया था, तब उन्होंने रांगड़ी एवं सोंधवाड़ी को मालवी की उपबोली के रूप में मान्यता दी थी। रांगड़ी या रजवाड़ी पर विस्तृत एवं भाषा वैज्ञानिक कार्य करने वालों में डॉ. चिंतामणि उपाध्याय का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने लिखा है– रतलाम, मंदसौर एवं झाबुआ जिले का शहरी भाग रजवाड़ी अथवा रांगड़ी का क्षेत्र माना जाएगा। मालवी का भाषागत यह रांगड़ी रूप एक विशिष्ट परंपरा एवं संस्कृति का भी परिचायक है। नाम से ही स्पष्ट है कि रजवाड़ी राजस्थानी भाषा से प्रभावित है। मालवी राजपूतों की परंपरा का प्रवेश अधिक पुराना नहीं है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इंदौर, उज्जैन, रतलाम, मंदसौर और शाजापुर आदि जिलों के राजपूती ठिकानों के क्षेत्र की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव परिलक्षित होता है। उज्जैन एवं इंदौर के ग्रामीण क्षेत्रों में आदर्श मालवी और रजवाड़ी सम्मिलित रूप से बोलते हैं। रतलाम जिले का भाग शुद्ध रजवाड़ी का क्षेत्र कहा जा सकता है। झाबुआ की शहरी एवं मध्यमवर्गीय जनता रजवाड़ी का ही प्रयोग करती है। रजवाड़ी का क्षेत्र सोंधवाड़ी से अधिक व्यापक है।

4. दशोरी या दशपुरी– मंदसौर का प्राचीन नाम दशपुर है। इसलिए मंदसौर एवं नीमच जिले की मालवी की उपबोली को दशोरी या दशपुरी मालवी संज्ञा दी जाती है। उत्तर–पश्चिम मालवी का यह क्षेत्र मेवाड़ी या चित्तौड़ी सीमा से लेकर मुकुंदरा–झालावाड़ के आगे हाड़ौती क्षेत्र का माना जा सकता है। इसके पूर्व डग, गंगधार और दक्षिण–पश्चिम में छोटी–बड़ी सादड़ी तथा प्रतापगढ़ क्षेत्र आते हैं। इसके दक्षिण में रतलाम की रजवाड़ी एवं दक्षिण–पूर्व में सीतामऊ, सुवासरा और गरोठ–शामगढ़ की सोंधवाड़ी की सीमा मानी जा सकती है। दशोरी मालवी पर मेवाड़ी, हाड़ौती, सोंधवाड़ी और रजवाड़ी का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यह रजवाड़ी की अपेक्षा अधिक मिठास लिए हुए है।

5. उमठवाड़ी– मध्य प्रदेश का राजगढ़ जिला उमठवाड़ क्षेत्र कहलाता है। इसके अंतर्गत जीरापुर, माचलपुर, खिलचीपुर, राजगढ़, ब्यावरा, पचोर, सारंगपुर और नरसिंहगढ़ तहसीलें आती हैं। यद्यपि खिलचीपुर खींची राजपूतों की रियासत रही है। जीरापुर और माचलपुर इंदौर रियासत के क्षेत्र हैं। राजगढ़ और नरसिंहगढ़ उमठ राजपूतों का इलाका माना जाता है। कालांतर में जीरापुर भी इसी जिले में सम्मिलित किया गया था। यह पूरा क्षेत्र उमठवाड़ राजपूतों की बहुलता के कारण उमठवाड़ कहलाता है तथा यहां की बोली उमठवाड़ी कही जाती है। यहां के ग्रामीण अंचलों के लोग उमठवाड़ी बोली ही बोलते हैं, परंतु नगरीय क्षेत्र में यह बोली कुछ नवीन आवरणों से आबद्ध जान पड़ती है अर्थात इस पर अन्य बोलियों का प्रभाव भी देखने को मिलता है।

6. भीली– सुदूर अतीत से आज तक मालवी भूमि पर अनेक जातियां एवं जनजातियां निवास करती रही हैं। उनकी भाषा–प्रवृत्तियों का प्रभाव किसी–न–किसी रूप में मालवी पर देखा जा सकता है। भील जनजाति द्वारा प्रयुक्त भीली बोली का मालवी के साथ गहरा संबंध है। भीली के अनेक शब्द मालवी में घुल–मिल गए हैं, तो मालवी के अनेक शब्दों को भीली ने समाहित कर लिया है। इस अर्थ में भीली मालवी की ही एक उपबोली कही जा सकती है।

मालवा में भीली का क्षेत्र उसके दक्षिण–पश्चिम का भाग है। दक्षिण में जहां यह मराठा से सम्पृक्त हुई है, वहीं पश्चिम में इसका संबंध गुजराती से होता है। डॉ. नेमीचंद जैन ने मालवा में भीली क्षेत्र के संबंध में लिखा है– "मध्य प्रदेश के उज्जैन, इंदौर, धार, झाबुआ, रतलाम तथा दशपुर आदर्श मालवी के प्रसार क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में धार, झाबुआ और रतलाम भील बहुल क्षेत्र हैं। अतः भीली और मालवी एक–दूसरे के संपर्क में आती रही हैं। धार, रतलाम और अलीराजपुर भीली पर मालवी का प्रभाव हुआ है और उसने एक सीमा तक भीली को अपदस्थ किया है।"

4.2.3 मालवी साहित्य का इतिहास

मालवा पश्चिम मध्य प्रदेश का विस्तृत भाग है। गुना से झाबुआ तक के कई जिले मालवा में आ जाते हैं। गुना, नरसिंहगढ़, राजगढ़, शाजापुर, भोपाल, सीहोर, देवास, इंदौर, उज्जैन, धार, झाबुआ, रतलाम, मंदसौर नीमच के साथ ही झालावाड़ और चित्तौड़ जिलों का दक्षिणी भाग मालवी बोलने से मालवा में ही माना जाता है। इसके क्षेत्र के प्रायः दो करोड़ लोगों की बोली है, मालवी।

माल ऊंचे भू–भाग को कहते हैं। मालवा का क्षेत्र उन्नत भू–भाग होने से पठार है इसलिए इस क्षेत्र का मालवा नाम सार्थक है। इस क्षेत्र के निवासी 'मालवी जन' कहलाते हैं और उनकी भाषा मालवी है। मालवा से पहले यह क्षेत्र अदंती प्रदेश कहलाता था, जिसकी राजधानी उज्जयिनी या उज्जैन थी। आज की अपेक्षा पुराना मालवा अधिक विस्तृत रहा, यह प्राचीन परंपरा से स्पष्ट है। विदिशा, माहिष्मती, सीवनी, रायसेन आदि पारंपरिक मालवा के ही नगर बताए जाते रहे हैं।

प्राचीन काल में मालवा गणराज्य था। इसकी सेना ने विदेशी आक्रांता से भी लोहा लिया था। अवन्ती क्षेत्र पर वीर मालवों का आधिपत्य होने के कारण यह क्षेत्र 'मालव' कहा जाने लगा। इन मालवों द्वारा प्रचलित अपना संवत था जिसे उस समय कृत या मालव संवत कहते थे। यही संवत आज सुप्रसिद्ध 'विक्रम संवत' कहलाता है

जो मालवा सहित पूरे उत्तर भारत में लोकप्रिय है। मालवा की राजधानी उज्जयिनी प्राचीन युग में काल गणना का केंद्र रही है। संगीत, चित्र और मूर्तिकला में अवंति तथा मालव शैलियां प्रचलित रहीं। वेश और भाषा से अवंति या मालवा के लोग पहचान में आ जाते थे। मालवा की अवंति रीति, प्रवृत्ति, केशरचना विधि के साथ ही अवंति प्राकृत भाषा और अपभ्रंश भी चिरकाल से ही प्रसिद्ध रही है। अवंति प्राकृत अवंति प्रदेश की भाषा थी। साथ ही उज्जैन से मंदसौर और अरावली तक तत्कालीन पैशाची प्राकृत भाषा बोली जाती थी।

मालवा की मालवी बोली अवंति प्राकृत और पैशाची प्राकृत का समन्वित रूप है। इस क्षेत्र पर शकों, हूणों, तुर्कों, अंग्रेजों आदि विदेशी और मराठों, राजस्थान के राजपूतों का भी समय–समय पर दीर्घकालीन शासन रहा है। शासक की भाषा का प्रभाव क्षेत्र की भाषा पर होता ही है। अतः अवंति–पैशाची मिश्रित बोली में पूर्वोक्त सभी देशी–विदेशी शासकों की भाषाओं का क्रमशः मिश्रण होता चला गया। आज की मालवी उन विभिन्न भाषाओं और ध्वनियों की मिलती–जुलती धाराओं का समन्वित स्वरूप है। इसलिए उसमें वैदिक, संस्कृत आदि के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं का तद्भव रूप प्राप्त हो जाता है। मराठी, रजवाड़ी, अंग्रेजी, उर्दू आदि तो निकट भूतकाल में शासकों की भाषा रही। अतः आज इन भाषाओं का मालवी में विशेष प्रभाव पाया जाता है। यही नहीं इस मालवी के भाषा– क्षेत्र की सीमावर्ती भाषाओं और बोलियों से भी वह स्वाभाविक रूप से प्रभावित रही है। इसलिए मराठी, गुजराती, मेवाड़ी, हाड़ौती, बुंदेली आदि का भी उस पर किसी न किसी मात्रा में आदान पाया जा सकता है। सीमावर्ती भाषाओं का प्रभाव तो हर भाषा पर होता ही है। मालवा के दक्षिण में निमाड़ी बोली है जो खण्डवा और खरगोन जिलों में बोली जाती है। यह मालवी से विशेष भिन्न नहीं है। मालवी की सोंधवाड़ी, रजवाड़ी, उमठवाड़ी, भीली आदि भिन्न–भिन्न छटाओं के समान ही निमाड़ी भी मालवी की एक छटा ही है जो मराठी, गुजराती और भीली का कुछ अधिक प्रभाव लिए हुए है। मालवी का केंद्र है– उज्जैन, इंदौर और उनके आसपास का क्षेत्र। अतः इस मध्य मालवा क्षेत्र की मालवी मानक मालवी कही जा सकती है जो सीमावर्ती भाषाओं के प्रभाव से प्रायः अछूती है। इंदौर, उज्जैन, देवास, शाजापुर, धार क्षेत्र की मालवी इस मानक मालवी का क्षेत्र माना जा सकता है। ग्राम्य और नागर मालवी के स्वराघात में भेद पाया जाता है।

मालवा भाषा की लिपि– मालवा की भाषा मालवी है। हर भाषा की अपनी लिपि होती है। मालवा की अपनी लिपि प्राचीन काल में प्रचलित थी। जैन साहित्य में पैशाची या भूतभाषा की भूत लिपि और मालवा की मालविनी लिपि के उल्लेख प्राप्त होते है। ये लिपियां कभी मालवा में प्रचलित रहीं परन्तु कालांतर में उनका लोप हो गया। आजकल मालवी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है।

मालवा का सांस्कृतिक महत्व– मालवा भारत का हृदय देश है। हृदय के समान वह बहुधा बाह्य आघातों से सुरक्षित है। मालवा भी यदि आहत हो जाए तो स्पष्ट ही भारत का शेष भाग तो प्रभावित होता ही है। फिर वह राजनीतिक संकट हो अथवा प्राकृतिक, सामाजिक हो अथवा धार्मिक। जिस प्रकार समुद्री तूफानों का प्रभंजन मालवा तक या तो पहुंचता नहीं अथवा पहुंचता भी है तो हल्का होकर ही। उसी प्रकार विदेशी आक्रांताओं का प्रभाव भी मालवा में विलंब से ही पहुंचता है। जिस पश्चिम दिशा से

भारत में मानसून आता है, उसी दिशा से विदेशियों के आक्रमण भी होते रहे। पूर्व प्रभंजन की दिशा हो सकती है परंतु उधर से कभी विदेशी आक्रमण नहीं हुए।

मध्यवर्ती और सुरक्षित होने से मालवा बहुधा शांत रहा। वर्षा, सर्दी, गर्मी मध्यम कोटि की होने से जनता सुखी, भूमि उपजाऊ होने से आर्थिक निश्चिंतता। न बड़े पहाड़, न बड़ी नदियां, न नदियों की प्रलंयकारी बाढ़। छहों ऋतुएं संतुलित रहने से जन–जीवन और जन प्रकृति तथा प्रकृति सौम्य, मधुर, सरस। ऐसे वातावरण में कला, साहित्य और संस्कृति का मुखर होकर उदार पल्लवन होना स्वाभाविक है। इसलिए मालवा की भूमि धर्म, कला और साहित्य की पल्लवन भूमि रही।

भारत के मध्य में होने से प्राचीन व्यापारिक पथों का मालवा चौराहा था। उज्जैन में उसका केंद्र था। अतः इस क्षेत्र की व्यावसायिक और आर्थिक समृद्धि रही। आर्थिक समृद्धि रहने से समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों के आकर्षण का केंद्र रहा। पौराणिक तीर्थ होने से जन–आस्था का भी यह महत्वपूर्ण केंद्र रहा। यही कारण है कि मालवा की राजधानी के रूप में चाहे उज्जैन की गरिमा रही परन्तु पूरे मालवा में अन्य भी कई महत्वपूर्ण केन्द्र प्राचीनकाल से ही पल्लवित होते रहे। उनमें माहिष्मती, विदिशा, दशपुर, धार, मांडव, सांची, बाघ आदि विशेष रहे। कालांतर में राजनीतिक परिस्थितियां बदलने से इंदौर, रतलाम आदि का भी महत्व बढ़ता गया और फिर मध्य प्रदेश की राजधानी बन जाने से अचानक भोपाल की चमक बढ़ गई। पर इस चमक से वहां का मालवीपन धूमिल होता गया। विदिशा –रायसेन आदि कभी पूर्वी मालवा के महत्वपूर्ण केंद्र थे। वे भी सीमावर्ती होने से बुंदेली के प्रभाव में आते गए। मध्ययुग से होशंगाबाद, बैतूल आदि भी मालवा की सीमा में रहे। अतः उस प्रभाव का वहन वे किसी न किसी रूप में अब भी कर रहे हैं।

मालवा राजनीतिक दृष्टि से कभी भारत की राजधानी का क्षेत्र नहीं रहा, परंतु यह सांस्कृतिक राजधानी का केंद्र अवश्य रहा। उज्जैन आरंभ से ही पश्चिमी भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक राजधानी रही। सम्राट होने से पूर्व मौर्य अशोक उज्जैन का प्रांतपाल था। विदिशा के शुंग अग्निमित्र के पुत्र राजकुमार वसुमित्र ने ग्रीक यवनों को मालवा में ही पराजित किया।

उज्जैन का विक्रमादित्य अपने साहस, वीरता, न्यायप्रियता, दानप्रेम आदि गुणों के कारण भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय राजा रहा। इसने शकों को पराजित कर मालवा या विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया जो आज भी भारत का सर्वाधिक लोकप्रसिद्ध संवत है। मंदसौर के प्रकाशधर्मा और यशोधर्मा ने विदेशी हूणों को पराजित कर देश की अस्मिता की रक्षा की। धार के राजा भोज के समय मालवा विद्या का राज्य बन गया। पूरे देश के विद्याप्रेमी धार नगरी की ओर खिंचे चले आते थे। वास्तव में इसके पूरे परमार राजवंश के शासन काल (10 से 13 वीं शती तक) में मालवा सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केंद्र हो गया था। इसी समय रोड़ा कवि ने राउरवेल काव्य रचा जिसमें तत्कालीन मालवी की बानगी मिलती है। उसके बाद माण्डव के सुल्तानों के युग में भी मालवा में प्रासाद–निर्माणों के साथ ही धार्मिक वातावरण पनपता गया। इस काल में मालवा हिंदू–मुस्लिम सभी की सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र बन गया। इस समय पीपा जैसा प्रसिद्ध मालवी संत कवि हुआ। रानी रूपमती और बाजबहादुर की प्रेम कहानी इसी युग की है। रूपमती के गीत उस युग के वातावरण में छाए रहे। ये गीत मालवी की थाती हैं। उनमें मालवी का लालित्य और संगीत की मधुरता का मणिकांचन

समन्वय है। कालांतर में मुगलकालीन गौण महत्ता के अनंतर मालवा पर राजपूतों और मराठों का वर्चस्व बढ़ता गया। मुगल काल में रचनाएं होती रहीं और चंद्र सखी जैसे समर्थ और अधिक लोकप्रिय गीतकार हुए। चंद्र सखी के गीत मालवा की महिलाओं में अधिक लोकप्रिय हैं।

इस राजनीतिक परिदृश्य में भी मालवी साहित्य बराबर विकसित होता गया। इसे विकास देने वाली मालवा की विविधवर्णी जनता रही। विभिन्न कारणों से विभिन्न प्रदेशों और मालवा में जनता का निरंतर आवागमन चलता जो भी मालवा में आया, वह मालवा का होकर रह गया और उसने मालवी संस्कृति को समद्ध करने में पूरा योगदान दिया।

अशिक्षित आम जनता अपने भावों, कथाओं, गीतों, नाट्यों के द्वारा निरंतर व्यक्त करती रहती है। उस गति में रचना सायास नहीं होती, बस रचना हो जाती और वह रचना जनता में प्रचलित भी हो जाती है। रचनाकार उसमें गौण हो जाता है, रचना प्रधान हो जाती है। समूचा लोक साहित्य का उदाहरण है। उसमें रचनाकार का कहीं कोई संकेत नहीं होता। परंतु रचना की स्वाभाविक सुंदरता और उदारता पर प्रश्नचिन्ह लगाना कठिन होगा। गीतमयी गाथाएं, गद्य–पद्य मिश्रित चंपू साहित्य और गद्य में ऐसी रचनाएं जन–जन के कंठ में सदा अवतीर्ण होती रहीं। ऐसे गीत गायक और कथा कहने वाले समर्थ कथक्कड़ लोक में सदा से होते रहे। उदयन कथा कहने में उस्ताद ऐसे समर्थ लोगों का मालवा के गांवों में बड़ा बोलबाला था– महाकवि कालिदास ने लोक कथा की उस समर्थ परंपरा का सादर उल्लेख किया है। वैवाहिक तथा अन्य संस्कारों के लोकगीतों के उल्लेख तो हाल की माहा–सत्तसई में भी मिलते हैं। लोकगीत समय के साथ चलते हैं। समय और स्थान के अनुसार उनमें नाम और शब्द बदलते जाते हैं, गीत वही रहता है, धुन वही रहती है। इस प्रकार परंपरागत अनजाने काल में निर्मित वे धुनें कण्ठ–कण्ठ से यात्रा करती हुई आज तक आ पहुंची हैं। उन गीतों में भजन हैं, प्रकृति के गीत हैं, जन्मपूर्व से मृत्यु तक के संस्कार गीत हैं। उन गीतों में वैवाहिक गीतों की प्रधानता है। ऐसे असंख्य गीत महिलाओं के कण्ठ गुनगुनाते रहते हैं। उन गीतों में स्थान, जाति एवं समुदाय के अनुसार स्वराघात या पारिवारिक विशेषता के कारण हल्के–फुल्के पाठांतर चाहे मिल जाएं लेकिन मूल स्वर सबका एक ही रहता है। लोक साहित्य श्रुति साहित्य है।

अध्ययन की सुविधा और रचना प्रवृत्ति की दृष्टि से मालवी काव्य धारा का ऐतिहासिक दृष्टि से दो भागों में विभाजन किया गया है– 1. प्राचीन काल 2. आधुनिक काल।

1. प्राचीन काल : आधुनिक भारतीय भाषाओं का स्थूल रूप से आरंभ काल प्रायः इस द्वितीय सहस्त्राब्दी अथवा दसवीं–ग्यारहवीं सदी से माना जाता है। उसी प्रकार मालवी साहित्य के इतिहास का आरंभ भी दसवीं सदी के अंतिम चरण से ही माना जा सकता है। दसवीं सदी के अंतिम चरण में मालवा पर कवि एवं कविमित्र राजा मुंज का शासन था। राजा मुंज के आश्रित धनपाल के कुछ दोहों में मालवीपन प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ–

इकु सावण इकु भद्दवे जत्थवि तत्थवी नीर।
जेठ कलोला जे करै ते सर सहजि गंभीर।।

राजा मुंज और मृणालिका के प्रेमगीत दोहों में प्राप्त होते हैं। परमारकालीन राउलवेल काव्य की रचना रोड़ा ने की थी। शिलांकित यह ललित काव्य श्रृंगारप्रधान है। धार से मिले इस काव्य में सात नायिकाओं में से एक मालवा की है। उसका वर्णन तत्कालीन मालवी में ही किया गया है। यह देशी भाषा का पहला काव्य है।

प्रायः इसी समय रामानंद के कबीर, पीपा आदि बारह शिष्यों की रचनाओं, गीतों तथा भजनों ने समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किया। कबीर ने मालवा की प्रशंसा में कहा–

देस मालवा गहन गभीर।
डग–डग रोटी पग–पग नीर।।

मध्ययुगीन जैन प्रबंधों में मालवीनुमा प्रचुर साहित्य पाया जा सकता है। कबीर के छाप के मालवी गीत मालवा के गांव–गांव में इकतारे पर गाए जाते हैं।

संत पीपा–रामानंद का ही एक और शिष्य और कबीर का समकालीन संत पीपा झालावाड़ के निकट गागरोन का राजा था। गागरोन मालवा का ही एक भाग रहा। वहां सोंधवाड़ी मालवी बोली जाती है। अकबर के समय भी गागरोन को मालवा में ही माना जाता था। संत पीपा की वाणी यों तो सधुक्कड़ी हिंदी है परंतु वह मालवी बहुल है। स्वभावतः उनकी भाषा अपनी मातृभाषा मालवी रही परंतु समकालीन ब्रजभाषा आदि का भी उस पर जहां–तहां पुट दिखाई देता है, जो स्वाभाविक है। कबीर ने पीपा का उल्लेख किया और पीपा ने कबीर का। अतः दोनों का परस्पर प्रेम एवं आदर रहा है। पीपा के विकीर्ण दोहे और पद प्राप्त होते हैं जिनके संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। पीपा की बहुधा वाणी मालवी गर्भित या मालवी होने के कारण उसे मालवी का पहला कवि होने का गौरव दिया जाना चाहिए। पीपा की दृष्टि लोकोन्मुखी है और अभिव्यक्ति सरल भाषा में सशक्त। गुरु के प्रति कवि ने असीम आस्था प्रकट की है–

पीपा के पंजर बस्यो रामानंद को रूप।
सर्व अंधेरा मिटि गया, देख्या रतन अनूप।।

रूपमती– माण्डव के सुल्तान बाजबहादुर और रूपमती की प्रेमकथा सर्वज्ञात है। ये अकबर के समकालीन थे। रूपमती संगीत में निपुण थी और अपने स्वरचित पद गाती थी। माण्डव में इनके महलों के अवशेष प्रसिद्ध हैं। रूपमती के गीतों का अंग्रेजी रूपांतरण बहुत पहले लंदन से प्रकाशित हुआ था। रूपमती के गीतों में समकालीन ब्रजभाषा और स्थानीय मालवी का मिला–जुला रूप है। बहुधा मालवी की बहुलता भी पाई जा सकती है। इस प्रणयकथा के विषय में यह दोहा लोक प्रचलित है–

चित चंदेरी मन मालवे हियो हिड़ोती माय।
पलंग बिछाऊँ रणत भँवर में पोढूँ माँडव माय।।

रूपमती की भाषा सरल, सीधी–सादी है।

चंद्रसखी– उत्तरी मालवा में चंद्रसखी का निवास था। चंद्रसखी का समय संवत् 1700 के लगभग रहा। इससे प्रतीत होता है कि उसका अस्तित्व शाहजहां के शासनकाल में रहा होगा।

चंद्रसखी ने मालवा छोड़कर ब्रजभूमि की यात्रा की थी। इसके प्रमाण में ये पंक्तियां कही जाती हैं–

छोड़ मालवी चंद्रसखी चल गोकुल जमना तीर।
कृष्णचंद्र की मुरली सुण घटि जावे मन पीर।।

चंद्रसखी ने श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को अपने भजन का आधार बनाया है। बहुधा गीतों के अंत में कुछ टेक दिखाई देती है–

1. चंद्रसखी ब्रजबाल की सोभा

2. चंद्रसखी की विनती सुणजो,

संत सिंगाजी– सोलहवीं शती के उत्तरार्ध से सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में गवली संत सिंगाजी विवाहादि के अवसरों पर मोहक बांसुरी बजाया करते थे। उनका जन्म बड़वानी के निकट ग्राम खजूरी में हुआ था। ये कबीर से प्रभावित संत थे। इनकी वाणी निमाड़ तथा दक्षिणी मालवा में विशेष लोकप्रिय है। एक रूपक प्रस्तुत है–

प्रेम पिराणो कर धरो, ज्ञान–आर लगाव।
सोहं बक्खर जूप जो सोहं सर तो लगाव।।

नवनिधि कुँवरीजी– मंदसौर क्षेत्र की भाटखेड़ी की खांगारोत नवनिधि की अनेक पोथियां रहीं। सीपी रो दरद, मीरा रो मरम, चंद्रसखी म्हारी गोठण, गाया गाया गीत, नान्ही सी चरकली इत्यादि उनके काव्य संग्रह हैं। वे विवाह के एक पखवाड़े बाद ही विधवा हो गई थीं। उनके दोहों, गीतों, भजनों में श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण भाव सरसता पूर्ण प्रस्तुत हुआ है।

करूँ विनय कर जोड़ सुणो श्याम मानो सही।
कुबजा को कर छोड़ इण दासी ढिग आवजो।।

2. आधुनिक काल– पश्चिमी प्रभाव लेकर नया युग 19वीं सदी में ही आरंभ हो गया था। मालवी भी उससे अछूती नहीं रही। 19वीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभ की संधिबेला में यह रचना प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

नए युग की प्रवृत्ति और प्रगति को रेखांकित करते हुए जीवाजी नाथूलाल ने कई रचनाएं कीं। उनके 'ख्याल कलयुग' भाग 1 से भाग 8 तक मिलते हैं। उनकी लिखी अन्य कई रचनाएं भी प्राप्त होती हैं। ये यों तो ख्याल है परंतु उनमें नए युग की भी झांकी पाई जा सकती है। वे पुस्तकें –ख्याल नकटा का प्रंसग, ख्याल केसर– कस्तूरी, ख्याल मामी भाणजे का इत्यादि। 1894 ईसवीं में इनकी पुस्तकें नीमच में छपने लग गई थीं। विवाहादि अवसरों पर गाली गाती नारियों पर टिप्पणी करता कवि कहता है–

मन माने जूँ बके लुगायाँ कर मन में प्रीत।
माँडा सादी वार तेवराँ गावे खोटा गीत।।

पन्नालाल शर्मा नायाब का जन्म 6 जनवरी, 1885 को और 16 मार्च, 1976 को अवसान हुआ। धार जिले के बदनावर में चौथी कक्षा के बाद शिक्षा व्यवस्था ना होने से वहीं पाठशाला में नायब मुदर्रिस हो गए। इसीलिए वे नायाब ही कहलाने लगे। 1912–1913 में उनके नाटक "मास्टर साहब की अनोखी छटा" का प्रकाशन हुआ। "भारत में फू और थू" भी इसी समय छपी जो तमाखू सेवन के विरोध में रही। नौकरी का चस्का, खटमल बत्तीसी, दुष्ट पच्चीसी आदि कई पुस्तकें रचीं।

इंदौर के आनंदराव दुबे ने स्वतंत्रता से पूर्व ही मालवी में कई मनोहर गीत रचे। उनका काव्य संग्रह "गीत फिर गायो" प्रसिद्ध है। दुबे की कविता "रामाजी रई गया ने रेल जाती री" कहावत ही बन गई है। सर्वजन सुखाय की भावना कवि ने व्यक्त की है।

स्वातंत्र्योत्तर कवियों में गिरवर सिंह भंवर अग्रणी हैं। 'केसरिया फाग' उनका काव्य संकलन है। 1952 तक मालवी में कतिपय कवि प्रतिभाएं चमकने लगी थीं। पं.सूर्य नारायण व्यास के प्रयास से उन्हें एकत्र कर उज्जैन के कार्तिक मेले में मालवी कवि सम्मेलन का अवसर दिया गया। इन कवियों में आनंदराव दुबे, गिरवरसिंह भंवर, मदनमोहन व्यास, हरीश निगम आदि प्रमुख थे। कवि सम्मेलनों ने मालवी में रचने के लिए नए–नए कवियों को प्रोत्साहित किया।

इसी युग के मदनमोहन व्यास की 'मालवा की जातरा' प्रकाशन के साथ ही दुर्लभ हो गई। बालकवि बैरागी ने राजनीति और साहित्य को एक साथ साधा है। 'चटक म्हारा चंपा' और 'अइ जाव मैदान' में बैरागी के मौलिक काव्य संकलन हैं। बादल का यह रूप किसके मन ना भाए?

वहीं नरेंद्रसिंह तोमर की कविताएं राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूर्ण हैं। उनका संकलन 'पगडंडी' प्रकाशित है। नरहरि पटेल,जुगल किशोर द्विवेदी, शिव उपाध्याय, पूनम चंद सोनी, सिद्धेश्वर सेन, भावसार बा, जगन्नाथ विश्व, मोहन सोनी और शिव चौरसिया के विभिन्न शैलियों के अनेक काव्य संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त कई अन्य कविगण मालवी साहित्य को समद्ध करते रहे और कर रहे हैं।

4.2.4 मालवी भाषा का सीमा–क्षेत्र

मालवा भारत का हृदय अंचल है। आज का मालवा संपूर्ण पश्चिमी मध्य प्रदेश और उसके साथ सीमावर्ती पूर्वी राजस्थान के कुछ जिलों तक विस्तार लिए हुए है। इसकी सीमा रेखा के संबंध में एक पारंपरिक दोहा प्रचलित है, जिसके अनुसार चंबल, बेतवा और नर्मदा नदियों से घिरे भू–भाग को मालवा की सीमा मानना चाहिए–

इत चम्बल उत बेतवा मालव सीम सुजान।
दक्षिण दिसि है नर्मदा यह पूरी पहचान।।

मालवा के निकटवर्ती अंचलों में मेवाड़, हाड़ौती, भीलांचल, गुजरात, महाराष्ट्र, निमाड़ और बुंदेलखंड इन्द्रधनुष की तरह अपने–अपने रंग मालवा में बिखेरते आ रहे हैं। इन सभी की मिठास और ऐश्वर्य को मालवा ने अपने अंदर समाया है, वहीं इन सभी को अपने जीवन रस से सींचा भी है। "वसुधैव कुटुंबकम" की बात को मालवा और मालवी ने अपने ढंग से सिद्ध किया है। आज मालवा क्षेत्र मध्य प्रदेश और राजस्थान के लगभग 20 जिलों में विस्तार लिए हुए हैं। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं। वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्य प्रदेश के उज्जैन संभाग के नीमच, मंदसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इंदौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इंदौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहो,राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खंडवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्य प्रदेश के कुछ जिलों में

मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित है। इन जिलों में हरदा, होशंगाबाद, बैतूल, छिंदवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं। मालवा विंध्य पर्वत श्रेणी के उत्तर में फैला एक विस्तृत पठार है, जिसकी ऊंचाई, समुद्रतल से लगभग 450 मीटर है। मध्य प्रदेश के पश्चिम–मध्य भाग के साथ ही राजस्थान के दक्षिण एवं पूर्वी भाग में मालवा के पठार का विस्तार है। भौगोलिक दृष्टि से इसका विस्तार 23°:30'–24°–30' अक्षांश उत्तर तथा 74°–24' से 78°–25' पूर्व देशांतर के मध्य है। शताब्दी–दर–शताब्दी भूगोल तो अपरिवर्तित रहा है, किंतु सांस्कृतिक– राजनीतिक दृष्टि से इसकी सीमाएं विस्तृत–संकुचित होती रही हैं। मालवा वस्तुतः सतपुड़ा से उत्तर से लेकर विंध्य और अरावली पर्वत–श्रेणियों की सीमाओं को छूता है। इसकी श्यामल धरा को नर्मदा, चंबल, माही, अनास, पार्वती, बेतवा, नेवज, बड़ी कालीसिंध, छोटी कालीसिंध, आहू, क्षिप्रा, गंभीर, चामला, गांगी, शिवना, रेतम, गंभीरी, ईडर आदि नदियां सींचती हैं। यह क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से कई उपांचलों को समेटे है, जैसे उमठवाड़, सोंधवाड़, दशपुर, रजवाड़ी, भीली आदि। निमाड़ का मालवा से निकट संबंध है। प्राचीन काल में यह अनूप कहलाता था। यही बाद में निमाड़ कहलाने लगा। नर्मदा के उत्तर का भाग यदि मालवा कहलाता है तो उसके दक्षिण का भाग निमाड़। 'निमाड़' शब्द की व्युत्पत्ति के आधार में निहित नर्मदापुर, नमावूर, नेमावर, निमाड़ जैसे शब्द परस्पर संबद्ध हैं। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से मालवी और निमाड़ी का गहरा संबंध है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. मालवी भारत के किस क्षेत्र की भाषा है?
   (क) बुंदेलखंड (ख) मालवा
   (ग) गुजरात (घ) इनमें से कोई नहीं
2. निम्न में से मालवी की उपबोली कौन–सी है?
   (क) सोंधवाड़ी (ख) रजवाड़ी
   (ग) उमठवाड़ी (घ) ये सभी

4.3 मालवी भाषा के कवियों का परिचय, रचनाओं का मूलपाठ एवं व्याख्या

मालवी भाषा के अंतर्गत कवि संत पीपा, आनंदराव दुबे, हरीश निगम, बालकवि बैरागी और नरहरि पटेल के साहित्यिक जीवन परिचय एवं उनकी रचनाओं के मूल पाठ व व्याख्या को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है।

4.3.1 सन्त पीपा

पीपा प्रतापराव खीची राजपूत थे। पीपा जी के जन्मकाल के संबंध में विद्वानों में मतभेद रहा है। एलेक्जेंडर कनिंघम के अनुसार सन 1360 और 1385 ई. के मध्य तथा परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, सन 1408 और 1418 के मध्य माना जाता है। पीपा जी संत कबीर के समकालीन माने जाते हैं इस दृष्टि से उनका जन्मकाल 1360 एवं 1385 के मध्य उपयुक्त प्रतीत होता है। मालवा का गागरोन उनके राज्य की राजधानी था। पीपा का

शासनकाल 14वीं सदी के अंतिम चरण से 15वीं शती के आरम्भ तक माना जाता है। पीपा की 12 या 20 रानियों में सबसे छोटी रानी पद्मावती भी राजसी परिधान त्यागकर पति के साथ सन्त बन गई थी। इसलिए वह सीता सहचरी कहलाई। पीपा रामानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य थे। कबीर आदि उनके 12 शिष्य थे, उनमें से पीपा भी एक शिष्य रहे थे। पीपा पंथी समाज उनका महाप्रयाण वि.सं. 1441 (1384 ई.) की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को मानता है।

कबीर ने पीपा का और पीपा ने कबीर का स्मरण किया है। इससे स्पष्ट है कि वे परस्पर समकालीन और स्नेही थे। पीपा की तपोभूमि के अवशेष गागरोन में सिन्ध नदी के तट पर आज भी देखे जा सकते हैं। गागरोन आज राजस्थान के झालावाड़ जिले में है, परन्तु परम्परागत रूप से यह मालवा का ही क्षेत्र रहा है और यहां की व्यावहारिक भाषा मालवी ही रही है। यही कारण है कि पीपा की वाणी में, उनके दोहों या पदों में मालवी भी बहुलता है। स्थानीयता का प्रभाव होना स्वाभाविक है। यही नहीं, उनका बहुलांश तो मालवी ही है।

काव्य विषय – सन्तों की भावना और परम्परा के अनुरूप पीपा ने गुरु महिमा के साथ ही सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों और आचरण के दोषों पर सटीक टिप्पणियां की हैं। कई स्थानों पर कबीर जैसी भावना और भाषा भी व्यक्त हुई है। इससे प्रतीत होता है कि रामानन्द के सभी शिष्यों की सोच और उसे प्रकट करने का तरीका प्रायः एक जैसा था।

साहित्यिक प्रभाव – पीपा की भाषा अपने युग में प्रचलित सन्तों की भाषा जैसी होने पर भी स्थानीय मालवीपन से कुछ अधिक ही प्रभावित है। यही नहीं उनके साहित्य का प्रायः आधा भाव तो शुद्ध मालवी का ही साहित्य कहा जा सकता है। अतः एक ओर पीपा मालवा की हिंदी कवि–परम्परा के मध्ययुगीन महत्वपूर्ण कवि हैं, वहीं प्राचीन मालवी कवियों में वे अग्रणी और महत्वपूर्ण कवि हैं। मालवी काव्य परम्परा उनके स्मरण के बिना पूर्ण नहीं कही जा सकती।

रचनाओं का मूलपाठ

1. पीपा वाणी

पीपा के पंजर बस्यो, रामानन्द को रूप।
सर्व अंधेरा मिटि गया, देख्या रतन अनूप।।
लोहा पलट कंचन भया, सतगुरू रामानन्द।
पीपो पदरज दे सदा, मिट्या जगत का फन्द।।

सगुण मीठो खाँड सो, निरगुण कड़वो नीम।
पीपा गुरू जो पुरस दे, निरभय होकर जीम।।
हाथ दिये सत् कर्म कूँ, जिव्हा सिमरन नाम।
सतगुरू रे साथे चले, पीपा आठहुँ याम।।

राम नाम लिया जाणिया, पकड़ गुरू की धार।
पीपा पल में परसिया, खुल गयो मुक्ति द्वार।।
जीव मार जीमण करे, खाता करे बखाण।
पीपा परतख देखले, थाली माय मसाण।।

छिमा दया हिवड़े नहीं, कही न साँची कूत।
पीपा जे जिव पीड़ते, ते पशु शूद्र अछूत।।
पीपा जिनके मन कपट, तन पर उजलो भेष।
तिन को मुख कालो करो, संत जना को लेख।।

उठ भाग्यो वाराणसी, न्हायो गंग हजार।
पीपा वे जन उत्तमा (जिणा), राम कयो इक बार।।
पग थोऊ उण देव का जो घाले गुरू घाट।
पीपा तिनकूँ ने गिणू जिनके पठ और ठाट।।

पीपा सिगरे जगत कूँ काढ़े सबरो बाँक।
पेख्या पलक उधाड़के अपने अन्दर झाँक।।
पीपा मणको काउ को, बीच पिरोणे सूत।
सुमिरिणि निरदोसणी, फेरणहार कपूत।।

आज धूप में छाँव है, काल छाँव में धूप।
पीपा पल्ट्यो ही करे, रंग रूप अरू भूप।।
पांच तत्वा को पूतलो, करतो घणा घमण्ड।
पीपा साँच न सँवरे, पठयो रे विण्ड।।

पीपा जीवणो कठिन है, मन की माने आन।
सतगुरू सो परचो नहीं, कलयुग छायो कान।।
नंगू तो गुरू अर राम कूँ, भव इतराते पार।
पीपा नमे न आन कूँ, सु वारथ रो संसार।।

पेला गुरू कूँ परख लूँ, पाछे पूजूँ जाय।
पीपो काचो खेवटो, उलटे सबरी नाव।।
उण उजियारे दीप री, सब जग फेली जोत।
पीपा अन्तर नेन सो, मन उजियारो होत।।

जिण रो रूप न संग अंग, करण मरण अर जीव।
रंग बास बन ज्यो रमे, अस पीपे को पीव।।
जिन सुत को माता पिता, करे भलो उपदेस।
पीपा एकल राम बिनु, मिटे न जन रो कलेस।।

पीपा राम दुवार में, कभी वस्तु की नाँहि।
बिना भजन पावे नहीं, चूक भवन के नाँहि।।
पीपा देर न कीजिए, भज लीजे हरि नाम।
कुण जाणे क्या होवसी, छुट जावेंगे प्रान।।

पीपा डूवण न डर्या, करी समंदर गोत।
तिण मोती पायो इसो, अन्दर बाही जोत।।
पीपा पियालो प्रेम रो, पीपी नाहि अघाय।
पियो पिमालो प्रेम रो, मुकति रही ठगाय।।

पिव राख्या सूँ जग गये, जगत रम्याँ पिव जाय।
पीपा मिंदर प्रेम रो, उणमाँ एकल आय।।
पीपा भजता राम ने, बस तेरस अर तीज।
भूमि पड़ा ही ऊगसी उल्टो–पल्टो बीज।।

साँच मंत्र तो राम ओर, सभी कुछ कूड़ई।
पीपा वेद पुराण पढ़, क्यों बन्यो रहे मूडई।।
तन मन धन अर्पण करे, साथ जनो के काज।
पीपा जीणों परहिते अर, मरणो पर के काज।।

ब्रह्म जगत ओर जीव में, भेद न जाण्यो काय।
पीपा राम मिलियाँ पछो, सगलो भरम नसाय।।
पीपा मन पंछी भया, जहाँ तहाँ उड़ जाय।
जाँह जेसी संगत करे, ताँह तेसा फल पाय।।

2. पीपा के पद

माधव नट विद्या मोडी सब जग मेल्या ममता बाँधी।
ना कोई पुरूष ना कोई नारी, ना कोई दांता न कोई भिखारी।।
ना कोई राव नहीं कोई राणा, लघु दीरघ झूठा कर जाणा।
प्रनवत पीपा सब जग देखा, बाजीगर घर भीतर पेख्या।।

देव भ्रमत तेरे सरने आया।
सुनाई बिने पिंजर राखिले रमईया रामा।
लोह से साँकल पाई टूटे तो घण ते छाई।
मोह को साँकल केसे टूटे हो रमइया राई।।
देखी विद्या देखा दान देखी काया का तम मन।
साधु संगति बिन मेरे कही न माने मन।
देख्यो पुण्य देख्यो पाए, सकल जग देख्यो सन्ताप।
प्रणवति पीपा नरहरि उद्धारि ले आपो आप।।

राम तेरा भूखा भक्ति न होई।
भोजन बिना पखावज बाजे तो नाद न रीझे कोई।
आठ अबारी आठ सवारी सोलह दे गोपाला।
इतना माँही एक घटावे तो या ले तेरी जपमाला।
लावन लाडू सेव सुहाली लापसड़ी पांच धरी।
इतना दीज्यों देव दया करि तो होती भक्ति थारी।
रोटी बिन न रंग रहे माधो पाखंड लोग पतीजे।
पीपो कहे सुन अन्तरिजामि भक्ति अखंड मोहि दीजे।।

इण घर अन्दर बाग बगीचा इण से सिरजन हारा रे।
इण घर अन्दर सात समन्दर इण में नव लख तारा रे।।
इण पर अन्दर अणहद गूँजे इण में सब संसारा रे।
पीपा के तो घणो भरोसो इण भज साँई म्हारा रे।।

टिप्पणी

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

पीपा वाणी

(1) पीपा के पंजर बस्यो, रामानन्द को रूप।
सर्व अंधेरा मिटि गया, देख्या रतन अनूप।।
लोहा पलट कंचन भया, सतगुरू रामानन्द।
पीपो पदरज दे सदा, मिट्या जगत का फन्द।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहे 'पीपा वाणी' शीर्षक से संगृहीत हैं। इनमें सन्त पीपा ने गुरु का महत्व बतलाया है।

व्याख्या– सन्त पीपाजी अपने गुरु रामानन्द का महत्व बतलाते हुए कहते हैं कि पीपा के इस शरीररूपी पिंजरे में गुरु रामानन्द का स्वरूप हो गया है। जब उनकी अद्‌भुत रतन ज्योति देखी तो हृदय का सारा अन्धकार समाप्त हो गया। सच्चे गुरु रामानन्दजी के प्रभाव से लोहा भी सोने में बदल गया। उन सच्चे गुरु के चरणों की धूल के स्पर्श से संसार के सारे माया–मोह के बन्धन समाप्त हो गए।

विशेष– सन्त रामानन्द के चरणों की धूल के स्पर्श मात्र से सांसारिक सभी बन्धनों से छुटकारा मिल गया।

(2) सगुण मीठो खाँड सो, निरगुण कड़वो नीम।
पीपा गुरू जो पुरस दे, निरभय होकर जीम।।
हाथ दिये सत् कर्म कूँ, जिव्हा सिमरन नाम।
सतगुरू रे साथे चले, पीपा आठहुँ याम।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में निर्गुण और सगुण पूजा पर कवि ने अपने विचार तथा गुरु के साथ सत्संग की महिमा उजागर की है।

व्याख्या– सन्त कवि पीपा कहते हैं कि सगुण ईश्वर तो मीठी खांड के समान लगता है और निर्गुण ईश की आराधना कडुवे नीम के समान लगती है। पीपा कहते हैं कि सद्‌गुरु जिसे स्पर्श कर दे, भक्त को उसी का निर्भय होकर जीभ से नाम रटना चाहिए। ईश्वर ने हमें जो हाथ दिए हैं, वे अच्छे कर्म करने को दिए हैं और जीभ ईश स्मरण (भजन) करने के लिए दी है। सद्‌गुरु के साथ आठों याम (सभी समय) चलना चाहिए।

विशेष– निर्गुण की कठिनता और सगुण की सरलता बतलाते हुए कवि ने कहा कि शरीर के विभिन्न अंग परोपकार के लिए दिए हैं। यही सद्‌गुरु की महिमा है जिन्होंने ऐसा उत्तम ज्ञान प्रदान किया है।

(3) राम नाम लिया जाणिया, पकड़ गुरू की धार।
पीपा पल में परसिया, खुल गयो मुक्ति द्वार।।
जीव मार जीमण करे, खाता करे बखाण।
पीपा परतख देखले, थाली माय मसाण।।

सन्दर्भ– पीपा ने गुरु की महिमा एवं दूसरों के सुख–चैन से कभी ईर्ष्या न करने की सीख दी है।

व्याख्या– कवि पीपा कहते हैं कि गुरु के उपदेश को सुनकर 'राम' नाम का प्रताप जान लो। क्षणमात्र में गुरु के स्पर्श से सम्पूर्ण मुक्ति के द्वार खुल जाएंगे। मानव जीव को दूसरे के भोजन को देखकर कभी ललचाना नहीं चाहिए। दूसरे की थाली के भोजन को श्मशान (मरघट) के समान समझें।

विशेष– गुरु के उपदेश और रामनाम के स्मरण से मनुष्य के लिए मुक्ति के सभी द्वार खुल जाते हैं। दूसरे को खाता–पीता देखकर कभी ईर्ष्या नहीं बल्कि दूसरे की थाली के भोजन को मरघट के समान समझना चाहिए।

(4) छिमा दया हिवड़े नहीं, कही न साँची कूत।

पीपा जे जिव पीड़ते, ते पशु शूद्र अछूत।।

पीपा जिनके मन कपट, तन पर उजलो भेष।

तिन को मुख कालो करो, संत जना को लेख।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में कवि ने क्षमा का महत्व और कपटी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए? यह लोगों को बतलाया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि जिसके ह्रदय में क्षमा और दया नहीं है और न ही वह सत्यता का अनुमान लगा पाया है। जिस जीव से मनुष्य को पीड़ा (कष्ट) हो, उसे पशु, शूद्र और अछूत समझना चाहिए। आगे कवि कहता है कि जिन लोगों के मन में कपट हो और शरीर पर साफ वेश हो, उनके लिए सन्तों का यही कहना है कि ऐसे नीच लोगों का मुंह काला कर देना चाहिए अर्थात् उनका कपट सबके सामने प्रत्यक्ष कर देना चाहिए।

विशेष– सन्त पीपा कहते हैं कि जिनके ह्रदय में दया, क्षमा और सत्यता नहीं है बल्कि औरों को कष्ट देने वाले हों, उन्हें पशु, शूद्र और अछूत समझना चाहिए। कपटी और सफेद वेश धारण करने वालों की पोल खोल देना चाहिए। ऐसा सन्तों का कथन है।

(5) उठ भाग्यो वाराणसी, न्हायो गंग हजार।

पीपा वे जन उत्तमा (जिणा), राम कयो इक बार।।

पग थोऊ उण देव का जो घाले गुरू घाट।

पीपा तिनकूँ ने गिणू जिनके पठ और ठाट।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में राम नाम की महिमा तथा सच्चे गुरु का आदर करने की बात कही गई है।

व्याख्या– सन्त पीपा कहते हैं कि उठकर बनारस चले जाओ और हजारों बार गंगा स्नान करो। ऐसे लोगों से वे लोग श्रेष्ठ हैं जिन्होंने एक बार भी राम का नाम लिया हो। ऐसे देव के मैं पैर धोता हूं जो सच्चे गुरु से भेंट करा दे। जिनके मन्दिर और ठाट–बाट हैं, ऐसे लोगों को सच्चा भक्त पूछता भी नहीं है।

विशेष– राम नाम जपने और सच्चे गुरु से भेंट करने का महत्व समझाया गया है।

(6) पीपा सिगरे जगत कूँ काढ़े सबरो बाँक।

पेख्या पलक उधाड़के अपने अन्दर झाँक।।

पीपा मणको काउ को, बीच पिरोणे सूत।

सुमिरिणि निरदोसणी, फेरणहार कपूत।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में सन्त ने ईश–स्थान और कपूत के संबंध में बतलाया है।

व्याख्या– पीपा कहते हैं कि आप चाहे सारी दुनिया को छान डालो और सर्वत्र देखते फिरो तो ईश–दर्शन दुर्लभ हैं। लेकिन जब तुम आंखें खोलकर अपने हृदय में अन्दर झांकोगे तो तुमको ईश–दर्शन हो जाएंगे। काठ के दानों को सूत के धागे में पिरोकर माला बना लो और दोषरहित मन से जाप करो। जो व्यर्थ फेरता हो उसे कपूत समझना चाहिए।

विशेष– ईश–दर्शन हृदय के अन्दर देखने से होते हैं। दोषरहित मन से माला फेरना उचित है।

(7) आज धूप में छाँव है, काल छाँव में धूप।

पीपा पल्ट्यो ही करे, रंग रूप अरू भूप।।

पांच तत्वा को पूतलो, करतो घणा घमण्ड।

पीपा साँच न सँवरे, पठयो रे विण्ड।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में रंग, रूप और भूप सब कुछ परिवर्तनशील हैं। यह शरीर पांच तत्वों से बना है। इसका घमण्ड नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके नष्ट हो जाने से यह पिण्ड पड़ा रह जाएगा।

व्याख्या– कवि कहता है कि आज जहां धूप है और छाया है, वहीं कल छाया और धूप होती है। समय के परिवर्तन के साथ–साथ रंग, रूप और राजा बदलते रहते हैं। यह शरीर पांच तत्वों का बना हुआ पुतला है। फिर काहे को घमण्ड करता है। सत्य अगर चला जाता है तो पिण्ड (शरीर) पड़ा रह जाता है।

विशेष– संसार की परिवर्तनशीलता के कारण राजा, रूप और रंग बदलते रहते हैं। पांच तत्व हैं –

छिति, जल, आकज, अग्नि, समीरा।

पंच भूत मिल बना अधम शरीरा।।

पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु से मिलकर शरीर बना है। जब इसमें से ईश्वर अंश (आत्मा) निकल जाता है, तो यह पिण्ड बेकार पड़ा रहता है।

(8) पीपा जीवणो कठिन है, मन की माने आन।

सतगुरू सो परचो नहीं, कलयुग छायो कान।।

नंगू तो गुरू अर राम कूँ, भव इतराते पार।

पीपा नमे न आन कूँ, सु वारथ रो संसार।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में मन की बात मानने से जीवन कठिन है। सतगुरु के बिना कलयुग छाया रहता है। गुरु को नमस्कार, राम को याद करके भवसागर को पार कर जाएंगे। संसार स्वार्थी है, दूसरों को नमन नहीं करना चाहिए।

व्याख्या– कवि पीपा कहते हैं कि मन की मनमानी करने से जीवन कठिन नहीं होता है। यदि सतगुरु से परिचय नहीं हुआ तो कलियुग आकर छा जाता है। यदि नमन करना पड़े तो सतगुरु और राम को करना चाहिए। इन्हीं के सहारे भवसागर से पार हो सकते हैं। किसी और को नमन नहीं करना चाहिए क्योंकि संसार के सब लोग स्वार्थी हैं।

विशेष– कलियुग को पार करने के लिए मन को नियंत्रण में रखना चाहिए। बिना सद्गुरु के कलियुग से छुटकारा नहीं हो सकता है। भवसागर से पार होने के लिए सद्गुरु और राम नाम का स्मरण करना चाहिए, लेकिन किसी दूसरे को याद नहीं करना चाहिए क्योंकि सारा संसार स्वार्थी है।

(9) पेला गुरू कूँ परख लूँ, पाछे पूजूँ जाय।

पीपो काचो खेवटो, उलटे सबरी नाव।।

उण उजियारे दीप री, सब जग फेली जोत।

पीपा अन्तर नेन सो, मन उजियारो होत।।

सन्दर्भ– इन दोहों में कवि ने बतलाया कि संसार सागर को पार करने के लिए सच्चे गुरु का वरण करना चाहिए। दीपक से जैसे चारों ओर उजाला फैल जाता है, उसी प्रकार हृदय की आंखों से मन में ईश्वर का प्रकाश हो जाता है।

व्याख्या– पीपा कहते हैं कि गुरु को सोच–समझकर पूजना चाहिए। यदि कच्चा मल्लाह हो तो वह उल्टी नाव चलाकर भवसागर में डुबा देता है। जिस प्रकार दीपक जलाने से सारे संसार में प्रकाश छा जाता है, उसी प्रकार यदि हृदय की आंखें खोलकर देखो, तो मन में अद्भुत उजाला छा जाता है।

विशेष– गुरु सोच–समझकर बनाना चाहिए, नहीं तो वह भवसागर में गिरा देता है। दीपक से जलकर उजाला होता है तो मन की आंखों से ईश्वर के दर्शन किए जा सकते हैं। कहा भी गया है–

मन की आँखें खोल बाबा मन की आँखें खोल।

क्षणभर में तोय प्रिया मिलेंगे, मन की आँखें खोल।।

अथवा

पानी पीवे छानकर, गुरु कीजै जानकर।

(10) जिण रो रूप न संग अंग, करण मरण अर जीव।

रंग बास बन ज्यो रमे, अस पीपे को पीव।।

जिन सुत को माता पिता, करे भलो उपदेस।

पीपा एकल राम बिनु, मिटे न जन रो कलेस।।

सन्दर्भ– कवि कहते हैं कि जीव के मरते समय रूप एवं अंग कोई भी साथ नहीं देता है। सुगन्ध बनकर के रंग जैसा रमता है, उसी प्रकार प्रीतम मिलते हैं। माता–पिता पुत्र को अच्छा उपदेश देते हैं लेकिन मनुष्य का क्लेश बिना राम के स्मरण से दूर नहीं होता है।

व्याख्या– पीपा कहते हैं कि जीव के मरने के साथ उनका रूप और अंग साथ नहीं देते हैं बल्कि समाप्त हो जाते हैं। रंग के साथ ही सुगन्ध जैसे मिल जाती है, उसी प्रकार प्रीतम मिल जाते हैं। पुत्र को माता–पिता श्रेष्ठ उपदेश देते हैं लेकिन राम के बिना कोई क्लेश दूर नहीं होता है।

विशेष– तुलसीदास ने भी कहा है–

राम भजन बिनु सुनहुँ खगेसा।

मिटिहै न जीवन करे कलेसा।।

(11) पीपा राम दुवार में, कभी वस्तु की नाँहि।

बिना भजन पावे नहीं, चूक भवन के नाँहि।।

पीपा देर न कीजिए, भज लीजे हरि नाम।

कुण जाणे क्या होवसी, छुट जावेंगे प्रान।।

सन्दर्भ– इन दोहों में कवि ने कहा कि ईश्वर की सभी वस्तुएं हैं। अतः राम नाम का स्मरण करो, जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं है।

व्याख्या– पीपा कहते हैं कि राम के द्वार पर किसी वस्तु का अभाव नहीं है। परन्तु बिना राम भजन के वह मिलती नहीं है। अतः राम के भजन में चूक अथवा भूल नहीं करनी चाहिए। इसलिए बिना विलम्ब किए अति शीघ्र राम भजन प्रारम्भ कर देना चाहिए, क्योंकि जीवन का कुछ भी पता नहीं है कि न जाने कब प्राण निकल जाएं।

विशेष– जीवन क्षणभंगुर है, इसका कोई पता नहीं है कि कब मृत्यु आ जाए। अतः शीघ्र रामभजन करो, क्योंकि राम के द्वार पर किसी चीज का अभाव नहीं है।

(12) पीपा डूवण न डर्या, करी समंदर गोत।

तिण मोती पायो इसो, अन्दर बाही जोत।।

पीपा पियालो प्रेम रो, पीपी नाहि अघाय।

पियो पिमालो प्रेम रो, मुकति रही ठगाय।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहों में सन्तजी कहते हैं कि जो डूबने से डर गया, उसे कुछ नहीं मिलता है, लेकिन जो समुद्र में नीचे तक डूब जाता है, उसे ईश्वर दर्शनरूपी मोती मिलते हैं। जो सर्वत्र अपना प्रकाश फैलाते हैं। प्रेम का प्याला जी भरकर पीने से मुक्ति मिल जाती है, अन्यथा वह ठगती रहती है।

व्याख्या– सन्त पीपा कहते हैं कि व्यक्ति समुद्र में गहरा डूबने से डरता नहीं है। उसे मोती प्राप्त होता है जिसमें चमक होती है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने जीवन संग्राम में डूबता नहीं है अर्थात् भजन में तल्लीन नहीं होता है, उसे राम नाम का मोती मिलता नहीं है। यानी जीवन–ज्योति जागती नहीं है। प्रेम का प्याला पीते–पीते मन नहीं भरता है लेकिन जिसने यह प्याला प्रेम से पी लिया उसे मुक्ति शीघ्र मिलती है।

विशेष– रामानन्द के बारह शिष्य थे, जिनके विचार प्रायः बहुत कुछ मिलते–जुलते हैं। कबीर का उदाहरण देखिए –

मैं बौरा डूबन डरा रहा किनारे पैठ।

– – – – – – – – – – – – – – – – – –

कविता प्याला प्रेम का पियो सो अघाय।।

(13) पिव राख्या सूँ जग गये, जगत रम्याँ पिव जाय।

पीपा मिंदर प्रेम रो, उणमाँ एकल आय।।

पीपा भजता राम ने, बस तेरस अर तीज।

भूमि पड़ा ही ऊगसी उल्टो–पल्टो बीज।।

सन्दर्भ– कवि बतलाता है कि जिसने प्रीतम से प्यार किया, उसे चैतन्य प्रीतम (ईश्वर) मिल गए, लेकिन जो सांसारिक प्रपंचों में फंसा रहा, उसे ईश्वर–दर्शन दुर्लभ होते हैं।

प्रेम से ईश्वर की प्राप्ति होती है। पीपा सन्त तो सब त्योहारों को छोड़कर एकमात्र ईश का स्मरण करता है, उसे ही राम प्राप्त होते हैं जैसे राम का नाम रूपी बीज उल्टा पड़ने या सीधा पड़ने से उगता ही है।

व्याख्या– जिसने श्रीराम से प्रेम किया, उसे राम मिल गए, लेकिन जिसने संसार से प्रेम किया उससे श्रीराम बहुत दूर चले गए। जिसने प्रेम से एकमात्र राम स्मरण रूपी प्याला पिया, उसे राम मिल गए। जो बीज भूमि उल्टा–सीधा पड़ा हो, वह अवश्य उगता है, उसी प्रकार राम का नाम अपने हृदय में विचार कर देख लो, उसे श्रीराम के दर्शन अवश्य हो जाते हैं।

(14) साँच मंत्र तो राम ओर, सभी कुछ कूड़ई।

पीपा वेद पुराण पढ़, क्यों बन्यो रहे मूडई।।

तन मन धन अर्पण करे, साथ जनो के काज।

पीपा जीणों परहिते अर, मरणो पर के काज।।

सन्दर्भ– इन दोहों में बतलाया गया है कि रामनाम ही एक सच्चा मंत्र और वेद–पुराणों को पढ़कर भी मनुष्य मूर्ख बना रहता है। सज्जन लोगों के लिए तन, मन और धन अर्पण करना दूसरों के लिए तथा जीवित भी दूसरों की भलाई के लिए रहना चाहिए एवं मरना भी दूसरों के लिए होना चाहिए।

व्याख्या– सन्त पीपाजी कहते हैं कि संसार में एक मात्र सच्चा रामनाम का मंत्र है और अन्य सब तो कूड़ा–करकट है। वेद–पुराण अध्ययन करने के बाद भी मनुष्य मूर्ख बना रहता है। अतः राम मंत्र का ही जाप करना चाहिए। जो मनुष्य सज्जनों के काम के लिए अपना तन, मन और धन अर्पण कर देता है तथा जो दूसरों की भलाई के लिए जीवित रहता है और दूसरों के काम के लिए मर जाता है, वही व्यक्ति श्रेष्ठ है।

विशेष

(1) राम नाम के मंत्र पर बल दिया गया। अन्य सांसारिक पूजा–पाठ अब बेकार है। वेद एवं पुराणों के अध्ययन के बाद भी मनुष्य मूर्ख बना रहता है।

(2) जो मनुष्य सज्जनों के लिए अपना तन–मन और धन अर्पण कर देता है तथा दूसरों की भलाई के लिए जीवित रहता है, और दूसरों के काम के लिए जीवन न्योछावर कर देता है, वही मनुष्य श्रेष्ठ है।

(15) ब्रह्म जगत ओर जीव में, भेद न जाण्यो काय।

पीपा राम मिलियाँ पछो, सगलो भरम नसाय।।

पीपा मन पंछी भया, जहाँ तहाँ उड़ जाय।

जाँह जेसी संगत करे, ताँह तेसा फल पाय।।

सन्दर्भ– सन्त पीपा कहते हैं कि ब्रह्म, संसार और जीव का भेद नहीं कोई जानता है, लेकिन राम के मिलने के बाद सारे भ्रम मिट जाते हैं। मन पंछी है। वह इधर–उधर भटकता है। जैसा संग वैसा रंग होता है।

व्याख्या– ब्रह्म, संसार और जीव में क्या भेद है? इसे कोई नहीं जान पाता है। राम के मिलने पर सम्पूर्ण सांसारिक भ्रम स्वयं ही मिट जाते हैं। मन रूपी पंछी इधर–उधर

उड़ता रहता है अर्थात् मन ईश्वर–भक्ति में न लगकर सांसारिक प्रपंचों में फंसा रहता है। जहां जैसा साथ होता है, वहां वैसा ही फल मिलता है।

विशेष

(1) श्री राम का ज्ञान और दर्शन से सांसारिक सम्पूर्ण भेद समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार राम–भक्ति पर बल दिया गया है।

(2) मनरूपी पंछी जैसे इधर–उधर उड़ता फिरता है वैसे मन झूठे सांसारिक प्रपंचों में फंसा रहता है। उसे जैसा संग मिलता है, उसका वैसा प्रभाव होता है। अतः सन्त पीपा ने सत्संगति पर बल दिया है क्योंकि –

''बिना सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिना सुल मन सोई।।''

पीपा के पद

(16) माधव नट विद्या मोडी सब जग मेल्या ममता बाँधी।
ना कोई पुरूष ना कोई नारी, ना कोई दांता न कोई भिखारी।।
ना कोई राव नहीं कोई राणा, लघु दीरघ झूठा कर जाणा।
प्रनवत पीपा सब जग देखा, बाजीगर घर भीतर पेख्या।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद सन्त पीपा के शीर्षक 'पीपा के पद' से अवतरित है। इसमें पीपा ने बतलाया है कि श्रीकृष्ण नट–विद्या में बड़े चतुर हैं, उन्होंने सम्पूर्ण संसार को ममता की डोरी में बांध रखा है। इस संसार में न तो कोई नर है और न कोई नारी है। न कोई दाता है और न कोई भिखारी है तथा न तो कोई राजा और न ही कोई राव है। न कोई बड़ा और न कोई छोटा है। सारा संसार मिथ्या है। पीपा ने झुकते हुए सबको देखा है। हृदय के अन्दर वह जादूगर रहता है।

व्याख्या– प्रस्तुत पद में सन्त कवि पीपा ने बतलाया है कि माधव बड़े नटनागर हैं। उन्होंने सम्पूर्ण संसार को मिलाकर ममता की डोरी में बांध रखा है। इस संसार में कोई स्त्री–पुरूष नहीं है और न कोई दाता और भिखारी है। न कोई राव या राजा है। न कोई बड़ा और छोटा है। यह सब भेद–भाव झूठा है। सारे संसार को प्रणाम करते देखते हैं क्योंकि जो नटनागर (जादूगर) सबके हृदय में विद्यमान हैं वह सब कुछ ये लीलाएं (तमाशे) करा रहा है।

विशेष– माधव बड़े चतुर नट हैं जिन्होंने सम्पूर्ण संसार को ममता की डोरी में बांध रखा है। इस जगत में सब एक समान हैं, किसी में भेदभाव नहीं है। उस नटनागर को हृदय में झांककर देखो और प्रणाम करो।

(17) देव भ्रमत तेरे सरने आया।
सुनाई बिने पिंजर राखिले रमईया रामा।
लोह से साँकल पाई टूटे तो घण ते छाई।
मोह को साँकल केसे टूटे हो रमइया राई।।
देखी विद्या देखा दान देखी काया का तम मन।

साधु संगति बिन मेरे कही न माने मन।

देख्यो पुण्य देख्यो पाए, सकल जग देख्यो सन्ताप।

प्रणवति पीपा नरहरि उद्धारि ले आपो आप।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद में पीपा ने संसार में सबको असमर्थ पाकर नरहरि को प्रणाम करते हुए अपने उद्धार की प्रार्थना की है।

व्याख्या– सन्त पीपा कहते हैं कि देवों के भ्रम में आकर मैं सारे संसार में भटकता रहा। अब हे प्रभो! अब मैं तेरी शरण में आया हूं। सुना है कि बिना पिंजड़े राम मनुष्य रूपी पंछी को अपनी शरण में रख लेते हैं। यदि लोहे की सांकल (कुण्डी) हो तो वह बड़े हथौड़े (घन) से तोड़ी जा सकती है। इस मायामोह के बन्धन बिना श्रीराम की कृपा से कैसे तोड़े जा सकते हैं? विद्या, दान और शरीर तथा मन के अन्धकार (अज्ञान) को देखा। साधुओं की संगति के बिना मन मेरा कहना नहीं मानता है। पुण्य–पाप और सारे संसार के सन्ताप को देखा। अब पीपा आपको प्रणाम करते हुए कहता है कि हे नरहरि (विष्णु भगवान) अपने आप ही मेरा उद्धार करो।

विशेष– विभिन्न देवताओं के चक्कर में मैंने सांसारिक विभिन्न क्रिया–कलाप किए पर न तो उद्धार हुआ और न ही मन शान्त हुआ। हे प्रभो! आपने ही इसे माया के बन्धन में बांधा है, केवल आप ही मुक्त कर सकते हो।

(18) राम तेरा भूखा भक्ति न होई।

भोजन बिना पखावज बाजे तो नाद न रीझे कोई।

आठ अबारी आठ सवारी सोलह दे गोपाला।

इतना माँही एक घटावे तो या ले तेरी जपमाला।

लावन लाडू सेव सुहाली लापसड़ी पांच धरी।

इतना दीज्यों देव दया करि तो होती भक्ति थारी।

रोटी बिन न रंग रहे माधो पाखंड लोग पतीजे।

पीपो कहे सुन अन्तरिजामि भक्ति अखंड मोहि दीजे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत दोहे में कवि ने बतलाया है कि भूखे रहकर भजन नहीं हो सकता है अतः गोपाल मुझे खाना तो दो जिससे मैं आपके नाम का स्मरण कर सकूं। पीपा आपसे प्रार्थना करता है कि हे अन्तर्यामी! आप मुझे अपनी अखण्ड भक्ति प्रदान कीजिए।

व्याख्या– सन्त पीपा कहते हैं कि हे राम मेरे भक्त के भूखे रहने से भक्ति नहीं हो पा रही है। बिना भोजन के यह शरीर रूपी पखावज बजता है तो उसकी आवाज सुनकर कोई प्रसन्न नहीं होता है। हे गोपाल, आठ बार और आठ समय, उसमें से एक घटाकर दो तो तेरी माला का जाप कर सकूँ। लड्डू, पेड़े, सेब, सुन्दर लपसी पांच बार (घड़ी) दें। हे देव, इतनी दया करके दो तभी आपकी भक्ति हो सके। बिना भोजन के हे ईश्वर! पाखण्डी लोग विश्वास नहीं करते हैं। अतः हे अन्तर्यामी! मेरी विनय है कि आप मुझे अपनी अखण्ड भक्ति दो।

विशेष– शरीर एवं जीवन के लिए भक्त को भोजन की विशेष आवश्यकता होती है–

भूखे भजन न होय गोपाला।

जे लेहुँ अपनी कंठी–माला।

आप अपनी अखण्ड भक्ति प्रदान करो अन्यथा पाखण्डी लोग विश्वास नहीं करेंगे और मजाक बनाएंगे।

(19) इण घर अन्दर बाग बगीचा इण से सिरजन हारा रे।

इण घर अन्दर सात समन्दर इण में नव लख तारा रे।।

इण पर अन्दर अणहद गूँजे इण में सब संसारा रे।

पीपा के तो घणो भरोसो इण भज साँई म्हारा रे।।

सन्दर्भ– कवि कहता है कि इसी शरीर रूपी घर में बाग–बगीचा और ईश्वर मौजूद हैं। इसी में सात समुद्र और नौ लाख तारे हैं। इसमें ही अनहद नाद सुनाई देता है और सारा संसार है। पीपा को तो आपका बड़ा भरोसा है। इसीलिए मैं आपका भजन करता हूं।

व्याख्या– सन्त पीपा कहते हैं कि इस शरीर रूपी घर में बाग–बगीचा और सबका सृजनहार ईश्वर मौजूद है। इसी में सात समुद्र (चक्र) होते हैं तथा नौ लाख तारे (नसें) होते हैं। इन्हीं में सारा संसार और अनहद नाद सुनाई देता है। पीपा को तो हे प्रभो! आपका बड़ा भरोसा है। इसीलिए आपका भजन करता हूं।

विशेष– जो आत्मा है, वही परमात्मा है। तभी तो तुलसीदासजी कहते हैं–

'ईश्वर अंश, जीव अविनासी।'

कबीरदास का भी कहना है–

'जो घट अन्दर, वह घट बाहर, सारा जग समाया रे।'

4.3.2 आनन्दराव दुबे

आधुनिक मालवी कविता के ख्याति प्राप्त कवि आनन्दराव का जन्म 12 नवम्बर, 1918 को ग्राम धुलेट, जिला इन्दौर के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ। इन्होंने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। इनका बचपन तो गांव में ही बीता, लेकिन शिक्षा–दीक्षा इन्दौर में हुई और तत्कालीन मध्य भारत राज्य के पंचायत विभाग में ये पंचायत निरीक्षक पद पर नियुक्त हुए। दुबेजी अच्छे गायक थे। इनका कण्ठ भी मधुर था। मालवा के गांवों की सहजता, निश्छलता और भोलेपन से परिपूर्ण इनके मन में कविता के अंकुर फूटे, जिसे इन्होंने अपनी बोली मालवी में प्रकट किया। स्वतन्त्रता के पूर्व आरम्भ हुआ इनका लेखन निरन्तर चलता रहा। इनका निधन 22 सितम्बर, 1996 को हुआ।

राष्ट्र निर्माण में योगदान – देश की आजादी के बाद राष्ट्र–निर्माण की भावना गतिशील हुई। नई–नई योजनाएं बनीं। ग्राम, नगर, राज्य और देश के विकास के अनेक कार्यक्रम आरम्भ हुए। शिक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ। नई चेतना जगी। लोक–संस्कृति और लोकभाषाओं में नया उन्मेष आया। पं. सूर्यनारायण व्यास की प्रेरणा से उज्जैन के कार्तिक मेले में सन् 1952 में पहला कवि सम्मलेन हुआ। आनन्दराव दुबे इसमें शामिल हुए। इनकी कविता सर्वाधिक सराही गई। इनके मालवी काव्य–संकलन 'गीत फिर गायो' सन् 1973 में तथा 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' सन् 1998 में प्रकाशित हुए हैं।

काव्य–विषय : आनन्दराव दुबे की कविताएं मालवा के लोक–जीवन का सहज प्रतिनिधित्व करती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जन–जन में आया उल्लास, उमंग,

नव–निर्माण, नये भविष्य के स्वप्न, नई स्वतन्त्रता की चुनौतियां, पंचवर्षीय योजनाएं और कुछ कर गुजरने की भावनाएं इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुईं। वसन्त और वर्षा ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि को प्रभावित किया है। फसल पकने का आनन्द उमड़ा है। साथ ही मनुष्य जीवन तथा साहित्य रचना के उदात्त भाव दुबेजी की कविता की विषयवस्तु बने हैं। 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है। सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में इसे इतनी प्रसिद्धि मिली कि अब तो यह कहावत बन गई है। इनकी 'मालवो पाक्यो', 'वसंत्या की बरसात', 'हूँ जाणूं की वा जाणे', 'तू क्यों पोमावे दार्या', 'कमल–कागद' आदि कविताएं भी बहुत अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

साहित्यिक विशेषताएं– आधुनिक मालवी कविता–धारा का प्रारम्भ तो बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही हो चुका था, लेकिन उसे प्रौढ़ता आनन्दराव दुबे से प्राप्त हुई। इनकी कविताओं में ग्राम्य अंचल की ठेठ मालवी का ठाठ दिखाई देता है। लोक जीवन में प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों के सटीक प्रयोगों से इनकी भाषा का सामर्थ्य एवं सौन्दर्य बढ़ा है। लोकजीवन के विश्वास और धारणाएं भी इनकी रचनाओं में प्रकट हुए हैं। इनकी कविताओं में पहली बार मालवी की मिठास, प्रभाव, लालित्य और अर्थ–बोधकता के दर्शन होते हैं, यह बड़ी गौरव की बात है।

रचनाओं का मूलपाठ

1. मालवा की माटी

कँई सुणाऊँ कँई गुणाऊँ, कँई कँई गाऊँ बोल रे।
मालवा की माटी को–सन्देसो यो अनमोल रे।
धरऊ दिसा में चम्बल बेवे, महिमा ओकी कँई गाणी।
धीर–गंभीर शिप्रा माँ को, गंगा जैसा हे पाणी।
पारबती पूरब से बईरी–
कल कल कालीसिंध याँ जईरी,
रेवा दखणू से कँई कईरी,
जै बोलो औंकारेश्वर की,
खूब सुणाया बोल रे।
मालवा की माटी को,
संदसो यो अनमोल रे।।

घणी पुराणी या उज्जेणी, महाकाल की हे नगरी।
कालिदास ने, गीताज्ञान की, याँज उँढ़ेली थी गगरी।
राजा भरथरी राज करीग्या–
रीत नीत बेराग बतईया
अमर गीत की तान सुणईग्यो
सारंगी पर गीत गुँजीरया
सुणलो हिरदा खोल रे।
मालवा की माटी को,
संदेसो यो अनमोल रे।।

शारदा खे कण्ड बठई ने, लक्ष्मी भी उनने जीती।
जब–जब तीसी जगदम्बा, रणचण्डी मुण्डी लोई पीती।
वेरी पाछा पाँव हट्या था–
दसपुर माण्डव सीस कट्या था
जब–जब मचल्या सीस कट्या था
जब–जब मचल्यो मालवो भई,
दुश्मन डाँवाडोल रे।
मालवा की माटी को,
सन्देसो यो अनमोल रे।

यशधर्मन की महिमा गावे, मंदसोर की गली–गली।
भोजराज खे पईने कविता, निखरी थी जाँ कली–कली।
माण्डूगढ़ खे जो परखे है,
बाजबहादुर क्यों हरके है–
रूपमती खे ऊ निरखे हे।
इन्दपुरी भी आज गइरी रे,
अहिल्या माँ का बोल रे–
मालवा की माटी को,
संदेसो यो अनमोल रे।।

विंध्याचल की बाग गुफा में, पाण्डव की तस्वीर हे।
गौतम की अनमोल सीख में, दुनिया की तकदीर हे।
साँची जई सन्देसो लाजो–
दूर–दूर उनके पोंचाजो
प्रेम भाव की जोत जगाजो–
दुनियाँ का नर–नारी सुणजो
धरती का ई बोल रे।
मालवा की माटी को,
सन्देसो यो अनमोल रे।

2. रामाजी रईग्या ने रेल जाती री

रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।
केणे वाला कइग्या कि, रामाजी तो परबाराइग्या था,
पण राणी रंभा, सासरा का रोण ने पीयर का गीत गाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

रामाजी राणी रंभा खे लोने, सात दिन में सासरा से सरक्या
रंभा उनका साँतेज थी, कँई केणी साव–मोज में मनीज मन हरक्या
पण काकाजी की बात याद आई गई,
कि गेल्या गाँव मेज मत पड्यो रोजे,
सासरा की मनवार हे, ने खूब मोटो परवार हे,
कँई चणां का पेज, मत चढ्यो रीजे।

टीकाराम ने टोंकी दियो, कँइ जंवई, जइरिया हो?
ठेसण पर ठिकाणे लगो, तम तो अभी याँज गीत गइरिया हो।
सुणो भई रामाजी–रेल तो आपकी हे
नी म्हारा बाप की है
वा नी रूकेगी–ने तम रड़बड़ाता रई जाओगा,
ने बड़बड़ाता पाछा अई जाओगा।
तम ठेर्या पावणाँ,
तमारा मूंडा में लगाम, नी पाँव में दावणां।
अबे छुट्टा हो–
चलो चाल सरपट ने रवाल–
जदीज पचेगो सासरा को माल।
हम नी जाँणा – लोगनां केगा कि,
सासरा की मनवार भाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

टेसण दूर थी रेल की,
गाड़ी कसे जुते–सोय नी थी बेल की।
घीसा तेली को माँग्यो घोड़ो, ने घीसी कुमारण की माँगी घोड़ी।
रामाजी रीस में था, ने रंभा रोती थी थोड़ी–थोड़ी।
रामाजी बेठा घोड़ा पे, ने रंभा बेठी घोड़ी पे।
लोगना दाँत काड़ता था–
ने मस्करा मूंडापेज झाड़ता था–रामाजी ने रंभा की जोड़ी पे।
पण पगे–पग पड़ोसी मेमाजी, पोंचाणे अईग्या–
टिकट को काम बिकट थो, टीकाराम खे साँते लईग्या।
पड़ोसी पेमाजी पट–पट आँसू पटके–
ने टीकाराम टक–टक देखी ने, अंई का ऊई टटके।
की जा बेटी रंभा–
मजे मे रीजे–
मोर मजेका आया–
अच्छा आवेगा अम्बा।
सुणो भाई रामाजी–भगवान करे
ने तमारी डोकरी
कदी आजकर मेज मरे।
पण खबर कीजो, दुख–दुख को काम हे, सगा–सोई सेज सरे।
धक–धक धुँवाड़ो–ने भक्–भक् भाप उड़ाती
वा रेल थी–कोई खे हंसाती, ने कोई खे रोवाती।
सीटी सुणी ने चमक्यो घोड़ो, लगाम टूटी ने छूटी–
घोड़ी बी भड़की, ने घर आड़ी भागी।
साँची, माजक नी हे, जई पड्या–जोर की लागी।
लोगना नी हाँसे, इना डर से रामाजी नी रोया,
पण बापड़ी रंभाज रोती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

दत्तू दादा–दोड़ देख अने सुण रे।
सवि साँज आड़ी चली अईरिया, ई कूण रे?
अरे यो दुनियाँ को पंथ हे।
होगी कोई कमणी, ने साँते ओको कन्त हे।
अरे या–
यो तो उना जस्या का बेटा, जग्या को जेंवई, रामो हे।
ओलखाण में नी अईरिया हे–
अंगी क्या पेरी, जाणे पेर्यो सागे साग, लाड़ा को जामो हे।
राम–राम रामाजी,
अच्छो हुवो, रात पेलां अईग्या
जँवई जाणे जुलम हुई, स्रगला तो जाता रिया
पण रंभा ने तमीज रईग्या।
क्यों हो–
सुण्यो कि रेल साँ नी रूकी, ने रड़कीगी।
ने घोड़ी भड़कीगी,
ने जई पड्या कँई कमर की नस तड़कीगी।
यो सासरो–याँज मिलेगी आसरो–सुणी ने रामाजी रिसाणा,
घोड़ा से घल्लइग्या था, बापड़ा पड्या खिसाणा,
ने तबियत सरमाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सासरा को एक साणो बोल्यो–क्यों हो देर कसे हुईगी?
बापड़ो कँई बोले–ओकी भूल ओखेज खईगी।
रामाजी रोणे सरीका हुई ने बोल्या–
जाणे सागे–साग सासरा में, मूँडा का ताला खोल्या।
बावलो नी हूँ–पण हूँ तो उतावलो।
अने फिर या म्हारे साँते हे–साँ–साँ कसे चलाँ–
जगदम्बा घणीं पछाती, हूँ इनी पाँते तो या उनी पाँते।
सवि साँज से म्हने कई दियो, कि म्हारे हे जाणो–
बापड़ा लोगनाँ साँची कईग्या
कि कँई आदमी को खाणो ने कँई बेरां को न्हाणो।
करो कबूल म्हारी नी हे भूल,
हूँ तो परवारोई ग्यो थो, तमारी रंभाज खाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जारी री।

घरे अई ने रीस में–
रामाजी ने रंभा से कीयो–
कि म्हने अब कँई करणो?
जीणो कि मरणो।
'दुबला ने दो असाड़'
'अँई कुवो ने वँई कराड़'
ठेसण पे ठेचाणो तो रेल छूटीगी

ने घरे आयो तो तू रूठीगी।
जा–अबे नी बोलूँ लछमी–धारी म्हारी बात खूटीगी।
ई रेल राँडना रोती रेंकती, कदी आवे ने कदी नी आवे
यूँज बखत की बरबादी, बापड़ा लोगनाँ कदकाँ दुःख पावे।
मोटरनाँ बी मरीगी–
ने धूलो उड़ई ने आफत करीगी।
सबेर से साँज तक हात उठायो,
मोटर वालो मस्कई लईग्यो, पण म्हारे नी बठायो।
चण्डाली ने चिढ़ तो असी आवे–कि काँ लग बात कूँ,
कदी ऊबी राखे तो, पांछे से एक लात दूँ।
हाँ, पण ठीक याद अइ गई–
क्यों वो गेली–गाँव में क्यों रोती थी?
रोणा–रोणा में बी भेद हे तू तो आँसू सेज मूँडो धोती थी।
थारा बे ढंग्या ढंग देखी ने, म्हारी तबियत घणी कूढ़ी,
अरे छे–छे छोरा–छोरी नाँ की माँय, अब कँई रोवे अदबूढ़ी।
रंभा बोलो कि तमारे मालम हे–
कि रोग की जड़ खाँसी
ने कला को मूल हाँसी।
चलो चुप रो रेणें दो,
ने लोगनाँ खे केणें दो।
लोगनाँ केता रेगा–
ने दुःख–सुख सेता रेगा।
तम था सासरा का सुख में, ने हूँ थी पीयर का पियार में।
आगी रेल राँड जारी रे,
पगे पग अई जाँवा, दिन चार में।
यो हे रय्यत को राज, अब काँ रिया ऊई राजा।
कोई तो रोई रिया हे, ने कोई बजईरिया बाजा।
अबे तो चुप रो–
नमारो नाम कसे लूँ–
ओ राजा दषरथ का बेटा, ने लछमण का भई,
म्हारा बाप का जँवई,
लोग नाँ जीतेजी ने मरते तमारो नाम ले,
बाप को घर छोड़ी ने, हूँ आपका घरे आती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

3. तू क्यों पोमावे दार्या

पांच रूपया की पूँजी पे, तू क्यों पोमावे दार्या,
हम से कँई तू आस करे, हम घर बाली परवार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

लाख–लाख जोड्या पण तू तो, चोकीदार चोकन्नो।
सब को सब याँ रई जावेंगो–हीरा मोती पन्नो।

मूँछ मरोड़ी कँई–खम ठोके, क्यों इतरो इतरावे।
पांच पदारथ उड़ी जायगा, राखोड़ो रई जावे।
जो रोता था हँसवा लाग्या, नुकता घाटा सार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

सो–पान–सो पोथी भणल्यो, कितरो गुणल्यो साँची।
मिटा खार तकरार मनक की, अक्कल धारी जाँची।
कथा मनक की बिथा मनक की, हार, मनक की जीत।
मनक, मनक सारू सुख सीचें, क्यों नी सीक्यो रीत।
कथी–कथी ने कवि लिखीग्या, कई–कई ने हम हार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

4. म्हारो मालवो पाक्यो

मालवो पाक्यो रे, म्हारो मालवो पाक्यो,
साँची रे साँवलियो जाणे झोपड़ी झाँक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

माणी भर तो मक्का पाकी, मुन्या तू मचका रे।
जुग–जुग जीवे गऊ का जाया, धीरे तू टचका रे।
सेंक जरा सी मूँगफरी रे, चाख चनी–सी गोल डली ने
फूल मन की आज कली रे, थावरिया ने थुल्ली राँदी
मीठो दूध न्हाक्यो।
म्हारो मालवो पाक्यो।

जग्यो जाग्यो, जागी जसोदा, देखो बोल्या कुकड़ा।
खेत जई ने पुखड़ा झूड़े, भूल मन का दुखड़ा।
फक्यों फूँकीं फेंका मारे, टूँगे मत टिकल्या तू खा रे
खई ने जा अलगूँजो लारे, पीड़ कटे वा हीड़ बजा रे,
काम सारू थाक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

हर्या भर्या ई खेत गऊँ का, लेहर लेहर लेहराय।
पालना से पाँव जैसा, पूत का देखाय।
खेती की महिला कँई गाणी–सब धंधा में खेती राणी,
खाँदे कुराड़ी माथे पाणी, मालवा की माटी को कँई,
मोल तो आँक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

काला खेत में घोला पुखड़ा, लागे कैसा प्यारा।
रात कामणी का लुगड़ा पे, फूल किनारी तारा
पास कपास पुणी पुणले रे, बात गुणी की तू सुण ले रे।
मेहनत को फल सदा रे पाक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

मालवा की माटी

(1) कँई सुणाऊँ कँई गुणाऊँ, कँई कँई गाऊँ बोल रे।
मालवा की माटी को–सन्देसो यो अनमोल रे।
धरऊ दिसा में चम्बल बेवे, महिमा ओकी कँई गाणी।
धीर–गंभीर शिप्रा माँ को, गंगा जैसा हे पाणी।
पारबती पूरब से बईरी–
कल कल कालीसिंध याँ जईरी,
रेवा दखणू से कँई कईरी,
जै बोलो औंकारेश्वर की,
खूब सुणाया बोल रे।
मालवा की माटी को,
संदसो यो अनमोल रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश श्री आनन्दराव दुबे प्रणीत 'मालवा की माटी' शीर्षक कविता से अवतरित है। इसमें कवि ने मालवा की माटी का सन्देश एवं मालवा की स्थिति व्यक्त की है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मालवा की मिट्टी का अमूल्य सन्देश कहां सुनाऊं, कहां इसका गुणगान करूं। मैं अपने बोल कहां–कहां गाऊं? इस मालवा की उत्तर दिशा में चम्बल नदी बहती है, जिसकी अपार महिमा है। धीर–गम्भीर उज्जैन में शिप्रा नदी बहती है, जिसके जल की महिमा गंगाजल के समान है। पार्वती नदी पूरब में बहती है। कल–कल करती हुई काली सिन्ध जहां बहती है। मालवा के दक्षिण में रेवा नदी बहती है। उज्जैन के महाकालेश्वर (ओंकारेश्वर) की जय–जयकार करो। यहां की बोली बड़ी सुन्दर है।

विशेष– कवि मालवा की अमूल्य मिट्टी का सन्देश सुनाता हुआ मालवा की स्थिति विशेष एवं वहां बहने वाली नदियों का उल्लेख करता है।

(2) घणी पुराणी या उज्जेणी, महाकाल की हे नगरी।
कालिदास ने, गीताज्ञान की, याँज उँढ़ेली थी गगरी।
राजा भरथरी राज करीग्या–
रीत नीत बेराग बतईया
अमर गीत की तान सुणईग्यो
सारंगी पर गीत गुँजीरया
सुणलो हिरदा खोल रे।
मालवा की माटी को,
संदेसो यो अनमोल रे।।

टिप्पणी

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि महाकालेश्वर की उज्जैन नगरी की प्राचीनता और उसका महत्व बतलाते हुए कालिदास की कविता और राजा भरथरी के प्रेम और त्याग का उल्लेख करता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि महाकालेश्वर की यह उज्जैनी नगरी अति प्राचीन है। कालिदास ने गीता ज्ञान रूपी अपने महाकाव्यों और काव्यों का सृजन यहीं से किया था। राजा भरथरी (भर्तृहरि) की राज्य करने की रीति–नीति और वैराग्य–नीति यहीं से प्रारम्भ हुई थी। गुंजरियों के अमर गीत यहां पर सारंगी पर स्थान–स्थान पर सुनाई दिए थे। आप मालवा की अमूल्य मिट्टी का सन्देश खुले ह्रदय से सुन लो।

विशेष– उज्जैन महाकालेश्वर की प्राचीन प्रसिद्ध नगरी यहीं थी। राजा भरथरी ने यहां पर ही बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य किया था और फिर यहीं से वैराग्य प्राप्त किया था। राजा अपनी रानी पिंगला से बहुत प्रेम करते थे। एक दिन निर्धन ब्राह्मण ने उन्हें अमर फल लाकर खाने को दिया और सोचा कि भरथरी जैसा जनप्रिय राजा सदैव जीवित रहे, जिससे जनता में सुख–चैन और समृद्धि का विकास हो। लेकिन राजा भरथरी अपनी रानी पिंगला से अत्यधिक स्नेह करते थे। अतः वे चाहते थे कि यह रंग–रूप और यौवन सदा बना रहे। इसीलिए उन्होंने स्वयं अमर फल न खाकर अपनी रानी को खाने को दे दिया। पिंगला शहर के कोतवाल से प्रेम करती थी। उसने सोचा मेरा प्रेमी सदा युवक बना रहे। यही सोचकर उसने अमर फल स्वयं न खाकर शहर कोतवाल को दे दिया। शहर कोतवाल वास्तविक प्रेम एक रूपवती वेश्या से करता था। अतः उसने स्वयं अमर फल न खाकर वेश्या को खाने के लिए दे दिया। वेश्या ने सोचा कि मैं अमर फल खाकर क्या करूंगी, क्योंकि जितने अधिक दिन जीवित रहूंगी उतने ही अधिक समय इस गलीच धन्धे में ही पड़ी रहूंगी। हमारा राजा बड़ा नीतिज्ञ और प्रजापालक है। अतः उसे अमर फल दे दिया जाए तो राजा दीर्घजीवी बना रहेगा। यही सोचकर उसने अमर फल राजा भरथरी को दे दिया। पुनः अमर फल देखकर राजा भरथरी की आंखें खुल गयीं और उन्होंने सब कुछ त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया और तत्कालीन गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु बनाया। उन्होंने घोर तपस्या की फिर भी गुरु गोरखनाथ ने उनकी परीक्षा लेने के लिए पिंगला के द्वार पर भेजा। भरथरी ने वहां जाकर आवाज लगायी– ''भिक्षा दे दो मैया पिंगला, जोगी खड़े हैं तेरे द्वार।'' इसके बाद राजा भरथरी ने तीन ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें उनके जीवन और ज्ञान का निचोड़ है–(1) श्रृंगार शतक, (2) वैराग्य शतक तथा (3) नीति शतक।

(3) शारदा खे कण्ड बठई ने, लक्ष्मी भी उनने जीती।
जब–जब तीसी जगदम्बा, रणचण्डी मुण्डी लोई पीती।
वेरी पाछा पाँव हट्या था–
दसपुर माण्डव सीस कट्या था
जब–जब मचल्या सीस कट्या था
जब–जब मचल्यो मालवो भई,
दुश्मन डाँवाडोल रे।
मालवा की माटी को,
सन्देसो यो अनमोल रे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में शारदा, लक्ष्मी, जगदम्बा आदि देवियों ने विभिन्न अस्त्रों से शत्रुओं का खून पिया और उन्हें डांवाडोल कर दिया।

व्याख्या– हे शारदा माँ! मेरे कण्ठ में आकर विराजमान हो जाओ। लक्ष्मीजी विजय प्रदान करो। जब–जब जगदम्बा क्रोधित हुई तो उसने रणचण्डी बनकर शत्रुओं का सिर काटकर खून पी लिया। उसे देखकर शत्रुओं के पैर भागने के लिए पीछे पड़ने लगे। दसपुर माण्डव ने अपना शीश कटवाया क्योंकि जब–जब वह मचला, तब–तब शत्रु से उसने अपना सिर कलम कराया। जब–जब मालवा की जनता मचली, तब–तब शत्रु डगमगा गया। मालवा की अमूल्य मिट्टी के क्या–क्या संदेश आपको सुनाऊं।

विशेष– कवि को अपनी मातृभूमि एवं वहां की मिट्टी से अपार भक्ति एवं स्नेह है। इसीलिए वह उसका गुणगान करता है।

(4) यशधर्मन की महिमा गावे, मंदसोर की गली–गली।
भोजराज खे पईने कविता, निखरी थी जाँ कली–कली।
माण्डूगढ़ खे जो परखे है,
बाजबहादुर क्यों हरके है–
रूपमती खे ऊ निरखे हे।
इन्दपुरी भी आज गइरी रे,
अहिल्या माँ का बोल रे–
मालवा की माटी को,
संदेसो यो अनमोल रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में यशोवर्धन का यश मंदसौर की गली–गली में गूंज रहा है। महाराज भोज की कविता से कली–कली खिल गई। माण्डवगढ़ (मांडू) के राजा बाज बहादुर और रानी रूपमती का उनके प्रति प्रेम देखो जो इन्द्रपुरी के समान आनन्दित करता है। माता अहिल्याबाई का देशप्रेम देखो। मैं मालवा की अमूल्य मिट्टी का अमूल्य संदेश कहां तक सुनाऊं?

व्याख्या– कवि कहता है कि राजा यशोवर्धन का यश मंदसौर की गली–गली में व्याप्त है। भोजराज की कविता पढ़कर मुंज पर बड़ा प्रभाव पड़ा था, क्योंकि उसके हृदय की कली–कली खिल गई थी। माण्डवगढ़ (मांडों) के राजा बाजबहादुर की वीरता पर प्रसन्न होकर रानी रूपमती ने उनसे शादी की थी। इन्द्रपुरी सी छटा उस समय छायी रहती थी और अहिल्याबाई का त्याग और देशप्रेम सारे संसार में प्रसिद्ध है। मालवा की मिट्टी का अमूल्य सन्देश मैं कहां तक आपको सुनाऊं?

विशेष– मालवा देश की मिट्टी अत्यन्त अमूल्य है जिसने ऐतिहासिक महापुरुषों, वीर राजाओं और वीरांगनाओं को पैदा किया। यशोवर्धन महान् एवं वीर राजा थे। राजा भोज के चाचा मुंज की राज्यलिप्सा इतनी बढ़ी कि उसने बधिक को भोज को जान से मारकर उसकी आंखें निकालकर लाने की आज्ञा दी। राजा भोज ने मरने से पूर्व बधिकों को एक श्लोक लिखकर दिया जिसे पढ़कर बधिकों का हृदय द्रवीभूत हो गया और उन्होंने गुप्त स्थान पर राजकुमार को रखकर हिरन की आंखें लाकर दे दीं। मुंज ने पूछा कि मरते समय भोज ने क्या कहा था? तब बधिकों ने वह पत्र निकालकर राजा मुंज को दे दिया।

''मान्धाता च दधीचादि –'' मान्धाता तथा दधीचि आदि सतयुग के अलंकार चले गए। महाबलशाली रावण और कौरव–पाण्डव आदि सब राजागण चले गए लेकिन पृथ्वी किसी के साथ नहीं गई। मुझे तो ऐसा लगता है कि पृथ्वी तुम्हारे साथ अवश्य जाएगी। इसे पढ़कर ही मुंज का हृदय परिवर्तित हो गया और वह पछताता हुआ विलाप करने लगा। मांडू के सुल्तान बाजबहादुर की वीरता से प्रभावित होकर राजपूतानी रानी उससे प्रेम करने लगी और विवाह भी कर लिया। रानी अहिल्याबाई ने पति की मृत्यु के बाद राज्य संचालन इतनी अधिक वीरता के साथ किया कि शत्रु कांपने लगे और प्रजा बहुत सुखी हो गई।

(5) विंध्याचल की बाग गुफा में, पाण्डव की तस्वीर हे।
गौतम की अनमोल सीख में, दुनिया की तकदीर हे।
साँची जई सन्देसो लाजो–
दूर–दूर उनके पोंचाजो
प्रेम भाव की जोत जगाजो–
दुनियाँ का नर–नारी सुणजो
धरती का ई बोल रे।
मालवा की माटी को,
सन्देसो यो अनमोल रे।

सन्दर्भ– विंध्याचल की वाघ की गुफाओं और उनमें चित्रित चित्रकारी तथा सांची के गौतम बुद्ध के प्रेम सन्देश दूर–दूर तक जगत में फैले थे।

व्याख्या– कवि कहता है कि विंध्याचल की वाघ की गुफाओं में माण्डवगढ़ की चित्रकारी है, उसमें पाण्डवों के चित्र बने हैं। गौतम बुद्ध की अमूल्य शिक्षाओं से संसार का भाग्य परिवर्तन हो गया। सांची से बौद्ध धर्म के सन्देश संसार में दूर–दूर तक पहुंचे थे। प्रेम–भाव का प्रकाश सारे संसार में फैलाओ। धरती यही कहती है कि मालवा की मिट्टी यही अमूल्य सन्देश देती है।

विशेष– अजन्ता और एलोरा गुफाओं के अतिरिक्त वाघ की गुफाएं बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें मालवी शैली में पाण्डवों की कथाएं चित्रित हैं। गौतम बुद्ध के अहिंसा और प्रेम के सन्देश दूर–दूर तक संसार में फैले थे। बौद्ध धर्म के केन्द्र सांची के स्तूप से भी यही सन्देश दूर–दूर तक व्याप्त हुए थे। संसार के नर–नारी सभी यह अमूल्य सन्देशों को सुन लो। मालवा की मिट्टी के यही मूल सन्देश हैं।

रामाजी रईग्या ने रेल जाती री

(6) रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।
केणे वाला कइग्या कि, रामाजी तो परबाराइग्या था,
पण राणी रंभा, सासरा का रोण ने पीयर का गीत गाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश श्री आनन्दराव दुबे कृत 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' कविता से संगृहीत है। यह कविता मालवा के अतिरिक्त कई कवि–सम्मेलनों में बड़ी लोकप्रिय रही है।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे रामाजी! रमइया रेल जा रही है। कौन किससे कहे कि रेल उधर की उधर चली जाती है। रम्भा रानी सासुरे रो–रोकर पीहर के गीत गाती है कि हे रामजी! रेल चली जा रही है।

विशेष– कवि ने 'रेल जा रही है' का सजीव चित्रण किया है।

(7) रामाजी राणी रंभा खे लोने, सात दिन में सासरा से सरक्या
रंभा उनका साँतेज थी, कँई केणी साव–मोज में मनीज मन हरक्या
पण काकाजी की बात याद आई गई,
कि गेल्या गाँव मेज मत पड्यो रोजे,
सासरा की मनवार हे, ने खूब मोटो परवार हे,
कँई चणां का पेज, मत चढ्यो रीजे।
टीकाराम ने टोंकी दियो, कँइ जंवई, जइरिया हो?
ठेसण पर ठिकाणे लगो, तम तो अभी याँज गीत गइरिया हो।
सुणो भई रामाजी–रेल तो आपकी हे
नी म्हारा बाप की है
वा नी रूकेगी–ने तम रड़बड़ाता रई जाओगा,
ने बड़बड़ाता पाछा अई जाओगा।
तम ठेर्या पावणाँ,
तमारा मूंडा में लगाम, नी पाँव में दावणां।
अबे छुट्टा हो–
चलो चाल सरपट ने रवाल–
जदीज पचेगो सासरा को माल।
हम नी जाँणा – लोगनां केगा कि,
सासरा की मनवार भाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' से अवतरित है। इसमें कवि ने दुल्हन के सासुरे जाने पर ससुराल में रहने के उसके विचार व्यक्त किए हैं।

व्याख्या– कवि कहता है कि रामाजी ने ससुराल से सात दिन बाद विदा की तिथि निश्चित की थी। पत्नी ने खुशी–खुशी मौज–मस्ती में सात दिन का समय बिता दिया। उसी समय काकाजी की याद आ गई कि बुद्धू गांव की मेजबानी में मत पड़े रहना। तुम्हारी ससुराल का परिवार बहुत बड़ा है। रोजाना खाने–पीने पर मत डटे रहना। टीकाराम ने टोक भी दिया कि दामाद साहब अपने गांव को लौटोगे? यह कथन सुनकर उसे अपने गांव की याद आ गई। हे रामाजी! भाई सुनो रे रेल न आपके पिता की है न ही हमारे पिता की है। आप बड़बड़ाते और गुस्सा करते रह जाओगे, वह चली जाएगी। बड़बड़ाते पीछे रह जाओगे। तुम्हारे पैर रुक जाएंगे। तुम्हारे हाथ में न लगाम होगी और पैर में दावणा नहीं होगा। इसलिए गाड़ी न छूट जाए। शीघ्र चलो, जिससे सासुरे का माल न पच सके। हमने जान लिया ससुराल की आवभगत तुम्हें अति अच्छी लगती है। रामाजी की रेल जा रही है।

विशेष– नए दूल्हे–दुल्हन की ससुराल के आनन्द का वर्णन किया गया है।

(8) टेसण दूर थी रेल की,
गाड़ी कसे जुते–सोय नी थी बेल की।
घीसा तेली को माँग्यो घोड़ो, ने घीसी कुमारण की माँगी घोड़ी।
रामाजी रीस में था, ने रंभा रोती थी थोड़ी–थोड़ी।
रामाजी बेठा घोड़ा पे, ने रंभा बेठी घोड़ी पे।
लोगना दाँत काड़ता था–
ने मस्करा मूंडापेज झाड़ता था–रामाजी ने रंभा की जोड़ी पे।
पण पगे–पग पड़ोसी मेमाजी, पोंचाणे अईग्या–
टिकट को काम बिकट थो, टीकाराम खे साँते लईग्या।
पड़ोसी पेमाजी पट–पट आँसू पटके–
ने टीकाराम टक–टक देखी ने, अंई का ऊई टटके।
की जा बेटी रंभा–
मजे मे रीजे–
मोर मजेका आया–
अच्छा आवेगा अम्बा।
सुणो भाई रामाजी–भगवान करे
ने तमारी डोकरी
कदी आजकर मेज मरे।
पण खबर कीजो, दुख–दुख को काम हे, सगा–सोई सेज सरे।
धक–धक धुँवाड़ो–ने भक्–भक् भाप उड़ाती
वा रेल थी–कोई खे हंसाती, ने कोई खे रोवाती।
सीटी सुणी ने चमक्यो घोड़ो, लगाम टूटी ने छूटी–
घोड़ी बी भड़की, ने घर आड़ी भागी।
साँची, माजक नी हे, जई पड्या–जोर की लागी।
लोगना नी हाँसे, इना डर से रामाजी नी रोया,
पण बापड़ी रंभाज रोती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश में दूल्हे और दुल्हन के यहां से विदा होने का वर्णन है।

व्याख्या– कवि कहता है कि रेल का स्टेशन गांव से दूर था और बैलों से जुती हुई गाड़ी तैयार थी। अतः देरी न हो जाए, इसलिए घीसा तेली से घोड़ा और घीसी कुमारिण से घोड़ी मांगी गई। दूल्हा घोड़े पर और दुल्हन घोड़ी पर सवार होकर धीरे–धीरे रो रही थी। लगाम दांतों से पकड़ी और झाड़–पोंछकर दोनों घोड़े और घोड़ी पर सवार हुए। पड़ोसी एवं गांव वाले पैदल चलकर विदा देने आए थे। टिकट खरीदने का काम बड़ा विकट था। टीकाराम ने बात बताई। पड़ोसियों के प्रेम के कारण पट–पट विदाई

के समय आँसू बह रहे थे। टीकाराम ने इधर–उधर आंख उठाकर देखा कि बेटी रम्भा जा रही है। खूब मौज मजे में रहना। श्रीराम करे तुम्हारा समय अच्छा आवें। तुम्हारी दादी बुढ़िया इस समय बीमार चल रही है। उसके दुःख–सुख की सूचना देते रहना। रेलगाड़ी धक्–धक् करके धुआँ उड़ाती है और झक्–झक् करके भाप उड़ाती है। यह रेल किसी को हँसाती है और किसी को रुलाती है। रेल की सीटी सुनके घोड़ा चमका और लगाम टूटकर छूट गई। घोड़ी भी भड़की और तिरछी होकर भागने लगी। यह बात सच्ची है, कोई मजाक नहीं है। लोग भयभीत होकर भागने लगे और कुछ लोग डरने लगे। दुल्हन रम्भाजी रो रही थी और रामाजी लेकिन, रेल चली जा रही थी।

विशेष– गांव से दूल्हा–दुल्हन की विदाई, रेलगाड़ी की सीटी की आवाज सुनकर घोड़ा–घोड़ी का भड़कना और दूल्हे के गिरने तथा दुल्हन के घोड़ी को भगा ले जाने का बड़ा सजीव और स्वाभाविक चित्रण किया गया है। कवि का कहना है कि यह मजाक नहीं बल्कि वास्तविकता थी।

(9) दत्तू दादा–दोड़ देख अने सुण रे।

सवि साँज आड़ी चली अईरिया, ई कूण रे?

अरे यो दुनियाँ को पंथ हे।

होगी कोई कमणी, ने साँते ओको कन्त हे।

अरे या–

यो तो उना जस्या का बेटा, जग्या को जेंवई, रामो हे।

ओलखाण में नी अईरिया हे–

अंगी क्या पेरी, जाणे पेर्यो सागे साग, लाड़ा को जामो हे।

राम–राम रामाजी,

अच्छो हुवो, रात पेलां अईग्या

जँवई जाणे जुलम हुई, स्रगला तो जाता रिया

पण रंभा ने तमीज रईग्या।

क्यों हो–

सुण्यो कि रेल साँ नी रूकी, ने रड़कीगी।

ने घोड़ी भड़कीगी,

ने जई पड्या कँई कमर की नस तड़कीगी।

यो सासरो–याँज मिलेगी आसरो–सुणी ने रामाजी रिसाणा,

घोड़ा से घल्लइग्या था, बापड़ा पड्या खिसाणा,

ने तबियत सरमाती री।

रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में घोड़ी और घोड़े से पति–पत्नी के गिरने के बाद लोग उन्हें पहचान पाए और सारी घटना उन्होंने लज्जित होते हुए बतलाई।

व्याख्या– कवि कहता है कि दत्तू दादा ने घोड़े और घोड़ी को दौड़ते हुए पूछा और आवाज दी–सुन रे! अरी सज–सँवलकर किसकी स्त्री तिरछी दौड़ी चली जा रही है।

अरे! यह तो संसार का पथ (रास्ता, रीति–रिवाज) है कि कोई कामिनी होगी जो अपने पति को खोजने चली जा रही है। उसी समय किसी को पहचानकर कहा–अरे मित्र! यह तो उन जस्या का पुत्र और जग्या का दामाद है। न जाने क्यों ये साक्षात् चले जा रहे हैं। अच्छा हुआ, हे भगवान यह तो रात से पहले आ गए। न जाने दामाद पर क्या जुल्म हुआ हो। संग तो जा रहा था कि पत्नी को तमीज सिखाना हो। शायद रेल न रुकी और न सरकी हो और घोड़ी भड़क गई हो। ऐसा मालूम पड़ता था कि कमर की नस तड़क गई हो। हे रामजी सुनो, न जाने कैसा सासुरा (ससुराल) मिलेगा? घोड़ा तो घिसा हुआ था अर्थात् कमजोर था। यह सुनकर वह बेचारा पति लज्जित होकर रह गया और पत्नी की भी तबीयत शर्माती रह गई। हे रामाजी! न जाने रेल चली जाती हो।

विशेष– घोड़ा और घोड़ी से गिरते–पड़ते और सँभलते हुए वे एक गांव में रात होने से पहले आ गए। तब लोगों ने सोचा कोई मनचली और मनचला भाग रहे हों। लेकिन उसी समय किसी ने साक्षात् होते ही पहचान लिया कि यह तो जस्या का बेटा और जग्या का दामाद है। सारी घटना उन्होंने शर्माते हुए ग्रामीणों को बतलाई और बहुत लज्जित हुए। कवि ने वास्तविक चित्रण किया है।

(10) सासरा को एक साणो बोल्यो–क्यों हो देर कसे हुईगी?

बापड़ो कँई बोले–ओकी भूल ओखेज खईगी।

रामाजी रोणे सरीका हुई ने बोल्या–

जाणे सागे–साग सासरा में, मूँडा का ताला खोल्या।

बावलो नी हूँ–पण हूँ तो उतावलो।

अने फिर या म्हारे साँते हे–साँ–साँ कसे चलाँ–

जगदम्बा घणीं पछाती, हूँ इनी पाँते तो या उनी पाँते।

सवि साँज से म्हने कई दियो, कि म्हारे हे जाणो–

बापड़ा लोगनाँ साँची कईग्या

कि कँई आदमी को खाणो ने कँई बेरां को न्हाणो।

करो कबूल म्हारी नी हे भूल,

हूँ तो परवारोई ग्यो थो, तमारी रंभाज खाती री।

रामाजी रईग्या ने रेल जारी री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश में ससुराल पहुंचने पर देरी होने के कारण साले आदि ससुराली लोग पहुंचने पर पूछने लगे–क्या कारण हुआ जो इतनी अधिक देर हो गई।

व्याख्या– कवि कहता है कि ससुराल के एक साले ने पूछा–क्यों देर कैसे हो गई। कई लोग एक साथ बोले कि हमारी क्या भूल हो गई अथवा क्या खता हो गई। रामाजी कहते हैं कि बहिन रोने लगी और कुछ न बोल सकी। सारे ससुराल वाले सोचने लगे कि किसी मूर्ख ने ताला खोल लिया। आप बाबरे और उतावले क्यों हो रहे थे? क्या हमारे होते हुए कोई इससे कैसे कुछ कह सकता है। हे जगदम्बे! मैं बहुत पछताती हूँ कि क्या इसी ओर और क्या उसी ओर किसी ने किसी प्रकार से कुछ न कहा। मैं आप लोगों से सच–सच कह रही हूँ कि न किसी आदमी ने और न किसी पुरूष ने मुझसे कुछ नहीं कहा। आप हमारी भूल स्वीकार करो। मैं तो परबस हो गई। तुम्हारी बहन सब प्रकार से सुखी रही, परन्तु हे रामाजी रेल चली गई।

विशेष– कवि ने बतलाया कि ससुराल से मायके देर से पहुंचने से सब लोग आश्चर्यचकित रह गए। एक साले ने पूछ ही लिया कि देर क्यों हो गई? उसी समय पति ने लज्जा प्रकट की और पत्नी ने सारी दास्तान सच–सच बयां कर दी और बतलाया कि ससुराल में न तो किसी ने कुछ कहा और न ही कोई दुःख हुआ।

(11) घरे अई ने रीस में–

रामाजी ने रंभा से कीयो–
कि म्हने अब कँई करणो?
जीणो कि मरणो।
'दुबला ने दो असाड़'
'अँई कुवो ने वँई कराड़'
ठेसण पे ठेचाणो तो रेल छूटीगी
ने घरे आयो तो तू रूठीगी।
जा–अबे नी बोलूँ लछमी–धारी म्हारी बात खूटीगी।
ई रेल राँडना रोती रेंकती, कदी आवे ने कदी नी आवे
यूँज बखत की बरबादी, बापड़ा लोगनाँ कदकाँ दुःख पावे।
मोटरनाँ बी मरीगी–
ने धूलो उड़ई ने आफत करीगी।
सबेर से साँज तक हात उठायो,
मोटर वालो मस्कई लईग्यो, पण म्हारे नी बठायो।
चण्डाली ने चिढ़ तो असी आवे–कि काँ लग बात कूँ,
कदी ऊबी राखे तो, पांछे से एक लात दूँ।
हाँ, पण ठीक याद अइ गई–
क्यों वो गेली–गाँव में क्यों रोती थी?
रोणा–रोणा में बी भेद हे तू तो आँसू सेज मूँडो धोती थी।
थारा बे ढंग्या ढंग देखी ने, म्हारी तबियत घणी कूढ़ी,
अरे छे–छे छोरा–छोरी नाँ की माँय, अब कँई रोवे अदबूढ़ी।
रंभा बोलो कि तमारे मालम हे–
कि रोग की जड़ खाँसी
ने कला को मूल हाँसी।
चलो चुप रो रेणें दो,
ने लोगनाँ खे केणें दो।
लोगनाँ केता रेगा–
ने दुःख–सुख सेता रेगा।

तम था सासरा का सुख में, ने हूँ थी पीयर का पियार में।
आगी रेल राँड जारी रे,
पगे पग अई जाँवा, दिन चार में।
यो हे रय्यत को राज, अब काँ रिया ऊई राजा।
कोई तो रोई रिया हे, ने कोई बजईरिया बाजा।
अबे तो चुप रो–
नमारो नाम कसे लूँ–
ओ राजा दषरथ का बेटा, ने लछमण का भई,
म्हारा बाप का जँवई,
लोग नाँ जीतेजी ने मरते तमारो नाम ले,
बाप को घर छोड़ी ने, हूँ आपका घरे आती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जाती री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने दोषारोपण रेल पर किया है और उसके ही कारण यह संकट पैदा हुआ था।

व्याख्या– कवि कहता है कि घर आकर उसने क्रोध में कहा कि मेरे साथ कई कारण देर से आने के हैं। मैं जीवित रहती या मर जाती। दो अखाड़ में कमजोर हो गई और कोई सन्तोष नहीं हुआ। जल्दी–जल्दी में रेल छूट गई और घर आने पर पता चला कि तू नाराज हो जाएगी। हे माँ! तुझसे तेरी लक्ष्मी की बात ही लग रही है। ये रेल रांडनी रोती और रेंकती हुई आती है। कभी आवे और कभी न आवे। इस प्रकार इसके पीछे लोग समय की बर्बादी करते हैं। लोग इसके चले जाने पर व्यर्थ दुःख उठाते हैं। मरी मोटरगाड़ी धूल उड़ाती हुई आफत पैदा करती है। सुबह से शाम तक हाथ उठाओ फिर भी कभी रुकती है और कभी नहीं। मोटर वाले मजाक बनाते हैं कि हम कहते हैं कि हमें बैठा लो। चाण्डाली सी चढ़कर भयंकर क्रोध आता है कि कहां तक इससे क्या कहूँ? कभी मन कहता है कि उठी हुई आग के समान पीछे से इसमें एक लात मारूँ जिससे इसे छटी तक का दूध याद आ जाए। क्यों वे गांव में होतीं तो क्यों रोतीं। रोने–रोने में भेद होता है। तू तो सेज पर आँसू धोती से पोंछ लेती थी लेकिन इसका बेढंगा व्यवहार देखकर मेरी तबीयत जल–भुनकर खाक हो जाती है। रे–रे लड़के–लड़कियों की माताएं, अब आधी बुड्ढी भी रोती है। मैं तो जानती हूँ कि रोग की जड़ खांसी और लड़ाई की जड़ हांसी होती है। चलो चुप हो जाओ, रहने दो। लोगों को बकने दो, लोगों के कहने से क्या होता है। इसका दुःख–सुख नहीं मानना चाहिए। न तो ससुराल का सुख था और न ही मायके का प्यार। आगे रांड रेल जाती रही है। चार दिनों में पैदल आया–जाया जा सकता है। जब प्रजा का राज था अब उस राजा का राज है। इसमें कोई रो रहा है और कोई खुशी से बाजा बजा रहा है। अबे, चुप हो जा! तेरा नाम कैसे लूं। हे दशरथ के पुत्र, लक्ष्मण के भाई, हमारे पिता का दामाद, लोग न जीते हैं और न मरते हैं, तुम्हारा नाम ले लेकर। पिता का घर छोड़कर आपके घर आ रही है। हे रामाजी आपकी रेल जा रही है।

विशेष– मालवा की जनजातियों के लिए दूर स्टेशन होने पर तथा मोटरगाड़ियों वालों की छींटाकसी बड़ा दुःख पहुंचाती है। हे रामा आपकी रेल इसी प्रकार चली जाती है।

तू क्यों पोमावे दार्या

(12) पाँच रूपया की पूँजी पे, तू क्यों पोमावे दार्या,
हम से कँई तू आस करे, हम घर बाली परवार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में 'तू क्यों पोमावे दार्या' शीर्षक में कवि ने मूर्ख इन्सान को चेतावनी देते हुए कहा है –

व्याख्या– कवि कहता है कि पांच रुपए की सम्पत्ति (थोड़ी–सी सम्पत्ति) पर ओ मूर्ख इन्सान तू क्यों गर्व करता है। हमसे आशा करता है और घरवाली के ऊपर खर्च कर दिए अर्थात् बहा दिए फिर भी हे मूर्ख मानव! तू क्यों घमण्ड करता है?

विशेष– मूर्ख इन्सान को कभी थोड़े से धन पर गर्व नहीं करना चाहिए।

(13) लाख–लाख जोड्या पण तू तो, चोकीदार चोकन्नो।
सब को सब याँ रई जावेंगो–हीरा मोती पन्नो।
मूँछ मरोड़ी कँई–खम ठोके, क्यों इतरो इतरावे।
पांच पदारथ उड़ी जायगा, राखोड़ो रई जावे।
जो रोता था हँसवा लाग्या, नुकता घाटा सार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

सन्दर्भ– कवि कहता है कि धन जोड़कर स्वयं चौकन्ना होकर चौकीदारी करता है। हीरा, मोती, पन्ना आदि सभी यहीं धरे रह जाएंगे। तू इतना गर्व क्यों करता है। पांच तत्व उड़ जाएंगे केवल यह पिण्ड पड़ा रह जाएगा। मृत्यु भोज के समय तेरे क्रिया–कर्म में सब धन–सम्पदा लग जाएगी। जो रोता था, वह हँसने लगेगा। हे मूर्ख इन्सान तू क्यों घमण्ड करता है?

व्याख्या– हे मूर्ख इन्सान तूने एक–एक सिक्का जोड़कर लाखों रूपये एकत्रित कर लिए और तू होशियार होकर इस धन की रक्षा के लिए चौकीदारी करता रहा, लेकिन हीरा, मोती, पन्ना आदि सबका धन यहीं धरा रह जाएगा। मूंछों को मरोड़ता हुआ और ताल ठोंकता हुआ तू इतना गर्व क्यों करता है। मृत्यु होते ही पांच पदार्थ (पृथ्वी, जल, अग्नि, समीर और आकाश) तत्व चले जाएंगे और यह सारा शरीर यहीं पड़ा रह जाएगा। तेरे मृत्युभोज और क्रियाकर्म में तेरी सारी सम्पत्ति व्यय हो जाएगी। कोई तेरे धन को पाकर हँसेगा और कोई उसे खोकर रोएगा। हे मूर्ख मानव! तू गर्व क्यों करता है।

विशेष– कवि ने संसार की वास्तविकता को इस प्रकार व्यक्त किया है।

(14) सो–पान–सो पोथी भणल्यो, कितरो गुणल्यो साँची।
मिटा खार तकरार मनक की, अक्कल धारी जाँची।
कथा मनक की बिथा मनक की, हार, मनक की जीत।
मनक, मनक सारू सुख सीचें, क्यों नी सीक्यो रीत।
कथी–कथी ने कवि लिखीग्या, कई–कई ने हम हार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

टिप्पणी

सन्दर्भ– कवि कहता है कि पोथी में सच्चा ज्ञान है। लड़ाई झगड़ा दूर करके उसे पहचान लो। मानव की कथा–विथा और हार–जीत सब उसमें है। कविगण बार–बार कह–कहकर हार गए हैं। हे मूर्ख इन्सान! तू गर्व क्यों करता है?

व्याख्या– कवि कहता है कि पुस्तकों में बहुत–सा ज्ञान भरा हुआ है। तू पुस्तक पढ़कर चाहे जितना ज्ञान प्राप्त कर ले। मन से ईर्ष्या–द्वेष और लड़ाई–झगड़े दूर करके अपनी बुद्धि से अच्छी प्रकार जाँच कर ले। मन कथा और व्यथा तथा मन की हार–जीत समझ ले। सुख का जो सार तत्व है, उसे मन से सींच ले अर्थात् पैदा कर ले। यही मन को जीतने का ढंग तू क्यों नहीं सीखता है? विभिन्न प्रकार के कवियों ने विभिन्न प्रकार से लिखकर ये तथ्य प्रकट कर दिए हैं और कई–कई कवि तो इस सच्चाई को लिखते–लिखते हार गए हैं।

विशेष– पुस्तकें ज्ञान से परिपूर्ण हैं। आप जितना चाहो उतना ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। मन से ईर्ष्या–द्वेष मिटाकर सच्चाई के साथ इस ज्ञान को प्राप्त कर लो। विभिन्न कवियों ने इस ज्ञान को प्रकट किया है। आप इसे जिस प्रकार से चाहो और जैसा चाहे, वैसा प्राप्त कर लो। अन्यथा हे मूर्ख इन्सान तू इसी प्रकार से गर्व करता हुआ इस संसार से विदा हो जाएगा।

म्हारो मालवो पाक्यो

(15) मालवो पाक्यो रे, म्हारो मालवो पाक्यो,
साँची रे साँवलियो जाणे झोपड़ी झाँक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बताया कि हमारा मालवा श्रेष्ठ है। यहां की झोपड़ियों में श्यामसुन्दर दिखाई देते हैं।

व्याख्या– कवि कहता है कि हमारा मालवा बड़ा अच्छा है। वास्तव में यहां झोपड़ियों में मालवा की झाँकी एवं साँवले सलौने कन्हैयाजी दृष्टिगोचर होते हैं।

विशेष– कवि मालवा का महत्व बतला रहा है।

(16) माणी भर तो मक्का पाकी, मुन्या तू मचका रे।
जुग–जुग जीवे गऊ का जाया, धीरे तू टचका रे।
सेंक जरा सी मूँगफरी रे, चाख चनी–सी गोल डली ने
फूल मन की आज कली रे, थावरिया ने थुल्ली राँदी
मीठो दूध न्हाक्यो।
म्हारो मालवो पाक्यो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने यहां की मक्का, मूँगफली आदि की फसलों और यहां के दूध–दही की प्रशंसा की है–

व्याख्या– कवि कहता है कि माणी भर (तोल की एक विशेष मात्रा लगभग 240 किलो) पकी मक्का देखकर मुन्ना मचलने लगा। गाय के पुत्र तू युग–युगों तक जीवित रहे क्योंकि तेरे धीरे–धीरे चलने से यह फल प्राप्त हुआ है। थोड़ी–सी मूँगफली सेंककर गुड़ की डेली के साथ खाओ तो बड़ा आनन्द आता है। थाबरिया ने थुल्ली राँदी थी जिसे खाकर मन की कली–कली खिल गई। यहां का दूध बड़ा मधुर (मीठा) है। इसीलिए हमारा मालवा बहुत अच्छा है।

विशेष– कवि ने मालवा की फसलों, पशुओं के दूध और भोजन के पदार्थों की बड़ी प्रशंसा की है। पुनरुक्ति अलंकार एवं मालवी भाषा की वर्णनात्मक शैली बड़ी प्रभावी है।

(17) जग्यो जाग्यो, जागी जसोदा, देखो बोल्या कुकड़ा।

खेत जई ने पुखड़ा झूड़े, भूल मन का दुखड़ा।

फक्यों फूँकीं फेंका मारे, टूँगे मत टिकल्या तू खा रे

खई ने जा अलगूँजो लारे, पीड़ कटे वा हीड़ बजा रे,

काम सारू थाक्यो

म्हारो मालवो पाक्यो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बताया कि मालवा के ज्वार का भुट्टा खाने और प्रातःकाल मुर्गे के बोलने से सब दुःख दूर हो जाते हैं। फूँक मार–मारकर इसे मत खा। रोटी बनाकर खाना। भोजन करने के बाद अलगोजे की ध्वनि पर सब लोग हाड़ कंपा देने वाली सर्दी के दुःख को भूल जाते हैं।

व्याख्या– कवि कहता है कि मुर्गा कुकड़कू–कुकड़कू बोल उठा। यशोदा रानी जाग गई। हे गोपाल! जाओ–जाओ। खेतों में जई के भुट्टे झूमने लगे। उन्हें देखकर लोग अपने मन का दुःख भूल गए। भुट्टे के दानों को फूंक–फूंककर लोग फांक रहे हैं, उन्हें कवि समझाता है कि घर ले जाकर कूट–पीसकर इनकी रोटी बनाकर खानी चाहिए। भोजन करने के बाद अलगोजे (एक विशेष प्रकार की बीन) की ध्वनि को सुनकर हाड़ कंपाने वाली सर्दी का दुःख भी किसान और मजदूर भूल जाता है। काम से थका हुआ होने पर भी थकान भूल जाता है। मेरा मालवा देश ऐसा है।

विशेष– कवि ने मालवा के प्रातःकालीन जीवन से लेकर रात होने तक के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। वहां की फसल और अलगोजे की ध्वनि सुनकर सब लोग अपना दुःख और थकान भूल जाते हैं। ऐसा महान् मेरा मालवा है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

(18) हर्या भर्या ई खेत गऊँ का, लेहर लेहर लेहराय।

पालना से पाँव जैसा, पूत का देखाय।

खेती की महिला कँई गाणी–सब धंधा में खेती राणी,

खाँदे कुराड़ी माथे पाणी, मालवा की माटी को कँई,

मोल तो आँक्यो

म्हारो मालवो पाक्यो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने मालवा की खेती का महत्व और मूल्य पहचानने का आग्रह किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मालवा कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहां की हरी–भरी खेती और गाय का लहराना (प्रसन्न होना) तथा पालने के पुत्र जैसा अपने बछड़े को देखना अति सुन्दर लगता है। खेती की महिमा का गान किया जाए तो सब धन्धों की खेती रानी है। हाथ में बेलचा लेकर खोदते हुए और माथे पर पसीने की टपकती हुई बूँदें मालवा की मिट्टी की विशेषता है। हमारे मालवा के श्रम का मूल्य तो आँको।

विशेष– मालवा की कृषि, गौपालन और मालवा के किसानों का श्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय है। कहा भी गया है –

''उत्तम खेती, मध्यम बान।
भीख, चाकरी दुःख महान।।''

(19) काला खेत में घोला पुखड़ा, लागे कैसा प्यारा।
रात कामणी का लुगड़ा पे, फूल किनारी तारा
पास कपास पुणी पुणले रे, बात गुणी की तू सुण ले रे।
मेहनत को फल सदा रे पाक्यो
म्हारो मालवो पाक्यो।

सन्दर्भ– इस अन्तिम काव्यांश में कवि ने सांगोपांग सांगरूपक का चित्रण करते हुए गांव की खेती का बड़ा स्वाभाविक चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि काले खेत में सफेद पखवाड़ा कितना प्यारा लगता है। इसे देखकर कवि के मन में उठता है कि रात कामिनी रूपी लहँगा पहने हुए है। उसकी फूलदार किनारी पर तारे टँके हुए हों। पास में ही कपास की पुड़ी बँधे पुगले बतलाते हैं कि गुणवान की बात तू सुन ले कि परिश्रम का फल सदा ही मीठा होता है। ऐसा मधुर हमारा मालवा है।

विशेष– मालवा के काले–काले खेतों में श्वेत चांदनी और पास में कपास के बँधे हुए गट्ठर अति शोभनीय लगते हैं।

4.3.3 बालकवि बैरागी

बालकवि बैरागी का वास्तविक नाम नन्दरामदास बैरागी था। इनका जन्म 10 फरवरी, 1931 ई. को रामपुरा जिला नीमच में एक वैष्णव ब्राह्मण (बैरागी) परिवार हुआ था। इनके माता–पिता मनासा में रहते थे। इनका परिवार अत्यन्त विपन्न था और आजीविका का साधन था–भिक्षा। इनका बचपन कठोर संघर्ष में बीता। इन्हें लोकप्रिय रूप से 'बालकवि' बैरागी कहा जाता था, क्योंकि इन्होंने बचपन में कुछ श्रेष्ठ कविताएं लिखी थीं। बड़ी मुश्किल से इनकी पढ़ाई–लिखाई चलती रही और बी.ए. किया। उज्जैन में रहकर एम.ए. किया। इन्होंने 9 वर्ष की उम्र में ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया था।

बालकवि बैरागी बहुचर्चित कवि थे। इनकी काव्य–यात्रा के साथ ही 15 वर्ष की उम्र से ही ये राजनीति में कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय हो गए थे। सन् 1964 और 1980 में मनासा विधानसभा क्षेत्र से दो बार विधायक चुने गए और मध्यप्रदेश शासन में संसदीय सचिव तथा राज्यमंत्री के पदों पर भी रहे। सन् 1984 में मंदसौर–जावरा क्षेत्र से लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् 1998 में मध्य प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य चुने गए। आप राहुल सांकृत्यायनजी से बहुत प्रभावित थे। उनके घुमक्कड़ी धर्म से प्रभावित होकर बैरागीजी ने यात्राएं बहुत की थीं। भारत के प्रायः सभी राज्यों के साथ अमेरिका, इंग्लैण्ड, मारीशस, जर्मनी, श्रीलंका, नेपाल, सिंगापुर, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, सूरीनाम, नीदरलैण्ड आदि देशों की यात्राएं भी वे कर चुके थे। 13 मई, 2018 को इनका देहावसान हो गया था।

काव्य सृजन– बालकवि बैरागी मूल रूप से मालवी के कवि थे। इनके दो मालवी काव्य संकलन 'चटक म्हारा चम्पा' और 'अई जावो मैदान में' प्रकाशित हुए हैं, लेकिन इनकी साहित्य–साधना बहुमुखी है। दरद दीवानी, जूझ रहा हिन्दुस्तान, ललकार, भावी रक्षक देश के, दो टूक, रेत के रिश्ते, वंशज, का कव्यव्य, कोई तो समझे, ओ! अमलतास, आओ बच्चों, गौरव गीत, दादी का कर्ज, मन ही मन, गीत बहार, गीत लहार आदि इनके हिंदी काव्य संकलन हैं। सिंड़ला और गुलियार दो काव्यानुवाद हैं। मनुहार भाभी और बिजूका बाबू दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

काव्य की विविधता– कच्छ का पद यात्री और बर्लिन से बब्बू यात्रा वर्णन हैं तथा डायरी विधा में बैरागी की डायरी प्रकाशित है। शीलवती आग और आलोक का अट्टहास विविध साहित्य है। इनके साथ ही सैकड़ों कविताएं, यात्रा वर्णन, संस्मरण, आलेख आदि देश के विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। कवि–सम्मेलनों में इन्हें अपनी शैली और गायन–क्षमता के कारण विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। छोटी–बड़ी लगभग पच्चीस फिल्मों में बैरागीजी ने गीत भी लिखे हैं।

बैरागीजी की कविताओं में राष्ट्रीय भावनाओं का उन्मेष अधिक दिखलाई पड़ता है। चीन और पाकिस्तान द्वारा किए गए आक्रमणों के समय इनका स्वर अंगार उगलने लगा था, लेकिन शान्ति काल में ये मानवता के पुजारी बने रहे। इनकी मालवी कविताओं में ग्राम्य जीवन के बहुरंगी चित्र उभरे हैं। वर्षा और वसन्त इन्हें प्रिय थे। इन ऋतुओं पर इनकी कई रचनाएं हैं। लोक जीवन के विभिन्न प्रसंगों और नारी–पुरूष संबंधों की अन्तर्मुखी संवेदनाओं को बैरागीजी के काव्य में यत्र–तत्र देखा जा सकता है। इनकी 'पनिहारी', 'बादरवा अईग्या', 'मेहंदी मती लगाओ', 'नणदल', 'लखारा' आदि कविताएं बहुत लोकप्रिय रही हैं।

भाषा–शैली– बालकवि बैरागी ने अधिकतर गीति रचनाएं लिखी हैं, लेकिन अतुकान्त कविताओं का अभाव भी नहीं है। इन्होंने बालगीत भी रचे हैं और गद्य–लेखन भी प्रचुर मात्रा में किया है। इनकी मालवी कविताओं की भाषा मंदसौरी मालवी है। उसमें मेवाड़ी की छाया का आभास होता है। भाषा शुद्ध, संयत, प्रवाहपूर्ण और अर्थ–गाम्भीर्य से युक्त है। इनकी भाषा शौर्य और श्रृंगार दोनों को पूरे वेग से अभिव्यक्त करने से समर्थ है।

निष्कर्ष रूप से बालकवि बैरागी मालवी के बहु–प्रशंसित और अति लोकप्रिय कवि थे। श्रृंगार के रम्य चित्रण से हृदयस्पर्शिता प्राप्त हुई है। अपनी काव्य–सामर्थ्य की विशेषताओं के कारण बैरागीजी मालवी के मानक कवि थे।

रचनाओं का मूलपाठ

1. अई जावो मैदान में

मंगल मोहरत निकर्या जइर्या ठहरो गेहरा ज्ञान में।
मेहनत करवा वारा मरदाँ अई जावो मैदान में।।
एक जुद्ध जीतीग्या रे जोद्धा, चमक गुलामी देईगी।
पण दारिद्दर का भर्या टोपला व्हा लारे न्ही लेईगी।।
तो हिम्मत की तरवारों रे जोद्धा, मती मेलो थीं म्यान में।
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

जूनी नाव जुगत जोड़ी ने भम्मर में थी काऽड़ी
थाँ के हाथ डाँड देई ने पौढ़ीग्या खेलाड़ी
या नाव फँसी न्ही जावे रे नावड्या, फेर पाछी तूफान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

जद मद माँ की आँख्याँ छलकी थाँ ने शीश कटाया
म्हूँ मानूँ हूँ म्हारी माँ बेनाँ ने कुल का रतन लुटाया
पण्, चार चँदरमाँ और लगई लो देई ने पसीनो दान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

गाम गोयरे कल कल नद्दी विफरी विफरी वेई री
थारा गाम की अन् धन् लछमी चौड़े थाले जई री
जल बिन आँसूड़ा ढारे रे धराणी, गोड़ा गोड़ा धान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।

ऊँची मेड़ूयाँ, टूटा छपरा या सब प्रभु की माया
पण, ऊँच–नीच–कंगाल–मातबर, सब एक माँ का जाया
यूँ कई फरक करे रे वेंडा एक जरणी का थान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

चेतो रे बारक, चेतो रे बूढ़ा, चेतो रे मोट्याराँ
ई दन पाछा न्ही आवेगा, जामण में सिंणगाराँ
श्रम का गीत गुँजावो म्हारी बेन्याँ खेत–खदान–अडाण में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

देव देवारा वारा पण्डत! हुणजे रे हेलो म्हारो
ओ मज्जित का काजी मुल्ला! मानूँगा जस थारो
नवा बोल ई जोड़ी दीजो आरती और अजान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

2. जामण हेला पाड़े रे

भारत माँ का सिंघ सपूताँ, सायर सुगणा शूराँ रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।
हाथ हथेरी माथा लेई ने आजादी थीं लेई आया
हाकम बदल्या हुकम बदल्या थाँ था नेजा लेहराया
थाँ का नेजा के रेटे दुनियाँ मीठी नींदा काड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

ऊँचो थाँ को हाथ हमेशा दुनियाँ में रेऽ तो आयो
ओढरदानी आखा जग में जो देसड़लो के वायो
ऊ अन्दाता भोयाँ माँडी ने आज अँगोछा फाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

आजादी ती कौल कर्या था, राजी बाजी राखाँगा
कड़वा मीठा तूरा खाटा हिलमिल ने फल चाखाँगा

वचनाँ ऊपर मरवा बारा, यूँ कई बात वगाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

मँदर मज्जित गौतम गिरजा मरजी वे जो पूजो रे
पण, वाजे जुझारू वाजा जद तो हगरा लारे जूझो रे
कंगाली ने कूण मुछारो पेलाँ आज पछाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

डूँगर खोदो ने समदर होदो, नाचण नद्दयाँ ने रोको रे
कर लो रे श्रम ती सोबत मोबत नीट मिल्यो यो मौको रे
आजादी का बाग बगीचा, यो आलस आज उजाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

खेताँ में नेहराँ की अमृत लेहराँ लाला! आज पोंचई दो रे
दूध के बदले मायड़ ने सब आज पसीनो देई दो रे
पसीना में रोप्या चौपा भला कूँण उपाड़े रे
हेला पांडे रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

3. बाराहमासी

कोयल तू मत बोल बावरी,
म्हारो जी यूँ घबराये–
कदी पियाजी पर आवे?
माघ उतरवा लागो पांचम लाल गुलाबी आई,
चल्या गया परदेस पियाजी हाथ कठे परणाई,
होरी कण के संग खेलूँ फागण म्हाने नहीं भावे,
कदी पियाजी पर आवे?

चैत चली गणगोर पूजवा गोठण करे ठिठोली,
नेण झरामर बरसन लागा भींजी म्हारी चोली,
आई आखातीज वैशाखाँ देख तावड़ो इतरावे,
कदी पियाजी घर आवे?

की जे पियूजी थाँकी याद में हावण लागे हूको,
हींचू कण के संग अकेली या वेराँ मत चूको,
होकड़ली या वीजू म्हाने मास भादवे इरपावे,
कदी पियाजी घर आवे?

लंका जीती और रामजी घरे जानकी लावे,
शरद पूनम की रात चाँदनी दन आसोजी जावे,
का दीवो दिवारी को लागे न्ही बुझ–बुझ जावे,
कदी पियाजी घर आवे?

अगहण आयो ठंड ठियारी ठंडी–ठंडी लागे,
लम्बी–लम्बी रात पोष की काटूँ चूल्हा आगे,

नाचण ने जद जाणू कोयलिया पीतम ने लारे लावे,
कदी पियाजी घर आवे?

4. पनिहारी

नवी उमरिया, नवी डगरिया, नया पिया की नवी प्यारी,
नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जईरी ओ पनिहारी।
मोटी–मोटी आँखों में नानो–नानो काजर आँखों लागे नयी–नवी,
आज नाक में नथ पहरी तो नाक कहे के म्हूँ भी नवी।
नवी माँग में नवा–नवा मोती कंकू की टीली नवी–नवी,
हँसी कामणी तो शरमईगी जुही की कलियाँ नवी–नवी।
झुके नजरिया, दुखे कमरिया, भरे अनोखी सिसकारी,
नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।
नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

नवी गोठणाँ आगे पाछे नवी नणद ने साथ करी,
नवी चूमरी, नवी नेजली, नवो घड़ो ने नवी चरी,
ऊँची मेड़ी लाल किंवाड़ी नवी–नवी पेड्याँ उतरी,
तो नवा पड़ोसी देखण लागा देखे ओ डावड़ा फरी–फरी,
नवो छेवड़ो, नवो बेवड़ो, नवा दरद की दुखियारी,
नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।
नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

नवी चूड़ियाँ जरा–जरा सी तड़की तड़की लागे ओऽ राज,
नवी–नवी राताँ नवी नवी बाताँ चूड़ियाँ के मुख से सुण लो आज,
नवी–नवी लाजो मरे लाज ती देखो लाज ने अई री लाज,
अंग–अंग रस में मदमातो जणे मूल पर चढग्यो ब्याज,
चाले पसीना का रेला रँगीला रस और रंग की पिचकारी,
नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।
नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

कमरा कँदोरो आगे आवे घड़ी घड़ी व्हा हरकावे
चोली अणबोली बोली में न्ही केणो जो उई केई जावे,
उड़े ओढ़नी, लिपटे लहँगो पग ये वे पड़ता जावे,
बिछिया के लारे पगाँ की मेहंदी नवा नवा रसिया गावे,
नवी पनैयाँ काटे रे कन्हैया, नवा–नवा छाला वारी,
नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।
नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

धक–धक हिवड़ो करे हठीलो ज्यूँ पनघट मेरे अईरयो,
कंत पेलाँई से पनघट पर बलद्या ने पाणी पईर्यो,
मीठो जोग मिलायो रामजी, पापी पपैयो यूँ गईर्यो,
गेलो देई दो रे कंत कामणी सूरज आतमणे जईर्यो,
परणी सहेल्याँ पड़ी गुलाबी, लाल–लाल पड़गी क्वाँरी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।
नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

5. मेहंदी मती लगाव

मेहंदी मती लगाव ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में,
म्हारी बैन हुँवारा हाथाँ में,
तू मेहंदी मती लगाव।
जावद की मेहंदी घोरी ने बैठी है गोरी गोरी राताँ में,
जाणुँ हूँ थारा दो ई हाथ है थारा नणदी का हाथाँ में,
जिवड़ो थारो अरझीयों है तरे–तरे की बाताँ में,
पण खम्मा म्हारी बैन,
वाटको परमों तो हरकाव,
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

गाम गोयरें आजादी की अई पोंची है असवारी,
देख–देख ने करे अचंभो भोरा ढारा नर–नारी,
गाव वधावा, चढ़ा चढ़ावा अबे परीक्षा है थारी,
हाथ पकड़ अणी आजादी को,
घर घर में पोंचाव,
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

थारा देस का नवा महल की नींव भ्रावा लागी रे,
अणी नींव में मुट्ठी मुट्ठी मेहनत सबती माँगी रे,
अणी घड़ी में पड्यो सेज पर देख थारो बड़भागी रे,
छैल भमर ने झकझोरी ने,
नारी धरम निभाव!
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

जगाँ–जगाँ काम लागीग्या थारा जामण जाया रे,
मेहनत को मद माथे चमके मस्ती में मस्ताया रे,
होठ हुकावे पाणी चावे ठंडी–ठंडी छाया रे,
जलझारी देई आ वीरा ने,
पालब छन्यो छवाव,
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

मेहनत को मोरत अईग्यो है सोरत बेईगी है भारी,
आज पसीनों अणपूजो है माँगीर्यो पूजा थारी,
तोक फावड़ो, तोक कुदारी पग पग करदे पँतवारी,
मेहंदी फूँदी काजर में,
यूँ मोरत मती चुकाव।
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

खेत–खेत और नद्दी–नद्दी मगरे–मगरे जाणो है,
दिशा–दिशा में दारिद्दर ती जंगी जुद्ध मचाणो है,

हाथ हथरी में छाला को अद्भुत व्याव रचाणो है,
खुशहाली की लाड़ी लई ने,
पेलाँ सास केवाव!
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

6. लेवा पधार्या

थारा दन आया है थारी रातां अम्मर रेणी है,
खूब रचेगा थारी मेहंदी पण दो वाताँ केणी है,
अपणी सुध ले वण से पैलाँ जामण की सुध लैणी है,
न्हीतर सब झूँठा है थारा,
रकड़ी रतन जड़ाव।
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

भावज काले हाँझ कां तवे निकार्या दाँत,
और चली चिन्तारणी म्हने पाछली रात,
गरद उड़ी री गोयरे, घुघरा की रणकार,
दीखे म्हाने आवताँ सेजाँ का सिणगार।
भारी आँगणाँ में जाओ ढोल्यो ढारजो,
आज सेवा पधार्या म्हारा सायबा,
म्हारी सखियाँ से गाराँ गवावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा.....

घरबार लीपो माँडो माँडणा,
आया हठीला थाँके पामणा,
उजरा उजरा व्ही चोखा रँधावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

जीमें तो लाजाँ मरे पीवजी,
भूखा न्ही रेई जा म्हारा जीव जी
म्हारा वीरा ने साथे जिमावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

खेत और खरा पर करे राज व्ही,
भारी थाक्या तका वेग व्ही आज भी,
घी घर को ही व्हाने खवावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

म्हूँ लेवाने आयो यूँ केगा कोन्ही,
व्ही दो दन ढबेगा फेर रेगा कोन्ही,
म्हारा वीरा ने याद देवावजो!

आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

मेहंदी लगावो म्हारे माथो नव्हाओ,
नावण बुलाई म्हारे रकड़ी गुँथाओ,
म्हारा चुड़ला के चूँपा जड़ावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

आज मेड़ी में दिवलो लगावो दरी,
म्हारा वीरा की आदत बताओ दरी,
चाँद डूबे ने म्हारे जगावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

अई जावो मैदान में

(1) मंगल मोहरत निकर्या जइर्या ठहरो गेहरा ज्ञान में।
मेहनत करवा वारा मरदाँ अई जावो मैदान में।।
एक जुद्ध जीतीग्या रे जोद्धा, चमक गुलामी देईगी।
पण दारिद्दर का भर्या टोपला व्हा लारे न्ही लेईगी।।
तो हिम्मत की तरवारों रे जोद्धा, मती मेलो थीं म्यान में।
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश बालकवि बैरागी रचित 'अई जावो मैदान में' शीर्षक से अवतरित है। इसमें कवि ने मेहनत करने वाले योद्धाओं को मैदान में आने का निमंत्रण दिया है, जिसमें उन्होंने बतलाया है कि पराधीनता के युद्ध को तुमने जीत लिया है। अब तुमको कृषि क्षेत्र में चल रहे युद्ध को भी जीतना है।

व्याख्या– कवि कहता है कि शुभ मुहूर्त तो गम्भीर ज्ञान में देखा जाता है, जो परिश्रमी श्रमिक योद्धा हैं, उन्हें मैदान में आकर कार्य करने पर डट जाना चाहिए। एक गुलामी का भारी युद्ध आपने जीत लिया है। अब दरिद्रता को नष्ट करके टोकरी भर–भर के अन्न पैदा करो। अतः हे योद्धाओ! साहस की तलवार को कभी म्यान में मत रखो अर्थात् साहस में कमी नहीं होने दो। हे मेहनत करने वाले योद्धाओ! कृषि के मैदान में आ जाओ।

विशेष– गुलामी की जंजीरें तोड़कर आजादी का युद्ध तो जीत लिया अब आप कृषि के क्षेत्र का युद्ध भी जीतने के लिए आ जाओ।

(2) जूनी नाव जुगत जोड़ी ने भम्मर में थी काऽड़ी
थाँ के हाथ डाँड देई ने पौढ़ीग्या खेलाड़ी
या नाव फँसी न्ही जावे रे नावड्या, फेर पाछी तूफान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया है कि भंवर में फंसी नाव को तुमने निकाला था। अब क्यों चकरा रहे हो? अब फिर नाव तूफान में फंसी जा रही है। अब मैदान में आकर वीरों नाव निकालो।

व्याख्या– कवि कहता है कि जो स्वतंत्रता रूपी नाव डूब रही थी, आप लोगों ने उचित उपाय द्वारा उसे निकाला था। जिसके हाथ में पतवार थी और बड़ा अच्छा नाव खेने वाला केवट (मल्लाह) था। अब यह नाव फिर से तूफान में फंसती जा रही है। अरे केवट! जरा विचार कर। हे मेहनत करने वाले वीरो! हमारे साथ मैदान में आ जाओ।

विशेष– आजादी रूपी नाव तो मल्लाह ने भंवर से निकालकर किनारे लगा दी। अब यह खाद्यान्न की कमी रूपी नाव फिर से भंवर में फंसी जा रही है। हे वीरो! आकर मैदान में इसे भी भंवर से निकालो।

(3) जद मद माँ की आँख्याँ छलकी थाँ ने शीश कटाया
म्हूँ मानूँ हूँ म्हारी माँ बेनाँ ने कुल का रतन लुटाया
पण्, चार चँदरमाँ और लगई लो देई ने पसीनो दान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में बतलाया गया है कि जब–जब मां की आंखों में आंसू आए, तब–तब तुमने दुःख को दूर करने के लिए अपने सिर कलम करा दिए। आपकी मां–बहनों ने अपने कुल का रत्न (पुत्र) लुटा दिया। अब चार पैसे लगाकर पसीना दान करने में क्यों पीछे हट रहे हो। हे वीर श्रमिको! अब कृषि के क्षेत्र में आ जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि जब–जब भारत माता दुःखी हुई और उसकी आंखों में आंसू आए, तब–तब तुमने अपने सिर बलिदान कर मां का दुःख दूर किया था। मेरी और तुम्हारी माताओं और बहनों ने अपने कुल के रत्न (पुत्र) तक निछावर कर दिए। आज चार पैसे लगाकर और पसीना बहाकर फिर से कृषि क्षेत्र में नई क्रांति फैला दो और श्रमिक वीरो! अब कृषि क्षेत्र में आकर डट जाओ।

विशेष– हे श्रमिक वीरो! अपना थोड़ा–सा धन लगाकर कृषि–क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दो।

(4) गाम गोयरे कल कल नद्दी विफरी विफरी वेई री
थारा गाम की अन् धन् लछमी चौड़े थाले जई री
जल बिन आँसूड़ा ढारे रे धराणी, गोड़ा गोड़ा धान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि नदी और गांव की कृषि की बुरी दशा में व्यक्त करता हुआ कहता है कि कुछ करने का अवसर मिला। आओ श्रमिक वीरों मैदान में जा जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि पहले नदी तुम्हारे गांव के बाहर कल–कल करती हुई, नाराज होती हुई इधर–उधर बहती फिरती थी। तुम्हारे गांव का धन बेकार चला जाता था। जल के बिना तुम्हारी पत्नी रूदन मचाती रहती थी और घुटनों–घुटनों पानी में धान रोपती रहती थी। आज हे श्रमिक वीरो! आगे मैदान में आओ और काम करो।

विशेष– देश में नई–नई योजनाएं बन रही हैं। उनमें श्रम लगाकर भरपूर लाभ प्राप्त करो।

(5) ऊँची मेड़ूयाँ, टूटा छपरा या सब प्रभु की माया
पण, ऊँच–नीच–कंगाल–मातबर, सब एक माँ का जाया
यूँ कई फरक करे रे वेंडा एक जरणी का थान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– कवि प्रस्तुत काव्यांश में बतलाता है कि सब एक मां के पुत्र हैं, जिनमें कोई छोटा–बड़ा नहीं है। ऊँची मेढ़ और टूटा छप्पर सब ईश्वर की माया है। यदि कोई विरला एक माता के बारे में विवाद करता है और अन्तर पैदा करता है तो ठीक बात नहीं है।

व्याख्या– कवि कहता है कि किसी की ऊँची मेड़ है तो किसी का टूटा हुआ छप्पर है। यह सब तो प्रभु की माया है। धन से कोई ऊँचा–नीचा या निर्धन और धनी नहीं होता है। ये सब एक ही मां की संतानें हैं। यदि इसमें कोई विरला भी अन्तर करता है तो वह बहुत बड़ा मूर्ख है। सब लोग एक ही मां से जन्म लेते हैं। हे मेहनत करने वाले वीरो! आओ और देशोन्नति के इस परिवर्तन में शामिल हो जाओ।

विशेष– सब ऊंचे और नीचे, धनी और निर्धन, अच्छे और बुरे सब एक ही मां की सन्तानें हैं। इनमें जो भेदभाव दिखलाई देता है वह सब ईश्वर की माया का प्रभाव है।

(6) चेतो रे बारक, चेतो रे बूढ़ा, चेतो रे मोट्याराँ
ई दन पाछा न्ही आवेगा, जामण में सिंणगाराँ
श्रम का गीत गुँजावो म्हारी बेन्याँ खेत–खदान–अडाण में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में सबको चेतावनी दी गई है कि जागो फिर बाद में मां का जागरण आएगा। सम्पूर्ण खेत, खानों में पर्वतों में श्रम के गीत गाओ। हे मेहनत करने वाले वीरो! मैदान में आ जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे बालक, वृद्ध और युवा सभी चैतन्य हो जाओ अर्थात् जाग्रत हो जाओ। यह अवसर मां के शृंगार करने का फिर नहीं मिलेगा। मेहनत के गीत वनों में, खेतों में, खानों में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में गुंजायमान कर दो। हे मेहनत करने वाले वीरो! अब काम करने के लिए मैदान में आ जाओ।

विशेष– कवि सब लोगों को सर्वत्र श्रम करने पर बल दे रहा है, जिससे देश में शीघ्र से शीघ्र उन्नति हो सके।

(7) देव देवारा वारा पण्डत! हुणजे रे हेलो म्हारो
ओ मज्जित का काजी मुल्ला! मानूँगा जस थारो
नवा बोल ई जोड़ी दीजो आरती और अजान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

सन्दर्भ– इस अन्तिम काव्यांश में कवि कहता है कि देवी–देवताओं पंडित और ज्ञानी सभी को बुला लो। मसजिद के काजी और मुल्लाओं को बुला लो। जिसे मानते हो, उसे पुकार लो और आरती एवं अजान में वह नये बोल पैदा कर दो कि श्रमिक वीर मैदान में परिश्रम करने उतर आए।

व्याख्या– कवि कहता है कि देवी–देवताओं, पंडित और ज्ञानियों आदि को सभी को पुकार लो। जिस किसी को भी मानते हो, वह चाहे मसजिद का काजी या मुल्ला हो और उन सबको बतला दो कि वे आरती और अजान में यह नया नारा सुना दो कि श्रम करने वाले वीरो! आज भारत को उन्नति के पथ पर ले जाने के लिए मैदान में उतर आओ।

विशेष– कभी किसी में भेदभाव मत करो और नया नारा 'काम करो, भई काम करो जग में अपना नाम करो।' इस नारे को लेकर मैदान में आ जाओ।

जामण हेला पाड़े रे

(8) भारत माँ का सिंघ सपूताँ, सायर सुगणा शूराँ रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।
हाथ हथेरी माथा लेई ने आजादी थीं लेई आया
हाकम बदल्या हुकम बदल्या थाँ था नेजा लेहराया
थाँ का नेजा के रेटे दुनियाँ मीठी नींदा काड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने भारत मां के सिंह सपूतों, कवियों और शूरवीरों को चेतावनी देते हुए कहा है कि हे वीरो! जागो–जागो।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे भारत के सिंह, सपूतों और कवियों चैतन्य हो जाओ और जाग जाओ। हाथ की हथेली पर प्राण रखकर और शीश अर्पण करके तुमने स्वतंत्रता प्राप्त की। स्वतंत्रता प्राप्ति के फलस्वरूप अधिकारी बदल गया और आज्ञा बदल गई तथा नुकीला अस्त्र (नेजा) भी बदल गया। नेजा के बल पर संसार बदल गया और सब मीठी–मीठी नींद सोने लगे। अब स्वतंत्रता मिलने पर सब लोग जाग उठे।

विशेष– आजादी बड़ी कठिनाई और बलिदान से प्राप्त हुई, अब सब–कुछ बदल गया है। अतः सब लोग जाग जाओ। कहा भी गया है–

''लीक–लीक तीनों चले कायर, कूर और कपूत।
बिना लीक तीनों चले शायर, सिंह, सपूत।।''

(9) ऊँचो थाँ को हाथ हमेषा दुनियाँ में रेऽ तो आयो
ओढरदानी आखा जग में जो देसड़लो के वायो
ऊ अन्दाता भोयाँ माँडी ने आज अँगोछा फाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– भारत की संसार भर में प्रतिष्ठा, दान देने की चर्चा, दुनिया का अन्नदाता आज अंगोछा फटा हुआ पहने है। अब तो सोने वाले जाग जा।

व्याख्या– कवि कहता है कि भारत का हाथ संसार की भलाई के लिए सबसे ऊँचा उठा रहा। सब देश में अपना देश सबसे बड़ा दानी निःस्वार्थ रूप से था। जो सारे संसार का एक समय अन्नदाता था, वहीं आज फटा हुआ अंगोछा पहने हुए है। अब सब लोग जागकर जाग्रत हो जाओ।

विशेष– कवि बतलाता है कि परतन्त्रता के कारण आज विश्व के पर्दे पर तुम्हारी कोई भूमिका नहीं। देश में बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि के कारण जनजीवन त्रस्त है और अन्न का भी अभाव है। अतः आजादी मिल गई है। इसलिए कमर कसकर काम पर डट जाने का जमाना आ गया है।

(10) आजादी ती कौल कर्या था, राजी बाजी राखाँगा
कड़वा मीठा तूरा खाटा हिलमिल ने फल चाखाँगा
वचनाँ ऊपर मरवा बारा, यूँ कई बात वगाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में बतलाया गया है कि आजादी प्राप्त करने का जो वचन दिया था उसे पूरी तरह राजी–खुशी निभाया है। सबने मेलजोल के साथ आजादी प्राप्ति के लिए खट्टा–मीठा, कसैला फल खाया था। वचनों के पालन करने के लिए लोग कुर्बान हो गए और किसी ने बात बिगड़ने नहीं दी। अब आजादी आ जाने पर युवकों सावधान होकर काम कर डट जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का जो वचन कहा था, वह अच्छी प्रकार से पूरा हो गया। उसके लिए सबने हिल–मिलकर दुःख–सुख उठाये थे। बात के धनी लोगों ने अपना वचन निभाने के लिए अपनी कुर्बानी तक दे दी। अब स्वतंत्रता प्राप्त होने पर नव–निर्माण का काम प्रारम्भ हो गया है। हे नवयुवको! नव–निर्माण के लिए कमर कस डट जाने का समय आ गया है।

विशेष– अनेक बलिदान और त्याग के बाद स्वतंत्रता मिली है। अब नव–निर्माण के काम में सब लोग मिल–जुलकर लग जाओ।

(11) मँदर मज्जित गौतम गिरजा मरजी वे जो पूजो रे
पण, वाजे जुझारू वाजा जद तो हगरा लारे जूझो रे
कंगाली ने कूण मुछारो पेलाँ आज पछाड़े रे
हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में बतलाया गया है कि सभी धार्मिक स्थलों की इच्छानुसार पूजा करो। यदि युद्ध का डंका बजे तो सब लोग युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। निर्धनता जो छाई हुई थी उसे आज भगा दो। अतः जाग्रत हो जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि मन्दिर, मसजिद, स्तूप, गिरजाघर जो भी मरजी (इच्छा) हो, उस पर जाकर पूजा कर सकते हो। यदि युद्ध का डंका बजे तो सभी मिलकर एक साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ। कंगाली के कारण जो दीन–हीन दशा बनी हुई थी, आज उसे पछाड़कर (हराकर) दूर भगा दो जिससे देश में समृद्धि छा जाए। हे नवयुवको! उठो। आज नवनिर्माण का समय आ गया है। इसमें बढ़–चढ़कर हिस्सा लो।

विशेष– अब स्वतंत्रता मिल जाने से मन्दिर–मसजिद और गिरजाघर का कोई झगड़ा नहीं रह गया है, जिसकी जहां इच्छा हो वहां वह वैसी ही पूजा–पाठ करे, लेकिन युद्ध छिड़ने पर सब एक साथ मिलकर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। निर्धनता मिटाकर सम्पन्नता की वृद्धि करो। नये जमाने में नव–निर्माण में पूर्ण भाग लो।

(12) डूँगर खोदो ने समदर होदो, नाचण नद्दयाँ ने रोको रे
कर लो रे श्रम ती सोबत मोबत नीट मिल्यो यो मौको रे

आजादी का बाग बगीचा, यो आलस आज उजाड़े रे

हेला पाड़े रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया है कि चाहे कोई भी काम करो, उसमें प्रेमपूर्वक एक–दूसरे का साथ दो क्योंकि यह अवसर बड़ी कठिनाई से मिला है। इस आजादी के बाग–बगीचे में कभी आलस्य मत करो। आज नवयुग के निर्माण का अवसर मिला है। नवयुवकों मिलकर नव–निर्माण करो।

व्याख्या– कवि कहता है कि चाहे समुद्र को खोदो, चाहे डूंगर को खोदो, चाहे नदियों पर बांध–बांधकर उसका जल रोको। श्रम की संगति जितनी हो सके उतनी कर लो। यह प्रेम करने का अवसर बड़ी कठिनाई से मिला है। अतः इसे हाथ से मत जाने दो। स्वतंत्रता का जो बाग–बगीचा है, उसे आलस्य में पड़कर नष्ट मत करो। अब नवयुग के निर्माण के कार्य में नवयुवकों कमर कसकर डट जाओ।

विशेष– चाहे मार्ग हेतु समुद्र खोदो, नदियों पर बांध बांधो, यह अवसर बड़ी कठिनाई से मिला है। सब लोग प्रेमपूर्वक मिल–जुलकर परिश्रम करो। स्वतंत्रता के बाग–बगीचों को आलस्य से मत उजाड़ो। अब नवयुग के निर्माण में नवयुवकों डट जाओ।

(13) खेताँ में नेहराँ की अमृत लेहराँ लाला! आज पोंचई दो रे

दूध के बदले मायड़ ने सब आज पसीनो देई दो रे

पसीना में रोप्या चौपा भला कूँण उपाड़े रे

हेला पांडे रे जामण थाँ ने जामण हेला पाड़े रे।।

सन्दर्भ– कवि कहता है कि हे लाला! आज खेतों में अमृत की फसलों की पौध बो दो। माता के दूध का बदला चुकाने के लिए आज अपना पसीना बहा दो। जो पौधा पसीने से बोया जाता है, वह भला कैसे नहीं उपजेगा। आज नवयुग के नव–निर्माण में नवयुवकों लग जाओ।

व्याख्या– कवि कहता है कि भारत मां के लाड़लो! लाला, आज अमृत की फसलें रोप दो। मां के दूध के बदले में आज तुम अपने श्रम से बदला चुका दो। जो पौधा श्रमपूर्वक रोपा जाता है, भला वह कैसे नहीं उपजता है। अब नवयुग का निर्माण हो रहा है कि हे नवयुवको! नवनिर्माण करो।

विशेष– हे भारत माता के प्यारे पुत्रो! अमृत की फसलें रोप दो। मां के दूध के बदले तुम परिश्रम के पसीने से भी बदला चुका दो। जो पौधा पसीने से रोपा जाता है, वह कभी बिना उगे नहीं रहता है।

बाराहमासी

(14) कोयल तू मत बोल बावरी,

म्हारो जी यूँ घबराये–

कदी पियाजी पर आवे?

माघ उतरवा लागो पांचम लाल गुलाबी आई,

चल्या गया परदेस पियाजी हाथ कठे परणाई,

होरी कण के संग खेलूँ फागण म्हाने नहीं भावे,

कदी पियाजी पर आवे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया है कि माघ का महीना समाप्त हो गया। वियोगिनी प्रीतम के बिना किस प्रकार घबरा रही है, उसी का चित्रण है।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे बावली कोयल! तू मत बोल क्योंकि हमारा दिल घबड़ाता है, न जाने हमारे प्रीतम कब घर आवेंगे?

माघ मास समाप्त होने वाला है और फाल्गुन महीना आ गया है। लाल–गुलाबी महीना आ गया। विवाह होते हुए प्रीतम विदेश चला गया। हाय! कैसे समय व्यतीत है। होली किसके संग खेलूँ, फागुन मुझे अच्छा नहीं लगता है। प्रीतम कब आएंगे? पता नहीं।

विशेष– कब प्रीतम आएंगे, मन घबरा रहा है।

(15) चैत चली गणगोर पूजवा गोठण करे ठिठोली,

नेण झरामर बरसन लागा भींजी म्हारी चोली,

आई आखातीज वैशाखाँ देख तावड़ो इतरावे,

कदी पियाजी घर आवे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने कहा गणगौर आने पर सहेली मजाक करती है। आंखों से पानी झरझर झरता है। आंसुओं से चोली भी भीग गई। बैसाख के महीने में कड़ी धूप पड़ रही है और आखातीज आ गई। प्रीतम घर कब आएंगे?

व्याख्या– कवि कहता है कि चैत का महीना आ गया। सहेलियां गणगौर की पूजा कर रही हैं और मजाक करती हैं। आंखों से आंसू बरसने लगते हैं। आंसुओं की अधिकता से मेरी चोली भीग जाती है। बैसाख के आने पर आखातीज आ गई है और धूप बहुत तेज पड़ रही है। प्रिया के बिना दिल घबराता है। मैं क्या करूँ?

विशेष– विभिन्न महीनों में विरहिणी की क्या दशा होती है? उसे कवि ने बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है।

(16) की जे पियूजी थाँकी याद में हावण लागे हूको,

हींचू कण के संग अकेली या वेराँ मत चूको,

होकड़ली या वीजू म्हाने मास भादवे इरपावे,

कदी पियाजी घर आवे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि सावन–भादों में विरहिणी की क्या दशा होती है? उसका कवि ने अति सुंदर वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि श्रावण मास में प्रीतम की याद करते–करते उसका मन सूखने लगता है। मैं कणों के साथ–साथ झूलती हूँ। अकेली होने के कारण मैं बहुत अधिक दुःखी होने लगती हूं। भादों में बिजली की तरह सौत छिनाल मुझे डराती है। न जाने पियाजी कब घर आएंगे।

विशेष– सावन–भादों में विरहिणी को झूला झूलने के समय प्रीतम की याद सताती है और भादो में चमकती हुई बिजली सौत की तरह डराती है। बेचारी विरहिणी बड़ी दुःखी है। उसे पता ही नहीं है कि उसके प्रीतम कब घर आएंगे?

(17) लंका जीती और रामजी घरे जानकी लावे,

शरद पूनम की रात चाँदनी दन आसोजी जावे,

का दीवो दिवारी को लागे न्ही बुझ–बुझ जावे,

कदी पियाजी घर आवे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में बतलाया गया है कि रामजी लंका विजय कर सीता के साथ क्वार मास में शरद पूर्णिमा की रात में वापस लौटे, कार्तिक मास में दीपावली आ गई। मेरा मनरूपी दीपक बुझ–बुझ जाता है कि प्रीतम न जाने कब घर आएंगे?

व्याख्या– कवि कहता है कि लंका विजय करके श्रीराम जानकी को लेकर घर वापस अयोध्या आए। उस समय कार्तिक मास की पूर्णिमा की शरद रात थी। चांदनी रात में चन्द्रमा अपनी पूर्ण चांदनी के साथ खिलखिला रहा था। कार्तिक का महीना दीपावली का त्योहार आ गया। लेकिन मेरा छोटा–सा दिल रूपी दीपक बुझ–बुझ जाता है। न जाने कब प्रीतम घर आएंगे।

विशेष– शरद पूर्णिमा को श्रीराम जी सीता के साथ अयोध्या लौटे और कार्तिक मास में दीपावली घर–घर में मनाई गई, परन्तु वियोगिनी के मन का छोटा–सा दीपक बुझ–बुझ जाता है अर्थात् लौटने की आशा समाप्त होती जाती है क्योंकि उसे पता नहीं है कि प्रीतम न जाने कब घर वापस आएंगे?

(18) अगहण आयो ठंड ठियारी ठंडी–ठंडी लागे,

लम्बी–लम्बी रात पोष की काटूँ चूल्हा आगे,

नाचण ने जद जाणू कोयलिया पीतम ने लारे लावे,

कदी पियाजी घर आवे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बताया कि अगहन और पूस का ठण्डा महीना जा गया है। उसमें विरहिणी की क्या दशा है। उसका कवि ने बड़ा यथार्थ और सजीव चित्रण किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि अगहन का महीना आ गया और धीरे–धीरे ठण्ड बढ़ती जा रही है। पूस मास की लम्बी–लम्बी रात में चूल्हे के आगे बैठकर काट रही हूँ कि ठण्ड को दूर करने वाला कोई नहीं है। यदि कोयलिया प्रीतम को मेरे पास ला सके तो मैं नर्तकी के समान नाचने लगूं परन्तु न जाने प्रीतम कब आएंगे?

विशेष– अगहन और पूस के महीने में ठण्ड अधिक बढ़ जाती है और वियोगिनी पति के वियोग में शीत से कांपने लगती है।

पनिहारी

(19) नवी उमरिया, नवी डगरिया, नया पिया की नवी प्यारी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जईरी ओ पनिहारी।

मोटी–मोटी आँखों में नानो–नानो काजर आँखों लागे नयी–नवी,

आज नाक में नथ पहरी तो नाक कहे के म्हूँ भी नवी।

नवी माँग में नवा–नवा मोती कंकू की टीली नवी–नवी,

हँसी कामणी तो शरमईगी जुही की कलियाँ नवी–नवी।

झुके नजरिया, दुखे कमरिया, भरे अनोखी सिसकारी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।

नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बताया कि नई उम्र में नई नगरी में नई–नई विवाहिता पनघट पर पानी भरने जाती है। उसका कवि ने बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि नई अवस्था में नये मार्ग में नये पिया (प्रीतम) की नई–नई प्यारी, नई नगरी में नई गगरी लेकर पनघट पर नई पनिहारी गई। उसकी बड़ी–बड़ी आंखों में थोड़ा–थोड़ा (छोटा–छोटा) काजल नया–नया लगा हुआ दिखलाई दे रहा था। नाक में आज नथुनियां पहनी हुई थीं तो नाक कह रही थी कि मैं भी नई–नई हूँ। नई मांग, नए–नए मोती और कुंकम की बिन्दी नई–नई थी। जब वह कामिनी हँसी तो जुही की नई–नई कली भी शर्माने लगी। उसकी नजरें झुकी हुई थीं क्योंकि दुःख के मारे वह बेचारी अनोखी सिसकियां भर रही थी। नई नगरी में नई गगरी लेकर पनघट पर नई–नई पनिहारी पानी भरने आई थी।

विशेष– पुनरुक्ति अलंकारों के प्रयोग और शब्दों के बार–बार प्रयोग से एक नई ध्वन्यात्मकता प्रकट हो रही है। कवि का श्रृंगारिक वर्णन और नई पनिहारिन का नई गगरी लेकर पनघट पर पानी भरने जाने का बड़ा मनोहारी चित्रण किया है।

(20) नवी गोठणाँ आगे पाछे नवी नणद ने साथ करी,

नवी चूमरी, नवी नेजली, नवो घड़ो ने नवी चरी,

ऊँची मेड़ी लाल किंवाड़ी नवी–नवी पेड्याँ उतरी,

तो नवा पड़ोसी देखण लागा देखे ओ डावड़ा फरी–फरी,

नवो छेवड़ो, नवो बेवड़ो, नवा दरद की दुखियारी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।

नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने नई सखियों और ननद के पनघट जाते और पानी भरते समय नई पनिहारिन का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि नई पनिहारिन के आगे–पीछे सखियां थीं और वह ननद के साथ जा रही थी। उसकी नई चूंदरी, नई रस्सी, नया घड़ा और नई गगरी थी। ऊंची मेड़नी बनी थी जिसमें लाल किवाड़ लगे थे और नई–नई सीढ़ियां उतरने के लिए बनी हुई थी। नया पड़ोसी लड़का उस नई–नवेली को आंखें फाड़–फाड़कर देखने लगा। उस नई दुल्हन का नया घूंघट, नया दर्द और बेचारी वह नई दुखियारी थी। नई नगरी में नई गगरी लेकर पनघट पर नई–नई पनिहारी पानी भरने आई थी। उसकी बाली (नई) अवस्था और नयी डगरिया (छोटा मार्ग) थी।

विशेष– नई नवेली दुल्हन के लिए ससुराल में सब कुछ नया था और पड़ोसी नये लड़के ने प्रथम बार उसे देखा था। वह नवयुवती अत्यन्त सुन्दर और कमनीय थी।

(21) नवी चूड़ियाँ जरा–जरा सी तड़की तड़की लागे ओऽ राज,

नवी–नवी राताँ नवी नवी बाताँ चूड़ियाँ के मुख से सुण लो आज,

नवी–नवी लाजो मरे लाज ती देखो लाज ने अई री लाज,

अंग–अंग रस में मदमातो जणे मूल पर चढग्यो ब्याज,

चाले पसीना का रेला रँगीला रस और रंग की पिचकारी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।

नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने उस नई नवेली दुल्हन के रूप–सज्जा का वर्णन सजीवता से किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि उस नई नवेली दुल्हन की नई–नई चूड़ियाँ जरा–जरा सी झलक दिखा रही थीं। नई–नई रातों में नई–नई बातों में चूड़ियों की झंकार अपने मुख से सुना रही थी। नई–नई लाजवन्ती लाज मारे लजा सी रही थी। उसके प्रत्येक अंग से रस झलक रहा था और उसकी मदमाती चाल मस्त बना रही थी। उसके रूप–सौंदर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उसके रूप पर आभूषण ऐसे शोभायमान हो रहा था जैसे मूलधन पर ब्याज बढ़ता है। उसे चलने से पसीना ऐसा छूट रहा था जैसे रंगीन रस का रेला और रंगों की पिचकारी छूट रही हो। नई नगरी में नई गगरी लेकर नई पनिहारिन पनघट से जल लेने जा रही थी।

विशेष– नई नवेली दुल्हन के लिए रात नई पनघट की डगर, नई रस्सी और नई गगरी आदि सब बातें नई थीं। कवि ने श्रृंगार रस और काव्यात्मक सरस शैली में बड़ा यथार्थ और सजीव एवं हृदयग्राही वर्णन किया है।

(22) कमरा कँदोरो आगे आवे घड़ी घड़ी व्हा हरकावे

चोली अणबोली बोली में न्ही केणो जो उई केई जावे,

उड़े ओढ़नी, लिपटे लहँगो पग ये वे पड़ता जावे,

बिछिया के लारे पगाँ की मेहंदी नवा नवा रसिया गावे,

नवी पनैयाँ काटे रे कन्हैया, नवा–नवा छाला वारी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।

नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने नई पनिहारिन के चाल–ढाल और उसके कुछ आभूषणों का विवरण किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि कमर पर रखी हुई गगरिया कभी आगे झुकती कभी पीछे झुकती है। प्रत्येक पल उसे परेशान करती है। नई नवेली की चोली बड़ी अनोखी शोभायुक्त और उसकी बोली बड़ी मधुर है। जब वह उई कहती है तब तो कुछ कहा भी नहीं जा सकता। हवा के चलने से जब उसकी ओढ़नी लहंगे से लिपट जाती है और उसके पैर (कदम) उल्टे–सीधे पड़ते हैं और बिछियों की लहरदार आवाज सुनकर नए–नए रसिया वह पड़ोसी लड़का गाता है। नई जूतियां हे कृष्णजी, मुझे काटती हैं और मेरे पैरों में नया–नया छाले पड़ गए हैं। नई नगरी में नई गगरी लेकर पनघट पर नई–नई पनिहारिन पानी भरने जाती है।

विशेष– कवि ने नई दुल्हन की चुनरी हवा में उड़कर लहंगे पर लिपटने तथा नई जूतियों के पहनने से पैरों में पड़े छालों का बड़ा सजीव चित्रण किया है।

(23) धक–धक हिवड़ो करे हठीलो ज्यूँ पनघट मेरे अईरयो,

कंत पेलाँई से पनघट पर बलद्या ने पाणी पईर्यो,

मीठो जोग मिलायो रामजी, पापी पपैयो यूँ गईर्यो,

गेलो देई दो रे कंत कामणी सूरज आतमणे जईर्यो,

परणी सहेल्याँ पड़ी गुलाबी, लाल–लाल पड़गी क्वाँरी,

नवी नगरी में नवी गगरी ले, पनघट जई री ओ पनिहारी।।

नवी उमरिया, नवी डगरिया.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत अन्तिम काव्यांश में कवि कहता है कि पनघट पर जाने पर उसका हृदय धड़कने लगता है। प्रीतम के कहने पर विवाहिता पनघट पर बलात् जाती है। हे रामजी! आपने बड़ा मीठा योग पापी पपैया से मिलाया है। जैसे वह गाता है, वैसे मैं भी गाती हूँ। प्यारे प्रीतम की पत्नी को रास्ता दे दो अब सूर्य पश्चिम में अस्त होने जा रहा है। सहेलियां प्रसन्न हो रही हैं और कुंवारी लड़कियां प्रसन्न हो रही हैं कि नई गगरी लेकर नई नगरी में नई पनिहारिन आई है।

व्याख्या– कवि कहता है कि पनघट पर जाते हुए भय के कारण मेरा हृदय धक्–धक् करता है और जैसे–जैसे पनघट मेरे पास आता–जाता है वैसे–वैसे मेरा हृदय धड़क कर अजीब–सी हरकत करने लगता है। प्रीतम पनघट से लौटते समय मुझे पलटकर भी नहीं देखते हैं कि विवाहिता पर क्या–क्या गुजरती है। हे रामजी! आपने बड़ा मधुर योग मिलाया है। पापी पपैया भी मेरे ही समान गरराता है। प्रीतम की प्यारी कामिनी को रास्ता दे दो क्योंकि सूर्य अब पश्चिम दिशा में अस्त होने जा रहा है। सहेलियां पीछे पड़ गई हैं और कुंवारी लड़कियां प्रसन्न हो–होकर मजाक कर रही हैं। नई नगरी में नई गगरी लेकर पनघट पर पानी भरने नई पनिहारी आई है।

विशेष– कवि ने मार्ग से लेकर पनघट और पनघट पर उससे सहेलियों तथा कुंवारी लड़कियों द्वारा बड़ा मनमोहक चित्रण किया है जो शृंगार रस से परिपूर्ण है।

मेहंदी मती लगाव

(24) मेहंदी मती लगाव ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में,

म्हारी बैन हुँवारा हाथाँ में,

तू मेहंदी मती लगाव।

जावद की मेहंदी घोरी ने बैठी है गोरी गोरी रातॉं में,

जाणुँ हूँ थारा दो ई हाथ है थारा नणदी का हाथाँ में,

जिवड़ो थारो अरझीयों है तरे–तरे की बातॉं में,

पण खम्मा म्हारी बैन,

वाटको परमों तो हरकाव,

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश 'मेहंदी मती लगाव' शीर्षक से अवतरित है। इसमें कवि कहता है कि एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! मेरे क्वारे सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा। जाने (प्रस्थान) की चांदनी रातों में तू मेहंदी घोरने बैठी है। मैं जानती हूं कि ननद तेरे दो ही हाथ हैं परन्तु मेरे मन में विभिन्न प्रकार की बातें गूंजती हैं। हे मेरी बहन! क्षमा कर। कटोरा उस ओर सरका दे और मेरे गोरे–गोरे क्वारे हाथों में मेहंदी मत लगा।

व्याख्या– कवि कहता है कि एक सखी अपनी ननद से अपने गोरे–गोरे तथा क्वारे हाथों में मेहंदी न लगाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि जाते समय अर्थात् स्वतंत्रता संग्राम में प्रस्थान करते समय गोरी–गोरी चांदनी रातों में तूने मेहंदी घोली है। मैं अच्छी प्रकार जानती हूं कि मेरी ननद के दो ही हाथ हैं। लेकिन मेरे मन में विभिन्न प्रकार की बातें रह–रहकर उठ रही हैं। अतः हे मेरी बहन! तू मुझे क्षमा कर और मेहंदी का कटोरा उस ओर हटाकर रख दे। हे बहन! तू मेरे रूपवान हाथों में मेहंदी मत लगा।

विशेष– रमणी के मन में विभिन्न प्रकार की आशंकाएं उत्पन्न हो रही हैं जबकि उसके स्वामी प्रस्थान करने वाले हैं। वह अपनी ननद से प्रार्थना करती है कि वह उसके रूपहले गोरे हाथों में मेहंदी न लगाए क्योंकि उसकी इच्छा नहीं है। अतः मेहंदी का कटोरा एक ओर हटाके रख दे।

(25) गाम गोयरें आजादी की अई पोंची है असवारी,

देख–देख ने करे अचंभो भोरा ढारा नर–नारी,

गाव वधावा, चढ़ा चढ़ावा अबे परीक्षा है थारी,

हाथ पकड़ अणी आजादी को,

घर घर में पोंचाव,

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में स्वतंत्रता आने वाली है। गांव–गांव में बधाई गीत गाए जा रहे हैं। बहन मेरे हाथों में मेहंदी मत लगा।

व्याख्या– कवि कहता है कि गांव और कस्बों में भी आजादी की सवारी आ पहुंची है। उसे देख–देखकर सारे नर और नारियां आश्चर्य में पड़ गए हैं। गांव–गांव में बधाइयों के गीत गाए जा रहे हैं। आप लोगों की परीक्षा की घड़ी है। अतः आजादी की देवी पर जो कुछ भी चढ़ावा तुम चढ़ा सकते हो, अवश्य चढ़ाओ। आजादी का हाथ पकड़कर उसके सन्देश को घर–घर में जाकर पहुंचाओ। हे मेरी प्यारी बहन! मेरे सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा।

विशेष– आजादी की लहर गांव–गांव और प्रत्येक कस्बे और नगर में पहुंच रही है। अतः सबका हाथ पकड़–पकड़कर सबके घरों में स्वतंत्रता का सन्देश पहुंचाओ।

(26) थारा देस का नवा महल की नींव भ्रावा लागी रे,

अणी नींव में मुट्ठी मुट्ठी मेहनत सबती माँगी रे,

अणी घड़ी में पड्यो सेज पर देख थारो बड़भागी रे,

छैल भमर ने झकझोरी ने,

नारी धरम निभाव!

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– इस पद्यांश में कवि देश की नींव की मजबूती के लिए सबका सहयोग चाहता है। प्रीतम को झकझोर के उठा दो और नारी के धर्म का निर्वाह करो।

व्याख्या– कवि कहता है कि संपूर्ण राष्ट्र के नए महल की नींव भरने लगी है। यह नींव सबकी मिली–जुली दो–दो मूठ मिट्टी अर्थात् सबके परिश्रम से भरी जानी है। हे सखी!

देख तेरा छैल–छबीला पति इस अवसर पर भी सेज पर पड़ा हुआ है। तू उठकर उसको झकझोर कर राष्ट्र निर्माण के लिए उठा और नारी के धर्म को निभा। हे सखी! तू मेरे सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा।

टिप्पणी

विशेष– राष्ट्र–निर्माण की नींव में मिल–जुलकर सब लोग अपना योगदान करो क्योंकि यह तो सबका परम पुनीत कर्तव्य है। दूसरे प्रत्येक नारी का धर्म है कि अपने पति को कर्तव्य मार्ग की ओर उन्मुख करे। भोग–विलास में ही उसे व्यर्थ फंसा न रहने दे।

(27) जगाँ–जगाँ काम लागीग्या थारा जामण जाया रे,

मेहनत को मद माथे चमके मस्ती में मस्ताया रे,

होठ हुकावे पाणी चावे ठंडी–ठंडी छाया रे,

जलझारी देई आ वीरा ने,

पालब छन्यो छवाव,

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया है कि सर्वत्र क्या–क्या काम हो रहा है। तुम्हारा सगा भाई लगा हुआ है। तुम भी श्रम करो और पसीने से जब तुम्हारे होंठ सूख जाएं तब तुम्हें शीतल छाया बहुत अच्छी लगेगी। अपने भाई को बहन पानी देने आएगी।

व्याख्या– कवि कहता है कि जहां–जहां पर काम लगा हुआ है, वहीं पर तुम्हारा सगा भाई काम कर रहा है। काम के कारण पसीने की बूंदें माथे पर चमक रही हैं और वह मस्ती में मस्त होकर काम में लगा हुआ है। श्रम की अधिकता के कारण उसके होंठ सूख रहे हैं। वह पानी की इच्छा कर रहा है। ठण्डी–ठण्डी छाया उसे बड़ी अच्छी लग रही है। उसी समय अपने भाई को पानी पिलाने के लिए मटकी लेकर उसकी बहन आ गई। वह पुआल का छप्पर छबवा रही थी। हे मेरी सखी! तू मेरे गोरे–गोरे सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा, मुझे भी राष्ट्र निर्माण के कार्य में भाग लेने दे।

विशेष– राष्ट्र निर्माण के कार्य में सभी लोग अपनी यथाशक्ति से सहयोग कर रहे हैं। परिश्रम का फल सदा मीठा होता है।

(28) मेहनत को मोरत अईग्यो है सोरत बेईगी है भारी,

आज पसीनों अणपूजो है माँगीर्यो पूजा थारी,

तोक फावड़ो, तोक कुदारी पग पग करदे पँतवारी,

मेहंदी फूँदी काजर में,

यूँ मोरत मती चुकाव।

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि कह रहा है कि श्रम करने का अवसर आ गया है। श्रम की सर्वत्र प्रशंसा हो रही है। जिस प्रकार गंगा लाने से भागीरथ की पूजा हुई थी, आज उसी प्रकार श्रम की पूजा हो रही है। फावड़ा और कुल्हाड़ी लेकर सम्पूर्ण मार्ग को एकसार (समान) बना दो। मेहंदी और काजल के चक्कर में आकर तू अवसर से मत चूक। हे सखी! तू मेरे गोरे–गोरे हाथों में मेहंदी मत लगा।

व्याख्या– कवि कहता है कि श्रम का शुभ मुहूर्त आ गया है और श्रम की बड़ी भारी प्रसिद्धि हो रही है। आज पसीने की पूजा हो रही है, जैसे पहले भागीरथ गंगा को लाये थे तब उनकी पूजा हुई थी। फावड़ा और कुल्हाड़ी हाथ में लेकर सारे मार्ग को समतल बना दे। मेहंदी, बिन्दी और काजल के चक्कर में फंसकर तू व्यर्थ मुहूर्त को मत जाने दे। हे सखी! मेरे गोरे–गोरे हाथों में मेहंदी मत लगा। मुझे भी राष्ट्र निर्माण के कार्यों में भाग लेने दे।

विशेष– राष्ट्र निर्माण का शुभ अवसर आ गया है और चारों ओर श्रम की ही प्रसिद्धि छायी हुई है। आज श्रम के कारण निकले हुए पसीने की पूजा हो रही है। जैसे प्राचीनकाल में भागीरथ के गंगा लाने पर पूजा हुई थी। फावड़ा और कुल्हाड़ी हाथ में लेकर तू कार्य में लग जा। इस मेहंदी, बिन्दी और काजल के चक्कर में मत पड़ और राष्ट्र–निर्माण में हाथ बंटा।

(29) खेत–खेत और नद्दी–नद्दी मगरे–मगरे जाणो है,

दिशा–दिशा में दारिद्दर ती जंगी जुद्ध मचाणो है,

हाथ हथरी में छाला को अद्‌भुत व्याव रचाणो है,

खुशहाली की लाड़ी लई ने,

पेलाँ सास केवाव!

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– खेत–खेत और नदी–नदी में ऊंची जो भूमि है और चारों ओर गरीबी है। हाथ की हथेली में छाला है और विवाह कर रहा है। खुशहाली में सास ने दुल्हन को कवाब बना दिया।

व्याख्या– कवि का कथन है कि खेतों में, नदियों में तथा मार्गों में जो ऊंची भूमि है तथा प्रत्येक गली और घर–घर में गरीबी युद्ध मचा रही है क्योंकि अंग्रेजों ने किसानों तथा मजदूरों का बहुत अधिक शोषण किया है। जिस व्यक्ति के हाथ की हथेली में छाला पड़ा है, वह भी अनोखा विवाह कर रहा है। खुशहाली में नई दुल्हन को सास ने पेरकर कवाब बना दिया है। हे सखी! तू मेरे गोरे–गोरे और सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा।

विशेष– कवि ने ग्रामीणों की यथार्थ दशा और सामाजिक बुराइयों पर कुठाराघात किया है।

(30) थारा दन आया है थारी रातां अम्मर रेणी है,

खूब रचेगा थारी मेहंदी पण दो वाताँ केणी है,

अपणी सुध ले वण से पैलाँ जामण की सुध लैणी है,

न्हीतर सब झूँठा है थारा,

रकड़ी रतन जड़ाव।

तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत अन्तिम काव्यांश में बतलाया गया है कि आजादी आ जाने से क्या प्रभाव पड़ेगा? उसका ही वर्णन निम्न प्रकार है –

व्याख्या– कवि कहता है कि अब हमारा–तुम्हारा रात–दिन आ गया है अर्थात् जीवन में परिवर्तन हो गया है। अब तुम्हारी मेहंदी खूब रचेगी फिर दो पैसों की क्या बात है? अपनी खबर ली है, अब दूसरों की खबर रखनी है। संसार के सब नाते–रिश्ते झूठे हैं। तुम्हारे विशेष आभूषणों में रत्न जड़वा दूंगा। तू सखी मेहंदी मत लगा। हमें सुन्दर हाथों में मेहंदी लगानी है।

विशेष– स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद देश, नगर और ग्रामों तथा वहां की जनता की कायापलट हो गई है।

लेवा पधार्या

(31) भावज काले हाँझ कां तवे निकार्या दाँत,
और चली चिन्तारणी म्हने पाछली रात,
गरद उड़ी री गोयरे, घुघरा की रणकार,
दीखे म्हाने आवताँ सेजाँ का सिणगार।
भारी आँगणाँ में जाओ ढोल्यो ढारजो,
आज सेवा पधार्या म्हारा सायबा,
म्हारी सखियाँ से गाराँ गवावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में ननद अपनी भाभी से कह रही है कि मेरे पतिदेव आने वाले हैं। आप उनके स्वागत–सत्कार की तैयारियां कर लो। इस बात को कवि ने समझाया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि ननद अपनी भाभी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे भाभी! साँझ होने वाली है फिर तू क्या करेगी? मेरी रात–रात चिन्ता दूर करने वाली हवा चली थी। मेरे पास धूल उड़कर आई। घुंघरू की झनकार होने लगी। मुझे मेरे पतिदेव आते हुए दिखाई दिए। अतः तू सेज को संभालकर उसका शृंगार कर दे। भाभी आंगन में आकर पलंग बिछाओ क्योंकि आज मुझे लेने के लिए मेरे साहबजी आएंगे। हमारी सखियों को बुलाकर गाली वाले गीत गवाओ क्योंकि आज मुझे लिवाने के लिए मेरे पतिदेव आएंगे।

विशेष– ननद अपनी भाभी से अपने पतिदेव के आगमन की सूचना दे रही है कि पिछली रात चिन्ता दूर करने वाली उनके पैरों की धूल मेरे पास आई और मेरे घुंघरू बजने लगे। अतः आप उनके आगमन पर स्वागत करने के लिए मेरी सेज सजा दो और आंगन में पलंग बिछा दो तथा मेरी सखियों को बुलाकर गाली वाले गीत गवाना शुरू कर दो। तत्कालीन प्रथा का सजीव चित्रण है।

(32) घरबार लीपो माँडो माँडणा,
आया हठीला थाँके पामणा,
उजरा उजरा व्ही चोखा रँधावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में भाभी से ननद कह रही है कि आप घरबार आदि लीप–पोतकर रखना। वह हारा थका हुआ आएगा तथा बड़ा जिद्दी है। उसके लिए आप साफ–साफ चावल रांधना क्योंकि भाभी मेरा साहब मुझे आज लेने के लिए आएगा। भाभी जाओ, सारी तैयारियां पूरी करो।

व्याख्या– कवि कहता है कि ननद अपनी भाभी से कह रही है कि हे भाभी! घरबार आदि लीप–पोतकर अच्छा बनाकर रखो क्योंकि हारा–थका–मांदा मेरा पति आएगा। वह बड़ा हठीला (जिद्दी) है। अच्छे–अच्छे साफ–साफ चावल रांधना क्योंकि आज मुझे लिवाने मेरा साहब आएगा। इसलिए भाभी, आंगन में जाओ और उनके स्वागत की तैयारियां करो।

विशेष– दामाद के आने पर भी गांवों में विशेष तैयारियां की जाती थीं। उन्हीं का वर्णन है।

(33) जीमें तो लाजाँ मरे पीवजी,

भूखा न्ही रेई जा म्हारा जीव जी

म्हारा वीरा ने साथे जिमावजो!

आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,

भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कहा गया है कि भोजन करते समय लज्जा से कहीं मेरा प्रीतम भूखा न रह जाए। इसलिए मेरे भैया के साथ ही उसे भोजन कराना।

व्याख्या– कवि कहता है कि ननद अपनी भाभी से कह रही है कि भोजन करने में शायद मेरे प्रीतम को शर्म आए और वह बेचारा जीव कहीं भूखा न रह जाए। इसलिए मेरे भाई के साथ–साथ उसे भोजन कराना। आज मुझे लिवाने के लिए मेरा साहबजी आएगा। भाभी आज आंगन में जाकर तैयारियां करो।

विशेष– गांव में हो या शहर में नये दामाद को खाने में शर्म तो आती ही है। अतः ननद भाभी से कहती है कि मेरे भाई के साथ ही मेरे पति को भोजन कराना।

(34) खेत और खरा पर करे राज व्ही,

भारी थाक्या तका वेग व्ही आज भी,

घी घर को ही व्हाने खवावजो!

आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,

भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में ननद भाभी को अपने पति की हैसियत और भोजन के स्वभाव के संबंध में बतला रही है–

व्याख्या– कवि कहता है कि ननद अपनी भाभी को बता रही है कि मेरा पतिदेव खेत और खलिहान का मालिक है। भाभी आज भी वह हारा–थका होगा। उसे घर का घी ही खिलाना, क्योंकि आज मेरा साहब मुझे लेने आएगा। हे भाभी! आंगन में जाकर आप तैयारी करो।

विशेष– ननद भाभी को अपने पति की सम्पन्नता के संबंध में बतलाती है।

(35) म्हूँ लेवाने आयो यूँ केगा कोन्ही,
व्ही दो दन ढबेगा फेर रेगा कोन्ही,
म्हारा वीरा ने याद देवावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– भाभीजी वह विदा कराने आया है। दो दिन रूककर चला जाएगा फिर तुम मेरे भाई को मेरी याद दिला देना। आज लेने आया है हमारा पतिदेव! भाभी आंगन में जाओ और तैयारियां करो।

व्याख्या– ननद कहती है कि वह मुझे लिवाने आया है। अब क्या किया जाए? दो दिन रहकर फिर चला जाएगा। तुम मेरे भाई को मेरी याद दिला देना। आज मेरा साहब मुझे लेने आया है। भाभी तुम आंगन में जाकर तैयारी करो।

विशेष– अभी मेरी विदाई कर दो फिर मेरे भाई को मेरी याद दिला देना, वह मुझे लेने आ जाएगा।

(36) मेहंदी लगावो म्हारे माथो नव्हाओ,
नावण बुलाई म्हारे रकड़ी गुँथाओ,
म्हारा चुड़ला के चूँपा जड़ावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– कवि इस काव्यांश से बतलाता है कि ननद अपनी भाभी से उसको तैयार करने के लिए किस प्रकार कहती है।

व्याख्या– ननद अपनी भाभी से कह रही है कि मेरे हाथों में मेहंदी लगाओ और माथे से लेकर पूरे शरीर को स्नान कराओ। नाइन बुलाकर मेरे रकड़ी (एक विशेष आभूषण) गुंथवाओ तथा मेरी चुटिया में चूंपा जड़वा दो। आज लेने के लिए मुझे मेरा साहब आएगा। भाभी आंगन में जाकर मेरी तैयारियां करो।

विशेष– जब घर से लड़की को विदा किया जाता है तो किस प्रकार उसे स्नान कराकर चोटी–बिन्दिया, महावर तथा विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनाकर विदा किया जाता है, इसका उल्लेख कवि ने किया है।

(37) आज मेड़ी में दिवलो लगावो दरी,
म्हारा वीरा की आदत बताओ दरी,
चाँद डूबे ने म्हारे जगावजो!
आज लेवा पधार्या म्हारा सायबा,
भाभी आँगणाँ में जाओ.....

सन्दर्भ– प्रस्तुत अन्तिम काव्यांश में कवि ने बताया है कि इसमें ननद भाभी से अपनी चारपाई ऊपरी मंजिल में लगाने के लिए कहती है और अपने भाई की आदत बतलाती है कि चांद छिपने से पहले मुझे जगा देना क्योंकि आज मुझे लेने मेरा पतिदेव आया है।

व्याख्या– ननद अपनी भाभी से कह रही है कि आज ऊपरी मंजिल में मेरी चारपाई लगा देना क्योंकि तुम तो मेरे भाई की आदत को जानती ही हो। चांद छिपने से पहले मुझे जगा देना जिससे भाई को कोई पता न लग सके क्योंकि आज मेरा साहब मुझे लिवाने के लिए आया है। भाभी आंगन में जाकर तुम तैयारियां करो।

विशेष– प्रायः भाभियां ही ननद–ननदोई के मिलने की योजना बनाती हैं। इसी लिए यह मिलन की योजना बनाई गई है।

4.3.4 नरहरि पटेल

नरहरि पटेल का जन्म 2 जनवरी, 1934 ई. को सैलाना (रतलाम) के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई। 16 वर्ष की आयु में इन्दौर में आ गए। एम.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा इन्दौर में हुई और ये अभिभाषक और बाद में कर–सलाहकार बन गए। बचपन से इनके मन में लोक–कला, लोक–गायन और लोक–साहित्य के प्रति लगाव रहा है। नाट्य क्षेत्र में भी इनकी गहरी रूचि रही है। इन्दौर नगर की विभिन्न रंग–गतिविधियों में ये सदैव सक्रिय रहे हैं। इन्दौर में ये नाट्य संस्था 'इप्टा' की स्थापना से जुड़े रहे। 'इप्टा' ही बाद में यवनिका बन गई। बाबा डिके के नाटकों से भी ये संबद्ध हुए। कला गुरु विष्णु चिंचालकर से भी इनका गहरा सम्पर्क बना रहा।

आकाशवाणी के नाट्य रूपकों में इन्होंने महती भूमिका का निर्वहन किया है। गत् 50 वर्षों से इनकी काव्य–साधना निरन्तर गतिमान है।

साहित्यिक परिचय– नरहरि पटेल मालवी कविता क्षेत्र में ध्वनि गीतकार एवं गजलकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'मालव की रात' इनका मालवी गीत संग्रह है। थोड़ी–घणी, सिपरा किनारे एवं गुलमोरी धरती पटेलजी के मालवी गजल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'मत रो माता' संग्रह में इनके मालवी और हिंदी राष्ट्रीय गीत हैं। इन्होंने हिंदी में भी लिखा है। उजाला दो, गीत गंगा और मन–मुरली इनके हिंदी कविता संकलन हैं। पटेलजी ने आनंदराव दुबे के काव्य संकलन 'रामाजी रइग्या ने रेल जाती री' एवं नरेन्द्रसिंह तोमर के तीन संकलनों का सम्पादन भी किया है।

इन्होंने मालवी में कविता, गीत, गजल, हाइकू आदि सभी कुछ लिखा है, पर इनकी ख्याति एक गीतकार और गजलकार के रूप में ही अधिक है। मालवी में चली आती हुई गजलों की परम्परा और उर्दू गजल के सामंजस्य से पटेलजी ने मालवी में गजल लेखन को आगे बढ़ाया। इन्होंने प्रचुर परिमाण में गजलें लिखी हैं। उनके गीतों और गजलों में एक ताजातरीन सौन्दर्यबोध है। उनमें मालवा की काली मिट्टी की गंध स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है। यहां के लोक जीवन में जैसी फसलें पकती हैं, उसका वैसा ही रूप इनकी रचनाओं में उतरा है। गेहूं, चना, अलसी और मक्का के खेतों की सहज सुन्दरता कवि मन को बांधती है। खिलते पलाश उन्हें मुग्ध करते हैं। गन्ने की चरखी से उठती मीठी–मीठी गन्ध उन्हें आकर्षित करती है और वे उन्हें अपनी रचनाओं में चित्रित करते हैं।

भाषा–शैली– आपकी काव्य भाषा में मुहावरों–कहावतों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। सादगी और सहजता से भरी भाषा में प्रयोगधर्मिता भी दृष्टिगोचर होती है। डॉ. सतीश दुबे के मत से नरहरि पटेल की रचनाओं में गांवों का समस्त परिवेश मसलन,

घर, आंगन, खलिहान, वृक्ष, खेत, ग्रामीणों के दैनिक कार्य–कलाप की बनावट की गई है, सन से नेज बनने की प्रक्रिया की तरह यानी रेशों से कसावट के रूप में।

निष्कर्षतः नरहरि पटेल मालवी लोक जीवन के विविध रंगों–रूपों को उकेरने वाले सहज कवि हैं। उनकी रचनाओं में लोक गंध, राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना के साथ मानवतावादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। रजवाड़ी की झलक लिए इनकी भाषा मीठा प्रभाव छोड़ती है। आधुनिक मालवी कविता–धारा में इनका अपना विशेष स्थान है।

रचनाओं का मूलपाठ

1. दादी थारो चरखो चाले

चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।
खेत में थायो ऊजरो–ऊजरो कपास रे भई,
हाँक्यो–जोत्ये मोखरो–मोखरो कपास रे भई,
आछो–आछो कातल्यो दादी ये कपास रे भई,
दादी थारी खादी को अगरखो सुवाय रे भई,
चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।

कारी–कारी गाय को थोरो–थोरो दूध रे भई,
भर्या–भर्या माटला तायो–तायो दूध रे भई,
मचमचाती माटली छपछपाती छाछ रे भई,
कसमसाती काँचली चमचमाती खाँच रे भई,
घमड–घमड़, घमड़–घमड़ जावण वाजे
भारी थारो बेरको हाले।

मीठा–मीठा बोल पे गीत जाग्या जाय रे भई,
म्हारी प्यारी मायड़ी कूकड़ा बोलाय रे भई,
जागो सूरज देवता म्हारी माँ जगाय रे भई,
सोना केरी जिन्दगी चमचमाती आय रे भई,
घुमर–घुमर, घुमर–घुमर घट्टी चाले
मैय्या थारी घट्टी चाले।

दादी थारी छाया में जनम बीत्यो जाय रे भई,
भाभी थारो चूड़लो चमचमातो जाय रे भई,
म्हारे आँगण कोई भी नजर नी लगाय रे भई,
मैय्या थारी गोद में सबे सुख समाय रे भई,
ढमक–ढनक, ढपक–ढमक नोबत वाजे
म्हारे घर नोबज वाजे।

2. झुमको

झुमको काँ भूली आई वो नणदली,
झुमको काँ भूली आई वो

वागाँ में गई थी, तू मेला में गई थी,
कलियाँ में गई थी, तू फूलाँ में गई थी,
गजरो काँ भूली आई वो नणदली,
गजरो काँ भूली आई वो।

जमनाजी गई थी, तू गंगाजी गई थी,
साथ सहेल्याँ के पाणी तू गई थी,
गगरो काँ भूली आई वो नणदली,
गगरो काँ भूली आई वो
म्हारा जंगल की तू प्यारी हरणिया,
फिरती फरकणी–म्हारे आँगणिया,
ठुमको काँ भूली आई वो नणदली,
ठुमको काँ भूली आई वो

थारा पगाँ में या डोर किसी बाँधी,
मदमाती हथणी तू वई गई आधी,
मस्ती काँ भूली आई वो नणदली,
मस्ती काँ भूली आई वो
म्होटी–म्होटी आँख्या में नानो–नानो कजरो,
वाला–वाला मुखड़ा पे लालो–लालो चमको,
मोतीड़ा काँ भूली आई वे नणदली,
मोतीड़ा काँ भूली आई वो।

सुपणा में साई थी सूना थो आँगणो,
आधी–आधी राताँ में पूरो थो चाँदणो,
सुघ–बुध वाँ भूली आई वो भोजाई जी
सुध–बुध वाँ भूली आई वो।

3. रे मनवा

रे मनवा, रंग तन रंग मन
होली आई रंग गुलाल!
प्रीत को काजल आँख में आँजो,
कारा–कारा मन ने चाँदी सा माँजो,
पाताला में गाढ़ी दो मलाल,
होली आई रंग गुलाल!

हेत को मंदर कितरो बड़ो है,
अंदर जीके साँवरो खड़ो है,
श्रम के आगे हार्यो काल,
होली आई रंग गुलाल!

भूख गरीबी को कीचड़ कारो,
कई नी है थारो ने कई नी है म्हारो,

झूठा है सब जंजाल,
होली आई रंग गुलाल!
एक ऊँचा एक नीचो बात पुराणी,
भई–भई मिली ने भीत गिराणी,
हाथा में लइलो कुदाल,
होली आई रंग गुलाल!

भर पिचकारी नवा–नवा रंग की,
थाप लगा धिन्नाधिंग मिरदंग की,
प्रेम अबीर उछाल,
होली आई रंग गुलाल!
झूठ की होली जली–जली जावे,
साँच न भई कूण आँच लगावे,
साँच को है ऊँचो भाल,
होली आई रंग गुलाल!

4. मालीड़ा

नकली कागद का फुलड़ा,
वेच मत मालीड़ा
म्हारो देव नी है झूठो!
तूज अकेलो नी है भोला, फला भर्या बजार में,
तरे तरे का छबड़ा लाया, वेपारी तेवार में,
असली कलियाँ आज वतइवे,
रंग–बिरंगा फूल सजइदे,
मोल–तोल से थारी आंख्या,
सेक मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी है झूठो!
नकली कागद का फुलड़ा,
वेच मत मालीड़ा
म्हारो देव नी है झूठो!

कुदरत की कलियाँ की खातर, कंई कंई बोल सुणाऊं रे,
कर दुकान तू बंद, खुली धरती की वास सुंघाऊं रे,
गंगा छोड़ी पोखर न्हायो,
जनम कमायो, गाँठ गमायो,
हाथे कारो लेख लिखी ने,
लेख मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी झूठो!
नकली कागद का फुलड़ा,
बेच मत मालीड़ा,
म्होरो देव नी है झूठो!

कागद का फूलड़ा का तू तो, लायो रंग उधार है
जुही चमेली गेंद हजारी, घर का रंग हजार है
घर का ने थें क्यूं बिलमाया,
पर घर का ने गोद रखाया,
घर की गगरी फोड़ गगन ने,
देख मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी है झूठो!
नकली कागज का फूलड़ा,
वेच मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी है झूठो।

महल अटारी बाग वगीचा, राखोड़ी वई जाय रे,
साज सजावट पे तू, खाली माली क्यूँ पोमाय रे,
रोज हाट में जो आवे रे,
साँझ पड्या सब घर जावे रे,
स्वारथ के आगे माथो
मत टेक मालीड़ा,
म्हारे देव नी है झूठो!
नकली कागज का फुलड़ा,
वेच मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी है झूठो!

5. गुलमोरी धरती

म्हारी गुलमोरी धरती, गुल क्यारी धरती–प्यारी हे म्हारी जान
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
थारा खेताँ में मोती उगे हे, हंस उड़े असमान!
कोख तो थारी हे रतनारी जन्मे हे भगवान!
म्हारी जन्मारी धरती, पुण्यारी धरती–प्यारी हे म्हारी जान
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

अन–धन दाता, भारत माता बेटा थारा करसाण,
मन का राजा मस्त फकीरा, नेक कसा इन्सान,
म्हारी दूधाँरी धरती, पूताँरी धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
नेक विचारे, साँच उचारे तन–मन से बलवान,
गान बजंता साधुन ने संता गाईग्या अमरत, गान,
म्हारी गीताँ री धरती, सीता री धरती–प्यारी है म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली है म्हारी जान!

कस्ती डुबी नी, हस्ती मिटी नी, ऊँची थारी शान,
परमाणु री हाँक लगी तो थर्रइग्यो यो जहान,

म्हारी वीराँ री धरती, धीराँ री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
सूल हटातो, फूल उगातो, हँसतो गातो गान,
दुनिया में डंको धमकातो न्यारो यो हिन्दुस्तान,
म्हारी फूलाँ री धरती, झूला री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

6. पाप की ने पुण्य की

पाप की ने पुण्य की, खोटी कदी मत बात कर
छोड़ नरकाँ की, सराग की, एक मन की बात कर
जो मिटे नी जो खुटे नी खरचवा से भी वदे
वाँटवा से भी बढ़े, बस प्रेम–धन की बात कर।

खून का रिश्ता विगड़ग्या आँख में नी है सरम
आव–आदर की जरा तू अपणापन की वात कर
जेहर को प्यालो मती तू भेज राणा, मानजा
मीरा का मंदर में जा ने तू भजन की वात कर।

जिन्दगी पूरी जदी आनन्द वरसे हर घड़ी
ओढ़ ले चादर कबीरी मत कथन की बात कर
बोल मीठो भावना को, एक नुस्खो है पटेल
बात में, अपणी गजल में, तू वजन की बात कर।

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

दादी थारो चरखो चाले

(1) चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।
खेत में थायो ऊजरो–ऊजरो कपास रे भई,
हाँक्यो–जोत्ये मोखरो–मोखरो कपास रे भई,
आछो–आछो कातल्यो दादी ये कपास रे भई,
दादी थारी खादी को अगरखो सुवाय रे भई,
चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने ग्रामीण जीवन का जीवन्त वर्णन करते हुए 'दादी थारो चरखो चाले' शीर्षक कविता में दादी के चरखा चलाने का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि दादी जी आपका चरखा चलता है तो चरर–मरर की ध्वनि सुनाई देती है। खेत में हल चलाकर अच्छी–अच्छी कपास बोई गई थी और दादी ने अच्छी–अच्छी कपास छांटकर उससे सूत कातना प्रारम्भ कर दिया। दादी आपकी खादी का बना हुआ अंगरखा (पहनने का एक विषेष वस्त्र) पहनने से एक बड़ा सुख और शोभा प्राप्त होती है। दादी जी आपका चरखा, चरर–घरर–मरर करता ही रहता है।

विशेष– कवि गांधी के खादी आन्दोलन और गांव में बनी खादी का भरपूर प्रशंसक है। भाषा–शैली बड़ी प्रवाहमह और सरल है जिसमें चरखा चलने की धूम की चर्चा है।

(2) कारी–कारी गाय को थोरो–थोरो दूध रे भई,
भर्या–भर्या माटला तायो–तायो दूध रे भई,
मचमचाती माटली छपछपाती छाछ रे भई,
कसमसाती काँचली चमचमाती खाँच रे भई,
घमड–घमड़, घमड़–घमड़ जावण वाजे
भारी थारो बेरको हाले।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि अच्छी कपास बोने के बाद दूसरा चित्र ग्रामीण जीवन का प्रस्तुत करता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि काली–काली गाय के साफ शुद्ध दूध से हे मां! तू मिट्टी के मटके को गर्म–गर्म दूध से भर लेती है। भरी–भराई मटकी छाछ (मट्ठे) की छपछपाती है। कसमसाते चूड़े से तेरा खांच (स्त्रियों का एक विशेष वस्त्र) चमचमाता है। हे भाभी! जब तेरा दही बिलोने का काम चालू होता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि घमड़–घमड़ कर बाजा बज रहा है।

विशेष– कवि ने ग्रामीणकालीन प्रातःकाल दूध–धावन से लेकर दही बिलोने तक का कार्य सजीव एवं साकार रूप में चित्रित किया है।

(3) मीठा–मीठा बोल पे गीत जाग्या जाय रे भई,
म्हारी प्यारी मायड़ी कूकड़ा बोलाय रे भई,
जागो सूरज देवता म्हारी माँ जगाय रे भई,
सोना केरी जिन्दगी चमचमाती आय रे भई,
घुमर–घुमर, घुमर–घुमर घट्टी चाले
मैय्या थारी घट्टी चाले।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में ग्रामीण प्रातःकाल की चर्चा की गई है।

व्याख्या– कवि कहता है कि गांव में प्रातःकाल ही मीठे–मीठे जगाने वाले गीत गाए जाते हैं। मेरी प्यारी सखी, मुर्गा बोल रहा है। सूर्य देवता जाग रहे हैं और मां तुमको जगा रही है। स्वर्ण के समान जीवन चमकता हुआ तुम्हारे सामने आ गया है। घुमर–घुमर करती हुई चक्की चल रही है। हे मां! आपकी चक्की चालू है।

विशेष– गांव में प्रातःकाल होते ही माताएं अपने पुत्र को जगाती हैं और कहती हैं कि सूर्य देवता तुम्हारे लिए आशा की किरण लाए हैं। अतः उठकर जाग जाओ क्योंकि मुर्गे ने भी अपनी कूक से सबको जगा दिया है। माताजी की चक्की घुमर–घुमर चल रही है। गांव की प्रातःकालीन जिन्दगी का यथार्थ चित्रण है।

(4) दादी थारी छाया में जनम बीत्यो जाय रे भई,
भाभी थारो चूड़लो चमचमातो जाय रे भई,
म्हारे आँगण कोई भी नजर नी लगाय रे भई,

मैय्या थारी गोद में सबे सुख समाय रे भई,

ढमक–ढनक, ढपक–ढमक नोबत वाजे

म्हारे घर नोबज वाजे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि मां और भाभी की ममता का चित्रण करते हैं।

व्याख्या– इस अन्तिम काव्यांश में कवि कहता है कि दादी तेरी छत्र–छाया में मेरा जनम व्यतीत होता जा रहा है तथा भाभी जी तुम्हारा चूड़लो चमचमाता ही जा रहा है। कोई मेरे आंगन (परिवार) में नजर न लगावे। हे मां! तेरी गोदी में सारा सुख प्राप्त हो रहा है। ढमक–ढमक कर मेरे दरवाजे पर नोबत बजती रहे।

विशेष– नोबत एक विशेष बाजा होता है जो खुशी के अवसरों पर बजाया जाता है।

झुमको

(5) झुमको काँ भूली आई वो नणदली,

झुमको काँ भूली आई वो

वागाँ में गई थी, तू मेला में गई थी,

कलियाँ में गई थी, तू फूलाँ में गई थी,

गजरो काँ भूली आई वो नणदली,

गजरो काँ भूली आई वो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में बतलाया गया है कि ननदजी तुम अपना झुमका कहां भूल आई हो। तुम बागों में गई थीं तथा मेलों में गई थी। तुम फूलों और कलियों में गई थीं। लेकिन हे ननदजी! तुम झुमका कहां भूल आई हो?

व्याख्या– कवि ने भाभी और ननद का वार्तालाप झुमके के माध्यम से कराया है। भाभी पूछती है कि ननदजी आप अपना झुमका कहां भूल आई हो। ननद कुछ सोचते हुए कहती है कि पता नहीं चल रहा है। तब भाभी ननद से कहती है। तू बागों में और मेले में गई थी। तू कलियों में और फूलों में भी गई थी। बताओ ननदजी! तुम झुमके को कहां भूल आई थी?

विशेष– भाभी ननद को याद दिलाती है कि तू बागों, मेले, कलियों और फूलों में गई थी। याद कर कहां पर तू झुमके को भूल आई है।

(6) जमनाजी गई थी, तू गंगाजी गई थी,

साथ सहेल्याँ के पाणी तू गई थी,

गगरो काँ भूली आई वो नणदली,

गगरो काँ भूली आई वो

म्हारा जंगल की तू प्यारी हरणिया,

फिरती फरकणी–म्हारे आँगणिया,

ठुमको काँ भूली आई वो नणदली,

ठुमको काँ भूली आई वो

सन्दर्भ– इसी कड़ी में भाभी ननद से आगे पूछती है।

व्याख्या– कवि कहता है कि भाभी ननद से फिर याद दिलाती हुई पूछती है कि तू गंगाजी और जमनाजी गई थी। सहेलियों के साथ तू पानी भरने गई थी। तू गगरी के साथ–साथ झुमके तो नहीं भूल आई। तू गगरी कहां भूल आई।

हमारे वन की तू प्यारी हिरणी है और आंगन में फिरकिनी सी घूमती–घूमती है। तू ठुमको भी कहां भूल आई?

विशेष– गंगा–यमुना पर सहेलियों के साथ गगरी भूल आई। शायद वहीं झुमका न भूल आई हो। हमारे घर रूपी वन की तू प्यारी हिरनिया है और फिरकिनी–सी घर आंगन में घूमती–फिरती थी। तू ठुमके के साथ–साथ कहीं झुमका तो नहीं भूल आई।

(7) थारा पगाँ में या डोर किसी बाँधी,
मदमाती हथणी तू वई गई आधी,
मस्ती काँ भूली आई वो नणदली,
मस्ती काँ भूली आई वो
म्होटी–म्होटी आँख्या में नानो–नानो कजरो,
वाला–वाला मुखड़ा पे लालो–लालो चमको,
मोतीड़ा काँ भूली आई वे नणदली,
मोतीड़ा काँ भूली आई वो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में ननद से भाभी कहती है कि तू मदमस्त हथिनी–सी हो गई है और शायद मस्ती में उसे भूल आई है। तेरी बड़ी–बड़ी आंखों में छोटा–छोटा काजल लगा हुआ था। तेरे प्यारे मुखड़े पर लाल–लाल यौवन की लाली चमकने लगी है। हे ननदजी! मोती की लड़ियों से युक्त झुमके को कहां भूल आई?

व्याख्या– कवि कहता है कि भाभी ननदजी से कहती है कि तेरे पैरों में कसकर डोरी बांधनी पड़ेगी। तू तो मदमाती आधी हथिनी हो गई है। तू मस्ती में आकर झुमके को कहां भूल आई। तेरी बड़ी–बड़ी आंखों में छोटा–छोटा काजल लगा हुआ है। तेरे वाले मुखड़े पर यौवन की लाल–लाल लाली चमकने लगी है। मोतियों की लड़ियों वाला झुमका तू कहां भूल आई।

विशेष– भाभी ननद से कहती है तू अब युवती बन गई और मस्ती में इधर–उधर घूमती फिरती है। सोचकर बता कि तू कहां–कहां गई थी और मोतियों वाली लड़ियों वाला झुमका कहां भूल आई है?

(8) सुपणा में साई थी सूना थो आँगणो,
आधी–आधी रताँ में पूरो थो चाँदणो,
सुघ–बुध वाँ भूली आई वो भोजाई जी
सुध–बुध वाँ भूली आई वो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में ननद भाभी के ढेर सारे प्रश्नों को सुनकर उत्तर देती है।

व्याख्या– हे भाभी जी! मैं स्वप्न में सो गई थी और आंगन सारा सूना था। आधी रात में चन्द्रमा अपनी पूरी चांदनी में था। उसमें मैं अपनी सुध–बुध सी भूल गई थी। पर पता

नहीं है भाभी जी मैं जाने कहां भूल आई झुमके को क्योंकि मुझे ही अपना होश नहीं था फिर मैं आपको क्या बतलाऊं?

विशेष– ननद ने अपनी स्पष्ट सफाई दी कि चांदनी रात में वह स्वप्नों में खोई थी। उसे होश भी नहीं था तो बताओ मैं कैसे बताऊं कि मैं लड़ियों वाला झुमका कहां भूल आई थी?

रे मनवा

(9) रे मनवा, रंग तन रंग मन
होली आई रंग गुलाल!
प्रीत को काजल आँख में आँजो,
कारा–कारा मन ने चाँदी सा माँजो,
पाताला में गाढ़ी दो मलाल,
होली आई रंग गुलाल!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहता है कि होली आ गई है, आप तन–मन सब होली के रंग में रंग लो। इसी का वर्णन कवि ने किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि हे मन! होली आ गई है। तू अपना तन और मन रंगों में रंग ले और गुलाल से होली खेलो। प्रेम का काजल आंखों में लगाओ। मन के कालेपन (बुराई) को चांदी–सा मांजो और भलाई करो। जो भी मन में मलाल (दुःख) हो उसे पाताल में पहुंचा दो (समाप्त कर दो)। होली आ गई है, अब गुलाल और रंगों से होली खेलो।

विशेष– कवि कहता है कि आपसी द्वेष भूलकर और शत्रुता को समाप्त करके तन–मन सब रंग और गुलाल में रंग लो।

(10) हेत को मंदर कितरो बड़ो है,
अंदर जीके साँवरो खड़ो है,
श्रम के आगे हार्यो काल,
होली आई रंग गुलाल!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया है कि प्रेम का मंदिर बहुत बड़ा होता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि प्रेम का मंदिर कितना बड़ा है और उसके अन्दर प्यारे श्याम सुन्दर विराजमान हैं तथा परिश्रम के सामने काल भी हार मानता है। होली आ गई है रंग और गुलाल में प्रेमपूर्वक होली खेलो।

विशेष– कवि होली के उत्सव को प्रेमपूर्वक मनाने के लिए कहता है क्योंकि ईश्वर भी प्रेम का देवता है।

(11) भूख गरीबी को कीचड़ कारो,
कई नी है थारो ने कई नी है म्हारो,

झूठा है सब जंजाल,

होली आई रंग गुलाल!

एक ऊँचा एक नीचो बात पुराणी,

भई–भई मिली ने भीत गिराणी,

हाथा में लइलो कुदाल,

होली आई रंग गुलाल!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि बतलाता है भूख और निर्धनता काली कीच है, न कोई अच्छा–बुरा है। सारा संसार एक झूठ का जाल है। न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा है। भाई–भाई के बीच की भेदभाव की दीवार को हाथ में कुदाल लेकर हटा दो। होली आई है रंग और गुलाल से होली खेलो।

व्याख्या– कवि कहता है कि भूख और गरीबी काली कीचड़ के समान है। न कुछ मेरा है और न कुछ तेरा है। सारा संसार झूठ का जाल है। न कोई ऊंचा है और न कोई नीचा है। यह तो बहुत पुरानी बातें हैं। भाई–भाई के मध्य जो भेदभाव की दीवार है, उसे हाथ में कुदाल लेकर तोड़ दो क्योंकि होली प्रेम और मेल के रंग का उत्सव है।

विशेष–

'ब्रह्मं सत्यं जगत मिथ्या' इस बात को बड़े सरल शब्दों में सरल ढंग से व्यक्त किया गया है। आदमी के बीच की दीवार ईश्वर ने नहीं बल्कि मनुष्य ने बनाई है।

(12) भर पिचकारी नवा–नवा रंग की,

थाप लगा धिन्नाधिंग मिरदंग की,

प्रेम अबीर उछाल,

होली आई रंग गुलाल!

झूठ की होली जली–जली जावे,

साँच न भई कूण आँच लगावे,

साँच को है ऊँचो भाल,

होली आई रंग गुलाल!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में नवीन रंगों की पिचकारियाँ भर और मृग पर ताक धिनाधिन की थाप लगाकर प्रेम से होली मनाओ, जिससे झूठ की होली जलकर राख हो जाए, सत्य की क्यारियां लगाओ। सच का सदैव ऊंचा माथा रहता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि नए–नए रंगों (विचारों) का रंग पिचकारियों में भरकर और मृदंग पर ताक धिनाधिन की थपकी लगाते प्रेम के रंग और गुलाल से होली खेलो, जिससे झूठ की होली जलकर खाक हो जाए और सत्यता की उसमें आंच लगाकर झूठ का नामोनिशान मिटा दो। सत्य का माथा सदा ऊंचा रहता है। आओ सब प्रेम से मिलकर होली खेलो।

विशेष– 'सत्यमेवं विजितं न नऋम्'

सांच को कभी आंच नहीं आती है।

होली प्रेम के रंग और अबीर का त्योहार है। सबको मिलकर हर प्रकार का भेदभाव मिटाकर प्रेम से हँसते गाते हुए मनाना चाहिए।

मालीड़ा

(13) नकली कागद का फुलड़ा,

वेच मत मालीड़ा

म्हारो देव नी है झूठो!

तूज अकेलो नी है भोला, फला भर्या बजार में,

तरे तरे का छबड़ा लाया, वेपारी तेवार में,

असली कलियाँ आज वतइवे,

रंग–बिरंगा फूल सजइदे,

मोल–तोल से थारी आंख्या,

सेक मत मालीड़ा,

म्हारो देव नी है झूठो!

नकली कागद का फुलड़ा,

वेच मत मालीड़ा

म्हारो देव नी है झूठो!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने व्यापारी से नकली कागज के फूलों को न बेचने के संबंध में बतलाया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि माल बेचने वाले व्यापारी! नकली कागज के फूल मत बेच, हमारा देवता झूठा नहीं है। तू अकेला भोला व्यापारी नहीं है। सारा बाजार व्यापारियों से भरा पड़ा है। त्योहार के अवसर पर विभिन्न प्रकार के टोकरे लेकर व्यापारी बाजार में आए हैं। असली कलियां आज बताकर विभिन्न प्रकार के रंग–बिरंगे फूल सजाकर सही मूल्य बतला दे। व्यर्थ में मोल–भाव की बात मत कर। व्यापारी गलत बात मत कर। हमारा देव झूठा नहीं है। नकली कागज के फूल को मत बेच। हमारा देवता झूठा नहीं है।

विशेष– त्योहार के अवसर पर विभिन्न प्रकार के टोकरों में माल लेकर बहुत से व्यापारी आए हैं। तू नकली कागज के फूलों को मत बेच, हमारा देव झूठा नहीं है। मोल–तोल की बात मत कर। सही–सही मूल्य बता जिससे अपने विभिन्न प्रकार के फूलों से बना हुआ गुलदस्ता खरीद सकें, क्योंकि हमारा देवता झूठा नहीं है।

(14) कुदरत की कलियाँ की खातर, कंई कंई बोल सुणाऊं रे,

कर दुकान तू बंद, खुली धरती की वास सुंघाऊं रे,

गंगा छोड़ी पोखर न्हायो,

जनम कमायो, गाँठ गमायो,

हाथे कारो लेख लिखी ने,

लेख मत मालीड़ा,

म्हारो देव नी झूठो!

नकली कागद का फुलड़ा,

बेच मत मालीड़ा,

म्होरो देव नी है झूठो!

सन्दर्भ– खरीदने वाली स्त्रियां उस व्यापारी को सच्ची और स्पष्ट बात बतलाती हैं।

व्याख्या– क्रय करने वाली स्त्री कहती है– प्राकृतिक कलियों के लिए कई विभिन्न प्रकार के बोल सुनाती हूं। तू अपनी दुकान बन्द कर। मैं तुझे धरती की वास्तविक सुगन्ध सुंघाऊ। भला गंगा छोड़कर पोखर में कौन बावला स्नान करे? तुमने जन्मभर कमाई करके अपने पास के धन को खो दिया है। अपने हाथों से काला लेख व्यापारी मत लिख अर्थात् अपने भाग्य को अपने कर्मों से मत बिगाड़। हे व्यापारी! व्यर्थ में तू काम मत बिगाड़। हमारा देवता झूठा नहीं है। अपने कागज के फूलों को असली बताकर मत बेच। हमारा देवता झूठा नहीं है।

विशेष– प्रकृति की कलियों के बारे में तुझे पृथ्वी के बोल सुनाऊं। तू अपनी दुकान बन्द कर मैं तुझे धरती की सुगन्ध सुनाऊं। भला गंगाजी छोड़कर पोखर–कीचड़ वाले तालाब में कौन स्नान करे। तूने झूठ बोलकर जीवनभर की जो झूठी कमाई की और हाथ काले करके भाग्य को बिगाड़ लिया। हमारा देवता झूठा नहीं है। तू कागज के फूलों को मत बेच।

(15) कागद का फूलड़ा का तू तो, लायो रंग उधार है

जुही चमेली गेंद हजारी, घर का रंग हजार है

घर का ने थें क्यूं बिलमाया,

पर घर का ने गोद रखाया,

घर की गगरी फोड़ गगन ने,

देख मत मालीड़ा,

म्हारो देव नी है झूठो!

नकली कागज का फूलड़ा,

वेच मत मालीड़ा,

म्हारो देव नी है झूठो।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बतलाया, कागज के फूलों में तूने उधार का रंग लाया है। जूही, चमेली, गेंदा के फूलों के हजारों रंग के फूल को तूने असली बताकर सारे घर को भ्रम में डाल दिया।

व्याख्या– कवि कहता है कि फूलों को खरीदने वाली स्त्रियां उस व्यापारी से कहती हैं कि तू कागज के फूलों में उधार के रंग (झूठ) भर लाया है। जूही, चमेली, गेंदा हजारों रंग घर के रंग होते हैं। हे व्यापारी तूने झूठ बोलकर सारे घर को भ्रम में डाल दिया

है। लेकिन दूसरे के घर की गोद में रखकर उसने घर की गगरी आकाश में फोड़ दी। हे मालवाहक विक्रेता हमारे देव झूठे नहीं हैं पर तूने झूठ बोलकर हम सबको पागल बना दिया है।

विशेष– स्त्रियां कहती हैं कि विभिन्न प्रकार के फूलों को तूने असली घर का बताकर हमारे सारे घर को भ्रम में डाल दिया। दूसरे को छोड़कर अपने घर की गगरी आकाश में फोड़ डाली।

(16) महल अटारी बाग वगीचा, राखोड़ी वई जाय रे,
साज सजावट पे तू, खाली माली क्यूँ पोमाय रे,
रोज हाट में जो आवे रे,
साँझ पड्या सब घर जावे रे,
स्वारथ के आगे माथो
मत टेक मालीड़ा,
म्हारे देव नी है झूठो!
नकली कागज का फुलड़ा,
वेच मत मालीड़ा,
म्हारो देव नी है झूठो!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि बतलाता है कि महल, अट्टालिकाएं बाग–बगीचा सब रखा रह जाता है। साज–सजावट पर तू व्यर्थ में घमंड क्यों करता है। साप्ताहिक बाजार जो भी आता है, वह सब बेकार में संध्या समय वापस चला जाता है। हे मालवाहक! स्वार्थ के लिए दूसरे के सामने सिर को मत झुका, क्योंकि हमारा देवता झूठा नहीं है।

व्याख्या– कवि कहता है कि बाग–बगीचा, महल अट्टारी आदि जो भी सम्पत्ति जोड़कर रखी जाती है, यह सब चला जाता है। केवल एकमात्र माली ही घमंड में चूर रह जाता है। प्रतिदिन बाजार में जो माल आता है और जो बिक नहीं पाता है, वह शाम को सब अपने घर वापस चला जाता है। अतः हे मालवाहक व्यापारी, तू स्वार्थ के लिए अपना सिर मत झुका और झूठ मत बोल। हमारा देवता झूठा नहीं है, तू उसके लिए नकली कागज के फूल मत बेच।

विशेष– यह सब बाह्य साज–सजावट और माल–टाल सब यहीं धरा रह जाएगा। अब बनजारा लाद गठरिया ले जाएगा। इसलिए तू झूठ के सामने शीश झुकाकर यह कागज के झूठे फूल–असली बताकर मत बेच क्योंकि हमारा देव झूठा नहीं है।

गुलमोरी धरती

(17) म्हारी गुलमोरी धरती, गुल क्यारी धरती–प्यारी हे म्हारी जान
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
थारा खेताँ में मोती उगे हे, हंस उड़े असमान!
कोख तो थारी हे रतनारी जन्मे हे भगवान!

म्हारी जन्मारी धरती, पुण्यारी धरती–प्यारी हे म्हारी जान

म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा भाव रखता है तथा बतलाता है कि उसके देश की धरती किन–किन गुणों वाली है?

व्याख्या– कवि कहता है कि उसकी धरती गुलमोहर–सी है। फूलों की क्यारी वाली उसकी धरती, उसका प्राण है। उसकी धरती सोना और चांदी के समान प्रिय उसकी धरती, उसका प्राण है। उसके खेतों में मोती पैदा होते हैं और आसमान में हंस उड़ते हैं। उसके देश की माता की कोख रतनारी है जिससे अनेक रतन उत्पन्न होते हैं, उन्हीं में भगवान भी पैदा हुए थे। मेरी भारतमाता की कोख रतनारी है। जिसमें भगवान ने भी जन्म लिया था। मेरी मातृभूमि, मेरी प्यारी पुण्यभूमि, मेरे प्रिय प्राण हैं। मेरे देश की धरती चांदी और सोना भी है।

विशेष– कवि को अपनी मातृभूमि अति प्रिय है। हमारे देश की धरती अपार प्राकृतिक संसाधनों की खान है।

(18) अन–धन दाता, भारत माता बेटा थारा करसाण,

मन का राजा मस्त फकीरा, नेक कसा इन्सान,

म्हारी दूधाँरी धरती, पूताँरी धरती–प्यारी हे म्हारी जान!

म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

नेक विचारे, साँच उचारे तन–मन से बलवान,

गान बजंता साधुन ने संता गाईग्या अमरत, गान,

म्हारी गीताँ री धरती, सीता री धरती–प्यारी है म्हारी जान!

म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली है म्हारी जान!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि अपनी देशभक्ति प्रकट करता है और अपनी मातृभूमि की विशेषताओं को भी सबके समक्ष प्रकट करता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि अन्न और धन का दाता भारत मां का बेटा किसान है। वह किसान मन का राजा, मस्त फकीर और अत्यन्त भला इंसान है। मेरी धरती माता दूध प्रदान करने वाली, सपूतों को जन्म देने वाली मेरी प्राण है। मेरी मातृभूमि सोना और चांदी उगाने वाली है। वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है।

कवि आगे देश के महान वीरों और वीरांगनाओं तथा भले लोगों की गणना करता हुआ कहता है कि मेरे देशवासियों के विचार भले और सत्यवादी हैं। वे तन और मन से बलवान हैं। यहां के साधुजन गाते–बजाते हुए अमृतगान गाते हैं। मेरी प्यारी धरती गीतों वाली है और सीता के समान प्यारी धरती है। वह मेरी प्राण है। मेरे देश की धरती सोना–चांदी उगाने वाली, मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

विशेष– कवि को अपने देश की मिट्टी से विशेष प्रेम है क्योंकि उसके देश की धरती सोना–चांदी उगाने वाली और महापुरुषों की जननी है।

(19) कस्ती डुबी नी, हस्ती मिटी नी, ऊँची थारी शान,
परमाणु री हाँक लगी तो थर्रइग्यो यो जहान,
म्हारी वीराँ री धरती, धीराँ री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
सूल हटातो, फूल उगातो, हँसतो गातो गान,
दुनिया में डंको धमकातो न्यारो यो हिन्दुस्तान,
म्हारी फूलाँ री धरती, झूला री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि ने बताया कि अपने देश पर विदेशों के आक्रमण और शासन होने पर भी उसकी शान कम नहीं हुई। वर्तमान में हमारा देश सतत् विकास की ओर अग्रसर है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मेरे देश की नाव कभी डूबी नहीं और उसकी हस्ती कभी मिटी नहीं बल्कि उसकी शान सदा ऊंची रही। परमाणु के विस्फोट से सारा संसार कांप गया था। मेरे देश की धरती वीर–वीरों की धरती है, और मेरा प्राण है। मेरे देश की धरती सोना और चांदी उगाने वाली है तथा मेरे प्राणों से प्यारी मेरी मातृभूमि है।

यहां के निवासी कांटे हटाते हुए सदा फूल उगाते हैं और हर समय गाते और हँसते रहते हैं। सारे संसार में हिन्दुस्तान का डंका बजता है क्योंकि यह सबसे अनोखा है। मेरे देश की धरती फूलों वाली है और यहां सावन के झूलों की अनोखी बहार आती है। मेरे देश की धरती सोना और चांदी की धरती है जो मेरी शान और मान मर्यादा है।

विशेष– भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति सदा गतिशील बनी रही।

पाप की ने पुण्य की

(20) पाप की ने पुण्य की, खोटी कदी मत बात कर
छोड़ नरकाँ की, सराग की, एक मन की बात कर
जो मिटे नी जो खुटे नी खरचवा से भी वदे
वाँटवा से भी बढ़े, बस प्रेम–धन की बात कर।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश 'पाप की ने पुण्य की' शीर्षक से अवतरित है। इसमें कवि ने पाप–पुण्य की और स्वर्ग–नरक की खराब बात छोड़ने के लिए कहा और अनोखे प्रेमधन के बारे में बतलाया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि पाप की और पुण्य की खराब बात कभी मत करो। नरक और स्वर्ग की बात छोड़कर एक मन होने की बात करो।

ऐसे प्रेमधन की चर्चा करो, जो कभी समाप्त न हो और खराब न हो तथा खर्च करने से बढ़े और बांटने से भी जिसकी वृद्धि हो ऐसा अद्‌भुत धन प्रेमधन होता है।

विशेष– कवि ने पाप–पुण्य की खोटी बात तथा स्वर्ग–नरक की बात छोड़कर सबके मन की समरसता पर बल दिया है।

प्रेम धन बड़ा अनोखा है जो कभी समाप्त और खराब नहीं होता है बल्कि खर्च करने से बढ़ता है और बांटने से बढ़ता है। उसकी चर्चा करो।

(21) खून का रिश्ता विगड़ग्या आँख में नी है सरम

आव–आदर की जरा तू अपणापन की वात कर

जेहर को प्यालो मती तू भेज राणा, मानजा

मीरा का मंदर में जा ने तू भजन की वात कर।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में खून के रिश्ते आंख में शर्म न होने के कारण समाप्त हो गए हैं। मान–सम्मान की बात को छोड़कर अपनेपन की बात करो।

व्याख्या– कवि कहता है कि आंख की शर्म मिटने के साथ–साथ खून के रिश्ते भी आपस में बिगड़ गए। मान–सम्मान की बात छोड़कर अपनेपन की बात करो। हे राणा तू मेरी बात स्वीकार कर मीरा के पीने के लिए विष का प्याला मत भेज। मीरा के मन–मन्दिर में जाकर सावलियां की बात कर।

विशेष– आज आंखों की शर्म मिटने के साथ ही खून के रिश्ते भी बदल गए हैं। अतः मान–सम्मान की बात छोड़कर अपनेपन की बात करो। हे राणा, तू मेरी बात मानकर मीरा को पीने के लिए विष मत भेज और उसके मन–मन्दिर में बैठे हुए श्याम के दर्शन कर।

(22) जिन्दगी पूरी जदी आनन्द वरसे हर घड़ी

ओढ़ ले चादर कबीरी मत कथन की बात कर

बोल मीठो भावना को, एक नुस्खो है पटेल

बात में, अपणी गजल में, तू वजन की बात कर।

सन्दर्भ– प्रस्तुत काव्यांश में कवि कहता है कि ऐसा काम करो, जिससे सम्पूर्ण जीवन में आनन्द करो। कबीर चादर ओढ़ ले और कफन की बात मत कर। एक ही नुस्खा है कि मधुर वाणी में मधुर भाव से बोल। अपनी बात और गजल में ऐसी बात कर जो वजनदार हो।

व्याख्या– कवि कहता है कि सम्पूर्ण जीवनभर तू ऐसे उत्तम काम कर, जिससे सम्पूर्ण जीवनभर हर समय आनन्द ही आनन्द हो। कबीर के उपदेशों की चादर ओढ़ ले अर्थात् उनके वचनों का व्यावहारिक रूप में पालन कर तथा कफन की बात त्याग दे। जीवन में सफलता का एक ही नुस्खा है कि तू सबसे मधुर भावना से मीठी वाणी बोल। सदा अपनी बात और अपनी गजल में ऐसी बात कर जो दमदार हो एवं प्रभावी हो।

विशेष– सम्पूर्ण जीवनभर मनुष्य को अच्छे काम करने चाहिए जिससे सारी जिन्दगी प्रेम और आनन्द से व्यतीत हो। कबीर के उपदेश मानकर उनका पालन करो। सदा तथ्यपूर्ण और प्रभावी बात करो।

अपनी प्रगति जांचिए

3. संत पीपा का मूल नाम क्या था?

(क) रामानंद (ख) प्रतापराव

(ग) गिरवर सिंह (घ) इनमें से कोई नहीं

4. आनंदराव दुबे का काव्य संकलन 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' कब प्रकाशित हुआ था?

(क) 1973 में (ख) 1975 में

(ग) 1998 में (घ) 1988 में

5. बालकवि बैरागी का वास्तविक नाम क्या है?

(क) नंदरामदास बैरागी (ख) चंद्रभूषण बैरागी

(ग) सूर्यकांत बैरागी (घ) कृष्णदास बैरागी

6. नरहरि पटेल मालवी कविता क्षेत्र में किस रूप में प्रसिद्ध हैं?

(क) निबंधकार (ख) नाटककार

(ग) कहानीकार (घ) गीतकार एवं गजलकार

4.4 मालवी भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

मालवी भाषा के पठित कवियों संत पीपा, आनंदराव दुबे, बालकवि बैरागी एवं नरहरि पटेल के आलोचनात्मक विवेचन को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.4.1 संत पीपा

कालीसिंध नदी पर बना प्राचीन गागरोन दुर्ग संत पीपा की जन्म स्थली रहा है। इनका जन्म विक्रम संवत् 1417 चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को खीची राजवंश परिवार में हुआ था। वे गागरोन राज्य के वीर साहसी एवं प्रजापालक शासक थे। शासक रहते हुए उन्होंने दिल्ली सल्तनत के सुलतान फिरोज तुगलक से संघर्ष करके विजय प्राप्त की, लेकिन युद्धजनित उन्माद, हत्या, जमीन से जल तक रक्तपात को देखा तो उन्होंने संन्यासी होने का निर्णय ले लिया।

संत पीपा जी के पिता पूजा पाठ व भक्ति भावना में अधिक विश्वास रखते थे। यही कारण है कि पीपा जी का रूझान भी धर्म–कर्म में रहा। पीपाजी की प्रजा भी नित्य आराधना करती थी। देवकृपा से राज्य में कभी भी अकाल व महामारी का प्रकोप नही हुआ। किसी शत्रु ने आक्रमण भी किया तो परास्त हुआ। राजगद्दी त्याग करने के बाद संत पीपा रामानन्द के शिष्य बने। रामानन्द के बारह शिष्यों में पीपा जी भी एक थे।

पीपाजी देश के महान समाज सुधारकों की श्रेणी में आते हैं। संत पीपा का जीवन व चरित्र महान था। इन्होंने राजस्थान में भक्ति व समाज सुधार का अलख चहुं ओर

जगाया। संत पीपा ने अपने विचारों और कृतित्व से समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। पीपाजी निर्गुण विचारधारा के संत कवि एवं समाज सुधारक थे। पीपाजी ने भारत में चली आ रही चतुर वर्ण व्यवस्था में नवीन वर्ग, श्रमिक वर्ग सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इनके द्वारा सृजित यह नवीन वर्ग ऐसा था जो हाथों से परिश्रम करता और मुख से ब्रह्म का उच्चारण करता था। समाज सुधार की दृष्टि से संत पीपाजी ने बाहरी आडम्बरों, कर्मकांडों एवं रूढ़ियों की कड़ी आलोचना की तथा बताया कि ईश्वर निर्गुण व निराकार है, वह सर्वत्र व्याप्त है। मानव मन में ही सारी सिद्धियां व वस्तुएं व्याप्त हैं। ईश्वर या परम ब्रह्म की पहचान मन की अनुभूति से है।

दैवीय प्रेरणा से पीपा जी गुरु की तलाश में काशी के संतश्रेष्ठ जगतगुरु रामानन्दाचार्य जी की शरण में आ गए तथा गुरु आदेश पर कुंए में कूदने को तैयार हो गए। रामानन्दाचार्य जी आपसे बहुत प्रभावित हुए व पीपा जी को गागरोन जाकर प्रजा सेवा करते हुए भक्ति करने व राजसी संत जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया। एक वर्ष पश्चात संत रामानन्दाचार्य जी अपनी शिष्य मंडली के साथ गागरोन पधारे व पीपाजी के करुण निवेदन पर आसाढ़ शुक्ल पूर्णिमा (गुरु पूर्णिमा) संवत 1414 को दीक्षा देकर उनको वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए नियुक्त किया। पीपा जी ने अपना सारा राजपाठ अपने भतीजे कल्याणराव को सौंपकर गुरु आज्ञा से अपनी सबसे छोटी रानी सीताजी के साथ वैष्णव धर्म प्रचार–यात्रा पर निकल पड़े। धर्म से जुड़े होने के कारण पीपा जी ने अपने काव्य विषय में सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों को उजागर किया है।

पीपा जी का संपूर्ण जीवन चमत्कारों से भरा हुआ है। राजकाल में दैवीय साक्षात्कार करने का चमत्कार प्रमुख है। उसके बाद संन्यास काल में स्वर्ण द्वारिका में 7 दिनों का प्रवास, पीपा जी द्वारा रणछोड़राय जी की प्रतिमाओं को निकालना व अकालग्रस्त समय में अन्नक्षेत्र चलाना, सिंह को अहिंसा का उपदेश देना, लाठियों को हरे बांस में बदलना, एक ही समय में पांच विभिन्न स्थानों पर उपस्थित होना, मृत तेली को जीवनदान देना, सीता जी का सिंहनी के रूप में आना आदि कई चमत्कार जनश्रुतियों में प्रचलित हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि रामानन्दजी और पीपा जी की सोच और प्रकट करने का तरीका प्रायःएक जैसा ही था।

पीपा जी कहते हैं कि 'देखो भक्त! आज से राज अहंकार नहीं होना चाहिए, राज बेशक करते रहना लेकिन हरि भजन का सिमरन मत छोड़ना। साधु–संतों की सेवा भी श्रद्धा से करना, निर्धन निरूसहाय को तंग मत करना। ऐसा ही प्यार जताना जब प्रजा सुखी होगी, हम तुम्हारे पास आएंगे, आपको आने की आवश्यकता नहीं। राम नाम का आंचल मत छोड़ना। 'राम नाम' ही सर्वोपरि है।

पीपा जी उठ गए। उनकी सोई हुई आत्मा जाग पड़ी। रामानंद जी से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। पूर्ण उपदेश लेकर अपने शहर गागरोन की तरफ मुड़ पड़े। तदुपरांत उनकी काया ही पलट गई, स्वभाव बदल गया तथा कर्म बदल गया। हाथ में माला तथा खड़तालें पकड़ लीं, हरि भगवान का यश गान करने लगे।

सगुण मीठो खाँड सो, निरगुण कड़वो नीम।
पीपा गुरू जो पुरस दे, निरभय होकर जीम।।

हाथ दिये सत् कर्म कूँ, जिव्हा सिमरन नाम।
सतगुरू रे साथे चले, पीपा आठहुँ याम।।

प्रस्तुत दोहों में निर्गुण और सगुण पूजा पर कवि ने अपने विचार तथा गुरु के साथ सत्संग की महिमा उजागर की है। सन्त कवि पीपा कहते हैं कि सगुण ईश्वर तो मीठी खांड के समान लगता है और निर्गुण ईश की आराधना कडुवे नीम के समान लगती है। पीपा कहते हैं कि सद्गुरु जिसे स्पर्श कर दे, भक्त को उसी का निर्भय होकर जीभ से नाम रटना चाहिए। ईश्वर ने हमें जो हाथ दिये हैं, वे अच्छे कर्म करने को दिये हैं और जीभ ईश स्मरण (भजन) करने के लिए दी है। सद्गुरु के साथ आठों याम (सभी समय) चलना चाहिए। पीपा जी ने इस दोहे में निर्गुण की कठिनता और सगुण की सरलता को दर्शाया है।

पीपाजी ने सद्गुरु की महिमा भी बताई है कि जिन्होंने ऐसा उत्तम ज्ञान प्रदान किया। पीपा जी अपने राज्य में जब पहुंचे तब उन्होंने भक्ति करने के साथ–साथ साधु–संतों की सेवा भी आरम्भ कर दी। गरीबों के लिए लंगर लगवा दिए तथा कीर्तन मण्डलियां कायम कर दीं। राज–पाट का कार्य मंत्रियों पर छोड़ दिया। सीता जी के अलावा बाकी रानियों को राजमहल में खर्च देकर भक्ति करने के लिए कहा। ऐसे उनके भक्ति करने में कोई फर्क न पड़ा। पीपा जी की भक्ति दिन–प्रतिदिन बढ़ती गई, पर वे गुरु–दर्शन करने के लिए व्याकुल होने लगे। उनकी व्याकुलता असीम हो गई तो एक दिन रामानंद जी ने काशी में बैठे ही उनके मन की बात जान ली। उन्होंने हुक्म दिया कि वह गागरोन का दौरा करेंगे। उनके हुक्म पर उसी समय अमल हो गया। वे काशी से चल पड़े तथा उनके साथ कई शिष्य चल पड़े। एक मण्डली सहित वे गागरोन पहुंच गए।

उठ भाग्यो वाराणसी, न्हायो गंग हजार।
पीपा वे जन उत्तमा (जिणा), राम कयो इक बार।।

पग थोऊ उण देव का जो घाले गुरू घाट।
पीपा तिनकूँ ने गिणू जिनके पठ और ठाट।।

पीपाजी ने प्रस्तुत दोहों में राम नाम की महिमा तथा सच्चे गुरु का आदर करने की बात कही है। सन्त पीपा कहते हैं कि उठकर बनारस चले जाओ और हजारों बार गंगा स्नान करो। ऐसे लोगों से वे लोग श्रेष्ठ हैं जिन्होंने एक बार भी राम का नाम लिया हो। ऐसे देव के मैं पैर धोता हूं जो सच्चे गुरु से भेंट करा दे। जिनके मन्दिर और ठाट–बाट हैं, ऐसे लोगों को सच्चा भक्त पूछता भी नहीं है। संत पीपा जी ने राम नाम जपने और सच्चे गुरु से भेंट कराने का महत्व समझाया है।

अतः संत पीपा मध्यकालीन राजस्थान में भक्ति आन्दोलन के प्रमुख संतों में से एक थे।

पीपा जी अपने काव्य में श्रीकृष्ण के माध्यम से संसार के असमान तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, जैसे– राजा–राव, दाता–भिखारी आदि।

माधव नट विद्या मोडी सब जग मेल्या ममता बाँधी।
ना कोई पुरूष ना कोई नारी, ना कोई दांता न कोई भिखारी।।

ना कोई राव नहीं कोई राणा, लघु दीरघ झूठा कर जाणा।
प्रनवत पीपा सब जग देखा, बाजीगर घर भीतर पेख्या।।

उपरोक्त पद में पीपा ने बतलाया है कि श्रीकृष्ण नट–विद्या में बड़े चतुर हैं, उन्होंने सम्पूर्ण संसार को ममता की डोरी में बांध रखा है। इस संसार में न तो कोई नर है और

न कोई नारी है। न कोई दाता है और न कोई भिखारी है तथा न तो कोई राजा और न ही कोई राव है। न कोई बड़ा और न कोई छोटा है। सारा संसार मिथ्या है। पीपा ने झुकते हुए सबको देखा है। हृदय के अन्दर वह जादूगर रहता है। माधव बड़े नटनागर हैं। उन्होंने सम्पूर्ण संसार को मिलाकर ममता की डोरी में बांध रखा है। इस संसार में कोई स्त्री–पुरुष नहीं है और न कोई दाता और भिखारी है। न कोई राव या राजा है। न कोई बड़ा और छोटा है। यह सब भेद–भाव झूठा है। सारे संसार को प्रणाम करते देखते हैं क्योंकि जो नटनागर (जादूगर) सबके हृदय में विद्यमान है वही सब कुछ ये लीलाएं (तमाशे) करा रहा है।

पीपाजी ने अपने काव्य के माध्यम से 'इस जगत में सब एक समान हैं, किसी में भेदभाव नहीं है' ये सभी को समझाने की कोशिश की है। ये पद अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक असमानता को भी दर्शाता है।

4.4.2 आनन्दराव दुबे

आधुनिक मालवी कविता के ख्यातिप्राप्त कवि आनन्दराव का जन्म ग्राम धुलेट के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ। दुबेजी अच्छे गायक थे। इनका कण्ठ भी मधुर था। मालवा के गांवों की सहजता, निश्छलता और भोलेपन से परिपूर्ण इनके मन में कविता के अंकुर फूटे, जिसे इन्होंने अपनी बोली मालवी के माध्यम से अपने काव्य विषय में प्रकट किया।

आनन्दरावजी ने देश के उत्थान हेतु भी अपना योगदान दिया। देश की आजादी के बाद राष्ट्र–निर्माण की भावना गतिशील हुई। नई–नई योजनाएं बनीं। ग्राम, नगर, राज्य और देश के विकास के अनेक कार्यक्रम आरम्भ हुए। शिक्षा का प्रचार और प्रसार हुआ। नई चेतना जगी। लोक–संस्कृति और लोकभाषाओं में नया उन्मेष आया। इन्होंने लोक जीवन से संबंधित पुरानी परंपराओं का उल्लेख कविता के माध्यम से किया है। वर्तमान में लोक जीवन से संबंधित परंपराएं धुंधली होती जा रही हैं, अतः नई पीढ़ी को इससे अवगत कराना भी आवश्यक है। आनन्दराव जी ने कविता के द्वारा परंपराओं को पुनः जीवंत कर दिया है।

आनन्दराव दुबे की कविताएं मालवा के लोक–जीवन का सहज प्रतिनिधित्व करती हैं। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद जन–जन में आया उल्लास, उमंग, नव–निर्माण, नए भविष्य के स्वप्न, नई स्वतन्त्रता की चुनौतियां, पंचवर्षीय योजनाएं और कुछ कर गुजरने की भावनाएं इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुईं, तो दूसरी तरफ वसन्त और वर्षा ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि को प्रभावित किया है। फसल पकने का आनन्द उमड़ा है। साथ ही मनुष्य जीवन तथा साहित्य रचना के उदात्त भाव दुबेजी की कविता की विषयवस्तु बने हैं। 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है। सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में इसे इतनी प्रसिद्धि मिली कि अब तो यह कहावत बन गई है। इनकी 'मालवो पाक्यो', 'वसंत्या की बरसात', 'हूँ जाणूं की वा जाणे', 'तू क्यों पोमावे दार्या', 'कमल–कागद' आदि कविताएं भी बहुत अधिक लोकप्रिय हुई हैं। आनन्दरावजी की रचनाओं में देशभक्ति, प्राकृतिक सौंदर्य और लोक जीवन की परंपराओं के दर्शन होते हैं।

मालवी साहित्य में आधुनिक मालवी कविता–धारा का प्रारम्भ तो बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही हो चुका था, लेकिन उसे प्रौढ़ता आनन्दराव दुबे से प्राप्त हुई। इनकी कविताओं में ग्राम्य अंचल की ठेठ मालवी का ठाठ दिखाई देता है और लोक जीवन में प्रचलित शब्दों, मुहावरों और कहावतों के सटीक प्रयोगों से मालवी भाषा का सामर्थ्य एवं

सौन्दर्य बढ़ाया है। दुबेजी ने लोकजीवन के विश्वास और धारणाएं भी अपनी रचनाओं में प्रकट किए हैं। इनकी कविताओं में पहली बार गांव की ठेठ मालवी की मिठास, प्रभाव, लालित्य और अर्थ–बोधकता के दर्शन होते हैं, यह बड़े गौरव की बात है।

आनन्दरावजी द्वारा रचित कविता के इस अंश में धार्मिक तथ्यों और लोक जीवन की पारंपरिक प्रथा के दर्शन होते हैं–

घणी पुराणी या उज्जेणी, महाकाल की हे नगरी।
कालिदास ने, गीताज्ञान की, याँज उँढ़ेली थी गगरी।
राजा भरथरी राज करीग्या–
रीत नीत बेराग बतईया
अमर गीत की तान सुणईग्यो
सारंगी पर गीत गुँजीरया
सुणलो हिरदा खोल रे।
मालवा की माटी को,
संदेसो यो अनमोल रे।।

कवि महाकालेश्वर की उज्जैन नगरी की प्राचीनता और उसका महत्व बतलाते हुए कालिदास की कविता और राजा भरथरी के प्रेम और त्याग का उल्लेख करते हैं। महाकालेश्वर की यह उज्जैनी नगरी अति प्राचीन है। कालिदास ने गीता ज्ञान रूपी अपने महाकाव्यों और काव्यों का सृजन यहीं से किया था। राजा भरथरी की राज्य करने की रीति–नीति और वैराग्य–नीति यहीं से प्रारम्भ हुई थी। गुंजरियों के अमर गीत यहां पर सारंगी पर स्थान–स्थान पर सुनाई दिए थे। आप मालवा की अमूल्य मिट्टी का सन्देश खुले हृदय से सुन लो।

कवि ने यहां बताया कि राजा भरथरी ने यहां पर ही बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य किया था और फिर यहीं से वैराग्य प्राप्त किया था। राजा अपनी रानी पिंगला से बहुत प्रेम करते थे। एक दिन निर्धन ब्राह्मण ने उन्हें अमर फल लाकर खाने को दिया और सोचा कि भरथरी जैसा जनप्रिय राजा सदैव जीवित रहे, जिससे जनता में सुख–चैन और समृद्धि का विकास हो। लेकिन राजा भरथरी अपनी रानी पिंगला से अत्यधिक स्नेह करते थे। अतः वे चाहते थे कि यह रंग–रूप और यौवन सदा बना रहे। इसीलिए उन्होंने स्वयं अमर फल न खाकर अपनी रानी को खाने को दे दिया। पिंगला शहर कोतवाल से प्रेम करती थी। उसने सोचा मेरा प्रेमी सदा युवक बना रहे। यही सोचकर उसने अमर फल स्वयं न खाकर शहर कोतवाल को दे दिया। शहर कोतवाल वास्तविक प्रेम एक रूपवती वेश्या से करता था। अतः उसने स्वयं अमर फल न खाकर वेश्या को खाने के लिए दे दिया। वेश्या ने सोचा कि मैं अमर फल खाकर क्या करूंगी, क्योंकि जितने अधिक दिन जीवित रहूंगी उतने ही अधिक समय इस गलीच धन्धे में ही पड़ी रहूंगी। हमारा राजा बड़ा नीतिज्ञ और प्रजापालक है। अतः उसे अमर फल दे दिया जाये तो राजा दीर्घजीवी बना रहेगा। यही सोचकर उसने अमर फल राजा भरथरी को दे दिया। पुनः अमर फल देखकर राजा भरथरी की आंखें खुल गईं और उन्होंने सब कुछ त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया और तत्कालीन गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु बनाया। उन्होंने घोर तपस्या की फिर भी गुरु गोरखनाथ ने उनकी परीक्षा लेने के लिए पिंगला के द्वार पर भेजा। भरथरी ने वहां जाकर आवाज लगायी– ''भिक्षा दे दो मैया

टिप्पणी

पिंगला, जोगी खड़े हैं तेरे द्वार।'' इसके बाद राजा भर्तृहरि (भरथरी) ने तीन ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें उनके जीवन और ज्ञान का निचोड़ है– (1) श्रृंगार शतक, (2) वैराग्य शतक तथा (3) नीति शतक।

आनन्दरावजी ने इस काव्यांश में ग्रामीण अंचल की लोक परंपरा की मालवी मिठास का सुंदर चित्रण निम्न प्रकार किया है–

सासरा को एक साणो बोल्यो–क्यों हो देर कसे हुईगी?
बापड़ो कँई बोले–ओकी भूल ओखेज खईगी।
रामाजी रोणे सरीका हुई ने बोल्या–
जाणे सागे–साग सासरा में, मूँडा का ताला खोल्या।
बावलो नी हूँ–पण हूँ तो उतावलो।
अने फिर या म्हारे साँते हे–साँ–साँ कसे चलाँ–
जगदम्बा घणीं पछाती, हूँ इनी पाँते तो या उनी पाँते।
सवि साँज से म्हने कई दियो, कि म्हारे हे जाणो–
बापड़ा लोगनाँ साँची कईग्या
कि कँई आदमी को खाणो ने कँई बेरां को न्हाणो।
करो कबूल म्हारी नी हे भूल,
हूँ तो परवारोई ग्यो थो, तमारी रंभाज खाती री।
रामाजी रईग्या ने रेल जारी री।

कवि कहते हैं कि ससुराल के एक साले ने पूछा– क्यों देर कैसे हो गई। कई लोग एक साथ बोले कि हमारी क्या भूल हो गई अथवा क्या खता हो गई। रामाजी कहते हैं कि बहिन रोने लगी और कुछ न बोल सकी। सारे ससुराल वाले सोचने लगे कि किसी मूर्ख ने ताला खोल लिया। आप बावरे और उतावले क्यों हो रहे थे? क्या हमारे होते हुए कोई इससे कैसे कुछ कह सकता है। हे जगदम्बे! मैं बहुत पछताती हूं कि क्या इसी ओर और क्या उसी ओर किसी ने किसी प्रकार का कुछ न कहा। मैं आप लोगों से सच–सच कह रही हूं कि न किसी आदमी ने और न किसी पुरुष ने मुझसे कुछ नहीं कहा। आप हमारी भूल स्वीकार करो। मैं तो परबस हो गई। तुम्हारी बहन सब प्रकार से सुखी रही, परन्तु हे रामाजी रेल चली गई।

कवि ने बहुत ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है कि ससुराल से मायके देर से पहुंचने से सब लोग कैसे आश्चर्यचकित रह गए। एक साले ने पूछ ही लिया कि देर क्यों हो गई? उसी समय पति ने लज्जा प्रकट की और पत्नी ने सारी दास्तान सच–सच बयां कर दी और बतलाया कि ससुराल में न तो किसी ने कुछ कहा और न ही कोई दुःख हुआ।

कवि ने संसार की वास्तविकता को इस प्रकार व्यक्त किया है–

लाख–लाख जोड्या पण तू तो, चोकीदार चोकन्नो।
सब को सब याँ रई जावेंगो–हीरा मोती पन्नो।
मूँछ मरोड़ी कँई–खम ठोके, क्यों इतरो इतरावे।
पाँच पदारथ उड़ी जायगा, राखोड़ो रई जावे।
जो रोता था हँसवा लाग्या, नुकता घाटा सार्या।
तू क्यों पोमावे दार्या?

कवि कहता है कि धन जोड़कर तू स्वयं चौकन्ना होकर चौकीदारी करता है। हीरा, मोती, पन्ना आदि सभी यहीं धरे रह जाएंगे। तू इतना गर्व क्यों करता है। पांच तत्व उड़ जाएंगे केवल यह पिण्ड पड़ा रह जाएगा। मृत्यु भोज के समय तेरे क्रिया–कर्म में सब धन–सम्पदा लग जाएगी। जो रोता था, वह हँसने लगेगा। हे मूर्ख इन्सान तू क्यों घमंड करता है? हे मूर्ख इन्सान तूने एक–एक सिक्का जोड़कर लाखों रुपए एकत्रित कर लिये और तू होशियार होकर इस धन की रक्षा के लिए चौकीदारी करता रहा, लेकिन हीरा, मोती, पन्ना आदि सब धन यहीं धरा रह जाएगा। मूछों को मरोड़ता हुआ और ताल ठोंकता हुआ तू इतना गर्व क्यों करता है। मृत्यु होते ही पांच पदार्थ (पृथ्वी, जल, अग्नि, समीर और आकाश) तत्व चले जाएंगे और यह सारा शरीर यहीं पड़ा रह जाएगा। तेरे मृत्युभोज और क्रियाकर्म में तेरी सारी सम्पत्ति व्यय हो जाएगी। कोई तेरे धन को पाकर हँसेगा और कोई उसे खोकर रोएगा। हे मूर्ख मानव! तू गर्व क्यों करता है।

4.4.3 बालकवि बैरागी

बालकवि बैरागी का वास्तविक नाम नन्दरामदास बैरागी था। बैरागी का जन्म 10 फरवरी, 1931 को मनासा में एक वैष्णव ब्राह्मण (बैरागी) परिवार में हुआ था। इन्हें 'बालकवि' बैरागी कहा जाता था, क्योंकि इन्होंने बचपन में कुछ श्रेष्ठ कविताएं लिखी थीं। इनका परिवार अत्यन्त विपन्न था और आजीविका का साधन था– भिक्षा। इनका बचपन कठोर संघर्ष में बीता। बड़ी मुश्किल से पढ़ाई–लिखाई चलती रही। इन्होंने 9 वर्ष की उम्र में ही कविता लिखना आरम्भ कर दिया था।

बालकवि बैरागी बहुचर्चित कवि थे। अपनी काव्य–यात्रा के साथ ही पन्द्रह वर्ष की उम्र से ही ये राजनीति में कांग्रेस कार्यकर्त्ता के रूप में सक्रिय हो गए थे। आप राहुल सांकृत्यायनजी से बहुत प्रभावित थे। उनके घुमक्कड़ी धर्म से प्रभावित होकर बैरागीजी ने यात्राएं बहुत की थीं। भारत के प्रायः सभी राज्यों के साथ अमेरिका, इंग्लैंड, मॉरीशस, जर्मनी, श्रीलंका, नेपाल, सिंगापुर, थाईलैंड, इंडोनेशिया, कम्बोडिया, सूरीनाम, नीदरलैंड आदि देशों की यात्राएं भी वे कर चुके थे। यही कारण है कि वे अलग–अलग संस्कृति से परिचित हुए और वहां की संस्कृति को अपनी लेखन शैली में समाहित भी किया।

बालकवि बैरागी मूलरूप से मालवी के कवि थे। इनके दो मालवी काव्य संकलन 'चटक म्हारा चम्पा' और 'अई जावो मैदान में' प्रकाशित हुए हैं, लेकिन इनकी साहित्य–साधना बहुमुखी है। दरद दीवानी, जूझ रहा हिन्दुस्तान, ललकार, भावी रक्षक देश के, दो टूक, रेत के रिश्ते, वंशज, का कव्यव्य, कोई तो समझे, ओ! अमलतास, आओ बच्चों, गौरव गीत, दादी का कर्ज, मन ही मन, गीत बहार, गीत लहार आदि इनके हिंदी काव्य संकलन हैं। सिंड़ला और गुलियार दो काव्यानुवाद हैं। मनुहार भाभी और बिजूका बाबू दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

बैरागीजी ने साहित्य की विविध विधाओं पर कार्य किया है। कच्छ का पद यात्री और बर्लिन से बब्बू यात्रा वर्णन हैं तथा डायरी विधा में बैरागी की डायरी प्रकाशित है। शीलवती आग और आलोक का अट्टहास विविध साहित्य है। इनके साथ ही सैकड़ों कविताएं, यात्रा वर्णन, संस्मरण, आलेख आदि देश के विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। कवि–सम्मेलनों में बैरागीजी ने अपनी शैली और गायन–क्षमता के कारण विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। छोटी–बड़ी लगभग पच्चीस फिल्मों में बैरागीजी ने गीत भी लिखे हैं। 13 मई, 2018 को बैरागी जी का निधन हो गया।

बैरागीजी की कविताओं में क्षेत्रीयता ही नहीं अपितु राष्ट्रीय भावनाओं का उन्मेष अधिक दिखलाई पड़ता है। चीन और पाकिस्तान द्वारा किए गए आक्रमणों के समय इनका स्वर अंगार उगलने लगा था, लेकिन शान्ति काल में ये मानवता के पुजारी बने रहे। इनकी मालवी कविताओं में ग्राम्य जीवन के बहुरंगी चित्र उभरे हैं। वर्षा और वसन्त इन्हें प्रिय हैं। इन ऋतुओं पर कई रचनाएं हैं। लोक जीवन के विभिन्न प्रसंगों और नारी–पुरुष संबंधों की अन्तर्मुखी संवेदनाओं को बैरागीजी के काव्य में सरलता से देखा जा सकता है। इनकी 'पनिहारी', 'बादरवा अईग्या', 'मेहंदी मती लगाओ', 'नणदल', 'लखारा' आदि कविताएं बहुत लोकप्रिय रही हैं।

कवि ने ठेठ ग्रामीण मालवी में रचित काव्य विषयों को अपने स्वर, शैली और भाषा से प्रभावी रूप दिया है। बालकवि बैरागी ने अधिकतर गीति रचनाएं लिखी हैं, लेकिन अतुकान्त कविताओं का अभाव भी नहीं है। इन्होंने बालगीत भी रचे हैं और गद्य–लेखन भी प्रचुर मात्रा में किया है। इनकी मालवी कविताओं की भाषा मंदसौरी मालवी है। उसमें मेवाड़ी की छाया का आभास होता है। भाषा शुद्ध, संयत, प्रवाहपूर्ण और अर्थ–गाम्भीर्य से युक्त है। इनकी भाषा शौर्य और श्रृंगार दोनों को पूरे वेग से अभिव्यक्त करने में समर्थ है।

बालकवि बैरागी मालवी के बहु–प्रशंसित और अति लोकप्रिय कवि थे। श्रृंगार के रम्य चित्रण से हृदयस्पर्शिता प्राप्त हुई है। अपनी काव्य–सामर्थ्य की विशेषताओं के कारण ही बैरागीजी मालवी भाषा के मानक कवि थे।

बैरागी जी ने भेदभाव रहित समाज की कल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है–

देव देवारा वारा पण्डत! हुणजे रे हेलो म्हारो
ओ मज्जित का काजी मुल्ला! मानूँगा जस थारो
नवा बोल ई जोड़ी दीजो आरती और अजान में
मेहनत करवा वारा मरदाँ, अई जावो मैदान में।।

काव्यांश में कवि कहते हैं कि देवी–देवताओं, पंडित और ज्ञानी सभी को बुला लो। मस्जिद के काजी और मुल्लाओं को बुला लो। जिसे मानते हो, उसे पुकार लो और आरती एवं अज्ञान में वह नए बोल पैदा करा दो कि श्रमिक वीर मैदान में परिश्रम करने उतर आएं।

देवी–देवताओं, पंडित और ज्ञानियों आदि सभी को पुकार लो। जिस किसी को भी मानते हो, वह चाहे मसजिद का काजी या मुल्ला हो और उन सबको बतला दो कि वे आरती और अजान में यह नया नारा सुना दो कि श्रम करने वाले वीरो! आज भारत को उन्नति के पथ पर ले जाने के लिए मैदान में उतर आओ। बैरागी जी का मत है कि कभी किसी में भेदभाव मत करो।

कवि बैरागी जी सामाजिक और धार्मिक मुद्दों के साथ ही राष्ट्र निर्माण में योगदान देना नहीं भूलते। कवि ने राष्ट्र के उत्थान हेतु अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

थारा देस का नवा महल की नींव भ्रावा लागी रे,
अणी नींव में मुट्ठी मुट्ठी मेहनत सबती माँगी रे,
अणी घड़ी में पड्यो सेज पर देख थारो बड़भागी रे,
छैल भमर ने झकझोरी ने,

नारी धरम निभाव!
तू मेहंदी मती लगाव, ऐ म्हारी बैन रूपारा हाथाँ में.....

इस पद्यांश में कवि देश की नींव की मजबूती के लिए सबका सहयोग चाहता है। कवि कहते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र के नये महल की नींव भरने लगी है। यह नींव सबकी मिली–जुली दो–दो मूठ मिट्टी अर्थात् सबके परिश्रम से भरी जानी है। हे सखी! देख तेरा छैल–छबीला पति इस अवसर पर भी सेज पर पड़ा हुआ है। तू उठकर उसको झकझोर कर राष्ट्र निर्माण के लिए उठाकर और नारी के धर्म को निभा। हे सखी! तू मेरे सुन्दर हाथों में मेहंदी मत लगा।

बैरागी जी देशवासियों से कहते हैं कि राष्ट्र–निर्माण की नींव में मिल–जुलकर सब लोग अपना योगदान करो क्योंकि यह तो सबका परम पुनीत कर्तव्य है।

4.4.4 नरहरि पटेल

नरहरि पटेल का जन्म सैलाना (रतलाम) के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई। एम.ए., एल.एल.बी. तक की शिक्षा इन्दौर में हुई और ये अभिभाषक और बाद में कर–सलाहकार बन गए। बचपन से इनके मन में लोक–कला, लोक–गायन और लोक–साहित्य के प्रति लगाव रहा है। नाट्य क्षेत्र में भी इनकी गहरी रुचि रही है। इन्दौर नगर की विभिन्न रंग–गतिविधियों में ये सदैव सक्रिय रहे हैं। इन्दौर में ये नाट्य संस्था 'इप्टा' की स्थापना से जुड़े रहे। 'इप्टा' ही बाद में यवनिका बन गई। बाबा डिके के नाटकों से भी ये संबद्ध हुए। कला गुरु विष्णु चिंचालकर से भी इनका गहरा सम्पर्क बना रहा। आकाशवाणी के नाट्य रूपकों में इन्होंने महती भूमिका का निर्वहन किया है।

कवि नरहरि पटेल मालवी कविता क्षेत्र में ध्वनि गीतकार एवं गजलकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। मालवा की रात इनका मालवी गीत संग्रह है। थोड़ी–घणी, सिपरा किनारे एवं गुलमोरी धरती पटेलजी के मालवी गजल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'मत रो माता' संग्रह में इनके मालवी और हिंदी राष्ट्रीय गीत हैं। इन्होंने हिंदी में भी लिखा है। उजाला दो, गीत गंगा और मन–मुरली इनके हिंदी कविता संकलन हैं। पटेलजी ने आनंदराव दुबे के काव्य संकलन 'रामाजी रइग्या ने रेल जाती री' एवं नरेन्द्रसिंह तोमर के तीन संकलनों का सम्पादन भी किया है। इन्होंने मालवी में कविता, गीत, गजल, हाईकू आदि सभी कुछ लिखा है, पर उनकी ख्याति एक गीतकार और गजलकार के रूप में ही अधिक है। मालवी में चली आती हुई गजलों की परम्परा और उर्दू गजल के सामंजस्य से पटेलजी ने मालवी में गजल लेखन को आगे बढ़ाया। उन्होंने प्रचुर परिमाण में गजलें लिखी हैं। उनके गीतों और गजलों में एक ताजातरीन सौन्दर्यबोध है। उनमें मालवा की काली मिट्टी की गंध स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है। यहां के लोक जीवन में जैसी फसलें पकती हैं, उसका वैसा ही रूप इनकी रचनाओं में उतरा है। गेहूं, चना, अलसी और मक्का के खेतों की सहज सुन्दरता कवि मन को बांधती है। खिलते पलाश उन्हें मुग्ध करते हैं। गन्ने की चरखी से उठती मीठी–मीठी गन्ध उन्हें आकर्षित करती है और वे उन्हें अपनी रचनाओं में चित्रित करते हैं।

पटेल जी के काव्य विषयों में भाषा शैली की विविधता के दर्शन होते हैं। इनकी काव्य भाषा में मुहावरों–कहावतों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। सादगी और

सहजता से भरी भाषा में प्रयोगधर्मिता भी दृष्टिगोचर होती है। डॉ. सतीश दुबे के मत से नरहरि पटेल की रचनाओं में गांवों का समस्त परिवेश मसलन, घर, आंगन, खलिहान, वृक्ष, खेत, ग्रामीणों के दैनिक कार्य–कलाप की बनावट की गई है, सन से नेज बनने की प्रक्रिया की तरह यानी रेशों से कसावट के रूप में।

नरहरि पटेल मालवी लोक जीवन के विविध रंगों–रूपों को उतारने वाले सहज कवि हैं। उनकी रचनाओं में लोक गंध, राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना के साथ मानवतावादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। रजवाड़ी की झलक लिए इनकी भाषा मीठा प्रभाव छोड़ती है। आधुनिक मालवी कविता–धारा में इनका अपना विशेष स्थान है।

नरहरि पटेल ने प्रस्तुत काव्यांश में ग्रामीण जीवन का जीवन्त वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।
खेत में थायो ऊजरो–ऊजरो कपास रे भई,
हाँक्यो–जोत्ये मोखरो–मोखरो कपास रे भई,
आछो–आछो कातल्यो दादी ये कपास रे भई,
दादी थारी खादी को अगरखो सुवाय रे भई,
चरर–मरर, चरर–मरर, चरखो चाले,
दादी थारो चरखो चाले।

कवि कहता है कि दादी जी आपका चरखा चलता है तो चरर–मरर की ध्वनि सुनाई देती है। खेत में हल चलाकर अच्छी–अच्छी कपास बोई गई थी और दादी ने अच्छी–अच्छी कपास छांटकर उससे सूत कातना प्रारम्भ कर दिया। दादी आपकी खादी का बना हुआ अंगरखा (पहनने का एक विशेष वस्त्र) पहनने से एक बड़ा सुख और शोभा प्राप्त होती है। दादी जी आपका चरखा, चरर–घरर–मरर करता ही रहता है।

कवि नरहरि पटेल गांधी के खादी आन्दोलन और गांव में बनी खादी का भरपूर प्रशंसक है। भाषा–शैली बड़ी प्रवाहमय और सरल है जिसमें चरखा चलने की धूम की चर्चा है।

कवि नरहरि जी ने देश के सतत् विकास को निम्न प्रकार से व्यक्त किया है–

कस्ती डुबी नी, हस्ती मिटी नी, ऊँची थारी शान,
परमाणु री हाँक लगी तो थर्रइग्यो यो जहान,
म्हारी वीराँ री धरती, धीराँ री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!
सूल हटातो, फूल उगातो, हँसतो गातो गान,
दुनिया में डंको धमकातो न्यारो यो हिन्दुस्तान,
म्हारी फूलाँ री धरती, झूला री धरती–प्यारी हे म्हारी जान!
म्हारी चाँदी री धरती, सोना री धरती–वाली हे म्हारी जान!

कवि कहता है कि मेरे देश की नाव कभी डूबी नहीं और उसकी हस्ती कभी मिटी नहीं बल्कि उसकी शान सदा ऊंची रही। परमाणु के विस्फोट से सारा संसार कांप गया था। मेरे देश की धरती वीर–वीरों की धरती है, और मेरा प्राण है। मेरे देश की धरती

सोना और चांदी उगाने वाली है तथा मेरे प्राणों से प्यारी मेरी मातृभूमि है। यहां के निवासी कांटे हटाते हुए सदा फूल उगाते हैं और हर समय गाते और हँसते रहते हैं। सारे संसार में हिन्दुस्तान का डंका बजता है क्योंकि यह सबसे अनोखा है। मेरे देश की धरती फूलों वाली है और यहां सावन के झूलों की अनोखी बहार आती है। मेरे देश की धरती सोना और चांदी की धरती है जो मेरी शान और मान मर्यादा है। कवि कामना करता है कि भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति सदा गतिशील बनी रही।

कवि नरहरि पटेल ने पाप–पुण्य और स्वर्ग–नरक से दूर प्रेमधन की विशिष्टता का परिचय इस प्रकार किया है–

पाप की ने पुण्य की, खोटी कदी मत बात कर
छोड़ नरकाँ की, सराग की, एक मन की बात कर
जो मिटे नी जो खुटे नी खरचवा से भी वदे
वाँटवा से भी बढ़े, बस प्रेम–धन की बात कर।

कवि कहता है कि पाप की और पुण्य की खराब बात कभी मत करो। नरक और स्वर्ग की बात छोड़कर एक मन होने की बात करो। ऐसे प्रेमधन की चर्चा करो, जो कभी समाप्त न हो और खराब न हो तथा खर्च करने से बढ़े और बांटने से भी जिसकी वृद्धि हो ऐसा अद्‌भुत धन प्रेमधन होता है।

कवि नरहरि पटेल ने पाप–पुण्य की खोटी बात तथा स्वर्ग–नरक की बात छोड़कर सबके मन की समरसता पर बल दिया है। प्रेम धन बड़ा अनोखा है जो कभी समाप्त और खराब नहीं होता है बल्कि खर्च करने से बढ़ता है और बांटने से बढ़ता है इसलिए सिर्फ उसकी ही चर्चा करनी चाहिए।

कवि नरहरि जी ने वर्तमान परिदृश्य में बदलते पारिवारिक रिश्तों की व्याख्या इस प्रकार की है–

खून का रिश्ता विगड़ग्या आँख में नी है सरम
आव–आदर की जरा तू अपणापन की वात कर
जेहर को प्यालो मती तू भेज राणा, मानजा
मीरा का मंदर में जा ने तू भजन की वात कर।

कवि कहते हैं कि आंख की शर्म मिटने के साथ–साथ खून के रिश्ते भी आपस में बिगड़ गए। मान–सम्मान की बात छोड़कर अपनेपन की बात करो। हे राणा तू मेरी बात स्वीकार कर मीरा के पीने के लिए विष का प्याला मत भेज। मीरा के मन–मन्दिर में जाकर सावलियां की बात कर।

आधुनिकता के दौर में आंखों की शर्म मिटने के साथ ही खून के रिश्ते भी बदल गए हैं। अतः मान–सम्मान की बात छोड़कर अपनेपन की बात करो।

कवि नरहरि पटेलजी अपने काव्य विषयों के माध्यम से जीवन में 'कर्म ही पूजा है' की व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं–

जिन्दगी पूरी जदी आनन्द वरसे हर घड़ी
ओढ़ ले चादर कबीरी मत कथन की बात कर
बोल मीठो भावना को, एक नुस्खो है पटेल
बात में, अपणी गजल में, तू वजन की बात कर।

कवि नरहरि कहते हैं कि सम्पूर्ण जीवनभर तू ऐसे उत्तम काम कर, जिससे सम्पूर्ण जीवनभर हर समय आनन्द ही आनन्द हो। कबीर के उपदेशों की चादर ओढ़ ले अर्थात् उनके वचनों का व्यावहारिक रूप में पालन कर तथा कफन की बात त्याग दे। जीवन में सफलता का एक ही नुस्खा है कि तू सबसे मधुर भावना से मीठी वाणी बोल। सदा अपनी बात और अपनी गजल में ऐसी बात कर जो दमदार हो एवं प्रभावी हो।

नरहरि जी इस पद के द्वारा समाज को संदेश देते हैं कि सम्पूर्ण जीवन भर अच्छे काम करो, वाणी में मधुरता रखो, जिससे सारी जिन्दगी प्रेम और आनन्द से व्यतीत हो। कबीर के उपदेश मानकर उनका पालन करो। सदा तथ्यपूर्ण और प्रभावी बात करो।

निष्कर्षतः मालवी कवि नरहरि पटेलजी की काव्यगत प्रतिभा और भाषा शैली के आधार पर इन का मालवी साहित्य में विशेष स्थान है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. पीपा जी किस कवि के समकालीन माने जाते हैं?

   (क) कबीर (ख) सूरदास

   (ग) बिहारी (घ) रहीम

8. आनंदराव दुबे की सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता कौन–सी है?

   (क) मालवो पाक्यो (ख) रामाजी रईग्या ने रेल जाती री

   (ग) वसंत्या की बरसात (घ) तू क्यों पोमावे दार्या

9. बालकवि बैरागी पंद्रह वर्ष की उम्र से ही किस राजनीतिक पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता बन गए थे?

   (क) भारतीय जनता पार्टी (ख) राष्ट्रीय जनता दल

   (ग) कांग्रेस (घ) बहुजन समाज पार्टी

10. नरहरि पटेल किस भाषा के कवि हैं?

    (क) बुंदेली (ख) बघेली

    (ग) गुजराती (घ) मालवी

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (ख)
4. (ग)
5. (क)
6. (घ)

7. (क)
8. (ख)
9. (ग)
10. (घ)

4.6 सारांश

मालवी भारत के मालवा क्षेत्र की भाषा है। मालवा भारत भूमि के हृदय स्थल के रूप में सुविख्यात है। मालवा क्षेत्र का भू–भाग अत्यंत विस्तृत है। पूर्व दिशा में बेतवा (वेत्रवती) नदी, उत्तर–पश्चिम में चम्बल (चर्मण्यवती) और दक्षिण में पुण्य सलिला नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मालवा है। मालवा क्षेत्र मध्यप्रदेश और राजस्थान के लगभग बीस जिलों में विस्तार लिए हुए हैं। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं। प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा की पुस्तक 'मालवी भाषा और साहित्य' के अनुसार, वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्यप्रदेश के उज्जैन संभाग के आगर मालवा, नीमच, मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इंदौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इन्दौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहोर, राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खंडवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित हैं।

सोंधवाड़ी बोली और संस्कृति अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। भाषिक प्रवृत्ति के साथ ही लोकजीवन के आयामों की दृष्टि से मालवा का यह अंचल प्रायः उपेक्षित ही रहा है, लेकिन हाल के दशकों में डॉ. प्रहलादचंद जोशी के सतत प्रयासों से इस दिशा में पर्याप्त उपलब्धियाँ हासिल हो गई हैं। डॉ. जोशी की पुस्तक 'सौंधवाड़ी साहित्य, संस्कृति और व्याकरण' इस बोली के वैशिष्ट्य को उजागर करने में मील का पत्थर साबित हो रही है।

मालवा पश्चिम मध्य प्रदेश का विस्तृत भाग है। गुना से झाबुआ तक के कई जिले मालवा में आ जाते हैं। गुना, नरसिंहगढ़, राजगढ़, शाजापुर, भोपाल, सीहोर, देवास, इंदौर, उज्जैन, धार, झाबुआ, रतलाम, मंदसौर नीमच के साथ ही झालावाड़ और चित्तौड़ जिलों का दक्षिणी भाग मालवी बोलने से मालवा में ही माना जाता है। इसके क्षेत्र के प्रायः दो करोड़ लोगों की बोली है, मालवी।

मालवा की भाषा मालवी है। हर भाषा की अपनी लिपि होती है। मालवा की अपनी लिपि प्राचीन काल में प्रचलित थी। जैन साहित्य में पैशाची या भूतभाषा की भूत लिपि और मालवा की मालविनी लिपि के उल्लेख प्राप्त होते है। ये लिपियां कभी मालवा में प्रचलित रहीं परन्तु कालांतर में उनका लोप हो गया। आजकल मालवी देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है।

मालवा राजनीतिक दृष्टि से कभी भारत की राजधानी का क्षेत्र नहीं रहा, परंतु यह सांस्कृतिक राजधानी का केंद्र अवश्य रहा। उज्जैन आरंभ से ही पश्चिमी भारत की

टिप्पणी

राजनीतिक और सांस्कृतिक राजधानी रही। सम्राट होने से पूर्व मौर्य अशोक उज्जैन का प्रांतपाल था। विदिशा के शुंग अग्निमित्र के पुत्र राजकुमार वसुमित्र ने ग्रीक यवनों को मालवा में ही पराजित किया।

मालवा के निकटवर्ती अंचलों में मेवाड़, हाड़ौती, भीलांचल, गुजरात, महाराष्ट्र, निमाड़ और बुंदेलखंड इन्द्रधनुष की तरह अपने–अपने रंग मालवा में बिखेरते आ रहे हैं। इन सभी की मिठास और ऐश्वर्य को मालवा ने अपने अंदर समाया है, वहीं इन सभी को अपने जीवन रस से सींचा भी है। "वसुधैव कुटुंबकम" की बात को मालवा और मालवी ने अपने ढंग से सिद्ध किया है। आज मालवा क्षेत्र मध्य प्रदेश और राजस्थान के लगभग 20 जिलों में विस्तार लिए हुए हैं। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं। वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्य प्रदेश के उज्जैन संभाग के नीमच, मंदसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इंदौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इंदौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहो,राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है।

मालवा का गागरोन उनके राज्य की राजधानी था। पीपा का शासनकाल 14वीं सदी के अंतिम चरण से 15वीं शती के आरम्भ तक माना जाता है। पीपा की 12 या 20 रानियों में सबसे छोटी रानी पद्मावती भी राजसी परिधान त्यागकर पति के साथ सन्त बन गई थी। इसलिए वह सीता सहचरी कहलाई। पीपा रामानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य थे। कबीर आदि उनके 12 शिष्य थे, उनमें से पीपा भी एक शिष्य रहे थे।

आनन्दराव दुबे की कविताएं मालवा के लोक–जीवन का सहज प्रतिनिधित्व करती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जन–जन में आया उल्लास, उमंग, नव–निर्माण, नये भविष्य के स्वप्न, नई स्वतन्त्रता की चुनौतियां, पंचवर्षीय योजनाएं और कुछ कर गुजरने की भावनाएं इनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुईं। वसन्त और वर्षा ऋतु के प्राकृतिक सौन्दर्य ने कवि को प्रभावित किया है। फसल पकने का आनन्द उमड़ा है। साथ ही मनुष्य जीवन तथा साहित्य रचना के उदात्त भाव दुबेजी की कविता की विषयवस्तु बने हैं। 'रामाजी रईग्या ने रेल जाती री' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता है। सम्पूर्ण मालवा क्षेत्र में इसे इतनी प्रसिद्धि मिली कि अब तो यह कहावत बन गई है। इनकी 'मालवो पाक्यो', 'वसंत्या की बरसात', 'हूँ जाणूं की वा जाणे', 'तू क्यों पोमावे दार्या', 'कमल–कागद' आदि कविताएं भी बहुत अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

बालकवि बैरागी बहुचर्चित कवि थे। इनकी काव्य–यात्रा के साथ ही 15 वर्ष की उम्र से ही ये राजनीति में कांग्रेस कार्यकर्त्ता के रूप में सक्रिय हो गए। सन् 1964 और 1980 में मनासा विधानसभा क्षेत्र से दो बार विधायक चुने गए और मध्यप्रदेश शासन में संसदीय सचिव तथा राज्यमंत्री के पदों पर भी रहे। सन् 1984 में मंदसौर–जावरा क्षेत्र से लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् 1998 में मध्य प्रदेश से राज्यसभा के सदस्य रहे। आप राहुल सांकृत्यायनजी से बहुत प्रभावित थे। उनके घुमक्कड़ी धर्म से प्रभावित होकर बैरागीजी ने यात्राएं बहुत की हैं। भारत के प्रायः सभी राज्यों के साथ अमेरिका, इंग्लैण्ड, मारीशस, जर्मनी, श्रीलंका, नेपाल, सिंगापुर, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, सूरीनाम, नीदरलैण्ड आदि देशों की यात्राएं भी वे कर चुके थे।

नरहरि पटेल मालवी कविता क्षेत्र में ध्वनि गीतकार एवं गजलकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'मालव की रात' इनका मालवी गीत संग्रह है। थोड़ी–घणी, सिपरा किनारे एवं गुलमोरी धरती पटेलजी के मालवी गजल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'मत रो माता' संग्रह में इनके मालवी और हिंदी राष्ट्रीय गीत हैं। इन्होंने हिंदी में भी लिखा है। उजाला दो, गीत गंगा और मन–मुरली इनके हिंदी कविता संकलन हैं। पटेलजी ने आनंदराव दुबे के काव्य संकलन 'रामाजी रइग्या ने रेल जाती री' एवं नरेन्द्रसिंह तोमर के तीन संकलनों का सम्पादन भी किया है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **प्रचुर** : काफी मात्रा में।
- **कोस** : दूरी मापने की प्राचीन विधि।
- **कंदरा** : गुफा।
- **नाद** : आवाज।
- **सराबोर** : भरपूर।
- **दखणू** : दक्षिण।
- **ओकी** : उसकी।
- **रेला** : धारा।
- **करसाण** : किसान।
- **गोठगां** : सखियां
- **तीसी** : प्यासी
- **नानो** : थोड़ा।
- **देवड़ो** : घूंघट।
- **कंत** : पति।
- **गुलमोरी** : गुलमोहर सी सुंदर
- **हस्ती** : अस्तित्व।
- **पुतांरी** : पुत्रों वाली

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मालवी भाषा की रजवाड़ी एवं सोंधवाड़ी उपबोलियों का परिचय दीजिए।
2. संत पीपा का साहित्यिक परिचय स्पष्ट कीजिए।
3. आनंदराव दुबे की काव्यगत विशेषताएं बताइए।

4. बालकवि बैरागी की कविताओं की भाषा–शैली पर प्रकाश डालिए।
5. आधुनिक मालवी कविता–धारा में नरहरि पटेल का विशेष स्थान है। कैसे? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मालवी भाषा साहित्य की उपबोलियों के इतिहास एवं सीमा–क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
2. संत पीपा जी के काव्य विषय में सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।
3. आनंदराव दुबे जी की कविताओं का मूल्यांकन आलोचनात्मक दृष्टि से कीजिए।
4. बालकवि बैरागी का मालवी भाषा के विकास में क्या योगदान है? समीक्षात्मक आलोचना कीजिए।
5. कवि नरहरि पटेल की भाषा–शैली का वर्णन करते हुए काव्यगत प्रतिभा का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. श्याम परमार, मालवी लोक साहित्य, इलाहाबाद, 1969।
2. डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित, मालवी संस्कृति और साहित्य, लोककला अकादमी, भोपाल, 2004।
3. डॉ .प्र.च. जोशी, मालवी और उपबोलियों का व्याकरण, दी स्टूडेंट बुक कंपनी, जयपुर, 1999।
4. सूर्य नारायण व्यास, मालव जनपद और उसका क्षेत्र विस्तार, मालव लोक साहित्य परिषद, उज्जैन 1954।
5. डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, डॉ. पद्मा सिंह, डॉ. अशोक शर्मा, मालवी भाषा और साहित्य, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल–2019।
6. डॉ. श्याम परमार, 'मालवी लोक साहित्य', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1969 ई.
7. संप. डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा, डॉ. दिलीपकुमार चौहान, डॉ. अजय गौतम, मालवी भाषा और साहित्य, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2010 ई.
8. ब्रजमोहन टाक, 'संत शिरोमणि पीपा : जीवन दर्शन, अ.भा. पीपा क्षत्रिय महासभा, पुष्कर्राज (अजमेर), 2012 ई.

इकाई 4 भाग (ब) : बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बघेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं विकास
  4.2.1 बघेली भाषा का परिचय एवं इतिहास
  4.2.2 बघेली भाषा का व्याकरणिक स्वरूप
  4.2.3 बघेली साहित्य का विकास
4.3 बघेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'
  4.3.2 अमोल बटरोही
  4.3.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'
4.4 बघेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'
  4.4.2 डॉ. अमोल बटरोही
  4.4.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

भाषा मानव समाज की सामाजिक संपत्ति के रूप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भाषा का उद्भव मानव की उत्पत्ति के साथ ही हुआ होगा। भाषा एक ऐसा समर्थ साधन है जिसके द्वारा अपने विचार अथवा भाव दूसरों के सामने प्रकट करते हैं और दूसरों के विचारों अथवा भावों को समझ सकते हैं।

"भाषा" शब्द संस्कृति की "भाष्" धातु से बना है। जिसका अर्थ है– बोलना या कहना अर्थात्, जिस माध्यम से बोला या कहा जाए उसे भाषा कहते हैं। भाषा के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों ने अनेक परिभाषाएं दी हैं। वैसे कहा जाता है कि किसी भी शब्द को परिभाषा में बांधना संभव नहीं है। भोलानाथ तिवारी की भाषा संबंधी परिभाषा है– "भाषा मानव उच्चारणावयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है जिसके द्वारा समान विशेषता के लोग आपस में विचार विनिमय करते हैं।"

भाषा शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है, जिनसे भावाभिव्यंजन का काम लिया जाता है। इस दृष्टि से पशु–पक्षियों की बोली भी भाषा है, इंगित भी भाषा है, सड़क की लाल–हरी बत्ती भी भाषा है और मनुष्य जो बोलता है वह भी भाषा है।

तुलसीदास जी ने काकभुशुंडि और गरुड़ के वार्तालाप के प्रसंग में लिखा है–"समुझै खग–खग ही कै भाषा।" (रामचरितमानस)। अपना अभिप्राय व्यक्त करने के लिए आंख, हाथ, सिर आदि का संचालन भी भाषा के अंतर्गत आता है। इसे आंगिक या इंगित भाषा कहते हैं। जैसे बिहारी जी का दोहा द्रष्टव्य है–"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात, भरै मौन में करत है नैनन ही सों बात।" नायक नायिका मुंह से कुछ बोले या कहे बिना आंखों की भाषा में समस्त वार्तालाप कर रहे हैं।

इस इकाई में बघेली भाषा एवं उसकी उपबोलियों का परिचय, स्वरूप, इतिहास व विकास का वर्णन किया गया है। साथ ही बघेली भाषा के प्रमुख कवियों सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', अमोल बटरोही एवं शिवशंकर मिश्र 'सरस' के जीवन परिचय, उनकी रचनाओं के मूल पाठ एवं व्याख्याओं सहित पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बघेली भाषा के इतिहास, स्वरूप एवं विकास को समझ पाएंगे;
- बघेली भाषा की उपबोलियों से परिचित हो पाएंगे;
- बघेली साहित्य के प्रमुख कवियों के साहित्यिक जीवन से अवगत हो पाएंगे;
- बघेली कवियों, सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', अमोल बटरोही व शिवशंकर मिश्र 'सरस' की रचनाओं की व्याख्या को समझ पाएंगे;
- बघेली कवियों की रचनाओं का समीक्षात्मक अवलोकन कर पाएंगे।

4.2 बघेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं विकास

आदिभाषा संस्कृत को हिन्दी भाषा की जननी कहा जाता है। संस्कृत–पालि–प्राकृत–अपभ्रंश–हिन्दी के अनुक्रम में हिन्दी का विकास हुआ। भौगोलिक व ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी प्रदेश के भूखण्ड में पांच प्राकृत भाषाएं थीं। अपभ्रंश, शौरसैनी, अर्धमागधी, मागधी और खस, इन्हीं पांच प्राकृतों से हिन्दी की पांच उपभाषाएं– राजस्थानी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ। पूर्वी हिन्दी के अंतर्गत तीन बोलियां या उपभाषाएं आती हैं–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। बघेली भाषा हिन्दी भाषा के पूर्वी हिन्दी प्रभाग की एक प्रमुख भाषा है।

4.2.1 बघेली भाषा का परिचय एवं इतिहास

बघेली भाषा क्षेत्र को बघेलखंड के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश का उल्लेख प्राचीन समय से मिलता है। रामायण काल में इस भू–भाग को कौशल प्रांत या महाकौशल के नाम से जाना जाता था। 11वीं–12वीं शताब्दी के लगभग आल्हलवाड़ा पाटन के सोलंकी राजपूतों की शाखा के व्याघ्रदेव बघेल ने यहां के शासक को पराजित करके बघेल राजवंश की नींव डाली, तब से देसी राज्यों के विलीन होने तक बघेलखंड में बघेल राजपूतों द्वारा शासन किया जाता रहा है। बघेल वंश के नाम से इस भू–भाग

को बघेलखंड के नाम से जाना जाने लगा तथा बघेल वंश द्वारा शासित भूभाग में बोली जाने वाली भाषा को बघेली के नाम से जाना जाता है। बघेली भाषा का विस्तार उत्तर में गंगा–यमुना से दक्षिण में नर्मदा तक कहा जा सकता है। जिनमें वर्तमान में रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली, शहडोल, उमरिया, अनूपपुर, कटनी, जबलपुर, चित्रकूट, बोदा, मिर्जापुर आदि जिलों में बोली जाती है। जिनमें से जबलपुर, चित्रकूट, बोदा, मिर्जापुर, प्रयागराज आदि जिलों के कुछ भूभाग में बघेली का मिश्रित रूप मिलता है। इतना ही नहीं बघेली की अन्य देशों में बोली जाने वाली भाषाओं से साम्यता है। नेपाल जैसे हिन्दी भाषी देश के कुछ गांवों की भाषा बघेली भाषा से अत्यधिक साम्यता रखती है।

बघेली बोली की कई उपबोलियां हैं जो बघेली से साम्यता रखने के कारण इसकी उपबोलियां कही जाती हैं। तिरहारी, गहोरा, जुड़ार, बनाकरी, मरारी पोवारी, कुम्भारी, बशोरी, ओझी, गोंडवानी, केवरी तथा चरखारी आदि हैं, जिनकी बुन्देली व छत्तीसगढ़ी के साथ बघेली से ज्यादा साम्यता देखी जा सकती है। डा. भगवती प्रसाद शुक्ल ने बघेली भाषा के तीन भेद किए हैं–मानक बघेली, गोंडानी और मिश्रित बघेली।

किसी भी आंचलिक व जनपदीय भाषा का स्वरूप निश्चित नहीं है। उनमें सीमागत भाषाओं का प्रभाव स्वाभाविक रूप से देखा जा सकता है। उसी प्रकार बघेली भाषा में भी सीमागत भिन्नता दिखाई देती है। पूर्व में भोजपुरी मिश्रित, पश्चिम में बुन्देली मिश्रित, उत्तर और दक्षिण में सरगुजही और छत्तीसगढ़ी मिश्रित बघेली बोली का स्वरूप प्राप्त होता है। ठेठ बघेली का स्वरूप केवल रीवा, सीधी, सतना, शहडोल आदि जिलों में मिलता है। रीवा के भूभाग में बोली जाने के कारण बघेली भाषा को रिमर्हर या रिमाई नाम से भी जाना जाता है।

बघेली भाषा को लिखने में पहले कैथी लिपि का प्रयोग किया जाता था लेकिन वर्तमान में देवनागरी व कैथी दोनों लिपियों का प्रयोग किया जाता है।

4.2.2 बघेली भाषा का व्याकरणिक स्वरूप

किसी भाषा का व्याकरण ही उसे अन्य भाषाओं से भिन्नता व साम्यता प्रदर्शित करने में सहायक होता है और भाषा के विकासक्रम के निर्धारण में सहायक होता है। बघेली भाषा का व्याकरण ग्रंथ सैद्धान्तिक रूप से प्राप्त नहीं होता है लेकिन व्याकरणिक भिन्नता ही उसे अन्य भाषाओं से अलग रखती है।

बघेली के परसर्ग या कारक

कर्ता – अ

कर्म – का

सम्प्रदान – कहा

अपादान – ते

करण – से, ते, तार

संबंध – कर, केर, केकेर

अधिकरण – में माँ

(i) बघेली में कर्ता के ने परसर्ग का अभाव है। कभी–कभी उसे दीर्घ बनाकर और ह्रस्व से ही काम लिया जाता है।

(ii) लिंग के अनुसार संबंध कारक में परिवर्तन नहीं होता है।

संज्ञा

मेहरी – मेहरिया

मंगल – मंगलबा

कौशिल्या – कउंसिलिया

गयादीन – गइदिनया

सर्वनाम

	एकवचन	**बहुवचन**
मैं –	मैंय	हम्म, हमहीं पचन
(तुम) –	तंय / तुमही	तुम पंचे, तुमहीं पचन
आप –	अपना	अपना पंचे
हम –	हमार	हमार पचन
वह –	उआ, उइ	उइ पाँच
मेरा –	मोर, म्वार	हमार
तेरा –	तोर–त्वार	तोहार
कौन –	को	कउन

वचन

	एकवचन	**बहुवचन**
(गाय)	गौयवा	गइवे
(भैंस)	भैइंस	भैंसिये
(मोर)	मोरवा	मोरवे
(बाजा)	बजबा	बजबे

क्रिया

	एकवचन पु.	**बहुवचन पु.**
	रहेऊँ, रहये	रहेन, रहेनवै,
	रहा, रहे	रहे रहेनवे रह वे
	खात हय	खात हँय
	सोबत हय	सोबत हँय
	खोंखत हय	खोखत हँय

एकवचन (स्त्रीलिंग)	बहुवचन (स्त्रीलिंग)
आबति हइ	आबति हँई
खाति हइ	खति हँई
सोबति हइ	सोबति हँई
खोखति हइ	खोखति हँई

क्रिया विशेषण

स्थानवाची विशेषण	दिशावाची विशेषण
इहाँ / हिंया (यहाँ)	इँहन (इधर)
उहाँ / हुँआ (वहाँ)	उहँन (उधर)
जहँय (जहाँ)	इया कइती (इस तरफ)
तहँय (तहाँ)	एँह कई / एँकई (इस ओर)
एँ कइती (इस तरफ)	ओंकई / ओहँकई (इस ओर)
ओं कइती (उस तरफ)	ए पलझा / ए बले (इस पार)
संख्यावाची क्रिया विशेषण	**कालवाची क्रिया विशेषण**
एतना / एत्ता (इतना)	जबहिन (जब / जभी)
ओतना / ओत्ता (उतना)	अबहिन / अबय (अभी)
केत्ता / केतना (कितना)	तबहिन / तबय (तभी)
जेत्ता / जितना / जेतू (जितना)	

काल

वर्तमान काल

(i) काकी गाना गावति हइ / (स्त्रीवाची / एकवचन)– काकी गाना गाती है।

(ii) भीखा किताबि पढ़त हय / (पुरुषवाची / एकवचन)– भीखा किताब पढ़ता है।

(iii) उइँ पचे कबिता लिखत हँय। (पुरुषवाची / बहुवचन)– वे लोग कविता लिखते हैं।

भूतकाल

(i) गीता पढ़ि लिहिस हइ (स्त्रीवाची / एकवचन)– गीता ने पढ़ लिया है।

(ii) खेतबा जोतरिगा हय / (पुरुषवाची / एकवचन)– खेत की जुताई हो गई।

भविष्यकाल

(i) सोनिया जेउनार बनाई! (स्त्रीवाची / एकवचन)– सोनिया खाना बनाएगी।

(ii) हम कविता लिखब / (पुरुषवाची / एकवचन)– मैं कविता लिखूंगा।

लिंग

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	प्रत्यय
बिलार	बिलरिया	इया
देवर	देउरानी	आनी
हरबाह	हरबाहिन	इन
चिहुँटा	चिहुँटी	ई
पंडित	पंडिताइन	आइन (खड़ी बोली हिन्दी से आगत)
चउरा	चउरी	आकारवाची

अव्यय

काल्हि (कल)
सकारे (सबेरे) (सुबह)
आजु (आज)
एहिन से (इसीलिए)
बहिरे (बाहर)
सउम्हे (सामने)
भितरे (भीतर)

वचन एवं पुरुष

उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
मोर / आपन	तोर / तोहाँर	उनखर / उनकर
मँय	तय	उँइ
हमहीं	तोहीं	उनहीं
हमार	तोहार	उनखर
हमका / हमखा	तोहका / तोहखा	उनखा

स्वर ध्वनियां– डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल के अनुसार बघेली में कुल तेरह स्वर ध्वनियां हैं, जिनमें सात दीर्घ स्वर और छह ह्रस्व स्वर ध्वनियां हैं।

दीर्घ स्वर– आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

ह्रस्व स्वर– अ, अँ, इ, उ, एँ, ओं (अ का ऽ रूप)

बघेली में अ की जगह अँ तथा ए की जगह अइ और औ की जगह अउ जैसी ध्वनियों का प्रयोग होता है।

बघेली भाषा को अवधी भाषा की उपबोली कहा गया है लेकिन सर जॉर्ज गियर्सन के अनुसार बघेली का व्याकरणिक वैशिष्टय भिन्न है।

(1) बघेली की अतीत काल की क्रिया में 'ते' अथवा 'तैं' लगता है जिसका अवधी में अभाव है। जैसे–गयेन ते, सुनेन ते।

(2) भविष्यकाल की क्रिया के रूप में अवधी में 'देखबौं' किन्तु बघेली में देखिहौं, अइहौं, कहिहौं, लिखिहौं आदि प्रयुक्त होते हैं।

(3) अवधी में व और बघेली में 'ब' प्रयोग होता है। जैसे–

अवधी	बघेली
अवाज	अबाज
आवा	आबा
लावा	लाबा

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार, बघेली भाषा की कुछ और ध्वन्यात्मक विशिष्टताएं हैं, जैसे–

(1) बघेली के विशेष पदों के (अंत) दीर्घान्त रूपों में "हा" होता है– जैसे निकहा, धिनहा, हरहा।

(2) आदरार्थ या आज्ञार्थ के लिए 'ई' का प्रयोग मिलता है–जैसे–हम हीं अब जाँय देई/हमहूँ का पढ़ै–लिखै देई।

ध्वन्यात्मक अध्ययन के आधार पर बघेली बोली की कुछ विशेषताएं निम्न हैं–

(i) यहाँ के पर्याय में इहाँ/वहाँ के स्थल पर उहाँ।

(ii) ण के स्थान पर न। (प्राण–प्रान, प्रणाम–प्रनाम)

(iii) र का ल हो जाता है। (फलाहार–फराहार, फल–फर)

(iv) व के स्थान ब और श के स्थान स। (आवाज–आबाज, आकाश–आकास, परदेश–परदेस)

अतः स्पष्ट होता है कि बघेली बोली हिन्दी भाषा की एक समस्त बोली है, जिसमें हिन्दी भाषा में अत्यधिक साम्यता व अन्य बोलियों से काफी भिन्नता है। बघेली बोली को भाषा भी कहा जा सकता है क्योंकि बघेली में भाषागत समस्त गुण विद्यमान हैं।

4.2.3 बघेली साहित्य का विकास

किसी भी बोली या भाषा के साहित्य का विकास क्रमिक रूप में होता है। उसी प्रकार बघेली बोली साहित्य का विकास भी क्रमिक रूप में हुआ है। प्रारम्भ में बघेली भाषा का साहित्य लोक गीतों, लोक कथाओं, संस्कार गीतों, लोकोक्तियों, मुहावरों, कहानियों, मुकरियों, किस्से–कहानियों के रूप में मौखिक रूप में प्राप्त होता है। मौखिक होने के कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है जिससे हमें बघेली बोली के प्रारम्भिक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता है।

लोक की वंचित परंपरा में जो साहित्य प्राप्त होता है वह अधिकांश स्त्रियों द्वारा रचा गया है। जीवन व जीवन के विविध अवसरों, अनुष्ठानों के साथ संबंध रखे हुए यह पूरी काव्य संगीत व कथा परंपरा आज भी अक्षुण्ण है। संस्कार और अवसर–अनुष्ठानों के गीत छोटे–छोटे मात्रिक आवृत्तियों में हैं। उनकी गायन पद्धतियां और गीतों की धुनें बहुत मधुर हैं और एक लम्बी परंपरा से स्थिर रही हैं। बघेली बोली में प्रत्येक संस्कारों व सुअवसरों के लिए अलग–अलग गीत हैं। शादी–विवाह के लिए विवाह गीत, श्रम कार्य करते हुए श्रम गीत, ऋतुओं के अनुसार गीत, तीज–त्योहारों के गीत आदि कई

तरह के गीत परंपरा में चले आ रहे हैं। बघेली बोली के लोकगीत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

भारी रे काँपइ, गेहुआ रे काँपइ,
काँपइ कुशा के डोरि,
मड़ये तर काँपइ बपबा ओनई राम,
देत कुमारी का दान।"

लोकगीतों की तरह लोककथाओं से बघेली साहित्य काफी समृद्ध है। बघेली लोककथाएं वर्तमान में भी वाचिक परंपरा में लोक में मौजूद हैं। बघेली लोककथा दो रूपों में प्राप्त होती है– पद्यमय व गद्यमय। दोनों रूपों में बघेली लोककथाएं परंपरा से चली आ रही हैं लेकिन अब विलुप्त प्राय की स्थिति में हैं। लोक कथाओं का पद्यमय रूप बसदेवा गायन या भरभरी गायन के रूप में मौजूद है। लोककथाओं के पद्यमय रूप में कई कथाएं प्रचलित हैं– जैसे हरिश्चंद्र की कथा, रानी सारंगा की कथा आदि। गद्यमय लोक कथा का नमूना द्रष्टव्य है–

"लाखन सिंह राज खानदान के ठाकुर ठहरे यसे गरीबी के बावजूदौ उनके शान शउकत और ठाट बाट में कमी न आई तै य अलग बाति आय की जउने घोड़ी का अपने ठाट बाट खातिर बेसाहिन तै अब काजे अउसरे दुल्हा के चढ़ै निता किराये में देय लागे तै। एक बेर कउनो बरात म घोड़ी का लइगे औ जनमाजे म मेखा गाड़ ओही बांध दिहिन। बरात के दुवारचार म कुछ देरंगी रहै य से जनमाजे म बरातिन के साथ गप्प मारै लागे। कुछ घर या बादर घुमड़ आये औ बूँदा–बाँदी पानी बरखै लगा। बराती कहिन लाखन सिंह घोड़ी का भीतर बाँधल्या पानी गिरत लाग है। लाखन सिंह सोचिन कि बूँदा बाँदी बरखत लाग है कुछ दार मा निकट जई य से सहजै कहि दिहिन कि लाखन सिंह के मेख जहाँ गडगै त बरात बिदाई के बादै उखरत लाग ही। कुछ दार मा छोट–छोट बेनउरी परै लागि।..... ।"

लोक कथाओं से बघेली भाषा का साहित्य आगे बढ़ा है। लोककथाएं ही साहित्य रचना की प्रेरणा प्रदान करती हैं। लोककथाओं में जो कथा का वर्णनात्मक किस्सागोई रूप प्राप्त होता है, वही आगे चलकर कहानियों व उपन्यासों में देखा जाता है। लोककथाओं के अतिरिक्त बघेली भाषा में जनउहल या मुकरिया प्राप्त होती है, जो साहित्य के विकास के स्वरूप की एक कड़ी है। जनउहल का नमूना द्रष्टव्य है।

(i) अरिया माँ लोलरिया नाचै। – जीभ

(ii) एक चिरइया लेदी फेदी रात भर पिरवाई,
बड़े सकारे उची परोसिन झउआ भर बिन आई। – महुआ

(iii) काका के कानै नहीं, काकी के दुइ कान,
काका कुछू नहीं, काकी चतुर सुजान। – तवा, कड़ाही

(iv) गुड्डुर–गुड्डुर करके बजे, जब सिर लागै आग
बाजन लागै बासुरी, निकसन लागै नाग। – हुक्का

(v) गाय बियान हड्डा, हड्डा बियान बच्चा।
जा पंडित जी से पूंछि आव की का पियैव बच्छा।– मुर्गी

कहावतें व लोकोक्तियां भी बघेली साहित्य के विकास में एक अहम योगदान प्रस्तुत करती हैं। बघेली भाषा में लोकोक्तियों व कहावतों की भरमार है, जिसका प्रयोग साहित्यकारों ने साहित्य सृजन में भी किया है। कहावतें भी साहित्य रचना का एक अंग हैं–

(i) नमाइन के गोह दिखिन मउसी पलागो।

(भाव–अनायास नई उपलब्धि पाने पर मूल को भूल जाना)

(ii) मुगउरा मुरै नहीं चबइना का मन करैं।

(भाव–सरल काम संभव नहीं, कठिन के लिए मन करना।)

बघेली भाषा का साहित्य मौखिक रूप से आगे बढ़कर लिखित रूप में विकसित हुआ, बघेली कविता का प्रामाणिक रूप 1857 ईस्वी के पास पास से मिलने लगता है। बघेली कविता के आदि कवि के रूप में पंडित हरिदास को माना जाता है। जिनके उपरांत बघेली कविता में अनवरत लेखन जारी है। जिस कड़ी में बैजनाथ 'बैजू', सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', शम्भू काकू, रामदास पयासी व रामनाथ प्रधान आदि कवि हैं। जिन्हें प्रो. सेवाराम त्रिपाठी ने परम्परागत भावबोध के कवि माना है। पंडित हरिदास की कविता हास्य व व्यंग्य प्रधान कविता है। उन्होंने समाज की समस्याओं का चित्रण काव्यात्मक रूप में किया है जैसे–

"कोहू केर गिरा है अगरा–पगरा,
अऊ कोहू केर गिरा ओसार।
हरीदास के मुड़हर गिरिगा,
रोमई धरे कपार।"

प्रारम्भिक बघेली कविता में प्रकाशित कृतियां कम मिलती हैं, पंडित हरिदास का कोई संग्रह नहीं प्राप्त होता है। बैजनाथ पाण्डेय 'बैजू' की सूक्तियां, सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की भारत केर माटी, दिया बरी भा अंजोर, एक दिन अइ सब होई। रामदास पयासी की माटी केर महक आदि काव्य संग्रह प्राप्त होते हैं। परम्परागत भाव बोध के कवियों के बाद एक बघेली कवियों की लम्बी शृंखला है, जिनमें प्रो. आदित्य प्रताप सिंह, डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, गोमती प्रसाद 'विकल', कालिका प्रसाद त्रिपाठी, डॉ. अमोल बटरोही, बाबूलाल दाहिया, डॉ. शिवशंकर मिश्र 'सरस', सुदामा 'शरद', भागवत प्रसाद पाठक, रामचन्द्र सोनी 'विरागी', हरिनारायण सिंह 'हरीश', विजय सिंह परिहार, धीरेन्द्र त्रिपाठी, मैथिलीशरण शुक्ल 'मैथिली', अनूप 'अशेष', डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी, श्रीनिवास शुक्ल 'सरस', लक्ष्मण सिंह परिहार, ओम द्विवेदी आदि हैं, जिन्होंने बघेली कविता को समृद्ध किया है और कर रहे हैं।

बघेली साहित्य में गद्य साहित्य बहुत कम लिखा गया है। बघेली गद्य साहित्य के अंतर्गत कुछ कहानियां, उपन्यास व निबंध प्राप्त होते हैं। जिनमें सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' का इंदल दिल्लू उपन्यास व नेउतहरी कहानी संग्रह, भगवती प्रसाद शुक्ल का खारे जल का गांव, माटी का आकार, कब तक, ठहरा हुआ आदमी, लाँपी आदि प्रकाश में आए हैं। शिव शंकर मिश्र 'सरस' की नरई और दिही के गाउब कहानियां। डॉ. रश्मि शुक्ल का सेंदुर का बोझ, रामनरेश सिंह का चन्दन और चमेली, भागवत प्रसाद शर्मा की चिरई चुनूगुन, सूख पेड़ झुरान नदी, कलप डाह, गोमती प्रसाद विकल की निकरिचला दइ टटिया और दुरघटिया, चंद्रिका प्रसाद चन्द्र का भोर का सुक्ख (संग्रह),

देवी शरण 'ग्रामीण' का नओघर (संग्रह), भानु सिंह की कांटे की मार–काट, सूर्यमणि शुक्ल की चांई–माई आदि कहानियां प्रकाशित हैं।

बघेली भाषा में कुछ नाटकों की रचना भी की गई हैं जिनमें योगेश त्रिपाठी का "छाहुर", होईहैं सोई जो राम रचि रखा, कब अउबे भगवान आदि व रामदास काहे उदास, एक दुखी गांव क्षितिज नाट्य संस्था द्वारा मंचित, हीरेन्द्र सिंह सेंगर का कौन भूमि ते माटी आदि नाटक प्रकाश में आए हैं। बघेली भाषा में निबंध व आलेखों का भी सृजन किया गया है जिनमें डॉ. श्रीनिवास शुक्ल 'सरस' का "सरग नसैनी" निबंध संग्रह, चन्द्रिका प्रसाद चन्द्र के "किस्सा सुरती अउर सुरतिहन केर", सॅउजै सॅउज नसान, बादि आयेन अइसन जिन्दगी से, हमार हेरान गांव आदि निबंध प्राप्त होते हैं। वर्तमान में 'लघुकथाएं' भी बघेली में लिखी जाने लगी हैं। गोमती प्रसाद विकल जी का संग्रह प्रकाश में आया है।

अतः उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बघेली भाषा का साहित्य समृद्ध है, बघेली भाषा में साहित्य सृजन की अपार संभावनाएं हैं। कविता का विकास तो अन्य हिन्दी भाषाओं के समानांतर ठहरता है लेकिन कथा साहित्य का विकास अभी उभरा हुआ सा प्रतीत होता है। बघेली भाषा साहित्यिक दृष्टि से काफी समृद्ध है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. बघेली भाषा क्षेत्र को किस नाम से जाना जाता है?
   (क) बुंदेलखंड (ख) बघेलखंड
   (ग) झारखंड (घ) इनमें से कोई नहीं
2. बघेली भाषा निम्न में से किस हिन्दी प्रभाग के अंतर्गत आती है?
   (क) पूर्वी हिन्दी (ख) पश्चिमी हिन्दी
   (ग) राजस्थानी हिन्दी (घ) पहाड़ी हिन्दी

4.3 बघेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या

बघेली भाषा के प्रमुख कवियों– सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', अमोल बटरोही एवं शिवशंकर मिश्र 'सरस' के साहित्यिक परिचय, उनकी रचनाओं के मूल पाठ एवं व्याख्याओं को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.3.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू'

हिन्दी भाषा के पूर्वी प्रभाग के रीवा, सीधी, सतना, शहडोल क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को बघेली भाषा कहा जाता है, जिसके मूर्धन्य कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' जी हैं जिन्होंने बघेली काव्य परंपरा को नए आयाम दिए व एक सुदृढ़ काव्य परंपरा प्रदान की जिसमें देश व समाज की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना चित्रित हुई है। समाज में पनपी विकृतियों और समाज की रूढ़िगत विसंगतियों पर प्रहार किया

गया है। सूखा, बाढ़, पर्यावरण हानि आदि से जूझता किसान, दहेज प्रथा, बेरोजगारी, बाल–विवाह, जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती महंगाई आदि समस्याओं व बुराइयों से मुक्ति की छटपटाहट को बघेली भाषा साहित्य का अंग बनाया। भारतीय परंपरा से प्रभावित भारत की प्रगतिशील सामाजिक परिस्थितियों, राष्ट्रीय चेतना व मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रसारित किया व नारी के प्रति श्रद्धा व सम्मान व्यक्त किया।

जीवन परिचय व व्यक्तित्व

बघेली भाषा के मूर्धन्य कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' जी का जन्म सतना जिले के अमरपाटन तहसील के रामनगर ग्राम में 1 जुलाई, 1923 को हुआ था। इनके पिता का नाम मुंशी नजीरूद्दीन सिद्दीकी 'उपमा' था, जो स्वयं बघेली भाषा के कवि थे। सैफू जी पेशे से सरकारी राजस्व निरीक्षक (तहसीलदार) के पद पर थे। भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के निष्णात वैद्य थे। हिन्दी साहित्य रत्न की परीक्षा भी आपने पास की थी। सैफू जी स्वभाव से अत्यंत सरल–सहज किन्तु अनुभव से संपन्न थे। उनके जैसा लोकजीवन का अनुभव विरले लोगों में पाया जाता है, जिसका प्रतिफल उनकी बघेली की रचनाएं हैं। आपके पिता स्वयं हिन्दी, उर्दू व बघेली के अच्छे कवि थे। पिता से पढ़ने–लिखने की ललक, इंसानियत की प्रतिष्ठा, राष्ट्रभक्ति, मातृभूमि के प्रति अनन्य निष्ठा आदि भाव प्राप्त किए। सैफू जी के जीवन में साहित्य जाने–अनजाने, रचने–बसने लगा व किशोरावस्था से ही लिखी जाने वाली उनकी काव्य–रचनाओं में ये तथ्य प्रतिष्ठा पाने लगे थे।

कवि अपने युग परिवेश से प्रभावित ही नहीं होता बल्कि अपनी युगांतकारी दृष्टि तथा कृतियों से उसे प्रभावित भी करता है। कभी वह अतीत की प्रेरणा से नवनिर्माण का संकल्प दोहराता है तो कभी नवनिर्माण से भविष्य के लिए एक अजर–अमर अतीत का सृजन करता है। समाज व राष्ट्र की स्थिति ही नहीं अपितु साहित्य की परंपरा भी कवि व काव्य निर्माण में सहायक है। सैफू जी का जन्म पराधीन भारत में हुआ था। जिससे स्वाधीनता आंदोलन की छाप भी उन पर पड़ रही थी। सैफू जी के सामने देश में व्याप्त अराजकता व आजादी के बाद भारत की स्थिति सचित्र रूप में थी। देश में सामाजिक विघटन सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का ह्रास तथा आर्थिक व राजनीतिक बदलाव बहुत तेजी से हो रहा था। दूसरी ओर देश में ब्रह्म समाज और आर्य समाज जैसी समाज सुधारक संस्थाओं की स्थापना हो चुकी थी लेकिन समाज में बाल–विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, जाति प्रथा, छुआ–छूत जैसी बुराइयां अपनी जड़ जमाए हुए थीं।

सैफू जी के पूर्व बघेली भाषा में पंडित हरिदास, नजीरूद्दीन सिद्दीकी 'उपमा', बैजनाथ बैजू तथा पं. रामप्यारे अग्निहोत्री आदि कवियों की काव्य परंपरा बघेली साहित्य में चली आ रही थी। बघेली साहित्य की वाचिक परंपरा व लोकगीतों का विशाल भंडार था जिससे अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का सशक्त स्वर दर्ज था। इसका प्रभाव सैफू जी के काव्य में देखने को मिलता है। आपको संस्कृति विभाग, मध्य प्रदेश शासन के दुष्यंत कुमार पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है।

साहित्यिक परिचय

भावनाओं के सुमधुर गायक व बघेली काव्य के विशुद्ध निर्माता सैफू जी का काव्य विशाल व विराट है। सैफू जी ने अपनी कवि जीवन साधना में संसार व समाज की प्रतिलिपि को बघेली भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर साहित्य को प्रेरणा प्रदान की है।

काव्य रचनाएं

1. एक दिन अइसव होई
2. दिया बरी भा अँजोर–1975
3. भारत केर माटी–1981
4. सैफू बिनोद
5. सैफू केर कुण्डलियां (व्यंग्य रचना)
6. चुनाव केर चक्कर
7. बलम बेसर गढ़बाबा

कथा साहित्य

1. नेउतहरी (कहानी संग्रह)
2. इंदल दिल्लू (उपन्यास)
3. सैफू की बघेली पहेलियां (पहेलियां)

चिटका की राख

काव्य सौन्दर्य

सैफू जी के काव्य में बघेली जनपद का आयाम बोलता है। सामान्यजन, दलित, शोषित, उत्पीड़ित और समस्याओं से जूझता किसान आदि का कई कोणों से रूपायन किया गया है। समाज व देश का बेबाकीपूर्ण वर्णन सैफू जी ने अपने काव्य में किया है। सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों (ढ़ोंगों) अन्याय व अत्याचार का वर्णन है जिसमें बाल–विवाह जैसी कुरीतियों का वर्णन करते हुए उस प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि–

दसै बरिस मा लिहे रड़ापा, बपुरी डोलत बागै
सब समाज बैरी कस लागै, मुद्दत कैसे माँगे।

लड़की का दस वर्ष की उम्र में विवाह हो जाता है, वह अगर विधवा हो जाती है, तो समाज उसे हेय दृष्टि से देखने लगता है। फिर समाज में उसे ब्याह करने योग्य नहीं समझा जाता है। इसलिए विधवा विवाह को समाज में स्वीकार्यता दिलाने के लिए सैफू जी ने पुरजोर वकालत की है। समाज की कुरीति पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं कि–

छोड़ा ई रभेस पहिले के कहत न फिरा कहानी।
पुनि के होई काज बितियन के सब जन एका मानी।
बहुत दिना भर चलिगा भउसा, पहिलेन अस न होई।।

किसान जीवन की महत्ता, उसकी विसंगतियों व विद्रूपताओं का यथार्थ वर्णन सैफू जी के काव्य में हुआ है। किसान की जर्जर हालत व गरीबी का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि–

पुतही बण्डी पहिरै बागै, उनहीं सउख न लागै।
माघ पूस माँ परै ठहारी, तक खेत उँयँ भागै।।
पुतही मिरजाई माँ लाखन बयाला बजे,
धोती और मेहरारू के होइगै ही लत्ती।

पूंजीपतियों द्वारा किए जा रहे शोषण का वर्णन किया गया है कि पूंजीपति मजदूरों का किस प्रकार शोषण करते हैं। मजदूरों के श्रम से स्वयं पूंजीपति बन गए लेकिन मजदूर आज भी भूख से मर रहे हैं, वे कहते हैं कि–

तुम पुल बनाय, केतनेउ नदिया का डाँक गया।
पंजीरी अस केतनऊ गरीब का फाँक गया।।
तोहँरे खितिर जे खून पसीना एक करिन।
तोहँरे पक्कनमा जे गिलाव औ ईट धरिन।।
कबहूँ तुम उनहीं ठोरिऊँ कइत निहरत्या है।
रोटिब भरपेट दिहा की भूखन मरबउत्या है।।

समाज में फैलाए गए ढोंग–आडम्बर का पर्दापाश करते हुए समाज को सचेत करते हैं। भाग्य के भरोसे न बैठने, कर्मवादी बनने की प्रेरणा देते हैं। पोथी, पत्रा, सुदिन आदि केवल आडम्बर है। हमारा भाग्य हमारे कार्यों पर आधारित होता है।

पंडित बाबा सुदिन बनाइन पोथी पत्रा देखिन।
करम राम का लिखा है, ओऊँ नहीं सरेखिन।।

स्वाधीनता संग्राम में हुए बलिदानों का वर्णन करते हुए समाज में राष्ट्रीय चेतना व देश–प्रेम की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया है–

समाज में फैली महंगाई जैसी आपदा का इन्होंने यथार्थ वर्णन किया है। महंगाई से समाज में अराजकता फैली हुई है। किसान का अनाज सस्ता है लेकिन पूंजीपतियों द्वारा बनाए गए सभी उत्पाद महंगे हैं। जिससे ग्रामीण लोगों की हालत जर्जर होती जा रही है। किसान पर कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है।

चरसा उधेर लिहिस आय महंगाई सब,
नोन–तेल लकड़िन माँ बिकेंगे, गिरहस्ती।
महंगा केराना, अनाज सब सस्ता है,
खाद अऊर बीज केर करजा गठि आयेन है।

समाज में फैले सामाजिक भेदभाव, जाति–पाति, ऊंच–नीच आदि असमानता के कारकों को नकारते हुए सामाजिक समानता पर बल देते हैं। भेदभाव से समाज में अराजकता का माहौल है, इसलिए भेदभाव को मिटाने व सामाजिक सौहार्द की अपील करते हुए कहते हैं कि–

जात–पाँत के भेद माँ, चलिहैं लाठी बोंग,
कितनेव सरगे जहल माँ, मनई बना चिपोंग।
कोऊ ऊँच न नीच, एक चाकै के माटी,
भेदभाव कानून कायदा, हम तुम छाँटी।

प्रकृति का मनोरम चित्रण भी उनकी कविताओं में किया गया है। प्रकृति प्रदत्त आपदाओं, बाढ़, सूखा आदि का वर्णन किया गया है। प्रकृति का वर्णन करते हुए कवि प्रकृतिपरक रूपकों का प्रयोग करता है।

माघ पूस मा परै ठहारी, तऊ खेत उँय भागै।
पुसउर केर बइहरा बहिगा, मसि कै लाग ठहारी।।

सैफू जी के काव्य में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। गांव में व्याप्त सामाजिक समस्या का बेबाक वर्णन प्रस्तुत हुआ है जिसमें मजलूमों, गरीबों और किसानों की अभावग्रस्त जिन्दगी का यथार्थ रूपायन किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की महत्ता को प्रतिपादित कर समाज को प्रेरित किया है। समाज में पनप रही विकृतियों और विसंगतियों पर प्रहार पर कठोर प्रहार करते हुए अशिक्षा, बेरोजगारी आदि समस्याओं से मुक्ति की छटपटाहट व्यक्त हुई है।

सैफू जी की काव्य भाषा बघेली जनपदीय भाषा है, जो हिन्दी भाषा प्रभाग के पूर्वी हिन्दी की एक उपभाषा है। जो अवधी के ज्यादा नजदीक है। सैफू जी ने बघेली में कुछ नए शब्दों का प्रयोग करते हुए अरबी, फारसी शब्दों को रूपांतरण कर बोली में प्रयोग किया। समाज में प्रयुक्त किए जाने वाले मुहावरों व लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग किया। छंदों के रूप में प्रचलित मुक्तक व कवित्त छंदों व दोहा छंदों का प्रयोग किया है। उन्होंने कुण्डलिया छंद प्रयोग करते हुए आठ पंक्तियों का प्रयोग किया है।

सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की रचनाओं का मूल पाठ

1. भारत केर माटी

या भारत के माँटी माँथे माँ थोपित हन।
माटिन माँ सुख–दुख केर घुरूदिया रोपित हन।।
या पूजा पाठ पुरान इहै ओढ़ना दसना।
एहिन माँ जिंनगानी सगली खरभोंटित हन।।

या माँटिन माँ गीता के अकिल बताबागा।
माँटिन माँ रहस रचाय गऊ डहराबागा
भगमान जहाँ के धूधुर माँ, लोटत बागा।
जमुना के तीरे माँ बइकुंठ बसाबागा।।

पइठारी जहाँ न मिली कस हस मनइन के।
कालिया नाथ के दहरा माँ पउहाबा गा।।
दुरजोधन के मरजाद सबै माँटी होइगय।
द्रोपदी केर जब ओढ़ना खूब बढ़ाबा गा।।

या माँटिन माँ भगवान राम अउतार लिहिन।
माँटिन से सीता के रूप बनाबा गा।।
रामन नसान सोने के लंका सब ढहिगा।
जब माँटी माँ माँटी के हाँथ लगाबा गा।

या माँटी साधू सन्तन केर खदान रही।
देबी देउता और सतिन केर खरिहान रही।
पथरी का देउता मान लोलार लुटाबा गा।
एखर मिरथी माँ ताजमहल कस सान रही।

एहिन माँ तुलसी सूर बहुत लग ज्ञानी में।
एहिन माँ ध्रुव प्रहलाद बहुत बरदानी भें।।
या लबरी पोड़ी माँ विसुआस नहीं मानिस।
धरमें के सुरिज देखान हजारन दानी भें।।
केतनेउ जोधा भें केखर नाउ गिनाई हम।
केतनिव जौहर मा जरी कहाँ लग गाई हम।।
या माटी माँ घिउ दूध केर बूड़ा आबा।
छिउलन माँ फरी सोहारी हिअै बताई हम।।
या कइअक बेरकी बदमासन से लूटी गै।
गोली बंदूखन से सब दिनहूँ कूटी गै।।
पै कोहनूर कस हीरा देते आई है।
या परी नाहिं मखमल के बीर बहूटी भें।।
सन्तामन के रइमा माँ केतनेउ मारेंगें।
केतनेउ जहलन माँ पकड़–पकड़ के डारेंगें।।
केतनेउ के घर होरी हँस खासा बारेंगें।
पै रकत सींच माँटी का खूब सम्हारेंगे।
गांधी के आँधी उठी फेर मनई जागा।
मूड़े माँ माँटी थोप कफन गठिआबागा।
'सैफू' सुराज के सुरिज सवत्तर उइ आएँ।
माँटी माँ इहै तिरंगा पुन फहराबागा।।

2. दइउत बनाइस मनई

जात पाँत के भेद माँ, चलिहैं लाठी बोंग,
कितनेव सरगे जहल माँ, मनई बना चिपोंग।
मनई बना चिपोंग, कहाँ के वा सरबरिया,
कतर ब्यौत माँ, छाबत बागै उल्टी घरिया।
कोऊ ऊँच न नीच, एक चाकै के माटी,
भेदभाव कानून कायदा, हम तुम छाँटी।
कह 'सैफू' कविराज दइउ त बनइस मनई,
हम तुम धरेन बनाय, जात के लाखन कनई।।

(यह कुण्डलिया छन्द है। इस छन्द में प्रथम दो पंक्तियां 'दोहे' और शेष चार 'रोला' के रूप में कुल छह पंक्तियां होती हैं। किन्तु यहां कवि ने आठ पंक्तियों का प्रयोग किया है। – सम्पादक)

3. मालिक सम्हारे तैं

(1)

टठिया भर डोभरी खाय बल भर डकरात फिरी,
फटहिन लँगोटी माँ राम राज मानेन है।
पइरा माँ परे–परे ठुटुरिअई जाड़े माँ,
दाई के आँगू के कथरी निकारेन है।
सँझबाती खातिर कुछ सनई हँउकाये रही,
चुल्हबै के आँगू अँजोर हयवरिन है।
सब दिन किसानी माँ ओड़ा पिसान किहेन,
बिपत केर बेरा सब हँस–हँस के टारेन है।।

(2)

चरसा उधेर लिहिस आय महँगाई सब,
नोन–तेल–लकड़िन माँ बिकगै गिरहस्ती।
फटही मिरजाई माँ लाखन बयाला बजे,
धोती और मेहरारू के होइगै ही लत्ती।
खेतन के जमा लेय आबै पटबारी तो,
भीतर लुके काटत रही बीड़ी के पत्ती।
तबहूँ न पूज परै जूना माँ रोटी नोन,
करमै उतारे है सगली अलमस्ती।।

(3)

मँहग केराना अनाज सब सस्ता है,
खाद अउर बीज केर करजा गठि आयेन है।
धउरत फिरी चारौं कई ताहेउ न लागै लाग,
काढ़, काढ़ बाढ़ी सब व्यौहर के खायेन है।
लागैं लाग लाज बड़े मनइन के आये गए,
चुअना बनबायेन घर असमाँ ना छबाइएन है।
देखित हम केतनी वेबत्था पथरा हस पड़ी,
अब तो किसानिन माँ मूडै घोंटाएन है।।

(4)

बिटिया के काजे माँ दइजा खुर खुन्द करे,
लड़िका पढ़ाई तो खरिच निरुआरे तैं।
संकठ माँ काँखि कूँख कइसव के ढरक जई,
अइसन तजबीज कउनौ गली ते निकारे तैं।

दुइ पउवा दाना नात, साधू, सन्त पावत रहैं,
हमहूँ पाँच जिअत रही अइसन निहारे तैं।
'सैफू' कहैं सगली बड़मन्सी है तोरे हाँथ,
जनम दिहे के लाज मालिक सम्हारे तैं।।

4. रुपिया केर महातिम

धनमानी रुपिया केर महातिम है भारी।
खोलबाय लिहा तुम मील, चली मोटर लारी।।
बैकुण्ठ लोक अस बड़े मकान बने।
आराम केर तोहँरे खितिर सामान बने।।
तुम पुल बनाय, केतनेउ नदिया का डाँक गया।
पंजीरी अस केतनेउ, गरीब का फाँक गया।।
तोहँरे खितिर जे खून पसीना एक करिन।
तोहँरे पक्कनमा जे गिलाव औ ईट धरिन।।
कबहूँ तुम उनहीं ठोरिऊँ कइत निहरत्या है।
रोटिब भरपेट दिहा की भूखन मरबउत्या है।।
गिन–गिन के रकम तिजोरिन माँ, तुम गाँज दिहा।
लछमिनिया के कुछु अइसन, काजर आँज दिहा।।
व तोहँइन का बस आँखी फार निहारे है।
तोहँरेन घर माँ बस बलभर गोड़ पसारे है।।

5. किसान

चरचरात कमरी काँधा माँ, हाथे माँ पइनारी।
धरती माँ बोमै अनाज, पै जान परै भिखियारी।।
खरी दुपहरी चारा छोलै, बरदा कहौ चरामैं।
सिकसिकाय के चुयै पसीना, गऊ गीत उँयँ गामै।।
सब सोमै उँयँ पहर चरामै, अँधियारे माँ भाई।
आँधिउ पानी उठै चलै, उँथँ गोरुअन का डहराई।।
फटही बण्डी पहिरे बागै, उनहीं सउख न लागै।
माघ पूस माँ परै ठहारी, तऊ खेत उँयँ भागै।।
निकहा अन्न आन का नापै, अपना खाइन बदरा।
आने का कमरा ओढ़बामै, अपनउ ओढ़ैं चदरा।।
घर माँ मोट दसामै पइरा, घरे फाट अस कथरी।
मच्छर माँछी का भन्नहटा, वहउ कबउ न अखरी।।
दालिद घुसै चाहै लछमिनिया, उनहीं सबै बराबर।

दुअरा माँ कोऊ जो आबै, दीन्हिन ओही आदर।।
भले रहै गंधात सार उँयँ स्वामै टाँग पसारे।
जोन्हरिउ केर मिलय जो ठूसा, बलभर रहै डकारे।।
आँधी, पानी, घाम, बइहरा, इनहीं सबै डेराँय।
विपत राम दउड़े लइ बेड़ना, तउ ठाड़ बिदुराँय।।
चाहे पिरिथी लेय करउँटा, नदिया छोड़ै थान।
'सैफू' कहै काम माँ जिउ का, अँउटे तऊ किसान।।

रचनाओं की सप्रसंग व्याख्या

भारत केर माटी

पद्य : "या भारत कै माटी ..... जिंगगानी सगली खरभोंटित हन।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा काव्य शीर्षस्थ कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के प्रसिद्ध संग्रह "भारत केर माटी" में संकलित कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि 'सैफू जी' ने भारत देश की महिमा का गुणगान करते हुए भारत की मिट्टी की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत की मिट्टी इतनी महान है कि जिसे हम माथे से लगाते हैं। प्रणाम करते हुए अपने सुखों व दुखों का घर भारत की मिट्टी से बनाते हैं। यही मिट्टी सब कुछ है। यही पूजा, पाठ, पुराण आदि सभी है। यही मिट्टी जीवन है, ओढ़न व बिछावन है। इसी मिट्टी में कवि अपना समस्त जीवन गुजारता है। कवि कहता है कि भारत की मिट्टी केवल मिट्टी नहीं बल्कि जीवन है, जिसमें इंसान अपनी समस्त क्रियाएं संपादित करता है। भारत की मिट्टी महान है। इसका जितना गुणगान किया जाए कम ही होगा।

विशेष

(i) मिट्टी की महत्ता का प्रतिपादन।
(ii) बघेली जनपदीय भाषा का प्रयोग।
(iii) सरस प्रवाहपूर्ण लयात्मक शैली का प्रयोग।
(iv) प्रसाद व माधुर्य गुण।
(v) इतिवृत्तात्मकता का प्रयोग।

पद्य : "या मॉटिन माँ गीता ..... ओढ़ना खूब बढ़ाबा गा।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा काव्य शीर्षस्थ कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के प्रसिद्ध संग्रह "भारत केर माटी" में संकलित कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने भारत की मिट्टी की महिमा का बखान श्रीकृष्ण के अवतरण और उनकी लीला के माध्यम से किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत देश इतना महान है कि जिसमें गीता जैसे आध्यात्मिक दर्शन का सृजन हुआ। जिसे कर्मवादी दर्शन कहा जाता है। यहां श्रीकृष्ण

जैसे महानायकों का अवतरण हुआ। श्रीकृष्ण द्वारा अनेक कार्य व लीलाएं की गईं। श्रीकृष्ण जैसे महानायकों ने यहां गौचारण किया है। जिन्हें ईश्वर कहा गया। श्रीकृष्ण ने यहां धूल–मिट्टी में अपना बाल्यपन बिताया है। जिनके द्वारा यमुना नदी के तट पर स्वर्ग का निर्माण किया गया है।

कवि कहता है कि कंस समान दुराचारी लोगों के लिए इस भारत देश की मिट्टी में कोई जगह नहीं है। उनका दमन कर दिया जाता है। कालिया नाग जैसे जहरीले जहर वालों को नदियों यानी उनके निवास से निर्गत कर छोटे–मोटे जलाशयों में बसने के लिए मजबूर किया गया। दुर्योधन जैसे दंभी लोगों द्वारा द्रौपदी जैसी स्त्रियों का जब चीरहरण किया जाता है तो श्रीकृष्ण जैसे लोगों द्वारा स्त्रियों की रक्षा कर उनका मान मिट्टी में मिला दिया जाता है। कवि का कहना है कि इस मिट्टी में दुराचारियों अन्यायियों, आततायियों के लिए कोई जगह नहीं है। यहां श्रीकृष्ण जैसे भगवान का जन्म होता है और दुराचारियों, आततायियों का अंत होता है। भारत जैसे देश की मिट्टी पवित्र है। जहां लोगों को जन्म–मरण से मुक्ति प्राप्त होती है। यहां केवल भगवान श्रीकृष्ण जैसे लोगों का मान व सम्मान होता है। भारत की मिट्टी महान व पवित्र है।

विशेष

(i) श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित श्रीकृष्ण कथा उल्लेख।

(ii) बघेली जनपदीय भाषा का प्रयोग।

(iii) रूपक अलंकार का प्रयोग।

(iv) प्रवाहपूर्ण लयात्मक शैली का प्रयोग।

(v) माधुर्य व ओज गुण।

(vi) वीर रस।

पद्य : या माँटिन माँ भगवान ..... ताजमहल कस सान रही।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा काव्य शीर्षस्थ कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के प्रसिद्ध संग्रह "भारत केर माटी" में संकलित कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि देश की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए वाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण में वर्णित राम व साधु–संतों के माहात्म्य को रूपायित किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत देश महान है। इस देश की मिट्टी में भगवान कहे जाने वाले श्रीराम जैसे महापुरुषों ने जन्म लिया। सीता जैसी महान स्त्रियों का सृजन इसी मिट्टी द्वारा हुआ है। रावण जैसे आततायी, दुराचारी पुरुष जिसकी स्वर्णनिर्मित राजधानी थी, उसका दमन कर दिया गया। सोने जैसी लंका ढह गई जब इस मिट्टी में जन्मे पुरुष द्वारा इस मिट्टी से निर्मित हाथ लगाया गया। भारत की मिट्टी साधु–संतों, महापुरुषों का उद्गम स्थल रही है। देवी–देवताओं की कर्मस्थली रही है। पत्थर को भी देवता मान कर पूजा की गई। उन पर उसी प्रकार श्रद्धा रखी गई जैसे देवताओं पर रखी जाती है। इस देश की शान समस्त जगत में ताजमहल जैसी अद्वितीय रही है।

कवि कहता है कि भारत देश इतना महान है। जहां साधु–संतों, देवी–देवताओं का जन्म हुआ है। रावण जैसे आततायी, दंभी, दुराचारी, लोगों का नाश हुआ है। यहां केवल सामाजिक समरसता व सौहार्द का माहौल है।

विशेष

(i) महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित महाकाव्य 'रामायण' में वर्णित प्रमुख पात्रों की महत्ता का प्रतिपादन।

(ii) बघेली जनपदीय भाषा का प्रयोग।

(iii) उत्प्रेक्षा अलंकार–"ताजमहल कस सान रही"।

(iv) गीतात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) इतिवृत्तात्मकता का प्रयोग।

पद्य : "एहिन माँ तुलसी सूर ..... सोहारी हिअै बताइ हम।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा काव्य शीर्षस्थ कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के प्रसिद्ध संग्रह "भारत केर माटी" में संकलित कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि देश की महत्ता का गुणगान करते हुए देश की ऐतिहासिकता का बखान कर रहा है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत देश की मिट्टी इतनी महान है कि यहां 'रामचरितमानस' जैसे विश्वविख्यात महाकाव्य के रचयिता महाकवि गोस्वामी तुलसीदास व 'सूरसागर' जैसे महान ग्रंथ के रचयिता वाल्सल्य सम्राट सूरदास जैसे विद्वत लोगों ने जन्म लिया। यहां भक्त ध्रुव व भक्त प्रह्लाद जैसे महान भक्तों ने कई महान वरदान व उपलब्धियां अपनी भक्ति के बल पर हासिल कीं। यहां झूठ–फरेब में विश्वास नहीं किया जाता है। सत्य का बोलबाला है। यहां धर्म का सूर्य उदय हुआ। कई दानवीरों ने यहां जन्म लिया। यहां कई योद्धाओं ने जन्म लिया। यह भूमि वीरों से भरी पड़ी है जिनका नाम गिनवाना असंभव है। यहां पता नहीं कितनी स्त्रियों ने जौहर में जलकर अपने सतीत्व की परीक्षा दी है। कितनी ऐसी स्त्रियों के गीत गाए जाएं। यहां की मिट्टी में घी, दूध आदि गोरसों की बाढ़ सी है। यह भारत देश इतना संपन्न है कि यहां पलाश (छिउलन) के पत्तों में भी भोजन लगा हुआ है। यही कहा जाता है।

कवि कहता है कि भारत देश महान है। ज्ञानियों, भक्तों, बखानियों, दानियों, योद्धाओं व वीरों से यह भारतभूमि भरी पड़ी है। यहां सत्य का बोलबाला है। यहां धनाढ्यता है। कोई भूखा नहीं सोता है।

विशेष

(i) ऐतिहासिक महत्त्व का बखान।

(ii) रूपक अलंकार–धरमै के सुरिज।

(iii) लोकोक्तियों का प्रयोग–छिउलन माँ फरी सोहारी।

(iv) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(v) गेयात्मकता, इतिवृत्तात्यकता।

पद्य : "या कइअक बेरकी ..... तिरंगा पुन पुहराबागा।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा काव्य शीर्षस्थ कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के प्रसिद्ध संग्रह "भारत केर माटी" में संकलित कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने देश की महत्ता का बखान करते हुए स्वाधीनता आंदोलन व गांधी के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि यह भारतभूमि महान है। इस भूमि को कई बार बदमाशों द्वारा लूटा गया। गोली बंदूकों से हमेशा लोगों को भूना गया फिर भी यह कोहनूर जैसे अद्वितीय रत्नों (हीरा) को पैदा करती आई है। यह भूमि कोई परी नहीं बल्कि मखमल में लिपटी बीर बहूटी है। यहां परियां नहीं रहती हैं, बल्कि मखमल में लिपटी वीर छत्राणी बहुओं का निवास स्थान रहा है। यहां 1957 के स्वाधीनता संग्राम में अनेक लोगों ने अपने प्राण न्यौछावर किए, जेल यातनाएं सहीं, पकड़–पकड़ कर लोगों को जबरन जेलों में ठूंसा गया। कई लोगों के घर होलिका दहन की तरह जला दिए गए फिर भी इस मिट्टी को खून से सींचकर इसकी रक्षा की गई। गांधी जैसे सत्य, अहिंसावादी महानायक की लहर समस्त देश में दौड़ गई। लोग अपनी आजादी के लिए जाग्रत हो गए और माथे पर मिट्टी का तिलक लगाकर सर पर कफन बांधकर स्वराज प्राप्त किया। समस्त भारत स्वतंत्र हो गया। इसी मिट्टी में फिर आजादी का परचम लहराया गया। देश को पराधीनता से मुक्त कर स्वाधीन बनाया गया।

विशेष

(i) देश–प्रेम की भावना।

(ii) रूपक अलंकार–

- होरी हंस
- कोहनूर का हीरा
- सुराज के सुरिज

(iii) ओज व माधुर्य गुण।

(iv) लोकोक्तियों का प्रयोग।

(v) गेयात्मकता प्रवाहपूर्ण इतिवृत्तात्मक शैली।

दइउत बनाइस मनई

पद्य : "जात–पाँत के भेद माँ, ... जात के लाखन कनई।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली जनपदीय भाषा के कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की 'दइउत बनाइस मनई' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि सामाजिक समानता को प्रश्रय देते हुए सामाजिक विभेदों, कुरीतियों आदि का खंडन करता है। सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है।

व्याख्या : कवि सामाजिक असमानता का चित्रण करते हुए कहता है कि समाज में व्याप्त जाति–पांति, ऊंच–नीच से समाज के लोगों में आपस में वैमनस्य बढ़ता है। लड़ाई–झगड़े होते हैं। लोगों को जेल जैसी यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। फिर भी लोग नासमझ हैं। किसी को उच्च तो किसी को निम्न समझते रहते हैं। इसी जातिगत काट–छांट में अपना अमूल्य समय बर्बाद करते हुए अपने बुरे दिनों को आमंत्रित करते हैं, जिससे लोगों व समाज का विकास नहीं हो पाता है।

कवि कहता है कि समाज में कोई ऊंच–नीच नहीं है। सभी समान हैं। सभी इंसान हैं। सभी की एक ही चाक की मिट्टी में उत्पत्ति हुई है। लेकिन भेदभाव का कानून हम लोग आपस में बनाए हुए हैं। समाज में कोई असमान नहीं है।

टिप्पणी

कवि सैफू कहते हैं कि ईश्वर ने तो केवल इंसान बनाया है। हम लोगों ने जाति–पांति की शाखाएं निर्मित कर उसमें भेदभाव पैदा किया है। अतः समाज के समस्त इंसान समान हैं। उनमें कोई भेदभाव नहीं है।

विशेष

(i) सामाजिक समानता को प्रश्रय दिया गया है।

(ii) कुण्डलिया छंद किंतु आठ पंक्तियां।

(iii) लोकोक्तियों का प्रयोग– 'छावत बागै उल्टी धरिया'।

(iv) प्रवाहपूर्ण गेयात्मक शैली।

(v) प्रसाद व माधुर्य गुण।

मालिक सम्हारे तैं

पद्य : "टठिया भर डोभरी ..... हँस–हँस के टारेन।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की "मालिक सम्हारे तैं" शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि ने समाज में व्याप्त गरीबी व महंगाई का वर्णन करते हुए ग्रामीण जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि ग्रामीण समाज में गरीबी की इतनी भयानक स्थिति है कि लोग भूख से बिलबिला रहे हैं। भोजन न मिलने के कारण लोग जंगल में पाए जाने वाले महुवे के फूल को सुखाकर, उसे पकाकर, थाली भर खाकर लोग डकार लेते हुए घूम रहे हैं। फटे हुए कपड़े पहन कर भी ग्रामीण लोग राम राज्य की अनुभूति कर रहे हैं। अपने को सर्व संपन्न मानते हैं। धान के पुआल में सोकर जाड़े की रात ठिठुरकर काटते हैं। उनके पास जाड़ा काटने के लिए कपड़े नहीं हैं। जब ठिठुरन ज्यादा हो जाती है तो मां पास बिछी हुई पुरानी कथरी अपना जाड़ा मिटाने के लिए निकालती है जो पुरानी साड़ियों को कई परत में सिलकर बनाया जाता है। संध्या समय घर में प्रकाश या उजाले के लिए सूखी लकड़ी व सूखी खरपतवार जलाई जाती है। घर में उजाले का कोई साधन नहीं है। चूल्हे की आग से चूल्हे के पास प्रकाश किया जाता है। ग्रामीण किसान ने अपनी सारी जिन्दगी किसानी करने में गुजार दी। गरीबी व विपत्तियों का हँस–हँस कर सामना किया है। ग्रामीण जीवन के लोगों की आर्थिक स्थिति कितनी तंगहाल है। लोगों को पहनने, ओढ़ने के लिए कपड़े नहीं हैं। घर में उजाला करने के लिए कोई साधन नहीं है। किसान अपना जीवन–यापन कितनी तंगहाली में करता है।

विशेष

(i) ग्रामीण जीवन यथार्थ का वर्णन।

(ii) ग्रामीण जीवन की व्याप्त गरीबी का विराट दर्शन।

(iii) कहावत व लोकोक्तियों का प्रयोग– 'ओढ़ा पिसान किहेन'।

(iv) इतिवृत्तात्मकता।

(v) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(vi) माधुर्य व प्रसाद गुण।

(vii) बघेली जनपदीय भाषा का प्रयोग।

पद्य : "चरसा उघेर ..... सगली अलमस्ती।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की "मालिक सम्हारे तैं" शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से समाज में व्याप्त गरीबी व महंगाई का वर्णन करते हुए कवि ने ग्रामीण जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि समाज में गरीबी विकराल रूप में व्याप्त है। लोगों की नमक, तेल व लकड़ी की पूर्ति में समस्त पूंजी खत्म हो गई है। फटी बनियान में लाखों छेद हो गए हैं। उसे खरीदने के लिए पैसे नहीं है। पत्नी की साड़ी फटकर, कमजोर होकर लत्ता हो गई है। किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई है। महंगाई में किसान के घर जब राजस्व विभाग का व्यक्ति पटवारी खेत का जमा व लगान वसूलने के लिए आता है तो ग्रामीण किसान घर के अंदर छिपकर बीड़ी बनाने के लिए पत्ता काटता रहता है। इतनी मशक्कत करने के बाद भी दोनों वक्त के भोजन के लिए रोटी व नमक तक नहीं प्राप्त हो पा रहा है। फिर भी किसी को दोष नहीं देता है बल्कि अपने भाग्य को कोसता है। ग्रामीण जीवन की आर्थिक स्थिति महंगाई के कारण अत्यंत दयनीय स्थिति में पहुँच गई है। ग्रामीण किसान महंगाई की मार सहन नहीं कर पा रहा है।

विशेष

(i) ग्रामीण समाज में महंगाई के प्रभाव का चित्रण।

(ii) लोकोक्ति व कहावतों का प्रयोग–"चरसा उधेर लिहिस।"

(iii) इतिवृत्तात्मकता।

(iv) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) माधुर्य व प्रसाद गुण।

(vi) बघेली जनपदीय भाषा का प्रयोग।

पद्य : "महंगा केराना अनाज ..... मूडै धोंटारन है।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की "मालिक सम्हारे तैं" शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने किसान जीवन की बदहाल आर्थिक स्थिति एवं किसानों के उत्पादों के हो रहे अवमूल्यन का चित्रण किया है।

व्याख्या : कवि किसान द्वारा पैदा किए गए अनाज के हो रहे अवमूल्यन की ओर ध्यानाकर्षित करते हुए कहता है कि किराना का सामान दिन–प्रतिदिन महंगा होता जा रहा है। लेकिन किसान द्वारा पैदा किया गया अनाज आज भी सस्ते दामों में खरीदा जा रहा है। खाद–बीज का कर्ज किसान के ऊपर दिन–प्रतिदिन दुगुना होता जा रहा है। चारों तरफ हाथ–पैर मारता है। फिर भी कोई निदान होता नहीं लगता है। ग्रामीण किसान जीवन में लोगों के बिना किसी लिखा–पढ़ी के सामाजिक व्यवहार में एक–दूसरे को उधार व कर्ज प्रदान करते रहते हैं। सामाजिक व्यवहार में जितना उधार व कर्ज

लेना था लेकर वह खा चुका है। उसकी स्थिति इतनी बदहाल है कि घर पर किसी सम्मानित व्यक्ति के लिए पैसा न होने पर केवल खपरैल छाजन का (चुअना) यानी जहां–जहां ज्यादा पानी रिसता था, केवल उसे ठीक करवाया है। कवि कहता है कि हम किसानों की बदहाल स्थिति देखकर पत्थर को भी हँसी आ जाएगी। ग्रामीणों के पास किसानी के अलावा कोई दूसरा जीविका का साधन नहीं है।

विशेष

(i) किसान जीवन की बदहाल आर्थिक स्थिति का वर्णन।

(ii) कहावत व लोकोक्तियों का प्रयोग–"माँ मूडै घोंटाएन है।"

(iv) इतिवृत्तात्मकता।

(v) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(vi) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(vii) जनपदीय बघेली भाषा।

पद्य : "बिटिया के काजे माँ ..... मालिक सम्हारे तैं।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की "मालिक सम्हारे तैं" शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि आर्थिक संकट से जूझते हुए आस्थावादी बना हुआ है।

व्याख्या : कवि कहता है कि लड़की की शादी में दहेज के पैसों के लिए लड़केवाले परेशान किए हुए हैं। बेटे को पढ़ाने के लिए पैसे नहीं हैं। इस आर्थिक संकट को किसी तरह कांख–कूख के पार कर जाते। ऐसी कोई तरकीब या उपाय हे ईश्वर तुम निकालो। दो पाव अनाज, रिश्तेदारों, साधू–संतों को मिलता रहे। हम किसान भी भूखे न रहें। ऐसी कृपा मुझ पर करना। कवि 'सैफू' जी कहते हैं कि हे ईश्वर! सारी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। जन्म दिए हो तो इस संकट की स्थिति में भी किसी तरह हमारा पालन करना हे पालनहार ईश्वर। ग्रामीण जीवन आर्थिक संकट से जूझते हुए भी व्यथित व दुखित नहीं होता है बल्कि ईश्वर के भरोसे भाग्यवादी होकर अपने किसान जीवन में कर्मरत हो उसी के प्रति आस्थावान बना हुआ है।

विशेष

(i) संकट की स्थिति में आस्थावान होना।

(ii) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) इतिवृत्तात्मकता।

(v) जनपदीय बघेली भाषा।

रूपिया केर महातिम

पद्य : "धनमानी रुपिया केर ..... गोड़ पसारे।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' जी की "रुपिया केर महातिम" शीर्षक कविता में संकलित हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पूंजीपतियों द्वारा किए जा रहे शोषण व पैसों को दिए जा रहे महत्त्व का वर्णन किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि पूंजीपति लोग केवल पैसों को महत्त्व देते हैं। पूंजीपतियों के लिए केवल पैसों का महत्त्व है। उनके लिए मानवीयता का कोई महत्त्व नहीं है। पैसों से पूंजीपतियों ने मीलें खोल लीं। मोटरगाड़ी चलवाने लगे। स्वर्गलोक की तरह बड़े मकान बनवा लिए। पूंजीपतियों के आराम के लिए कई तरह के विलासितापूर्ण सामान बना दिए गए। नदियों में पुल बनाकर नदियों को पार कर दिया गया। विलासितापूर्ण विकास कई गरीब मजदूरों का जीवन आटे के प्रसाद की तरह फाँक गया।

कवि कहता है कि हे पूंजीपति! तुम्हारे विलासितापूर्ण विकास के लिए जिस मजदूर ने अपना खून पसीना बहाया, तुम्हारे पक्के महलों को जिसने ईंट और गिलाव लगाकर बनाया है, कभी उनकी जिन्दगी की तरफ भी ध्यान दिया है कि उन्हें भोजन मिल रहा है या खाली पेट मर रहे हैं। गिन–गिन कर उनकी मेहनत की रकम अपनी तिजोरियों में जमा कर ली। लक्ष्मी की कुछ ऐसी कृपा हुई कि पैसों की ढेरी लगा दी और गरीबों, मजदूरों की आंखों में केवल काजल लगा दिया। पैसों की कृपा ऐसी हुई कि वह केवल तुम्हारे पास आया। पूंजीपति दिन व दिन बढ़ते गए और मजदूर जो मेहनत कर रहा है वह दिनोंदिन गरीब होता गया।

विशेष

(i) पूंजीपतियों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण का वर्णन।

(ii) रूपक अलंकार–पंजीरी अस केतनऊ।

(iii) मुहावरे का प्रयोग–खून पसीना एक करना।

(iv) इतिवृत्तात्मकता।

(v) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(vi) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(vii) जनपदीय बघेली भाषा।

किसान

पद्य : "चरचरात कमरी काँधा ..... अँउटे तऊ किसान।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा कवि शिरोमणि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' की "किसान" शीर्षक कविता से उद्धृत हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने ग्रामीण किसान जीवन के यथार्थ का जीवंत चित्रण किया है।

व्याख्या : कवि किसान को चित्रित करते हुए कहता है कि कांधों पर चरमराती भार युक्त (कमरी) बांस की एक लाठी व हाथ में बैलों को जोतने में प्रयुक्त की जाने वाली पतली बांस की छड़ी है। धरती में अनाज वह बोता है लेकिन भिक्षुक सा जान पड़ता है। भरी चिलचिलाती धूप में घास छीलता है। बैलों को चराता है। पसीना सिकसिका कर टपक रहा होता है। फिर भी वह गीत गाता काम करता रहता है। जब सब सोते रहते हैं, आराम करने के समय अंधेरे में वह अपने बैलों को घास चराता है। आंधी पानी आ जाने पर अपने मवेशियों को जंगल की ओर लेकर चला जाता है। फटी हुई बनियान

पहनता है। उसे कुछ और पहनने का शोक नहीं होता। माघ–पूस के महीने की कड़क ठंड में भी अपने खेतों में पानी व देखभाल करने के लिए रात में चला जाता है। साफ व स्वच्छ अनाज दूसरों को बेच देता है। खुद मिलावट वाला कमजोर अनाज खाता है। दूसरों को ओढ़ने के लिए कंबल देता है और स्वयं पतली चादर ओढ़कर सो जाता है। छत पर सोने के लिए धान का पुआल बिछाता है। उसके ऊपर फटी हुई कथरी बिछाता है। मच्छर व मक्खियों की भिनभिनाहट भी उन्हें कभी परेशान नहीं करती। वह चैन की नींद सो जाता है। गरीबी हो या अमीरी उनके लिए सब बराबर ही हैं। उनके द्वार पर कोई भी आता है, उनका बराबर सम्मान व सत्कार करता है। भले किसान की देह पसीने से बदबू दे रही होती है। फिर भी पैर फैलाकर चैन की नींद सोता है। जानवरों को खिलाया जाने वाला मोटा अनाज, मक्का के आटे की मोटी रोटी, भी पेटभर खाकर डकार लेता रहता है। आंधी, पानी, धूप, तेज हवा किसान से सब डरते हैं। किसान नहीं डरता है। विपत्तियां बांह फैलाकर पीछे लगी होती हैं। फिर भी हमेशा हँसते–मुस्कराते किसान जीवन जीता रहता है। चाहे बाढ़ आ जाए, भूकम्प आ जाए। कवि सैफू कहते हैं कि विषम परिस्थितियों में भी किसान अपना समस्त जीवन अपने अनाज पैदा करने के कार्य में न्यौछावर करता है। वह विषम परिस्थितियों से भयभीत नहीं होता है। उसका डटकर सामना करता है।

विशेष

(i) किसान जीवन का चित्रण।

(ii) रूपक अलंकार।

(iii) लोकोक्तियों, कहावतों का प्रयोग।

(iv) इतिवृत्तात्मकता।

(v) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(vi) गेयात्मक प्रभावपूर्ण शैली।

(vii) बघेली जनपदीय भाषा।

4.3.2 अमोल बटरोही

बघेली भाषा के मूर्धन्य कवि डॉ. अमोल बटरोही का जन्म 05 जून, सन् 1943 ईस्वी को ग्राम पोस्ट–दुआरी (वाया रघुनाथगंज) जिला रीवा में हुआ। इनके पिता श्री शिवबालक राम व माता श्रीमती मनकुवरी देवी जी हैं। बटरोही जी का पारिवारिक जीवन ग्रामीण परिवेश से संपृक्त था। इनके पिता गांव के मुखिया थे। उनका गांव में काफी सम्मान था क्योंकि वे गांव के आचार्य भी थे। बटरोही जी के परिवार में प्राचीन रूढ़ियों रीति–रिवाजों और अंधविश्वासों के मेले लगे रहते थे। उनके परिवार में पूजा पाठ, भजन, कीर्तन का होना स्वाभाविक था क्योंकि यह एक ब्राह्मण परिवार था। इनके पूर्वज व पिता गांव के मुखिया होने के नाते पंचायत व गांव में हो रहे आपसी झगड़ों का निपटारा भी किया करते थे।

अमोल बटरोही जी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के बालक माने जाते रहे हैं। इनकी माता जी का कहना है कि अमोल जी अल्पायु में ही चलने व बोलने लगे थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा ग्रामीण पाठशाला से प्रारंभ हुई जहां पर इन्होंने कक्षा पांच तक

की शिक्षा प्राप्त की व कक्षा पांचवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। कक्षा छठवीं से आठवीं तक की शिक्षा जूनियर हाईस्कूल रघुनाथगंज से प्राप्त की जो वर्तमान में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में परिवर्तित हो चुका है। आपने उच्चतर शिक्षा हायर सेकण्डरी विद्यालय मउगंज से प्राप्त की। सन् 1964 में ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा से प्रथम श्रेणी में स्नातक की उपाधि अर्जित की। तत्पश्चात 1966 में अंग्रेजी विषय में परास्नातक की उपाधि प्राप्त की। अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा से स्वाध्यायी छात्र के रूप में सन् 1978 में संस्कृत विषय में परास्नातक की उपाधि अर्जित की। रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर से सन् 1974 में शिक्षा शास्त्र में स्नातक उपाधि अर्जित की। तत्पश्चात सन् 1983 में अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा में संस्कृत विषय पर शोध कर पी–एच.डी. की उपाधि अर्जित की।

बटरोही जी का कार्यक्षेत्र शिक्षा जगत रहा है। शिक्षा समाप्ति के बाद अशासकीय शहीद केदारनाथ महाविद्यालय मउगंज के प्राचार्य पद पर 13 जुलाई, 1966 को नियुक्त हुए लेकिन अशासकीय होने के कारण कुछ दिन उपरांत पद त्याग कर 10 अक्टूबर, 1966 को ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा में अंशकालिक अंग्रेजी प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। स्थायी सेवा के लिए प्रयत्नशील रहने के कारण आपने उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी व्याख्याता के रूप में स्थायी नियुक्ति प्राप्त की। 17 सितंबर, 2003 से 30 जून, 2005 तक जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य किया तथा इसी पद से सेवानिवृत्त हुए।

बटरोही जी के महान व्यक्तित्व के संबंध में उनका आत्म कथन है– "दीन दुखियों के दुख, दलित, शोषित, पीड़ित की अंतर्वेदना से मेरा मन सहज करुणार्द हो जाता है, कविता स्वयं ही निर्झरित हो जाती है और प्रबल धार वाली स्त्रोतास्विनी बनकर 'शिवेचार' को उखाड़ फेंकना चाहती है। मैं भूख–पीड़ा, कराह व नैराश्य को उन्मूलित करने हेतु दया, उत्सर्ग एवं शौर्य को जगाना चाहता हूं तथा प्रेम का पीपल लहलहाकर धरती पर लोक मंगल की सुरसरि प्रवाहित करना चाहता हूं।"

आप साधारण व्यक्तित्व के धनी व प्रकृति प्रेमी हैं। वृक्षारोपण, बागवानी, वृक्ष लगाने आदि में विशेष रुचि रखते हैं। मजदूरों एवं किसानों व आमजन के साथ बैठकर उन्हें वर्तमान विकास की धारा से जोड़ने के लिए जाग्रत करते रहते हैं। ग्रामीणजनों को जादू–टोना, भूत–प्रेत व अंधविश्वासों के प्रति सचेत करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

कवि अमोल बटरोही जी ने सन् 1957–58 के आस–पास लेखन कार्य प्रारंभ कर दिया था। इन्होंने गद्य व पद्य दोनों विधाओं में लेखन कार्य किया है।

प्रकाशित कृतियां

(i) हिमालय केर कनियाँ 1988 में प्रकाशित

("विशेष सत्र 1999–2000 में परास्नातक हिन्दी के वैकल्पिक प्रश्न पत्र 'क' में समाहित।")

(ii) हम बोलब– 2006 में प्रकाशित

(iii) हिन्दी काव्य संग्रह– 1997 में प्रकाशित

(iv) हिन्दी में शोध प्रबंध– "कवि रत्न कृष्ण प्रसाद शर्मा धिमिरे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व"–1989, सरोज प्रिंटिंग प्रेस, कटरा, प्रयागराज (उ.प्र.) से प्रकाशित

अप्रकाशित कृतियां

(i) बघेली काव्य संग्रह "फलाने कुछु तउ होई।"

(ii) बघेली खण्ड काव्य "सूत सच कहतर रही।"

सम्मान व उपलब्धियां

(i) सारस्वत सम्मान– 2005

(ii) लोकभाषा सम्मान– 2008

(iii) शम्भू काकू सम्मान– 2010

'समसामयिक बघेली काव्य में अमोल बटरोही का योगदान' विषय पर कुमारी सुषमा त्रिपाठी द्वारा लघु शोधकार्य किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य शोधकार्यों में आपकी कविताएं समाहित हैं। कई विश्वविद्यालयों द्वारा आपके संग्रह व कविताओं को प्रश्नपत्रों में समाहित किया गया है।

काव्यगत विशेषताएं

बटरोही जी का काव्य ग्रामीण जीवन चेतना व उसके यथार्थ का विविध रूप है। जिसमें नारी जीवन, किसान जीवन, राष्ट्रीय चेतना, प्रकृति चित्रण, समसामयिक घटनाओं, ग्राम्य संस्कृति आदि विविध रूप उभरकर सामने आता है। सामाजिक समरसता व सामाजिक भेदभाव का विरोध प्रबल रूप में आपके काव्य में परिलक्षित होता है।

कृषक जीवन यथार्थ

बटरोही जी का ग्रामीण जीवन से बहुत गहरा नाता रहा है। ग्रामीण जीवन में कृषक जीवन प्रमुख रूप से जुड़ा रहा है। या कहें कि किसान जीवन ग्रामीण जीवन का एक प्रमुख अंग रहा है। किसानों के जीवन का उन्हें गहन अनुभव रहा है। किसान जीवन की अंतर्वेदना को उन्होंने यथार्थ रूप में अवलोकित किया है जिसका पूर्ण प्रमाण उनकी कविताओं में परिलक्षित होता है। चाहे वह किसान की दैनिक दिनचर्या हो या उनकी जर्जर आर्थिक स्थिति, कुछ भी उनकी काव्य पहुंच से अछूता नहीं रहा है। किसान किस तरह हँसकर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता है, उनके काव्य में चित्रित हुआ है, जैसे–

"ठण्डी–गरमी–बरखा आमा,
तोहरेनि उपर ई जुलुम ढहामाँ।
सहते हई सबहिन के बान।
तूँ आहे सबके परान।"

किसान किस तरह अनाज पैदा करने में पसीना बहाता है लेकिन उनका उपभोग अकर्मण्य लोग करते हैं। किसान पालनहार अन्नदाता है, अनवरत काल से अन्न उपजाकर भरण–पोषण करता आ रहा है, लेकिन उसकी स्थिति आज भी दयनीय है। उसे आज भी आत्महत्या जैसे कदम उठाने पड़ते हैं। कवि कहता है–

"जइसइ जिउ सब देहं जियाबइ,
देह परान का देखि न पाबइ।
तस तोंहका न देखइ जहान।
तूँ आहे सबके परान।"

राष्ट्रप्रेम भावना : कवि अमोल बटरोही देश की महत्ता को स्वीकारते हुए देश के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। अमोल बटरोही ने देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए लोगों को कविताओं के माध्यम से प्रेरित करने का प्रयास किया है। देश की महत्ता का बखान करते हुए कहते हैं–

"रिसियन का जहँ रही रिचा जइसन लरिकन का माटी।
दुनिया के जन–मन माँ मइकई ई भारथ कई माटी।"

लोगों से आपस में प्रेम भाव से रहने की अपील करते हुए भारत के इतिहास व वर्तमान का बखान करते हैं। इतिहास का बखान कर वर्तमान के लिए लोगों को देश के प्रति प्रेरित करते हुए कहते हैं–

"भारत माँ प्रेम आम के जंगल उगे रहें।

× ×

अब आम कटे ओं जघा बमुरा बोबाइगें।

× ×

कुछु दिन जो ताकि राखि देह सूँया फुदुकि अई
ओके जरे जो अँसुअन के धारि बोइ दे।"

सामाजिक भेदभाव का विरोध व सामाजिक समरसता पर बल

कवि बटरोही जी ने समाज में फैले भेदभाव, जात–पांत, ऊंच–नीच, अमीर–गरीब आदि विषमतामूलक आडम्बरों का विरोध किया है। सभी आडम्बरी धर्मों का परित्याग कर मानवधर्म अपनाने की पुरजोर वकालत की है। समाज की रूढ़ियों, अंधविश्वासों, टोना–जादू, मंत्र–तंत्र आदि का भरपूर विरोध किया है। रूढ़ियों व अंधविश्वासों पर प्रहार करते हुए कहते हैं–

"सबइ दिन चढ़ायेउ तूँ सिन्नी, गुर नरियर लखहरि नेबाला,

× ×

पीरा नहीं समझिन, करत रहे मनमानी।
काहे कि माही के पुतरा के पीरा, जानी जे माटी के पुतरा तउ जानी।"

समाज में व्याप्त भेदभाव का विरोध करते हुए समानता व समरसता की पक्षधरता करते हैं। बाह्य आडम्बरों का परित्याग कर समाज में सुख–शांति से एकजुट होकर, मिलजुलकर रहने की बात पर बल देते हुए कहते हैं–

"इस्सर सबका पैदा कीन्हिसि,
सबकुछ एकइ देह बनाइसि।
सोचइ कइ सकती भीतर दइ,
नीकी–नागा राह देखाइसि
ओंह सकती का बृथा न खरचा, भेद–भाउतूँ न उपजाबा।"

मंदिर, मसजिद, गिरजाघरों के भेदभाव का विरोध करते हुए लोगों से सामंजस्य के साथ रहने की अपील करते हैं–

"मन्दिर–मस्जिद गुरुद्वारा माँ
गिरजाघर, घट–पट मरघट माँ

रमइ रमइया, ई सब दुनियाँ,
राह, न एकु, एकु है थन्ना, तूँ पहुँचा सबका पहुँचाबा।।"

प्रकृति चित्रण : कवि बटरोही सौन्दर्य के कवि हैं। इनके काव्य में मानव व प्रकृति का तदाकार रूप सामने आता है। इनकी प्रकृति सौन्दर्य चेतना कालिदास व सुमित्रानंदन पंत की याद ताजा करती है। बटरोही जी के अंतर्जगत की स्वाधीनता, ग्रामीण जीवन व प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण में उजागर हुई है। प्रकृति चित्रण में बटरोही जी आम दिनचर्या के समस्त उपादानों को प्रयोग में लाते हैं। जीवन के समस्त पहलुओं से प्रकृति विभिन्न रूपों में जुड़ी हुई है, चाहे किसान जीवन हो या सामान्य आम जन जीवन, हर जगह प्रकृति अलग–अलग रूपों में सम्मिलित है। प्रकृति चित्रण के रूप में कवि बटरोही ने प्रकृतिपरक रूपकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है–

"पुरिखा हमार भुइयाँ माँ असीम बोइगें।
सुख सान्ति प्रेम केर कन्दमूल बोइगें।
संतोष केर पीपर हरियर मिले रहें।"
"हरियर हाँ खेतन या धान"

बटरोही जी की देशप्रेम भावना प्रकृति प्रेम से ही उत्पन्न हुई है। देश प्रेम की ओर लोगों को प्रकृति प्रेम के माध्यम से आकर्षित करने का प्रयास किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि–"किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा।" कवि बटरोही जयशंकर प्रसाद की तरह प्रकृति चित्रण के माध्यम से देश की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं–

"धरम धुजा–कस खड़ा हिमालय जस तमाम फहराबइ।
खोह कुन्दरा माँ खाले निति ज्ञान कुण्ड दहकाबइ।
आइ–आइ बदरा गोदी माँ जहाँ बोकइयाँ लोरइ
कीरति के समुन्द्र बूड़ि कइ देउतन का दहबोरइ।।"

काव्य रूप व काव्य भाषा

बटरोही जी ने प्रमुख रूप से प्रगीत या गीत को अपने काव्य रूप में अपनाया है। इनमें महाकाव्याकार की सर्जनात्मक प्रतिभा का अभाव नहीं है लेकिन इन्होंने विशुद्ध रूप से गीत व प्रगीत को अपनाया है।

प्रगीत काव्य (लिरिकल पोयेट्री) की चर्चा पश्चिम में काव्य चर्चा के आरंभ से ही मिलती है। यूनान में महाकाव्य, नाटक और प्रगीत काव्य के तीन रूप में मौजूद मिलते हैं किंतु हिन्दी में प्रगीत काव्य का रूप पुराना नहीं है। भारतीय काव्य शास्त्र में काव्य के गेय रूप की चर्चा तो है पर इस गेय रूप का स्वरूप विवेचन नहीं किया गया है।

प्रगीत के मूलतः सात तत्त्व स्वीकार किए जाते हैं–1. आत्माभिव्यक्ति की प्रबलता और संगीतात्मकता, 2. व्यक्ति तत्त्व या वैयक्तिकता, 3. भाव वेग, 4. भावाभिव्यक्ति, 5. सहज अंतःप्रेरणा, 6. संक्षिप्त रूपाकार तथा 7. प्रवाहमयी शैली है। अमोल बटरोही जी के काव्य में सात तत्त्व देखे जा सकते हैं। प्रगीत मूलतः व्यक्ति प्रधान काव्य रूप है, इसमें आत्माभिव्यक्ति के अनेक रूप सक्रिय रहते हैं। वैयक्तिक भाव की अभिव्यक्ति उनकी कविता–"जियना त उहइ जउन दियना अस होई" में प्रमुख रूप से हुई है।

बटरोही जी की काव्यभाषा बघेली जनपदीय भाषा है जिसकी सर्जनात्मकता को निखार कर एक नया रूप प्रदान किया है। जो बघेली की एक अनुपम संपदा है। बटरोही जी ने बघेली जनमानस रूप का प्रयोग किया है। आम बोल–चाल के शब्दों का प्रयोग ज्यादा मिलता है। लोकोक्तियों, मुहावरों, कहावतों आदि के प्रचलित रूप का प्रयोग किया है। अलंकारों में रूपक अलंकार का प्रयोग नए रूपकों के माध्यम से किया है। उपमा व उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग भी बहुतायत में मिलता है। प्रवाहमयी, प्रसाद, माधुर्य गुण युक्त भाषा शैली का प्रयोग किया है। ठेठ देशज शब्दों का प्रयोग ढूंढ़कर किया गया है। कहीं–कहीं तत्सम का बोली रूप भी प्रयुक्त हुआ है। शिल्प के रूप में बटरोही जी ने परंपरागत कवित्व, सवैया, कुण्डलिया, दोहा, गीत, गजल, नवगीत, जापानी छंद हाइकू आदि काव्य शिल्प का प्रयोग किया है।

कवि अमोल बटरोही ग्रामीण जीवन यथार्थ को केन्द्र में रखकर काव्य रचना में प्रवेश करते हैं। अपने काव्य में उन्होंने ग्रामीण जीवन को विविध आयामों में चित्रित किया है। आमजन की मनःस्थिति, पीड़ा, शोषण, भेदभाव, प्रेम आदि का रूपायन किया है। अमोल बटरोही की कविता के संबंध में प्रो. सेवाराम त्रिपाठी का कथन है–"अमोल बटरोही बघेली कविता के पके हुए फल की तरह हैं। ठेठ देशज शब्दों के प्रयोग इनकी कविता में ढूंढ़–ढूंढ़कर किए गए हैं। इनकी कविता के केन्द्र में देश–प्रेम और सामान्य जन की पीड़ा है। साथ ही इनकी कविता अपने चौखते में गांव–गवई का दर्द छिपाए हुए लम्बी यात्रा पर है। बटरोही की कविता में बिम्बात्मक की अद्‌भुत छटा है। इनकी कविता का मन नितांत देहाती है।" अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कवि अमोल बटरोही जी ग्रामीण जन जीवन की पीड़ा व यथार्थ के कवि हैं, उनकी कविता में सहज भावों का उत्छलन हुआ है। उनकी काव्य भाषा में ठेठ शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।

अमोल बटरोही की रचनाओं का मूलपाठ

1. अँजुरी भर प्यार बोई देऽ

बोबा न बरूक कुछ दिना परती परी रहइ,
बोबइ का होय अँजुरी भर प्यार बोइ दे।
पुरिखा हमार भुइयाँ मा असीस बोइगें।
सुख सान्ति प्रेम केर कन्दमूल बोइगें।
संतोस केर पीपर हरियर मिले रहें–
हिलि–मिलि रहइके भामना के मधु निचोइगें।
सइते, बढ़ाय, माँगे पइ खोये न ई कबउ–
खोबा त किन्नि का ई बैर खार खोइ दे।
भारत माँ प्रेम आम के जंगल उगे रहें।
संसार के कल्यान अउ मंगल जुगे रहें।
अब आम कटे ओं जघा बमुरा बोबाइगें–
काँटा हाँ फूल के जहाँ जंगल जुगे रहें।

कुछू दिन जो ताकि राखि देऽ खूँथा फुटुकि अई–
ओके जरे जो अँसुअन के धारि बोइ दे।
गँदलाइ न पाबइ ई संसकिरिति कइ सुरसरी,
चाहइ जे अमर होइ, ई अमरित से हइ भरी।
पानी थिराइ दे चुनू, कचड़ा जई तरी,
एँ पर बनइ न पाबइ कलह केरि फेक्टरी।।
छीटा न बीज हियाँ "हम–हमार, तुम–तोहाँर"।
बोबा त, सामवेद के संसार बोइ दे।।

2. सबके परान

सुना–सुना हो किसान।
तू आहे सबके परान।।
तोंहरेनि दम पर जियति हइ दुनियाँ,
तोंहरेनि पसीना ते तर हइ भुइयाँ,
हरियर हाँ खेलन मा धान।
तूँ आहे सबके परान।।
सोन–रूप, रुपिया अउ पइसा,
दाना बिन, बोकरी के गलथन–जइसा,
देते तूँ दाना के दान।
तूँ आहे सबके परान।।
उठतइ सथरी ते खेते जाते,
दिन–भर मा तूँ रोटी खाते,
होइ जो घर माँ पिसान।
तूँ आहे सबके परान।।
ठण्डी–गरमी–बरखा आमा,
तोंहरेनि उपर ई जुलुम ढहामाँ,
सहते हई सबहिन के बान।
तूँ आहे सबके परान।
भुइँ माँ चमकइ तोहार पसीना,
जइसइ अँगुरी माँ चमकइ नगीना,
पउते न ओतनउ तूँ मान।
तूँ आहे सबके परान।।
तूँ उपजाबा खाइँ धमधूसड़,
फर देइ बिरबा, चीखइ कोउ दूसर,

बाप करइ कन्निया का दान।
तूँ आहे सबके परान।।
तूँ आहे सबके बाप–महतारी,
भइयाँ रिसाइ न कबउ बिचारी,
पारइ या बोइ देइ धान।
तूँ आहे सबके परान।।
जइसइ जिउ सब देंह जियाबइ,
देह परान का देखि न पाबइ।
तस तोंहका न देखइ जहान।
तूँ आहे सबके परान।।

3. जियना त उहइ जउन दियना अस होइ

सुरूज के घाम का लीलिसि अँधियार,
जोन्हा–अँजोर पी लीन्हिसि अँधियार।
माटी के दियना जब जुगुर–जुगुर जरें,
मूड़े पर गोड़ धरे भागा अंधियार।।
बड़े–बड़े जोधन का मसलि दिहिसि रावन,
देउता सब धाइ–धाइ पकड़ि लिहिनि पाँउँ।।
माटी के लरिका दुइ मनई, कुछ बाँदर,
विकिपिठइ दिहिनि राबन का पुरिखन के गाँउँ।।
चला आजू चिंथरन कइ होरी जराई,
माटी के दियनन–संग नाची अउ गाई।
माटी के लरिकन केर आबा जमाना,
भइया हो! माटी कइ ताकति पहिचाना?
केउ न अँकेले अँधियार का हटाई,
केउ न धरती का सरग – कस बनाई।
मिलि–जुरि कइ काम करा बाति सोझ–सोझ,
चारि जन कइ कउरी अउ एक जन का बोझ।।
रातिउ भर कइ अब न होई अँधियार,
जगहरि अब होई, सब रहिहीं हुसियार।
देंह जरइ दुनिया माँ उजियार होइ,
जियना त उहइ जउन दियना अस होइ।।

4. भारत कइ माटी

रिसियन का जँह रही रिचा जइसन लरिकन का माटी।
दुनिया के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

धरम धुजा–कस खड़ा हिमालय जस तमाम फहराबइ
खोह–कन्दरा माँ खाले निति ज्ञान कुण्ड दहकाबइ।
आइ–आइ बदरा गोदी माँ जहाँ बोकइयाँ लोरइँ
कीरति के सामुन्द्र बूड़ि कइ देउतन का दहबोरइँ।।

पाँच–जिन्न के धुनि से गूंजइ जेकरि घाटी–घाटी।
दुनियाँ के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

दक्खिन कइत समुन्द्र गोड़ कइ जेके धूधुरि धोबइ
धरइ सइँति कइ फेरि लछिमी मूंगा मोती पोबइ।
रकम–रकम के रतन गढ़इ दुनियाँ भर माँ थराबइ
भाउ सहित भारथ माता के पैजनियाँ पहिराबइ।।

मुनि अगस्त कइ कथा अबहिनउ हाँ समुन्द्र माँ पाटी।
दुनिया के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

गंगा, जमुना, सिन्धु, नरबदा अँगने मा निति नाच
सोन, महानद, टमस, गंडकी, छिपा पोथी बाँच।
सरसुति कइ समाधि धनि बिछिया के बलिदानी पानी
बरमपुत्र, गोदावरि, काबेरी के कथा पुरानी।।

राम–कथा सरजू के लहरन पर कइ रही कुलॉटी
दुनिया के जन–मन मा महकइ ई भारथ कइ माटी।।

दुनियाँ भर का लरिका मानिनि एँह भारथ के बासी
सबका बसइ दिहिनि पालिनिऊ रहें बड़े बिसुआसी।
लरिकउहै आदति बस कबहूँ जे केउ उधुम मचाइनि
बड़े प्रेम ते कान पकड़ि कइ घर ओनका पहुँचाइनि।।

घातिउ भर का कबउ न मारिनि दूबिउ तक कइ साँटी।
दुनिया के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

कउन देसऊ, जउन न एकर दाना पानी खाइसि
एके संसकिरित का आपन माथा नहीं नबाइसि।
बेद जान विज्जान बना देउतन का दिहिस चिनउँती
धानन्तर के बयदी से दुनियाँ खाइसि अमरउती।।

सबगुन हमा उजागर सेंतइ काहे चिट्ठी बाँटी।
दुनिया के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

आश्रम–बरम जहाँ के दुनियाँ भरमा धूम मचाइसि
मानिन मनजे किहिसि कबादे दर–दर गड्डा खाइसि।
सुन्नि सिखइ कइ जहाँ पुरब में आँखी सब कइ खोलिनि
आनुबंसिकी खोजि जहाँ अब दुनियाँ का झकझोरिनि।।
मंगल के गन्ने सउ पयदा किहिसि जहाँ कइ खाटी।
दुनिया के जन–मन माँ महकइ ई भारथ कइ माटी।।

5. भीतर के मनई का देखा

छोंड़ा अब बाहिरी देखाबा।
दुनिया माँ सब धरमन कइ जरि मनई केर धरम अपनाबा।।
इस्सर सबका पैदा कीन्हिसि,
सब इक एकइ देंह बनाइसि।
सोचइ कइ सकती भीतर दइ,
नीकीं–नागी राह देखाइसि।
ओंह सकती का बृथा न खरचा, भेद–भाउतूँ न उपजाबा।।
एक बाप के तीनि गदेला,
सब न एक मेर बनि पामाँ
तीनिउ तउ भाई–भाई बनि,
एक बरोबर हींसा पामाँ
नहिं चलाँक, मेहनति जेनकर धन, ओनहूँ का भरपेट खबाबा।।
एँह दुनियाँ मा बड़ा छोट को,
सब तउ एक बाप के लरिका।
निंचिउ मन माँ कोर होइ जो,
तूँ ओका कूरा–कस फटिका।
पोथी पढ़े कबउ न तरबे, अच्छर ढाई पढ़ा–पढ़ाबा।।
मन्दिर–मस्जिद गुरुद्वारा माँ,
गिरजाघर, घट–पट मरघट माँ।
रमइ रमइया, ई सब दुनियाँ,
हलसइ जेके पेट गुहा माँ।
राह न एकु, एकु है थन्ना, तूँ पहुँचा सबका पहुँचाबा।।
कुरथा–पइजामा के भीतर
समझाँ जो सगले हाँ नघड़ा।
ओन्ना फाट एकु सब होइगें
तब सेतइ काहे का झगड़ा।
भीतर के मनई का देखा, अबउ उपर कइ खोलि हटाबा।
छोड़ा अब बाहिरी देखाबा।।

रचनाओं की सप्रसंग व्याख्या

अँजुरी भर प्यार बोई देऽ

पद्य : "बोबा न बरुक कुछ ..... सामवेद के संसार बोइ दे।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि अमोल बटरोही की 'अँजुरी भर प्यार बोइ देऽ' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि समाज में व्याप्त भेदभाव, असमानता को मिलाकर सामाजिक प्रेम व सौहार्द की अपील करता है।

व्याख्या : कवि सामाजिक सौहार्द की अपील करते हुए कहता है कि समाज रूपी खेत में अंजुलिभर प्रेम के बीज बो दीजिए, अगर समाज में फैलाने या बोने के लिए प्रेम नहीं है, तो कुछ दिन परती रहने दो। पूर्वज हमारी समाज रूपी भूमि में अपने प्रेम रूपी आशीर्वाद बोकर गए हैं। सुख–शान्ति और प्रेम रूपी कन्दमूल बोकर गए हैं। जिसकी जड़ें अभी भी हमारी भूमि में हैं। संतोष का पीपल हरा–भरा हमें अपने पूर्वजों से मिला है। मिल–जुलकर प्रेम की भावना से रहना सिखा गए। जिसमें सहेजने व माँगने से वृद्धि होगी। कभी–कभी नहीं होगी। अगर खोना है तो आपस में व्याप्त भेद–भाव को खो दो जिससे समाज में सौहार्द बना रहे।

कवि कहता है कि भारत देश में प्रेम रूपी आम के पेड़ों के जंगल उगे हुए थे जिससे संसार का कल्याण व मंगल हो रहा था। वर्तमान समय में प्रेमरूपी आम के पेड़ कट गए। उनकी जगह वैर–वैमनस्य रूपी बबूल के कंटीले पेड़ उग आए हैं। जहां प्रेमरूपी फल फूल के जंगल थे। वहां बैर–भाव रूपी कांटों का जंगल है। कुछ दिन यदि प्रेम रूपी आम के कटे पेड़ों के ढूंठ को सुरक्षित कर दिया जाए और उनकी जड़ों को पश्चाताप के आंसुओं से सींच दिया जाए तो प्रेमरूपी कोपलें फिर उग आएंगी और समाज में सौंदर्य बना रहेगा।

संस्कृति की स्वच्छ व पवित्र नदी कभी गंदलाने न पाने ऐसा प्रयास करो, जो अमर होना चाहे, संस्कृति व परंपरा रूपी अमृत से भरी नदी से अमृत पान करके हो सके। संस्कृति रूपी नदी में यदि कुछ बुराई रूपी कचड़े या अंधविश्वास रूपी कुरीतियां हैं। उसे नदी की तलहटी में जमा कर चुनकर बाहर फेंक दें जिससे संस्कृति रूपी नदी स्वच्छ बनी रहे। इस नदी पर कलह की फैक्टरी न बनने पाए जिससे हमारी संस्कृति में वैमनस्यता पनपने लगे।

कवि कहता है कि समाज रूपी खेत में भेदभाव रूपी हमारा, तुम्हारा, हम–तुम के बीज न बोएं। यदि बोना है तो समानता, सामाजिक समरसता का सामवेद का संसार बो दीजिए। कवि समाज में व्याप्त वैमनस्यता तो खत्म कर सामाजिक समरसता बनाने की अपील करता है।

विशेष

(i) सामाजिक समरसता की अपील।

(ii) रूपक अलंकार।

(iii) लोकोक्तियों, कहावतों का प्रयोग।

(iv) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) इतिवृत्तात्मकता का प्रयोग।

(vi) बघेली जनपदीय भाषा।

(vii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

सबके परान

पद्य : "सुना–सुना हो किसान ..... तूँ आहे सबके परान।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि अमोल बटरोही की 'सबके परान' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में किसान का चित्रण करते हुए उसके अन्नदाता व जीवनदाता स्वरूप का बखान किया गया है।

व्याख्या : कवि किसान का चित्रण करते हुए कहता है कि सुनो–सुनो किसान! तुम तो सबके प्राण हो, तुम्हारी मेहनत के कारण सबका पालन पोषण हो रहा है। तुम्हारे मेहनत के पसीने से जमीन गीली (तर) हुई है। खेतों में धान की फसलें लहलहा रही हैं। तुम सबके प्राण हो। सोना–चांदी, रुपया–पैसा बिना अनाज के सब बकरी की उस गलथन की तरह है जिसमें से दूध नहीं निकलता है, बेकार है। जिसका होना या न होना मायने नहीं रखता है। तुम अनाज का दान करते हो, सबका पालन–पोषण करते हो। सुबह जागते ही खेत में काम करने जाते हो। दिन भर में एक बार भोजन करते हो। यदि घर में आटा होता है तो नहीं तो भूखा रहते हो। फिर भी तुम सबका पोाषण करते हो। ठण्डी, गर्मी, वर्षा, ऋतुएं आती हैं, सब अपना जुल्म तुम पर ढहाती हैं। सबके जुल्मों को सहन करते हुए हम सबका पोषण करते हो। जमीन में तुम्हारा पसीना अनाज के रूप में अंगूठी में जड़े नगीने की तरह चमकता रहता है। फिर भी तुम्हें सम्मान नहीं मिलता है लेकिन तुम सबका पोषण करते हो। तुम अनाज पैदा करते हो लेकिन खाता काम न करने अकर्मण्य पूंजीपति है। फल कोई और देता है लेकिन खाता कोई और है। तुम उस फलदार वृक्ष की तरह हो जो स्वयं का फल नहीं खाता।

तुम उस पिता की तरह हो जो जन्म बेटी को देता है लेकिन उसे किसी और को दान में देता है। तुम अपनी मेहनत से पैदा किए अनाज का बेटी के बाप की तरह दान कर देते हो। सबका पोषण करते हो। तुम सबके माता–पिता की तरह हो जो कभी गुस्सा नहीं करते या नाराज नहीं होते। तुम चाहो तो अनाज पैदा करो या परती पड़ा रहने दो, तुम सबके प्राण हो।

कवि कहता है कि हे किसान! तुम उस प्राण की तरह हो जिसके होने से शरीर जीवित रहता है, समस्त देह का पालन पोषण करता है। लेकिन यह शरीर प्राण को नहीं दिख पाता है। ठीक उसी प्रकार तुम समस्त जगत रूपी देह का पालन–पोषण करते हो लेकिन शरीर रूपी संसार उसी प्राण की तरह नहीं देख पाता है। तुम सबके पालनहार प्राण हो।

विशेष

(i) किसान के महत्त्व का प्रतिपादन।

(ii) रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकार।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) प्रवाहपूर्ण गेयात्मक प्रधान शैली।

(v) लोकोक्तियों का प्रयोग।

(vi) बघेली जनपदीय भाषा।

जियना त उहइ जऊन दियना उस होइ

पद्य : "सुरुज के धाम का ..... जउन दियना अस होइ।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि अमोल बटरोही की 'जियना त उहइ जऊन दियना उस होइ' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि मिट्टी के दीपक के माध्यम से समाज में प्रकाश फैलाते हुए अंधकार को दूर करने की अपील करता है।

व्याख्या : कवि कहता है कि सूर्य के तीव्र प्रकाश को अंधेरा अपने अंदर समेट लेता है। चंद्रमा का प्रकाश उस अंधेरे को समाप्त कर देता है और मिट्टी का दीपक जब मद्धिम–मद्धिम अपना प्रकाश फैलाता है तो अंधेरा सर पर पैर रखकर तीव्र गति से भाग जाता है। रावण जैसे अन्यायी ने बड़े–बड़े योद्धाओं को नष्ट कर दिया। सारे देवतागणों ने उसके आतंक से भयभीत होकर रावण के पैर पकड़ लिए परंतु इस मिट्टी में जन्म लिए दो मनुष्यों और कुछ वानरों ने उसका दमन कर उसे उसके पूर्वजों के पास भेज दिया। अर्थात् इस मिट्टी से पैदा हुए दीपक व मनुष्यों में इतनी ताकत है कि समस्त संसार में प्रकाश फैला सकते हैं।

कवि कहता है कि चलो आज फटे पुराने कपड़ों व विचारों की होली जलाई जाए व मिट्टी के दीपक जलाकर खुशियां मनाई जाए क्योंकि मिट्टी से पैदा लोगों का जमाना आ गया है। इस मिट्टी की ताकत को हे भाइयो! पहचानिए। कोई अकेला अंधेरा नहीं मिटा सकता। कोई इस धरती को स्वर्ग नहीं बना सकता। मिल–जुलकर सोच–समझकर काम एक साथ काम करने पर ही धरती से अंधेरा मिटेगा और धरती स्वर्गमय होगी, क्योंकि कोई बोझ अकेले के लिए भारी होता है लेकिन चार लोगों के साथ वह खिलौना सा महसूस होता है।

कवि कहता है कि अब रात में भी अंधेरा नहीं होगा। अब सब लोग अपने ज्ञान चक्षुओं से जाग्रत व सतर्क व होशियार रहेंगे। क्योंकि देह को जलाने पर ही समस्त जगत में उजाला होता है। यदि स्वयं के देह को नहीं जला सके तो वह कैसा जीवन, जीवन तो वही है जो दीपक की तरह स्वयं जलकर समाज के अंधेरे को दूर करे।

विशेष

(i) जीवन के महत्त्व का वर्णन।

(ii) रूपक अलंकार।

(iii) मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग–

सर पर पैर रखकर भागना।

चार जन के लउरी एक जने का बोझ।

(iv) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(v) प्रवाहपूर्ण गेयात्मक प्रधान शैली।

(vi) इतिवृत्तात्यकता।

(vii) जनपदीय बघेली भाषा।

भारत कइ माटी

पद्य : "रिसियन का जहँ ..... काबेरी क कथा पुरानी।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि डॉ. अमोल बटरोही के 'भारत कइ माटी' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में भारत की भौगोलिक उपलब्धियों के माध्यम से भारत की मिट्टी का गुणगान किया गया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत दुनिया के लोगों के मन में महकने वाली मिट्टी का देश है, जहां ऋषियों की ऋचाएं बच्चों के मिट्टी के खेल की तरह हैं। हिमालय जैसा महान पर्वत जिसकी धर्म ध्वज के रूप में चारों तरफ फहरा रहा है। जिसकी खोह कन्दराओं में ज्ञान का कुण्ड हमेशा दहकता रहता है। जिसकी गोद में बादल बच्चों की तरह खेलते हैं। कीर्ति के समुन्द्र से डूब कर कई देवताओं को समुद्र में समाहित कर रहा है। पांचों महामुनियों के ज्ञान धूनी से जिस हिमालय की घाटी–घाटी गूंज रही है। समस्त संसार के लोगों में जिसका आदर है, वह हमारा भारत देश है। जिसकी दक्षिण दिशा में स्थिति महासागर पैरों की धूल धोता है। जहां महासागर अपने अंदर सहेज कर मूंगा, मोती जैसे कई भंडार रखता है। किस्म–किस्म के रत्नों को गढ़ कर दुनिया के लोगों को प्रदान करता है और प्रेम भाव से भारतमाता के पांव में अपने रत्नों की पायल पहनाता है। जहां मुनि अगस्त जैसे महान ऋषियों की कथाओं से मिट्टी भरी पड़ी है। जहां इतना महान समुद्र है। उस भारत देश की गाथा दुनिया के लोगों के मन को आकर्षित करती है।

कवि कहता है कि जिसके आंगन में गंगा, यमुना, नर्मदा आदि जैसी नदियां नृत्य करती हैं। सोन, महानदी, तमस, गंडकी और क्षिप्रा जैसी नदियां बहती हैं। जहां सरस्वती जैसी नदियां समाधि धारण करती हैं। बिछिया जैसी बलिदानी नदी बहती है। ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कावेरी आदि नदियों की पुरानी कथाएं तो हैं ही। भारत इतना महान देश है जिसकी भौगोलिक स्थिति अद्वितीय है। उत्तर दिशा में हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर है और मध्य पठारी भागों में कई नदियों का प्रवाह तंत्र है। भौगोलिक रूप से संपन्न देश ही हमारा भारत देश है जिसका आकर्षण समस्त दुनिया के लोगों के मन में हमेशा रहता है।

विशेष

(i) भारत की भौगोलिक स्थिति का वर्णन।

(ii) उत्प्रेक्षा अलंकार।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) प्रवाहपूर्ण गीतात्मक शैली।

(v) बघेली जनपदीय भाषा।

पद्य : "राम–कथा सरजू ..... ई भारथ कइ माटी।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि डॉ. अमोल बटरोही के 'भारत कइ माटी' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में भारत की भौगोलिक उपलब्धियों के माध्यम से भारत की मिट्टी का गुणगान किया गया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि भारत जैसे महान देश में राम जैसे महानायकों की कथा सरयू जैसी पवित्र नदी की लहरों पर कुलांचे भरती रहती है। समस्त दुनिया के लोगों को अपना पुत्र समझकर बसाया, पालन किया, विश्वास किया, भारत देश के लोगों ने। लड़कों की आदत की वजह से अगर कभी दूसरे देश के लोगों ने उधम मचाया तो भारत देश के वासी बड़े प्रेम से कान पकड़ कर उनको उनके देश पहुंचाया करते हैं। जो भारतवासियों के साथ आघात करता है, हानि पहुंचाता है, उन्हें कभी मारा–पीटा नहीं बल्कि प्रेम से उन्हें समझाया ही ऐसे भारत देश के वासी हैं। कोई ऐसा देश नहीं जिसने भारत देश के अनाज, जल का भक्षण न किया हो। भारत देश की संस्कृति के सामने समस्त दुनिया ने अपना सर झुकाकर आदर किया है।

भारत देश ने वेद, ज्ञान, विज्ञान का निर्माण कर कई देवताओं व महापुरुषों को पहचान प्रदान की। धनवन्तरि की आयुर्वेद दवा खाकर समस्त दुनिया ने रोगों से मुक्त हो कर जीवन प्राप्त किया। भारत के आयुर्वेद ने समस्त जगत को निरोग बनाया। कवि कहता है कि भारत देश के समस्त गुण लोगों को ज्ञात हैं। बेफिजूल इसका गुणगान क्यों किया जाए। जहां की आश्रम व्यवस्था दुनिया भर में धूम मचाए हुए है। समस्त जगत ने स्वीकार किया कि मन को जिसने अपने वश में कर लिया वह दर–बदर नहीं भटकता है। समस्त माया से मुक्त हो जाता है। शून्य का ज्ञान भारत ने समस्त दुनिया को प्रदान कर पूर्व की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। अनुवांशिकी की खोज कर समस्त दुनिया को झकझोर दिया। मंगल ग्रह को गन्ने की तरह पैदा कर दिया। भारत ने समस्त जगत में अपनी समस्त उपलब्धियों के कारण एक अद्वितीय स्थान हासिल किया है। आदिकाल से अब तक भारत ने कई अद्वितीय उपलब्धियां हासिल की हैं जिससे समस्त जगत के लोगों के मन को आकर्षित किया है।

विशेष

(i) भारत की उपलब्धियों का वर्णन।

(ii) कहावतों व लोकोक्तियों का प्रयोग :

इब की छड़ी से मारना।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) गीतात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) बघेली जनपदीय भाषा।

भीतर के मनई का देखा

पद्य : "छोंड़ा अब बाहिरी देखाबा ..... कूरा–कस फटिका।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां कवि डॉ. अमोल बटरोही की 'भीतर के मनई का देखा' शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि समाज में व्याप्त भेदभाव खत्म कर आपसी प्रेम और सौहार्द अपनाने व मानव धर्म अपनाने की अपील कर रहा है, जिससे समाज में समानता व प्रेम बना रहे।

व्याख्या : कवि मानव धर्म अपनाने की अपील करते हुए कहता है कि समाज में भारत बाहरी आडम्बरों को त्याग कर, दुनिया के सबसे महान धर्म मानव धर्म को अपनाओ। वे सामाजिक समानता को बढ़ावा देते हैं। समाज में व्याप्त भेदभाव केवल आडम्बर के कारण है। ईश्वर ने सबको पैदा किया, सबकी एक ही देह बनाई, सोचने, समझने की शक्ति प्रदान की। अच्छा–बुरा सोचने–समझने का रास्ता सुझाया है। सोचने–समझने की अपनी शक्ति को व्यर्थ में न खर्च करो और समाज में भेदभाव न पैदा करो। समस्त जन समान हैं। कोई अंतर नहीं है। एक पिता के अगर तीन पुत्र होते हैं तो सभी एक ही तरह के बुद्धिमान या ज्ञानवान नहीं होते हैं। लेकिन तीनों भाई–भाई बनकर एक बराबर हिस्सा प्राप्त करते हैं। जो चालाकी नहीं जानते, मेहनत करना ही जिनका धन है। जो मजदूर हैं उन्हें भी भरपेट भोजन खिलाओ। इस दुनिया में कोई बड़ा–छोटा नहीं, सब बराबर हैं। समान हैं। सभी एक ही पिता परमात्मा के पुत्र हैं। मन में अगर भेदभाव का थोड़ा भी विचार है उसे कचड़े की भांति कूड़ेदान में फेंक दो और समाज में सामाजिक समानता बनाए रखो।

विशेष

(i) सामाजिक समानता पर बल दिया।

(ii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iii) गीतात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(iv) बघेली जनपदीय भाषा।

पद्य : "पोथी पढ़े कबऊ न तरबे ..... छोड़ा अब बाहिरी देखाबा।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां कवि डॉ. अमोल बटरोही की 'भीतर के मनई का देखा' शीर्षक कविता से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि समाज में व्याप्त भेदभाव खत्म कर आपसी प्रेम और सौहार्द अपनाने व मानव धर्म अपनाने की अपील कर रहा है, जिससे समाज में समानता व प्रेम बना रहे।

व्याख्या : कवि समाज में समानता स्थापित करने पर बल देते हुए कहता है कि किताबें पढ़कर कोई इस भव सागर से पार नहीं हुआ है। ढाई अक्षर प्रेम का पढ़कर, समाज में प्रेम फैलाकर ही इस भवसागर से पार हो पाएगा। मंदिर, मसजिद, गिरजाघर, घाट–मरघट सबह जगह केवल एक ही रमता है, वो है राम। राम समस्त दुनिया के देवालयों में बसता है। उसका केवल नाम लोगों ने अलग–अलग रख लिया है। रास्ते अलग– अलग हैं लेकिन सबका लक्ष्य भवसागर से मुक्त होना एक ही है। इसलिए आप पहुंचिए और सबको पहुंचाइए।

कवि कहता है कि बाहरी आवरण व आडम्बरी वस्त्रों के भीतर सभी एक ही तरह से निर्वस्त्र हैं। बाहरी आवरण, आडम्बरों के खत्म हो जाने के बाद सब एक हो जाएंगे। बाहरी आडम्बरों के लिए बेफिजूल लड़ाई झगड़ा क्यों। अपने आत्मज्ञान को पहचानो व लोगों के आत्म को पहचानो और बाहरी आवरणों व आडम्बरों को उतार फेंक दो। समस्त बाह्य आडम्बरों का परित्याग कर, सामाजिक समानता स्थापित कर मानव धर्म को अपनाओ।

विशेष

(i) आत्म की पहचान पर बल।

(ii) बाह्य आडम्बरों के परित्याग पर बल।

(iii) लोकोक्तियों व कहावतों का प्रयोग :

ढाई अक्षर प्रेम का।

(iv) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(vi) जनदपीय बघेली भाषा।

4.3.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'

"जिन्दगी वह बौर है कि फल नहीं आता,
पीने को छलनी में जैसे जल नहीं आता,
आज चाहे जिन्दगी को मोड़ ले जिस मोड़ पे,
याद रख फिर जिन्दगी में कल नहीं आता।"

–शिवशंकर मिश्र 'सरस'

जिन्दगी की प्रगाढ़ता का विश्लेषण करने वाले बघेली भाषा के कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' जी अद्वितीय साहित्यिक प्रतिभा के धनी एवं हिन्दी व जनपदीय भाषा बघेली में अधिकार के साथ गद्य व पद्य विधाओं में लेखनी चलाने वाले साहित्यकार हैं। शिवशंकर मिश्र 'सरस' जी का जन्म 10 दिसम्बर, 1961 को ग्राम–मड़रिया, तहसील–गोपद बनास, जिला– सीधी, मध्य प्रदेश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री विश्वनाथ मिश्र व माता श्रीमती सिरमनिया देवी हैं। आप हिन्दी साहित्य में परास्नातक व पीएच.डी. की उपाधि अर्जित कर, शिक्षण कार्य से जुड़े हुए हैं। आप पेशे से शिक्षक हैं। आपने 13 वर्ष की उम्र से ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था। पहली बार कक्षा सातवीं में अध्ययन के दौरान आपने कविता वाचन किया व पुरस्कार भी प्राप्त किया।

'सरस' जी पहले हिन्दी में काव्य रचना करते थे। बाद में बघेली भाषा मातृभाषा होने के कारण उस ओर आपका झुकाव हुआ और बघेली लोकभाषा में काव्य सृजन प्रारम्भ कर दिया। 15 वर्ष की आयु में आपने बतौर बाल कलाकार आकाशवाणी में काम करना प्रारम्भ कर दिया था। आपकी कई कविताएं व कहानियां आकाशवाणी व युगवाणी रेडियो चैनलों पर आपके द्वारा पढ़ी गई हैं। बघेली भाषा के प्रति सरस जी का प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ रहा है। आपने शोध विषय 'बघेली लोक साहित्य की विशिष्ट शब्दावली' पर अपना शोध प्रबंध लिखा।

सरस जी का लोकजीवन से गहरा लगाव था। आपका जीवन ग्रामीण परिवेश के ज्यादा निकट रहा है। सरस जी का पारिवारिक जीवन ग्रामीण जीवन से जुड़ा हुआ है। जहां रूढ़ियां, रीति–रिवाज और भेदभाव, भ्रष्टाचार आदि का सामना करीब से हुआ है। ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण कर्मकाण्डी वातावरण का प्रभाव भी आप पर पड़ा है।

'सरस' जी का कोई स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित नहीं है। आपकी कविताएं यत्र–तत्र बिखरी पड़ी हैं। आपकी प्रथम हिन्दी कविता 'लकड़हारा' व दूसरी 'रंग भर होली के

दिन' है। आपकी प्रथम बघेली में प्रकाशित कविता 'पुनि पाँच साल बाद' जागरण में प्रकाशित हुई है। आपकी कविताएं कई पत्र–पत्रिकाओं व काव्य संकलनों के माध्यम से प्रकाशित हुई हैं। जिसमें प्रमुख रूप से 'सोन और रेवा के स्वर'– प्रो. कमला प्रसाद, बघेली : अंतरंग व बहिरंग–प्रो. सेवाराम त्रिपाठी आदि काव्य संकलनों में संकलित हैं। शिवम–भोपाल, अणुजा–भोपाल, मड़ई–छत्तीसगढ़ आदि प्रमुख पत्रिकाओं में आपकी कविताएं प्रकाशित हैं। सरस जी ने गद्य विधा में दो कहानियों की रचना की है–(1) नरई (2) दिदी के गाउब। दोनों कहानियों का पाठ आकाशवाणी द्वारा प्रस्तुत व प्रसारित हुआ है। आपका प्रकाशित ग्रंथ–'बघेली हिन्दी शब्द कोश'– 2009 संस्कृति संचालनालय मध्य प्रदेश, भोपाल द्वारा प्रकाशित है।

शिवशंकर मिश्र 'सरस' जी ने साहित्य के क्षेत्र में कई सम्मान अर्जित किए हैं, जिनमें प्रमुख बैजू सम्मान–1994; काव्य उजास सम्मान–2010–11, वान्धवीय सम्मान–2017, विन्ध्य शिखर सम्मान–2018 प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत किया गया है।

सरस जी कविताओं का कई शोध प्रबंधों में समावेश करते हुए शोध कार्य किए गए हैं।

काव्य सौन्दर्य– शिवशंकर मिश्र 'सरस' जी बघेली कविता के युवा पीढ़ी के कवि हैं। जो जमाने के समय व सच को समझदारी से चित्रित करते हैं। इनकी कविताओं में सौन्दर्य के नए–नए आयाम हैं। सरस जी ने अपने समय के यथार्थ को उसी रूप में नहीं देखा बल्कि यथार्थ को विविध आयामों से देखने के पक्षधर हैं। इनकी कविता में जीवन के विविध आयाम उद्घाटित होते हैं। व्यंग्य का करारापन बहुत प्रभावी है। इन्होंने अपनी कविता में व्यंग्य का मस्ती में प्रयोग किया है।

ग्रामीण व किसान जीवन का जीवंत बेबाक व सटीक वर्णन किया है। ऐसे बिम्बों को रूपायित किया है कि ग्रामीण जीवन आंखों के सामने परिलक्षित होने लगता है। ग्रामीण जनों की दैनिक दिनचर्या, दैनिक जीवन का जीवंत बिम्ब प्रस्तुत किया है–

"फुदुकि उठी ओरिन मा छोटि–छोटि गउरइया,
चलै लागि मनइन कै डोरि,
कुहुकी दै चरबाह लै–लै गाय चलैं,
बजै लागि घाँटी खोरि–खोरि।।"

किसान जीवन का यथार्थ वर्णन सरस जी ने अपनी कविताओं में किया है। किसान जीवन कितना श्रमशील व आर्थिक रूप से कमजोर है। उन्हें केवल नमक रोटी भोजन के रूप में प्राप्त होता है जबकि किसान विविध प्रकार की फसलों को उपजाता है।

"फेंड बाँधि सब किसान खेतन मा जोति रहें,
खाइ–खाइ रोटी अरु लोन।
काने माँ अँगुरी के बिरहा धै तानि रहें,
माँगि रहें धरतिऊ से सोन।"

प्रकृति के रणमीय चित्रण में भी सरज जी का काव्य अछूता नहीं है। सरस जी ने सुबह का वर्णन करते हुए प्रकृति के मनोहारी बिम्ब का चित्रांकन अपनी कविताओं के माध्यम से किया है–

टिप्पणी

"चिरइउ व गाइ रहीं, उड़ि–उड़ि के जाइ रहीं,"
पूरब माँ सुरुज है ललान।
देखा रे! होइ रहा बिहान।"

सरस जी ने राजनीति पर करारा व्यंग्य करते हुए नेता व सरकार के नंगे चरित्र का बखूबी उद्‌घाटन किया है। किस प्रकार जनता का शोषण करने में सरकार व उसके नेता लगे हुए हैं। समाज में लोगों के मध्य अराजकता फैलाए हुए ही शासन की वर्तमान रीति–नीति से दुखी हैं। वे देखते हैं कि नेता वही है जो अत्याचारी व अन्यायी हो, जिस पर क्रिमिनल केस दर्ज हों–

"जी नंगा बूचा होय उहइ नेता आय आपन,
जी देय सब धंधोय उहर नेता आय आपन,
जी बड़े–बड़े गुण के भेहान का पकडि के,
गोबर मा देइ मोय, उहइ नेता आय आपन।"

देश में अत्याचार, अन्याय, शोषण अपने चरम पर है, चारों तरफ भ्रष्टाचार फैला हुआ है, जनता भूख से दम तोड़ रही है, लेकिन सरकार लूट मचाए हुए है–

"चारिऊ कइति ई देस मा उजार मचा हइ।
कुर्सी निता अगार अउ पछार मचा हइ।
आधे से अधिक हैं जे पेट मुरुरि रहे हाँ,
एक कइती जनता या झारा झाट मचा हई।"

वर्तमान समाज के नेताओं द्वारा किए जा रहे शोषण से व्यथित होकर कवि सोच समझकर चुनाव में वोट डालने का सुझाव दे रहे हैं। जो देश को अन्दर–अन्दर खोखला कर रहे हैं, जिनकी कथनी–करनी में अन्तर है, उनका चुनाव सोच–समझकर करें।

"अबकि सोचि समझि के ठप्पा मारा जई भला,
राजा बदलै का है, मुकुट उतारा जई भला।"

समाज के लोगों व नेताओं में हो रहे त्वरित बदलाव से कवि खिन्न है, जिस प्रकार नेता चुनाव के बाद व चुनाव से पहले अपने अन्दर त्वरित बदलाव लाते हैं, उसका चित्रण किया है।

"अइसन चुपरय अइसन चाटँय कहाँ सिखेउ,
दाना धरय, पछोरन, बाँटय कहाँ सिखेउ,
कुछ दिन पहिले कुछ दिन बाद माँ अतना अन्तर,
मुहु जोरय, अऊ मन से काटय कहाँ सिखेउ।"

पारिवारिक विघटन व समाज में व्याप्त अत्याचार के कोलाहल से व्यथित होकर कवि समाज या परिवार का साथ देने में असमर्थ नजर आते हुए कहता है–

"अब नहीं सहा करै त का करी,
कोउ नहीं कहा करै त का करी
जहाँ तक बस चला त बाँह गहेन
अब नहीं गहा करै त का करी।"

समाज के लोगों का शोषण इतना भयावह हो गया है कि पराधीनता से भी बुरे दिन हो गए हैं। ऐसा लगता है कि देश किसी तानाशाह का गुलाम है। कवि कहता है–

"ए भइया तूँ का सोचतेऽ हा, चारिउ कहती हरहा देखा,
अन्ते के कम घरहा देखा, खाइन सगला देस उजरिगा,
आजादी के चिन्ता बरिगा।"

टिप्पणी

काव्य भाषा व काव्य रूप– शिवशंकर मिश्र 'सरस' जी बघेली कविता के युवा पीढ़ी के कवि हैं। इन्होंने कबीर की तरह अपनी भाषा को स्थिति विपर्यय, व्यंग्यात्मक रूप में अपनाया है। समाज और राजनीति के प्रति भाषा का तीखापन भरा पड़ा है। भाषा के रूप में सामान्य आमजन के बोल चाल की भाषा रखी है, जिसमें ठेठ देशज शब्दों के साथ आम बोलचाल की भाषा से विलुप्त हो रहे शब्दों का प्रयोग किया है।

शिवशंकर मिश्र 'सरस' की रचनाओं के मूल पाठ

1. देखा रे! होइ रहा बिहान

चिरइउ त गाइ रहीं, उड़ि–उड़ि के जाइ रहीं,
पूरुब माँ सुरुज है ललान।
देखा रे! हाइ रहा बिहान।
घर–घर माँ चलै लागि किहिनी कहानी,
जागि आएँ लड़िका लय आँखी किचरान।
कूँचा अउ पोतना माँ पुनि के झबारि बढ़ी,
लीपि में है दुअरा अउ दलाल।।
सुरुज दीन्हिस निहारी, जेतबन माँ भै घघारि,
मेडरिन मा भरि चला पिसान।
देखा रे! होइ रहा बिहान।
फेड़ बाँधि सब किसान खेतन माँ जोति रहें,
खाइ–खाइ रोटी अउ लोन।
काने माँ अँगुरी के बिरहा धै तानि रहें,
माँगि रहें धरतिउ से सोन।।
हिरदँय अकुलाय गए, सब जिनिस निराय गए,
कुलुकि उठी खेतन माँ धान।
देखा रे! होइ रहा बिहान।
फुदुकि उठीं ओरिन माँ छोटि–छोटि गउरइया,
चलै लागि मनइन के डोरि।।
कुहुकी दै चरबाह लै–लै के गाय चलैं,
बजैं लागि घाँटी खोरि–खोरि।।
हरियारी जागि उठी, हँसियन माँ रागि उठी,
भरिगे है खेत अउ खरिहान।

देखा रे! होइ रहा बिहान।
तरछिन मा घोर–घोर गाबय मथानी,
फफँदि रहें लड़िका धुधुरान।
खोरा अउ खोरिया का आपुस माँ जूझि रहें,
ठुमकत हाँ पेट लै भुखान।।
रोटी लइ धाइ रहें, सब मिलि के गाइ रहें,
कउअन का लगि रहा लगान।
देखा रे! होइ रीहा बिहान।

2. होय जउन होय देऽ

मनई अन्धेरि करै देखा अँखिमुन्द।
आपुसु माँ गोरुअन अस मचिगा खुरखुन्द।
काज कहौ लगा नहीं, होइगा मटिमगरा।
एँह अंधाधुन्ध माँ सँघरा हो सँघरा।
पानिउ भर मिलइ कहउँ, लाइन माँ लागा,
तूँ पी लेऽ आन का धँघोय देऽ,
होय जउन होय देऽ.....।।
नंगन के साथ चला, नेतन से पटि लेऽ,
मन पसार रुपिया के सथरी माँ सँटि लेऽ,
नंगदाँय खूब करा, दुनिया सब लूटि लेऽ,
पाहुँच भर बनी रहै, सरकारी छूटि लेऽ,
बरत देखा राहा जो कोहू के,
तुहूँ पहुँचा–अउर थो का खोय देऽ,
होय जउन होय देऽ,
कोऊ जो बिरोध करी हुमसि दिहेऽ खासा।
ओइर दिहेऽ रुपिया, फे देखि लिहेऽ तमासा।
कुछु दिन माँ इज्जत फे देखि लिहेऽ गाँव माँ,
तू रहबेऽ कोयल अउ बाँकी सब काँव माँ।।
फूल हियां बोये माँ अब पतनि,
काँटा तू बोय देऽ–
होय जउन होय देऽ....।।

3. मुक्तक

जनता अललानि भुखानि परी अउ सोबति हइ सरकार
अपने–अपने घरे खजाना ढोबति हइ सरकार।
को सुनि लेय गोहारि कि देस गुलामिउ से घिनहा–
दुहि–दुहि जनता का पुनि–पुनि नोबित हइ सरकार।।

4. अब नहीं सहा करै त का करी

अब नहीं सहा करै त का करी,
कोऊ नहीं कहा करै त का करी,
जहाँ तक बस चला त बाँह गहेन–
अब नहीं गहा करै त का कारी,
आन के खरोंच तक नहीं सहेन–
घाव अपनै नहा करै त का करी,
जबसे जानुक भयने बिपत्त बहायेन–
अब नहीं बहा करै त का करी,
समउ के फेर सुख के साथ छूट–
दुक्ख संघे रहा करै त।

5. मिरगा के नाई प्यास

(एक)

आपन सुक्ख आपन नेह मागत रहि गयेन हमहूँ।
लिहे मिरगा की नाई प्यास मागत रहि गयेन हमहूँ।
कोऊ हरिलेय पीरा जिन्दगी भर के भला हमरी–
लिहे बिसुआस का बिसुआस मागत रहि गयेन हमहूँ।
होइ जाय न जिनगी के परीक्षा न कहँऊ ठे–
लिहे पोथी कि दिन अउ राति जागत रहि गयेन हमहूँ।
सुनने कि जहर का मारै का जहरै काम–आबथै–
जरे पर धइ के अँगरा अउर दागत रहि गयेन हमहूँ।

(दो)

अइसन चुपरय आइसन चाटँय कहाँ सिखेऽ,
दाना धरय, पछोरन बाँटय कहाँ सिखेऽ।
कुछु दिन पहिले, कुछ दिन बाद माँ अतना अन्तर–
मुहु जोरय, अऊ मन से काटय कहाँ सिखेऽ।

रचनाओं की सप्रसंग व्याख्या

देखा रे! होइ रहा बिहान

पद्य– चिरइऊ त गाई रही ..... कुलुकि उठी खेतन माँ धान।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' के 'देखा रे! होइ रहा बिहान' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में ग्रामीण जीवन शैली व सुबह के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना व आजादी का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि सूर्योदय हो गया, देश आजाद हो गया, चिड़िया अपने बसेरों से उड़–उड़ कर दाना चुगने के लिए गाते हुए जा रही है। पूर्व में सूर्य की लालिमा छा गई है। पूर्व के देश भारत में आजादी का सूर्य उग आया है। सुबह हो गई। घर–घर में कहावतें, मुकरियां व कहानियां चलने लगीं, देश की आजादी की कहानियां लोगों में आपस में चलने लगीं। बच्चे आंखों में कीचड़ लिए नींद से जग गए हैं। लोगों की पराधीनता का कीचड़ अभी आंखों में लगा हुआ है। अभी–अभी पराधीनता से मुक्त होकर आजाद हुए हैं। झाड़ू और पौंछा करने का कार्य बढ़ गया है। द्वार और ढलान की सफाई करने का काम आ गया है। देश आजाद हो गया है। देश में सफाई का काम बढ़ गया है, इसे स्वच्छ रखने का जिम्मा शुरू हो गया है। सूर्य उग आया है, हाथ की चक्की चलने लगी है। भारत आजाद हो गया है, भारत आत्मनिर्भर हो रहा है। चारों तरफ हाथ की आटा चक्की का आटा भर गया है। सुबह हो रही है। कमर बांध कर सब किसान, रोटी नमक खाकर खेतों में हल चला रहे हैं। कान में अंगुली डाल विरह का गीत गा रहे हैं, गाते हुए धरती से सोना मांग रहे हैं। हृदय व्याकुल हो गया है, खेतों की सभी फसलों की निराई–गुड़ाई हो गई है। खेतों में धान के पेड़ लहलहा रहे हैं। लोग कमर बांध, नमक रोटी खाकर सृजन के कार्य में जुट गए हैं और आजादी का गीत गा रहे हैं। जिसके लिए उनका हृदय कब से व्याकुल था।

विशेष

(i) सुबह के दैनिक कार्यों का चित्रण।

(ii) लोकोक्तियों का प्रयोग।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) रूपक अलंकार।

(v) बघेली भाषा।

पद्य– "देखा रे! होइ रहा बिहान ..... देखा रे! होइ रहा बिहान।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' के 'देखा रे! होइ रहा बिहान' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में ग्रामीण जीवन शैली व सुबह के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना व आजादी का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि सुबह हो रही है, छोटी–छोटी गौरैया घर के छाजन पर फुदक रही हैं, लोगों की भीड़ चलने लगी है। चहल–पहल शुरू हो गई है। चरवाहे

आवाज देकर अपनी गायें लेकर चल दिए हैं। गाय के गले में बंधी घंटियां बजने लगी हैं। पतले–पतले संकरे रास्तों में घंटियों की आवाज गूंजने लगी है। खेतों में हरियाली छा गई है। फसल काटने में प्रयुक्त किए जाने वाले औजार "हँसिया" में धार तेज हो गई है। खेत और खलिहान फसलों से भर गए हैं। भारत आजाद हो गया है। आजाद होकर गौरैया रूपी लोग देश के आंगन में फुदकने लगे हैं। लोगों की चहल–पहल शुरू हो गई है। किसान आजाद होकर अपना कृषि योग्य कार्य करने लगा है।

कवि कहता है, सुबह हो रही है, मिट्टी के मटकों में दही मथी जाने लगी है। मथानी घोर–घोर की आवाज करने लगी है। आवाज सुनकर बच्चे अलसाया चेहरा लेकर चारों तरफ फुदक रहे हैं। घेर लिए हैं। खाना लेने के लिए आपस में बर्तन के लिए झगड़े कर रहे हैं। भूखे पेट खाने के लिए ढुमक रहे हैं। रोटी मिल गई है, सब गाते हुए रोटी लेकर दौड़ रहे हैं। कौओं को भी रोटी की जुगत लग गई है। सुबह हो गई है। देश स्वाधीन हो गया है। पराधीनता मथी जाने लगी है। लोग भूख के लिए बिलघ रहे हैं, भोजन मिल जाने पर गीत–गाते छिप दौड़ रहे हैं, उनकी रोटी छीनने के लिए नेता जुगत करने लगे हैं।

विशेष

(i) सुबह के दैनिक कार्यों का चित्रण।

(ii) लोकोक्तियों का प्रयोग।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) रूपक अलंकार।

(v) बघेली भाषा।

होय जउन होय देऽ

पद्य– "मनई अन्धेरि करै देखा अखिमुंद ..... होय जउन होय देऽ।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियां बघेली भाषा के युवा पीढ़ी के कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' की 'होय जउन होय देऽ' शीर्षक कविता में संकलित हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, लालाफीताशाही व तानाशाही का व्यंग्यात्मक रूप से चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि समाज में तानाशाही और भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि लोग अत्याचार कर रहे हैं, आपस में जानवरों की भांति एक–दूसरे से लड़ रहे हैं। ब्याह कहीं तय नहीं होता है, उसके पहले ही मॉटीमांगल्य हो गया है। कार्य की शुरुआत न होने के पहले ही लोग कार्य की शुरुआत कर लेते हैं। ऐसा अंधाधुंध मचा हुआ है। कवि कहता है इस अंधाधुंध अत्याचार में तुम भी शामिल हो जाओ। अगर पानी भी कहीं मिल रहा हो तो तुम भी कतार में लग जाओ, तुम स्वयं पी लो और कतार के पीछे वालों के लिए गंदला कर दो। जो हो रहा है उसे होने दो बदलाव के लिए विचार ही मत करो।

मारपीट करने वाले अत्याचारियों के साथ चलो, नेताओं से सांठ–गांठ कर लो तो मनमाफिक पैसा कमाओ, अत्याचार करो, सारी दुनिया को लूट लो, सरकारी महकमों

तक पहुंच बनाए रखो तो जितना चाहो सरकारी छूट लेते रहो। कोई अत्याचार से पीड़ित हो तो उसे और पीड़ित व शोषित करो जो हो रहा है होने दो। कोई अगर जल रहा है तो उसे थोड़ी हवा देकर और जला दो। बदलाव का विचार न करो। कोई तुम्हारे अत्याचार का विरोध करे उसे मार या पीट डालो, कुछ नहीं होगा, पैसा सरकारी हाकिमों को खिलाकर, तमाशा देखते रहो, तुम्हारे इस भ्रष्ट आचरण से गांव व समाज में इज्जत बढ़ जाएगी। लोग तुमसे डरने लगेंगे। तुम्हारी बात सब सुनने लगेंगे, बाकी लोगों की बातों पर कौए की आवाज की तरह ध्यान नहीं दिया जाएगा। इस समाज में लोगों की भलाई करने पर कई प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है इसलिए किसी की भलाई न करो, तुम भी लोगों का शोषण व अत्याचार करो। जो हो रहा है होने दो, उसको बदलने का प्रयास मत करो। समाज में हो रहे अत्याचारों में शामिल होकर अराजकता फैलाओ, लेकिन बदलाव या हो रहे अत्याचारों का विरोध मत करो। चुपचाप आंख मूंदकर नजरअंदाज करते रहो।

विशेष

(i) सामाजिक वैमनस्यता का चित्रण।

(ii) व्यंग्यात्मक गेय प्रधान शैली।

(iii) ग्रामीण रूपकों का प्रयोग।

(iv) लोकोक्तियों, कहावतों का समावेश।

(v) जनपदीय बघेली भाषा।

(vi) तत्सम शब्दों का प्रयोग।

मुक्तक

पद्य– "जनता अललानि भुखानि परी ..... नोबित हइ सरकार।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत पंक्तियां कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' द्वारा रचित 'मुक्तक' काव्य से ली गई हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से कवि ने सरकार व नेताओं द्वारा किए जा रहे जनता के शोषण का चित्रण किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि जनता भूख से मर रही है, जीविका के लिए चारों तरफ भटक रही है लेकिन सरकार का ध्यान उन पर नहीं है, सरकार आँख मूँदकर सो रही है। लोगों द्वारा जमा खजाने से नेता अपना घर भर रहे हैं। देश का खजाना लूट रहे हैं। जो पैसा जनता के विकास व भोजन के लिए खर्च किया जाना था, उस पैसे को नेता अपने घरों में जमा कर रहे हैं। कवि कहता है कि कोई लोगों की व्यथा को सुनने वाला नहीं है। कोई इनकी व्यथा सुन लो। देश की हालत, गुलामी से भी बदतर हो रही है। जनता का दोहन, अत्याचार व भ्रष्टाचार लोगों पर किया जा रहा है। सरकार जनता का दोहन कर रही है। दोहन करने के बाद भी संतुष्ट न होकर फिर दोहन करने के लिए जनता को विवश कर रही है। देश के लोगों की हालत बद से बदतर होती जा रही है। सरकारी अकर्मण्यता अपने चरम पर है।

विशेष

(i) जनता की वर्तमान दशा का चित्रण।

(ii) सरकार की अकर्मण्यता का चित्रण।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) गेयात्मक मुक्तक प्रधान शैली।

(v) बघेली जनपदीय भाषा।

अब नहीं सहा करै त का करी

पद्य : "अब नहीं सहा करै त का करी ..... दुक्ख संघे रहा करै त का करी।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां युवा बघेली भाषा के कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' की 'अब नहीं सहा करै त का करी' शीर्षक कविता से ली गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पारिवारिक लोगों द्वारा किए जा रहे अत्याचार का चित्रण करते हुए व्यक्ति की मनःस्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि अब परिवारीजनों द्वारा किए जा रहे अत्याचार का सहन नहीं हो पा रहा है। अब कोई परिवारीजन उसकी बातों पर ध्यान नहीं देते हैं। अब उसका परिवारीजनों के साथ रहना मुश्किल हो गया है, जहां तक संभव हुआ साथ रहा, अब साथ रहना मुश्किल हो गया है। परिवारीजनों के अतिरिक्त किसी अन्य लोगों का अत्याचार कभी सहन नहीं किया। किसी की आज तक एक खरोंच भी बर्दाश्त नहीं की। लेकिन जब स्वयं के परिवारीजन ही शोषण व अत्याचार करें तो क्या किया जाए। जबसे जानकार हुआ, उम्र बड़ी हुई, तबसे परिवार की समस्याओं का सामना कर उन्हें दूर किया, लेकिन अब विपत्ति व समस्याओं का सामना नहीं किया जा सकता है। अब सामर्थ्य से परे हो गया है। समय का बदलाव हुआ है, सुख जीवन से चला गया है। अब दुख ही जीवन का साथी है, तो क्या किया जाए। अब परिवारीजनों के साथ रहना मुश्किल हो गया है, उम्र के बढ़ते समय से सामर्थ्य का ह्रास हुआ। परिवार द्वारा ठुकराया जा रहा है।

विशेष

(i) पारिवारिक व्यथा का चित्रण।

(ii) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(iii) बघेली जनदीप भाषा।

(iv) प्रसाद व माधुर्य गुण।

मिरगा के नाई प्यास

पद्य : "आपन सुक्ख आपन नेह ..... बागत रहि गयेन हमहूँ।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' द्वारा रचित कविता 'मिरगा के नाई प्यास' शीर्षक से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि की व्यथा व उसके उपाय के माध्यम से व्यथित विचलित मनःस्थिति का चित्रण किया गया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि अपना प्रेम व सुख माँगता रह गया लेकिन प्रेम व सुख नहीं मिला, मृग की भाँति प्यासा स्नेह व सुख रूपी जल मांगता रहा, नहीं मिला। कोई उसके जीवन के कष्टों को दूर कर देगा ऐसा विश्वास लेकर लोगों से विश्वास की आशा करता रहा कि कोई विश्वास दिलाएगा कि वह हमारे कष्ट दूर कर देगा, लेकिन कोई नहीं मिला। जिन्दगी एक परीक्षा है इसलिए जिन्दगी में कहीं भी परीक्षा न देनी पड़ जाए इसलिए जीवन की किताब के पन्नों को रातभर जागकर हमेशा सचेत व जागरूक होकर उसे पलटते हुए पढ़ता रहा।

कवि कहता है कि सुना था कि जहर को जहर ही मारने में काम आता है, दर्द ही दर्द की दवा है। इसलिए अपने जले घाव को और जलाता रहा। उसे आग के गोलों से जलाता रहा, दुख पर दुख झेलता रहा लेकिन कहीं कोई ऐसी जगह नहीं मिली जहां मन स्थिर रहे, शांत रहे, ऐसी जगह की तलाश में कवि 'सरस' इधर से उधर भटकते रहते हैं। लेकिन उनके मन का विचलन शांत नहीं होता है।

विशेष

(i) विचलित, अशांत मनःस्थिति का चित्रण।

(ii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iii) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(iv) लोकोक्तियों व कहावतों का प्रयोग।

(v) बघेली जनपदीय भाषा।

पद्य : "अइसन चुपरय अइसन चाटँय कहा सिखेऽ .....

मुहु जोरय अऊ मन से काटय कहाँ सिखेऽ।।"

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियां कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' द्वारा रचित कविता 'मिरगा के नाई प्यास' शीर्षक से उद्धृत की गई हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने समय के साथ लोगों के व्यवहार में हो रहे परिवर्तन का चित्रण किया है।

व्याख्या : कवि कहता है कि इतना व्यवहार में परिवर्तन कैसे हो गया है। इतनी चापलूसी करना कहां से सीख लिया, लोगों को बातों में बहलाना कहां से सीख लिया। अनाज के दानों को सहेजना, साफ करना, फटकना, बोराना कहां से सीख लिया। पैसों को सहेजना, बोलना कहां से सीख लिया। कुछ समय में ही इतना बदलाव कैसे आ गया, पहले तुम्हारा व्यवहार ऐसा नहीं था। लोगों में इतना भेदभाव व छल–कपट नहीं था। इतना छल–कपट कहां से सीख लिया। मुंह से मीठी बातें बोलकर मन से कपट प्रकट करना कहां से सीख लिया। पहले तो समाज में लोगों के मन में निश्छलता थी, लेकिन छल–कपट दंभ का प्रवेश कैसे हुआ?

विशेष

(i) सामाजिक व्यवहार में बदलाव का चित्रण।

(ii) कहावतों व लोकोक्तियों का प्रयोग।

(iii) प्रसाद व माधुर्य गुण।

(iv) गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली।

(v) जनपदीय बघेली भाषा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के पिता का उपनाम है–

(क) मैथिली (ख) उपमा

(ग) सरस (घ) शरद

4. अमोल बटरोही का काव्य–संग्रह है–

(क) हिमालय केर कनियाँ (ख) भारत केर माटी

(ग) एक दिन अइसव होई (घ) बलम बेसर गढ़बाबा

5. शिवशंकर मिश्र 'सरस' को बैजू सम्मान कब मिला था?

(क) 1994 (ख) 1995

(ग) 1996 (घ) 1997

4.4 बघेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

बघेली भाषा के पठित कवियों, सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू', डॉ. अमोल बटरोही एवं शिवशंकर मिश्र 'सरस' के आलोचनात्मक विवेचन को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.4.1 सैफुद्दीन सिद्दीकी

बघेली कविता में हम वास्तविक जीवन की विभिन्न छवियों, सामाजिक संघर्षों के अनेक रूपों से दो–चार होते हैं। यहां जीवन की जद्दोजहद, संघर्षशीलता भी प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

समाज से संबंधित किसी भी घटनाक्रम का ज्यों का त्यों चित्रण ही सामाजिक यथार्थ कहलाता है। सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य आम प्रचलित शब्दों में मनुष्य द्वारा की गई सामान्य क्रियाओं के सटीक चित्रण से लिया जाता है। ज्ञान शब्दकोश में सामाजिक शब्द का अर्थ– समाज संबंधी, समाज में पाया जाने वाला आदि से लिया जाता है। यथार्थ का अर्थ– सत्य, प्रकट, उचित आदि से लिया जाता है। इन दोनों शब्दों के अर्थों को मिलाने से सामाजिक यथार्थ का तात्पर्य समाज में घटित होने वाली सच्ची घटनाओं के यथार्थ चित्रण से है।

सामाजिक यथार्थ से ही साहित्य के प्रति लोगों की अभिरुचि पैदा होती है, जिसमें सामाजिक जीवन यथार्थ की तस्वीरों को साफ–साफ देखा जा सकता है। साहित्य व समाज एक–दूसरे के परिपूरक हैं। साहित्य समाज से सामग्री ग्रहण कर हमारा मार्गदर्शन करता है। साहित्य में यथार्थ वही माना जाता है, जिसमें साहित्यकार

स्वयं की अनुभूति को दूसरों को अनुभव कराता है। साहित्य सदैव सत्य का पक्षधर होता है, साहित्य में सत्य को यथार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है।

साहित्य में कल्पना का सत्य रूप विद्यमान रहता है पर यह कोरी कपोल कल्पना न होकर यथार्थ को सुंदर से सुंदरतम ढंग से चित्रित करने के लिए ताने–बाने के रूप में प्रयुक्त होती है। कवि अपनी रचनाओं में अपने आस–पास के वातावरण को या समाज को चित्रित करता है, जिसमें वह अपना जीवन व्यतीत करता है। कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' जी ने अपना समस्त जीवन ग्रामीण समाज व वातावरण में व्यतीत किया है। ग्रामीण समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष, सामाजिक विषमता, दरिद्रता, जीवन की विसंगतियों, काम कुंठाओं, सदियों से सामाजिक और पारिवारिक शोषण के दमनचक्र से प्रताड़ित, बेबस, अपमान से छटपटाती स्त्री, परिवार के लिए सर्वस्व न्योछावर करती स्त्री आदि सामाजिक यथार्थों के प्रति उनका विशेष रूप से मन आकृष्ट रहा है।

कवि सैफू जी ने अपने समय के समाज में व्याप्त दरिद्रता व आर्थिक विषमताओं का अंकन करते हुए स्त्री की सर्वस्व न्योछावर की प्रवृत्ति का चित्रण किया है। किस प्रकार समाज के लोग भूखे, बेहाल, अपना जीवन–यापन करते हैं। ठंड दूर करने के लिए किस प्रकार पुआल व आग का सहारा लेते हैं। ओढ़ने–बिछाने के लिए कपड़े नहीं हैं। ठिठुरकर रात बिताते हैं। दोनों समय का भोजन नहीं मिलता है। भूख से ठंड और सताती है। ठंड के महीनों में भी दूसरों के घर से मांग कर लाए गए मट्ठा के साथ 'कोदो' के चावल खाने पड़ते हैं। स्त्रियां ठंड में बच्चों को सीने से लगाकर फटी कथरी ओढ़कर, सोहर, विवाह आदि गीत गाकर रात गुजारती हैं। स्वयं भूखा रहकर दूसरों के घरों से कुछ मांग कर लाती हैं, बच्चों व पति को खिला देती हैं। फटी साड़ी को सिल–सिलकर पहनती हैं, जिसका नमूना निम्न पंक्तियों में परिलक्षित होता है–

"दुदुरी मारे पेट रही हय, तिहुनिन का छुपलाये।
जाड़े मा दलकिन के मारे, देह रही अुभुआये।।

तै ता सौति लेहे दुइ धोतिया, लड़िकन का छुपकउती।
जाड़ लागत परेन–परे कुछ सोहर बनरा गऊती।।

चाउर नबा हेर के राघव, माठा डार खवावत।
अपने जान करस निकहा, पै हम भर जान न पावत।।

सामाजिक यथार्थ को रूपायित करते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों का चित्रण बखूबी किया है। समाज में आए दिन बलात्कार, व्यभिचार, चोरी, डकैती आदि घटनाएं घटित होती रहती हैं। व्यभिचार, मर्यादाओं का उल्लंघन आदि के लिए समाज में व्याप्त अशिक्षा जिम्मेदार है। समाज में बाल–विवाह जैसी समस्या सैफू जी के समय में विकराल रूप में व्याप्त थी। लड़कियों की कम उम्र में शादी किए जाने के कारण समाज व परिवार में कई प्रकार की विकृतियां पनपती थीं। लड़की का कम उम्र में विधवा होना भी एक प्रमुख समस्या थी, उससे भी बड़ी समस्या बाल विधवा को समाज द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाना व पुनःविवाह करने की अनुमति का न होना भी था। अनमेल विवाह भी तत्कालीन समाज की एक बहुत बड़ी समस्या थी। इन समस्त समस्याओं की जिम्मेदार थीं परंपरागत प्राचीन रूढ़ियां जिनका खत्म किया जाना आवश्यक था। स्त्रियों को दोयम दर्जे का समझा जाना भी एक रूढ़ि थी। अगर किसी पुरुष की पत्नी की मृत्यु हो जाती थी तो वह तुरंत ज्यादा उम्र होने पर भी कम उम्र की लड़कियों से विवाह कर लेता था। लेकिन कम उम्र की विधवाओं को भी विवाह करने का अधिकार

नहीं था। इस प्रकार की समस्त कुरीतियों व रूढ़ियों का चित्रण करते हुए उन पर कुठाराघात करने का सैफू जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से अथक प्रयास किया है। जैसे–

"दसै बरस मा लिहे रँड़ापा, बपुरी डोलत बाँगे।
सब समाज बइरी अस लागै, मुद्दत केसे माँगै।।

कहै लाग तोलौ पारी के, दूसर काज न होई।
सगली उमिर रँड़ापा खेई, करम राम का रोई।।

एक मेहरिया के मर जातै, बुढ़ऊ हेरै काज।
बिटियन के ऊपर धौं काहे, या समाज नाराज।।"

सैफू जी ने ग्रामीण समाज को गहराई से आत्मसात किया है। ग्रामीण समाज का विशेष जनसमूह कृषक जीवन से संबंध रखता है। अनाज पैदा करना उनका परम कर्तव्य है। लेकिन अन्नदाता किसान कई तरह की प्राकृतिक, सामाजिक आपदाओं का सामना करता है। भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है, कृषि ही अर्थव्यवस्था का मूल आधार रही है। लेकिन किसान की यथार्थ स्थिति दयनीय रही है, जो आज भी है। दयनीय आर्थिक स्थिति व कर्ज के बोझ के कारण आज भी किसान आत्महत्या जैसे जघन्य काम के लिए मजबूर है। सैफू जी तत्कालीन किसान जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हैं कि किस प्रकार दिन–रात मेहनत कर किसान अन्न उपजाता है। जब लोग घरों में आराम की नींद लेते होते हैं, किसान खेतों में काम करता रहता है। गर्मी, ठंडी, बरसात सबको अपने बदन पर सहर्ष सहन करता है।

प्राकृतिक आपदाओं, बाढ़, सूखा आदि की मार भी वही सहता है। खुद वह मोटा या कीड़ों का खाया, कटा–फटा अनाज खाता है और अच्छा अनाज दूसरों को बेच देता है। कोई शान–शौक नहीं रखता है। फटी आधी बांह की कमीज पहनकर जीवन व्यतीत करता है। मच्छर–मक्खियों का आक्रमण उन्हें विचलित नहीं कर पाता है। कठिन परिश्रम के बावजूद भी किसान आर्थिक विपन्नता का शिकार है। जिसका अंकन सैफू जी के काव्य में निम्न है–

"सब सोमैं उँयँ पहर चरामै, अँधियारे माँ भाई।
आँधिउ पानी उठै चलै, उँयँ गोरुअन का डहराई।।

फटही बण्डी पहिरे बागै, उनकी सउख न लागै।
माघ पूस माँ परै ठहारी, तऊ खेत उँयँ भागै।।

निकहा अन्न आन का नापै, अपना खाइन बदरा।
आने का कमरा औढ़बामैं, अपनउ औढ़ैं चदरा।।

ग्रामीण समाज में ज्यादा संख्या में श्रमिक वर्ग निवास करता है। मजदूरी कर अपना जीवन–यापन करते हैं। उनकी मेहनत की कमाई से कई पूंजीपति बन गए लेकिन मजदूर आज भी मजदूरी कर जीवन–यापन करता है। जिस मकान में मजदूरों का खून पसीना लगा हुआ है, उन महलों में पूंजीपति आराम फरमा रहे हैं। मजदूर आज भी झोपड़ियों में निवास करता है। श्रम का कोई महत्व नहीं है। उन्हें कोई रोटी के लिए भी नहीं पूछता है। अथक परिश्रम के बावजूद मजदूरों की स्थिति दयनीय है, दो वक्त के भोजन के लिए दर–दर भटकना पड़ता है, जिससे द्रवित होकर कवि मजदूर जीवन को अपनी कविताओं के माध्यम से चित्रित करता है, जैसे–

"तोहँरे खितिर जे खून पसीना, एक करिन।
तोहँरे पक्कनमा जे गिलाव, औ ईंट धरिन।
कबहूँ तुम उनहीं ठोरिऊँ, कइत निहरत्या है।
रोटिब भरपेट दिहा की, भूखन मरबउत्या है।।"

'सैफू' जी के काव्य में समाज व्यवस्था व प्रकृति का सामंजस्य उद्घाटित हुआ है। मानव संस्कृति की डगमागती अवस्था और मानवता की गरिमा को खंडित होते हुए देखा है। कुंठा, विनाश, घूसखोरी, स्वार्थपरता, भाई–भतीजावाद व बेकारी, पारिवारिक जीवन को रिसते व छीजते देखा है। मनुष्य में आदर्श व उच्च जीवन मूल्यों का ह्रास, समाज, चोरबाजारी, सांप्रदायिकता, वर्ग संघर्ष, जातिवाद, आर्थिक असंतुलन, निम्न वर्ग का शोषण, अन्न का अभाव, महंगाई आदि समस्याओं को गहरे रूप में आत्मसात् कर काव्य के रूप में रूपायित किया है। मानवीय संवेदनशील स्थितियों ने कवि सैफू की संवेदना को झकझोर कर रख दिया है। अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सैफू जी ने अपने समय के समाज में व्याप्त समस्त विद्रूपताओं का मानवीय संवेदना के साथ यथार्थ रूप में कविताओं में बखूबी अंकन किया है, जिनमें कवि की सामाजिक चेतना परिलक्षित हुई है।

4.4.2 डॉ. अमोल बटरोही

परंपरा की एक व्यापक अवधारणा है। इसका शाब्दिक अर्थ है– बिना व्यवधान के शृंखला रूप में जारी रहना, अर्थात परंपरा का अर्थ है किसी विषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित होना। इसे एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने का क्रम कहा जा सकता है, किंतु कोई भी पीढ़ी हूबहू दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित नहीं करती है। उसमें कुछ न कुछ घटा या बढ़ा दिया जाता है। परंपरा एक जीवंत प्रक्रिया है जो आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "परंपरा का अर्थ विशुद्ध अतीत नहीं है, बल्कि एक निरंतर गतिशील जीवंत प्रक्रिया है। उससे हमें जो कुछ मिलता है, उस पर खड़ा होकर आगे के लिए कदम उठाते हैं।" लेकिन परंपरा शब्द का व्यवहार में प्रयोग प्रायः रूढ़ि के अर्थ में किया जाता है। उसके अर्थ को संकुचित कर दिया जाता है। परंपरा में केवल परिवर्तन की संभावना ही नहीं रहती बल्कि परिवर्तन की एक निरंतर प्रक्रिया चलती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में कहा जा सकता है–

"परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो
उसमें बहुत कुछ है,
जो जीवित है,
जीवनदायक है,
जैसे भी हो
ध्वंस से बचा रखने लायक है?"

परंपरा एक परिवर्तनशील और काल सापेक्ष प्रक्रिया है तो आधुनिकता को समसामयिक बोध का माना जाता है। आधुनिकता का अर्थ है– अधुनातन या इस समय जो कुछ है वह आधुनिक है लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने आधुनिकता के तीन लक्षण बताए हैं– ऐतिहासिक दृष्टि, इसी दुनिया में मनुष्य को सब प्रकार की विधियों और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह और व्यक्ति मानव के स्थान पर समष्टि मानव समाज की कल्याण कामना।

आधुनिकता एक सोच व विचार है जो व्यक्ति को दुनिया के प्रति जागरूक करने, मानवीय दृष्टिकोण से जीने का रास्ता दिखलाती है। प्राचीन परंपराओं तथा रूढ़िवादिता का त्याग करके वर्तमान समय में उत्पन्न संसाधन एवं जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक शैली व विचारधाराओं पर आधारित जीवन शैली अपनाना आधुनिकता कहलाती है। रामधारी सिंह दिनकर ने आधुनिकता को परिभाषित करते हुए लिखा है– "आधुनिकता एक प्रक्रिया का नाम है, यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है, यह प्रक्रिया नैतिकता, उदारता बरतने की प्रक्रिया है, यह प्रक्रिया बुद्धिवादी बनने की प्रक्रिया है।"

डॉ. अमोल बटरोही परंपरा को दो अलग–अलग रूपों में नहीं बल्कि एक ही प्रक्रिया के दो हिस्सों के रूप में देखते हैं और अपनी परंपरा में जाकर आधुनिकता को परिभाषित करने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में वे कभी जाति, वर्ग और लिंग के सवालों से टकराते हैं और कभी अपनी रचनाओं में अपना आत्मान्वेषण करते हैं।

डॉ. अमोल बटरोही के व्यक्तित्व के निर्माण में परंपरागत जीवन पद्धति और आधुनिक ज्ञान, विज्ञान दोनों की महती भूमिका रही है। कुल संस्कार से पारंपरिक ब्राह्मण होते हुए भी अपने व्यक्तित्व व कृतित्व में पूरी तरह आधुनिकतावादी हैं। उनके व्यक्तित्व पर परिवार द्वारा प्रदत्त पारंपरिक पूजा–पाठ, नेम–व्रत, भजन–कीर्तन का प्रभाव था तो दूसरी ओर रूढ़ियों का विरोध जो उनके बचपन में किसी अछूत के घर का सत्यनारायण की कथा का प्रसाद ग्रहण करने में परिलक्षित होता है। बाद में यही द्वंद्व और उनकी पुनर्व्याख्या के रूप में उनके काव्य में दिखाई देता है। ब्राह्मण कुलोत्पन्न व उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण एक तरफ रूढ़िवादी ढकोसलों की भरपूर समझ है तो दूसरी ओर उसे उकेरने की नजर भी उनके पास है। बटरोही का दृष्टिकोण उदारवादी व समाजवादी है जिसका प्रभाव उनके साहित्य पर व्यापक रूप में पड़ा। ब्राह्मणवादी अनैतिक मूल्यों और अंधविश्वासों, रूढ़िगत संस्कारों पर अप्रत्यक्ष प्रहार करते हैं, जैसे–

"ऊ दिन बबऊ के बरखी मा बाह्मन खबाई यै।
नाती दुइ ठे भीतर कोइया मुर्रत परे रहें।
भागमनि उ लकिउने सत्ताह सुनाये रहे।।

* * * *

बिटिया के काजे मा बुढ़ऊ झोरी फाँदि लिहिन
बेटबा के दरकी ऊँ झोरा भरि के लिहे रहें।"

कवि अमोल बटरोही समाज में प्रचलित ढकोसलों, रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि–

"सबइ दिन चढ़ायेऽ तूँ सिन्नी, गुर नरियर लखहारे नेबाला।
देउ के बिगाड़ भए, देहतहई, पितरहई करबाए कीन्हें उपास–घास।
खाय के तोहाँर होम चकुला भे ऊँ, कानि नहीं मानिन तऊ,
पीरा नहीं समझिन, करत रहे मनमानी।"

धर्मनिरपेक्षता आधुनिक समय की एक प्रमुख धरोहर मानी जाती है। देश में जहां जातिगत, धार्मिक विद्वेष के कारण आज भी लोग कट–मर रहे हैं। उसी समय में कवि

बटरोही जी अपने काव्य के माध्यम से सभी देशवासियों को चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, उसे भारतवर्ष का पुत्र घोषित कर आपसी भाईचारे का संदेश दे रहे हैं। बटरोही के काव्य की विशेषता रही है कि परंपरा और आधुनिकता को पृथक न मानते हुए उनके द्वंद्व के मध्य अपनी दिशा तय करते हैं। परंपरा के दाएं भाग को स्वीकार कर अपने–अपने आत्मविश्वास द्वारा नए मार्ग का अन्वेषण करते हैं, जैसे–

"छोड़ा अब बाहिरी देखावा।
दुनिया माँ सब धरमन कइ जरि मनई के धरम अपनावा।

इस्सर सबका पैदा कीन्हिसि।
सब कइ एकइ देह बनाइसि।।
सोचई कइ सकती भीतर दइ
नीकी नागी राह देखाइसि।।"

कवि समाज की पारंपरिक असमानता, छुआछूत, ऊंच–नीच के भेदभाव को मिटाकर समानता के साथ मेल–जोल से रहने की बात कहते हैं जो आधुनिकतावादी विचारधारा के रूप में परिलक्षित होती है, जैसे–

"एहँ दुनिया में बड़ा छोट को,
सब तऊ एक बाप के लरिका।
निचिऊ मन माँ कोर होइ जो,
तूँ ओका कूरा–कस फटिका।"

परंपरा के रूप में जो आश्रम व वर्ण व्यवस्था का जाल फैला है, जो संस्कृति के रूप में परिव्याप्त है, उसका गुणगान तो करते हैं, लेकिन ज्ञान–विज्ञान पर बल देते हुए सबको जाग्रत करते हैं, जैसे–

"आश्रम–बरम जहाँ के दुनियाँ भरमा धूम मचाइसि।
मानिन मन जे किहिसि कबादे दर–दर गड्डा खाइसि।
सुन्नि सिखाई, कइ जहाँ पुरब में आखी सब कइ खोलिन।
अनुवांशिकी खोजि जहाँ अब दुनिया का झकझोरिन।।"

कवि अमोल बटरोही समाज में परंपरा से जो भेदभाव हम–हमार, तुम–तोहार का था, उसका पुरजोर विरोध करते हैं। समाज परंपरागत इन्हीं रूढ़ियों के कारण अलग–थलग रहा, जिससे समाज में वैमनस्यता फैली हुई है। लोग सौहार्दपूर्वक जीवन–यापन नहीं करते हैं। यह देखकर कवि बटरोही ने आधुनिक विचारों से ओतप्रोत हो समाज को जागरूक करने का प्रयास किया है। जैसे–

"छींटा न बीज–हियाँ, हम–हमार, तुम–तोहार।
बोबा न, सामवेद के संसार बोइ दे।"

ऐसा नहीं है कि बटरोही जी आधुनिकता के अंधे मोह में फंसकर अपनी ग्राम्य एवं महत्वपूर्ण परंपराओं को पूर्णतः त्याज्य समझते थे, बल्कि आवश्यकतानुसार कहीं–कहीं परंपरा को प्रश्रय देते हैं तो कहीं आधुनिकता पर बल देते हैं क्योंकि कोई समाज पूर्णतः आधुनिक होकर नहीं रह सकता। कवि ने परंपरा और अंधविश्वास का भी ध्यान रखने का प्रयास किया है क्योंकि परंपरा ही आधुनिकता का पायदान है जिसे सीढ़ी बनाकर आधुनिकता आगे बढ़ी है।

अतः स्पष्ट होता है कि कवि बटरोही जी अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में कई महत्वपूर्ण बदलाव के प्रयास किए हैं और सफल भी हुए हैं। इन सभी प्रयासों के मूल में भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के साथ उन्हें अपनी जमीन से जोड़े रखने की भावना कार्य कर रही थी। इस कारण कवि ने आधुनिक विचारधारा को संप्रेषित करने के साथ–साथ अपनी मूल परंपराओं को संरक्षित व पोषित करने का भी कार्य किया है। साथ ही अंधी आधुनिकता की दौड़ में अपनी मूलभूत परंपराओं और मूल्यों को अनदेखा करने वालों को सीख भी दी है–

"चाँद पर बाद में जाना ओ जमाने वालो।
पहले धरती पे तो चलने का तरीका सीखो।।" –अख्तर कानपुरी

4.4.3 शिवशंकर मिश्र 'सरस'

समाज व्यक्तियों अथवा परिवारों का एक ऐसा संगठन है जिसमें स्वहित की कामना से तथा उद्देश्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति अथवा परिवार स्वेच्छापूर्वक सहयोग देते हैं। समाजशास्त्रीय तथ्य है कि व्यक्ति समाज की इकाई है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज में रहकर ही अपनी वास्तविक प्रकृति का विकास करता है। सामाजिक क्रियाओं के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है। सामाजिक संबंधों द्वारा अपनी चेतना को अभिव्यक्त करता है। समाज को परिभाषित करते हुए प्रो. राइट ने लिखा है कि "मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जा सकता, अपितु समूह के अंतर्गत व्यक्तियों के संबंधों की व्याख्या का नाम समाज है।" समाज के लिए शर्त है कि अनेक व्यक्ति एक साथ इकट्ठे रहते हों, कुछ स्थायी संबंध स्थापित हो जो उन्हें एक इकाई का रूप प्रदान करे तथा आपसी संबंध स्वेच्छा से स्थापित किए गए हों। अतः समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसमें लोग आपस में मिलजुल कर आपसी सौहार्द के साथ स्थायी संबंध स्थापित कर निवास करते हों।

चेतना शब्द बुद्धि, ज्ञान, मनोवृत्ति, स्मृति आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी भाषा में चेतना का समानार्थी शब्द 'Conscious' है। मस्तिष्क की जाग्रत अवस्था किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी अथवा विचार ही चेतना है। चेतना को परिभाषित करना संभव नहीं है क्योंकि चेतना केवल अनुभव की वस्तु है। चेतना को जैसा हम समझते या अनुभव करते हैं, बिना किसी उलझन के दूसरों से अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं।

चेतना को परिभाषित करने का प्रयास करते हुए धीरेन्द्र वर्मा ने परिभाषा दी कि "चेतना मानस की प्रमुख विशेषता है, अर्थात वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों का ज्ञान।" डॉ. रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार– "चेतना में नाना भांति की मानसिक क्रियाएं शामिल हैं, जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधारणा, चिन्तन, अनुभूति और संकल्प। इस तरह यह मन, बुद्धि, अहंकार का संश्लेष है। इसे 'चित्ति' भी कह सकते हैं। चेतना एक चिंतनात्मक अभिवृत्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति तथा विभिन्न कोटि की स्पष्टता तथा जटिलता वाले पर्यावरण के प्रति जागरूक करता है।"

चेतना मानव मस्तिष्क का एक ऐसा गुणधर्म है, जिसके द्वारा हमें अपने पास की घटनाओं का बोध होता है। चेतना के लिए केवल मस्तिष्क ही नहीं अपितु पदार्थ व वस्तुओं का होना भी आवश्यक है, जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि चेतना मानव में ऐसी प्रक्रिया शक्ति है जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं

कर सकता है। इसी ज्ञान शक्ति को विचार शक्ति कहा जाता है। चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियां होती हैं।

चेतना का समाज से गहरा संबंध है, चेतना सामाजिक वातावरण के संपर्क से विकसित होती है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता, औचित्य और व्यवहार कुशलता प्राप्त करता है। यह चेतना का विकास कहा जाता है। विकास की चरम सीमा पर चेतना निज स्वतंत्रता की अनुभूति करती है। वह सामाजिक बातों को प्रभावित करती है।

जिस तरह से द्वंद्वात्मकता प्रकृति का सत्य है, उसी तरह परिवर्तन सामाजिक चेतना का सत्य है। मनुष्य समय के साथ अपनी सामाजिक मान्यताओं, प्रविधियों, परंपराओं और पद्धतियों का समय सापेक्ष मूल्यांकन करता रहता है। जैसे–जैसे उसके मस्तिष्क का विकास होता है, उसकी चिंतन प्रक्रिया में तार्किकता के तत्व बढ़ते जाते हैं, और घटनाओं के संबंध में कार्य–कारण पद्धति का सूत्र पकड़ने लगता है जिससे मूल्यांकन की पद्धति लोकतांत्रिक और पारदर्शी हो जाती है। इसी प्रक्रिया में समाज की सड़ी–गली रूढ़ियों व विचारों का त्याग कर नये विचारों को अपनाता है। चेतना में परिवर्तन की इसी विशेषता के चलते सामाजिक चेतना में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

सामाजिक चेतना केवल समझ ही नहीं प्रदान करती बल्कि सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है। हमारे कुण्ठा से ग्रस्त जीवन में आशा व विश्वास जाग्रत कर उन्हें एक सूत्र में पिरोना सामाजिक चेतना का कार्य है। सामाजिक चेतना केवल अर्थव्यवस्था पर निर्भर नहीं करती बल्कि विकसित हुए समाज के आर्थिक ढांचे को भी प्रभावित करती है। व्यक्ति की सामाजिक चेतना विकासशील है, वह प्रत्येक युग के साथ बदलती रहती है।

कवि 'सरस' ग्रामीण भावबोध के युवा पीढ़ी के कवि हैं। इनका पालन–पोषण ग्रामीण समाज के मध्य हुआ, ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने के कारण परंपराओं का मोह स्वाभाविक है। लेकिन रूढ़ियों के विरोधी हैं। वे मानते हैं जो हमारी पुरातन परंपराएं हैं, समाज के लिए अत्यावश्यक हैं। जिससे समाज एकजुट होता है, नैतिक मूल्यों का विकास होता है लेकिन पुरातन रूढ़ियों को नष्ट किया जाना चाहिए जिससे नवीन जीवन मूल्यों का विकास होगा। उन्होंने तत्कालीन समय तक रूढ़ियों में जीवन बिताया। रूढ़ियों के कारण जो दुःख, शोषण हुआ वही सही लगता रहा लेकिन अब उन रूढ़ियों से निदान मिलना चाहिए। वे कहते हैं कि–

"मन रहा परेमी, पइ न मिला परेमी कोऊ,
निबहैं हमरौ नेम, मिला न नेमी कोऊ।
कुदिन से जूझत भा अतना, के अब तक सुदिन ठीक लागइ।
हमका धउकाहे आपन सगला दुक्ख नीक लागइ।।"

कवि चाहता है कि समतामूलक समाज निर्मित हो, जहां वर्ग भेद, धर्म, जाति, भाषा, ऊंच–नीच का कोई स्थान न हो। समाज में जो अंधाधुंध मचा हुआ है, ताकतवर लोगों द्वारा समाज में अत्याचार और शोषण का बोलबाला है। रोज प्रताड़ित किया जाता है। चारों तरफ समाज में अराजकता फैली है, समाज के लिए आवश्यक आपसी सौहार्द का ह्रास हो गया है। इसलिए कवि समाज के लोगों को अपनी

कविता के माध्यम से सचेत करता है जिससे स्वस्थ सौहार्दपूर्ण समतामूलक समाज का विकास हो सके–

"मनई अन्धेरि करै देखा अँखिमुन्द,
आपुसु माँ गोरुअन अस मचिगा खुरखुन्द,
काज कहाँ लाग नहीं, होइगा मटिमगरा।
एँह अंधाधुंध माँ सँघरा हो सँघरा।
पानिउ भर मिलइ कहऊँ, लाइन मा लागा,
तूँ पी लेऽ आन का धँघोय देऽ,
होय जउन होय देऽ.. ।।

कवि सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करना ही रचना का उद्देश्य मानता है। सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्थाओं, धार्मिक अंधविश्वासों पर व्यंग्य करते हुए सत्ता, व्यवस्था और पूंजीवाद के प्रति आक्रोशित व सामाजिक विषमता भी बढ़ती खाई से दुखी है। उन्होंने देखा कि तत्कालीन समाज में शोषित वर्ग अभावों की चक्की में पिस रहा है। किसान आत्महत्या करने को मजबूर है लेकिन पूंजीपति और सत्ता की गठजोड़ ने समाज को विच्छिन्न कर दिया है। पूंजीपति और सत्ताधारी लोग आम नागरिक की कमाई से भोग–विलास की वस्तुएं जुटाने में लगे हैं। ये लोग दोहरी जिंदगी जी रहे हैं। बाहर से खादी पहनते हैं पर अंदर से कसाई हैं।

"जनता अललानि भुखानि परी अउ सोबति हइ सरकार,
अपने–अपने घरे ख़जाना ढ़ोबति हइ सरकार
को सुनि लेय गोहारि कि देस गुलामिउ से घिनहा–
दुहि–दुहि जनता का पुनि–पुनि नोबित हइ सरकार।

कवि सत्ता के दलालों के शोषण को देखकर इतना दुखी है कि लोगों को सत्ता के दलालों को अपदस्थ करने के लिए आह्वान करता है। कहता है कि अब बहुत हुआ शोषण, अब सत्ता पलटने का समय आ गया है। इस बार अपना नेता सोच–समझकर चुना जाना है। नवीन की ओर बढ़ने के लिए कवि समाज में सामाजिक चेतना का प्रसार करता है।

"अबकी सोच समझि के ठप्पा मारा जई भला।
राजा बदलै का है, मुकुट उतारा जई भला।।

अतने दिन तमासा कीन्हेऽ, खेलत रहेऽ कबड्डी।
लाजि न लागि न दया, देस के चूसेऽ हड्डी–हड्डी।।

करा विधानसभा मा होहा– बाहेर चोरी डाका।
देस के सब पूँजी पी लीन्हेऽ, जनता जानै राका।।"

निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि कवि शिवशंकर मिश्र 'सरस' ने सीधी, सरल, आम जनता की भाषा में आम आदमियों की समस्याओं को इतनी गहनता व सापेक्ष दृष्टि से रुपायित किया कि उनकी सामाजिक चेतना मुखर हो उठी है। उनकी कविता व्यक्तिपरक न रहकर हर उस समाज की कविता बन गई जिसके भीतर मध्यवर्ग, किसान तथा अन्य शोषित लोगों के घुटन की कसमसाहट अनुभव होती है। सरस का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी पूर्ण चेतना से पूर्ण है। इन्होंने निर्भीकतापूर्वक समाज सुधार का

प्रयास किया है। सदियों के अनीति, अत्याचारों एवं दोषों पर प्रबल प्रहार करते हुए समाज के लोगों को दिशा–निर्देश देने का प्रयास किया है। निश्चय ही ऐसा कर कवि ने अपने गंभीर दायित्व का निर्वहन किया। अतः हम कह सकते हैं कि कवि सरस वास्तव में एक मानवतावादी, समाज सुधारक व सामाजिक चेतना के कवि हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

6. सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' ने अपनी रचनाओं में किस तथ्य को रूपायित किया है?
   (क) राजनीतिक भ्रष्टाचार (ख) बाल–विवाह
   (ग) शोषण (घ) उपरोक्त सभी
7. 'आधुनिकता एक प्रक्रिया का नाम है।' यह परिभाषा निम्न में से किसने दी?
   (क) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ख) रामचंद्र शुक्ल
   (ग) रामधारी सिंह 'दिनकर' (घ) इनमें से कोई नहीं
8. चेतना शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
   (क) बुद्धि (ख) ज्ञान
   (ग) स्मृति (घ) उपरोक्त सभी

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (क)
3. (ख) 4. (क)
5. (क) 6. (घ)
7. (ग) 8. (घ)

4.6 सारांश

बघेली भाषा क्षेत्र को बघेलखंड के नाम से जाना जाता है। इस प्रदेश का उल्लेख प्राचीन समय से मिलता है। रामायण काल में इस भू–भाग को कौशल प्रांत या महाकौशल के नाम से जाना जाता था। 11वीं–12वीं शताब्दी के लगभग आल्हलवाड़ा पाटन के सोलंकी राजपूतों की शाखा के व्याघ्रदेव बघेल ने यहां के शासक को पराजित करके बघेल राजवंश की नींव डाली तब से देसी राज्यों के विलीन होने तक बघेलखंड में बघेल राजपूतों द्वारा शासन किया जाता रहा है। बघेल वंश के नाम से इस भू–भाग को बघेलखंड के नाम से जाना जाने लगा तथा बघेल वंश द्वारा शासित भूभाग में बोली जाने वाली भाषा को बघेली के नाम से जाना जाता है।

किसी भी बोली या भाषा के साहित्य का विकास क्रमिक रूप में होता है। उसी प्रकार बघेली बोली साहित्य का विकास भी क्रमिक रूप में हुआ है। प्रारम्भ में बघेली भाषा का साहित्य लोक गीतों, लोक कथाओं, संस्कार गीतों, लोकोक्तियों, मुहावरों, कहानियों, मुकरियों, किस्से–कहानियों के रूप में मौखिक रूप में प्राप्त होता है।

मौखिक होने के कारण उनके स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है जिससे हमें बघेली बोली के प्रारम्भिक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता है।

हिन्दी भाषा के पूर्वी प्रभाग की रीवा, सीधी, सतना, शहडोल क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा को बघेली भाषा कहा जाता है, जिसके मूर्धन्य कवि सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' जी हैं जिन्होंने बघेली काव्य परंपरा को नए आयाम दिए व एक सुदृढ़ काव्य परंपरा प्रदान की जिसमें देश व समाज की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना चित्रित हुई है। समाज में पनपी विकृतियों और समाज की रूढ़िगत विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। सूखा, बाढ़, पर्यावरण हानि आदि से जूझता किसान, दहेज प्रथा, बेरोजगारी, बाल–विवाह, जनसंख्या वृद्धि, बढ़ती महंगाई आदि समस्याओं व बुराइयों से मुक्ति की छटपटाहट को बघेली भाषा साहित्य का अंग बनाया। भारतीय परंपरा से प्रभावित भारत की प्रगतिशील सामाजिक परिस्थितियों, राष्ट्रीय चेतना व मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रसारित किया व नारी के प्रति श्रद्धा व सम्मान व्यक्त किया।

बटरोही जी का कार्यक्षेत्र शिक्षा जगत रहा है। शिक्षा समाप्ति के बाद अशासकीय शहीद केदारनाथ महाविद्यालय मउगंज के प्राचार्य पद पर 13 जुलाई, 1966 को नियुक्त हुए लेकिन अशासकीय होने के कारण कुछ दिन उपरांत पद त्याग कर 10 अक्टूबर, 1966 को ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा में अंशकालिक अंग्रेजी प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। स्थायी सेवा के लिए प्रयत्नशील रहने के कारण आपने उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अंग्रेजी व्याख्यता के रूप में स्थायी नियुक्ति प्राप्त की। 17 सितंबर, 2003 से 30 जून, 2005 तक जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य किया तथा इसी पद से सेवानिवृत्त हुए।

शिवशंकर मिश्र 'सरस जी' बघेली कविता के युवा पीढ़ी के कवि हैं। जो जमाने के समय व सच को समझदारी से चित्रित करते हैं। इनकी कविताओं में सौन्दर्य के नए–नए आयाम हैं। सरस जी ने अपने समय के यथार्थ को उसी रूप में नहीं देखा बल्कि यथार्थ को विविध आयामों से देखने के पक्षधर हैं। इनकी कविता में जीवन के विविध आयाम उद्घाटित होते हैं। व्यंग्य का करारापन बहुत प्रभावी है। इन्होंने अपनी कविता में व्यंग्य का मस्ती में प्रयोग किया है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **मिश्रित** : मिला–जुला, कई वस्तुओं का समावेश।
- **अनवरत** : बिना रुके, लगातार।
- **सगली** : संपूर्ण।
- **चिपोंग** : मूर्ख।
- **दइउ** : ईश्वर।
- **मरबउत्या** : मरवाना।
- **डाँक** : पार हो जाना।
- **करऊँटा** : करवट लेना।
- **सथरी** : बिछावन।
- **जहान** : संसार।

- **परती** : बंजर।
- **बोकइयां** : घुटनों के बल चलना।
- **फटिका** : उड़ाना।
- **बिहान** : सवेरा।
- **लोन** : नमक।
- **खोरि** : गली।
- **अललानि** : व्याकुल।
- **खुरखुन्द** : अव्यवस्था फैलाना।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. बघेली भाषा के प्रमुख क्षेत्रों के नाम लिखिए।
2. बघेली भाषा के उद्‌भव व विकास पर प्रकाश डालिए।
3. सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के व्यक्तित्व पर टिप्पणी लिखिए।
4. डॉ. अमोल बटरोही के अप्रकाशित काव्य संग्रहों के नाम लिखिए।
5. 'देखा रे! होई रहा बिहान' के संदर्भ में शिवशंकर मिश्र 'सरस' के सामाजिक जागरण पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बघेली भाषा की व्याकरिणक विशेषताएं बताते हुए बघेली साहित्य के विकास का सम्यक परिचय दीजिए।
2. सैफुद्दीन सिद्दीकी 'सैफू' के काव्य में सामाजिक यथार्थ व्यक्त हुआ है, स्पष्ट कीजिए।
3. डॉ. अमोल बटरोही आधुनिकता व परपंरा के द्वंद्व के कवि हैं। स्पष्ट कीजिए।
4. शिवशंकर मिश्र 'सरस' सामाजिक चेतना के कवि हैं। स्पष्ट कीजिए।
5. निम्न पठित कवियों के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डालिए–

   (क) डॉ. अमोल बटरोही, (ख) शिवशंकर मिश्र 'सरस'

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डा. भगवती प्रसाद शुक्ल, 'बघेली भाषा और साहित्य'।
2. गोमती प्रसाद विकल, 'बघेली संस्कृति व साहित्य'।
3. प्रो. कमला प्रसाद, 'सोन और रेवा के स्वर'।
4. प्रो. सेवा राम त्रिपाठी, 'बघेली : अंतरंग व बहिरंग'
5. डा. सूर्यभान सिंह, 'बघेली व्याकरण'

इकाई 4 भाग (स) : बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं बुंदेली भाषा के कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं सीमा क्षेत्र
  4.2.1 बुंदेली भाषा और उसकी उपबोलियों का परिचय
  4.2.2 बुंदेली भाषा का इतिहास
  4.2.3 बुंदेली भाषा : सीमा क्षेत्र
4.3 बुंदेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या
  4.3.1 ईसुरी
  4.3.2 जगनिक
  4.3.3 माधव शुक्ल 'मनोज'
  4.3.4 संतोष सिंह बुंदेला
4.4 बुंदेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन
  4.4.2 जगनिक
  4.4.3 माधव शुक्ल 'मनोज'
  4.4.4 संतोष सिंह बुंदेला
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

हिंदी साहित्य में लोक साहित्य इतना विशाल होता है कि उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ शामिल रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप होता है। हर व्यक्ति लोक से जुड़ रहता है। उसकी अपनी भाषा, रीतियां, परंपराएं और विश्वास लोक से ही ग्रहण किए जाते हैं।

भाषा न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम होती है बल्कि यह संस्कृति की संवाहक भी होती हैं तथा समाज की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होती है। जन–जन तक ज्ञान का प्रसार और ज्ञान को अर्थपूर्ण बनाने का काम भाषा का ही होता है। सीमित क्षेत्र (अंचल विशेष) में लोगों के बीच विचारों के आदान–प्रदान के माध्यम को बोली कहते हैं। बोली में सहजता होती है– जीवन के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करने की इसकी शक्ति असीम होती है। बोली का क्षेत्र सीमित होता है और यह परिवर्तनशील होती है। तभी कहा गया है कि "चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।" बुंदेली भी एक बोली है जो एक निश्चित क्षेत्र में बोली जाती है।

इस इकाई के अंतर्गत बुंदेली भाषा और बुंदेली भाषा की उपबोलियों का परिचय, इतिहास तथा सीमा क्षेत्र का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। साथ में बुंदेली भाषा के

कवि ईसुरी, जगनिक, माधव शुक्ल 'मनोज' तथा संतोष सिंह बुंदेला का जीवन परिचय और इनकी रचनाओं से भी अवगत कराया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बुंदेली भाषा के महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत हो पाएंगे;
- बुंदेली भाषा की उपबोलियों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- बुंदेली भाषा साहित्य के इतिहास तथा सीमा क्षेत्र को जान पाएंगे;
- बुंदेली साहित्य के कवियों के जीवन परिचय, उनके साहित्यिक योगदान एवं आलोचनात्मक विवेचन को समझ पाएंगे।

4.2 बुंदेली भाषा : परिचय, इतिहास एवं सीमा क्षेत्र

बुंदेली भाषा एवं उसकी उपबोलियों का परिचय, इतिहास एवं सीमा क्षेत्र को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.2.1 बुंदेली भाषा और उसकी उपबोलियों का परिचय

किसी भी भाषा के विकास के मूल में उस भाषा का लचीलापन होता है। जब भाषा एक स्थान से दूसरे स्थान में यात्रा करती है तो केवल उसका क्षेत्र ही व्यापक नहीं होता है बल्कि वह भाषा पहले से ज्यादा समृद्ध भी हो जाती है। दूसरी भाषा के शब्दों को अपने में समाहित कर लेती है और अपनी भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा में हस्तांतरित कर उसे भी समृद्ध बना देती है। भाषा के मामले में यह आदान–प्रदान चलता रहता है। इसे ही भाषा का लचीलापन कहा जाता है। भाषा के मसले में यह बात भी सर्वविदित है कि किसी समय में जो 'बोली' थीं, उस बोली को साहित्य के रूप में संरक्षित करने का प्रयास हुआ तब उसका फैलाव भी संभव हो सका। वह 'बोली' भाषा का रूप धारण कर लेती है। कोई भाषा 'भाषा' के रूप स्थापित होने के बावजूद कालान्तर में वह 'बोली' के रूप में सिमट जाती है। ऐसा तब होता है जब उस विशेष भाषा में साहित्य रचे जाने की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। एक समय 'अवधी' और ब्रज की तूती बोलती थी। 'रामचरितमानस' की रचना अवधी में हुई थी। उधर सूरसागर और 'पद्मावत' जैसी प्रसिद्ध रचना की भाषा ब्रज थी। लेकिन कालान्तर में वह 'भाषा' के गौरव खोती है और बोली के रूप में अपना आकार ग्रहण कर लेती है। कई बोलियों का साहित्य बाद में इतने उत्कृष्ट रूप में सामने आता है कि वह 'बोली' भाषा के रूप में पहचान बना लेती है। बुंदेली भाषा ने भी एक समय में 'बोली' के रूप में अपना अस्तित्व बनाया था। बाद में इस 'बोली' में इतना विपुल साहित्य प्रकाश में आने लगा कि इसे भाषा के रूप में स्वीकृति मिल गई। बुंदेली पश्चिमी हिन्दी की उप–बोली के रूप में स्वीकृत है।

बुंदेली भाषा के उद्भव को लेकर विभिन्न विद्वानों में हमेशा से मतवैविध्य रहा है। किसी ने बुंदेली को बोली माना, किसी ने इसे 'भाषा' या 'विभाषा' माना, किसी ने इसे

उप बोली के रूप में स्वीकार किया है। धीरेन्द्र वर्मा ने बुंदेली भाषा के उद्‌गम को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "बुंदेली को ब्रज का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है। दोनों में अंतर शब्द रचना की अपेक्षा ध्वनियों में अधिक है। वास्तव में बुंदेली को हिन्दी की अलग बोली न मानकर ब्रज की दक्षिणी उपबोली कहा जा सकता है।" इसी तरह प्रख्यात भाषाविद् हरदेव बाहरी ने माना है कि प्राकृत के उत्तरवर्ती रूप से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्‌भव हुआ है। पश्चिमी हिन्दी का विकास उत्तर मध्यकालीन शौरसेनी प्राकृति माना है और आमीरी, टक्क और पैशासी भाषा के प्रभाव को स्वीकार किया है।

बुंदेलखंडी भाषा के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। इन क्षेत्रों में बुंदेली से मिलती–जुलती भाषा का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कई भाषाओं में बुंदेली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। जातीय आधार पर बुंदेली की सात उपबोलियां मानी गई है।

1. **बनाफरी**– यह उपबोली बांदा तथा उसके आस–पास के इलाकों में बोली जाती है। बनाफरी उपबोली का रूप 'आल्हखंड' में देखा जा सकता है।
2. **भदावरी**– ब्रज और बुंदेली के सम्मिश्रण से बनी बोली को भदावरी कहा गया है। मुरैना से आगरा के दक्षिणी भाग तक भदावरी का प्रयोग होता है। यह बोली विशेषकर तोमर राजपूतों द्वारा बोली जाने के कारण तोमरगढ़ी के नाम से भी जानी जाती है। कन्नौजी मिश्रित बुंदेली तथा खड़ी बोली मिश्रित बुंदेली को भी भदावरी का एक रूप माना गया है।
3. **लोधान्ती या राठौरी**– जालौन जिले के उरई, हमीरपुर जिले के पश्चिमोत्तर हिस्से, राठ तहसील में बुंदेली की एक उपबोली प्रचलित है जो लोधान्ती या राठौरी के नाम से जानी जाती है। इस बोली को राठौर के राजपूत बोलते थे। इस कारण इस बोली का नाम राठौरी भी है।
4. **कुन्द्री**– केन नदी के दोनों ओर तटवर्ती इलाकों में बोली जाने वाली बोली को कुन्द्री कहा जाता है। इस बोली में बुंदेली का अनूठा संगम है।
5. **निभट्‌टा**– निभट्‌टा बोली बुंदेली की एक उपबोली मानी गई है। यह बोली जालौन जिले के पश्चिमोत्तर सीमावर्ती इलाके में बहुतायत से बोली जाने वाली बुंदेली मिश्रित बोली का एक रूप है। इस बोली की एक विशेषता यह भी है कि बुंदेली के अतिरिक्त इसमें बघेली और कन्नौजी का प्रभाव है। इस कारण 'निभट्‌टा' को पहचानने में किसी तरह की परेशानी नहीं होती है। 'निभट्‌टा' बड़ी आसानी से पकड़ में आ जाती है। तीन भाषाओं के सम्मिश्रण से बनी यह बोली थोड़ी अजीब होते हुए भी खूब प्रचलित है।
6. **तिरहारी**– मुख्यतः बुन्देली और बघेली के सम्मिश्रण से जो बोली अस्तित्व में आयी, उसे 'तिरहारी' के नाम से जाना जाता है। जालौन, हमीरपुर, बांदा, फतेहपुर और कानपुर के आसपास के इलाके में 'तिरहारी' बोली प्रचलित है।
7. **पँवारी**– दतिया जिले के आस–पास बोली जाने वाली बोली 'पँवारी' कहलाती है। परमार और पँवार राजपूतों के द्वारा बोली जाने के कारण इसे 'पँवारी' नाम से अभिहित किया गया है। ग्वालियर और माण्डेर के कुछ इलाके में 'पँवारी' का प्रचलन है।

4.2.2 बुंदेली भाषा का इतिहास

बुंदेली भाषा का समृद्ध इतिहास है। यह भाषा शौरसेनी अपभ्रंश के 'मध्यदेशीय' से विकसित पश्चिमी हिन्दी की एक प्रमुख बोली है। यह तथ्य सर्वविदित है कि हिन्दी की लोकभाषाओं का उदय मध्यदेशीय शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। शौरसेनी अपभ्रंश से अनेक लोकभाषाओं का जन्म हुआ। ब्रजभाषा, खड़ी बोली और बुंदेली का मूल आधार शौरसेनी अपभ्रंश को ही माना गया है। दसवीं सदी से बुंदेली भाषा का साहित्य प्रकाश में आया। इसी के आसपास बुंदेली का उद्‌भव हुआ था। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि "बुंदेली का उद्‌भव अन्य लोक भाषाओं के उदय के डेढ़–दो सौ वर्ष पहले ही हो चुका था, इसलिए चंदेल काल में बुंदेली लोक–काव्य की रचना निरंतर होती रही। बुंदेली के संदर्भ में यह तथ्य भी विदित है कि बुंदेली भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के साथ 11वीं–12वीं सदी में विकसित होने लगी थी। स्थानीय बोलियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप मध्यदेशीय भाषा ने बुंदेली भाषा का रूप ग्रहण करना शुरू किया था।

10वीं–11वीं सदी से लेकर अब तक बुंदेली भाषा के स्वरूप में बदलाव होते रहे हैं। इस भाषा का सीमा क्षेत्र भी बदलता रहा है। शुरुआती दौर में बुंदेली की परंपरा मौखिक काव्य रचना से शुरू होती है। मौखिक 'काव्य परंपरा' में जगनिक रचित 'आल्हखंड' का विशेष स्थान रहा। इसे बुंदेली भाषा का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया गया। इस रचना के उपरांत वीर रस प्रधान बुंदेली भाषा में गाथा साहित्य रचा गया। सारंगा–भारंगा की गाथा, ढोला–मारू की गाथा, संत–बसंत की गाथा, सुरहिन की गाथा आदि की समृद्ध परंपरा रही। दसवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं सदी तक बुंदेली भाषा में वीरगाथात्मक काल माना गया। इसी काल में आल्हा की साखियां (राछशै) का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इन साखियों में बुंदेली भाषा का प्रारंभिक रूप विद्यमान है। केशव प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि चंदेल साम्राज्य के अधिकांश भाग में बुंदेली भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के साथ 11वीं और 12वीं सदी में विकसित हो रही थी। बुंदेली एक नई भाषा के रूप में 14वीं सदी तक विकसित होतीं रही और निरंतर नया स्वरूप ग्रहण करती रही। बुंदेली भाषा के कवि जगनिक, छत्रसाल, ठाकुर, ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्याली राम, लाल कवि, अक्षर अनन्य, हरिराम व्यास, ,खेमराज, गौरीशंकर द्विवेदी, श्याम सुन्दर बादल, नर्मदा प्रसाद गुप्त और दुर्गेश सत्यार्थी जैसे कवियों ने बुंदेली भाषा को नई ऊंचाई प्रदान करने में अहम भूमिका निभाई।

चौदहवीं सदी से लेकर 17वीं सदी तक बुंदेली भाषा की प्रतिष्ठा इतनी हो गई थी, कि यह राजभाषा के पद पर आसीन हो गई। छत्रसाल के पन्ना नरेश बुंदेली भाषा में दूसरे राज्यों के राजाओं को पत्र लिखा करते थे। 17वीं और 18वीं सदी में बुंदेली को राजकाज की भाषा के रूप में मान्यता मिल चुकी थी। साहित्य में भी ब्रज के साथ–साथ बुंदेली को भी साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई। बुंदेली काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। और एक तरह से बुंदेली भाषा में साहित्य सृजन की बाढ़ सी आ गई। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बुंदेली भाषा में खूब रचनाएं प्रकाश में आयीं, अंतर यह था कि बुंदेली गद्य साहित्य का उत्थान प्रारंभ हो गया।

4.2.3 बुंदेली भाषा : सीमा क्षेत्र

मध्यभारत का प्राचीन विन्ध्यावही क्षेत्र आज बुंदेलखंड के नाम से जाना है। बुंदेली भाषा केवल इसी क्षेत्र में नहीं वरन इसके आसपास के अनेक इलाकों में बुंदेली भाषा का आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग होता है। यही वजह है कि इस प्राचीन भाषा का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। मोटे तौर पर देखें तो झांसी, सागर, महोबा, दोहम, जालौन, ग्वालियर, मुरैना, विदिशा, जबलपुर, गुना, सिवनी, सागर, छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़, दतिया, ललितपुर, हमीरपुर, सिवनी, छिन्दवाडा, बैतूल, भिण्ड, शिवपुरी क्षेत्र की भाषा को बुंदेली भाषा स्वीकार किया गया है। 'इंडिया : एक रीजनल ज्याग्रफी' पुस्तक में बुंदेलखंड की सीमा को रेखांकित करते हुए बताया गया है कि "वह क्षेत्र जो उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य प्लेटो की श्रेणियों, उत्तर–पश्चिम में चम्बल और दक्षिण–पूर्व में पन्ना–अजयगढ़ श्रेणियों से घिरा हुआ है, बुंदेलखंड के नाम से जाना जाता है। उसमें उत्तर प्रदेश के चार जिले– जालौन, झांसी, हमीरपुर और बांदा तथा मध्य प्रदेश के चार जिले दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर और पन्ना के अलावा उत्तर–पश्चिम में भिण्ड जिले की लहर और ग्वालियर जिले की भाण्डेर तहसीलें भी सम्मिलित हैं।" यह बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि उपरोक्त में बताए गए क्षेत्र भौगोलिक सीमा को दर्शाते हैं लेकिन भाषा को किसी भौगोलिक क्षेत्र में विभाजित करना अनुचित है और एक तरह से किसी भुलावे का शिकार भी हो जाना है। वस्तुतः भाषा किसी भौगोलिक सीमा के भीतर कैद नहीं रहती है। उसकी सीमा समय के साथ–साथ घटती–बढ़ती रहती है। जहां तक बुंदेली भाषा के सीमा क्षेत्र का प्रश्न है, इसका क्षेत्र निरंतर विस्तृत होता गया है।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने बुंदेली भाषा के आधार में बुंदेल सीमा क्षेत्र का जो निर्धारण किया है, बुंदेली भाषा के सीमा क्षेत्र को समझने के लिए वह एक कारगर दस्तावेज की तरह माना जाता है। ग्रियर्सन के अनुसार बुंदेलखंड उत्तर में चम्बल नदी के उस पार मैनपुरी, आगरा, इटावा के दक्षिण भाग तक, पश्चिम में पूर्वी ग्वालियर तक तथा दक्षिण में सागर दमोह तक, भोपाल का पूर्वी भाग, नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी, बालाघाट, छिन्दवाड़ा के कुछ सीमावर्ती क्षेत्र बुंदेली भाषा के दायरे में आता है। ग्रियर्सन ने यह भी माना है कि बांदा में जिस मिलती–जुलती बुंदेली भाषा का प्रयोग होता है, वह असल में बुंदेली नहीं है। कुछ विद्वान इसका समर्थन करते हैं। लेकिन सच्चाई यह है बांदा के कुछ क्षेत्रों में बुंदेली ही बोली जाती है।

बुंदेली भाषा के सीमा क्षेत्र का निरंतर विकास होता गया है। उत्तर में मुरैना तक बुंदेली भाषा का ही प्रयोग होता है। दक्षिण में बैतूल जिले तक इसका प्रसार–प्रचार खूब हुआ है। मध्यप्रदेश के दुर्ग जिले के कुछ इलाकों में बुंदेली का ही प्रयोग होता है। महाराष्ट्र के चांदा, बुलढान, भंडारा, अकोला के कुछ इलाकों में बुंदेली भाषा का फैलाव है।

बुंदेली भाषा का विस्तार मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश की सीमा तक फैला हुआ है। स्पष्ट रूप से उत्तर प्रदेश के झांसी, महोबा, बांदा, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर और चित्रकूट में बुंदेली भाषा जनभाषा के रूप स्वीकृत है। मध्यप्रदेश के छतरपुर, पन्ना, सागर, टीकमगढ़, दमोह, भिंड, सतना, दतिया, विदिशा, टीकमगढ़ जिलों की पहचान बुंदेली भाषा ही है। एक अनुमान के मुताबिक इस भाषा को बोलने वाले लोगों की संख्या लगभग दो करोड़ है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. बुंदेली भारत के किस क्षेत्र की भाषा है?

   (क) मालवा (ख) बुंदेलखंड

   (ग) राजस्थान (घ) इनमें से कोई नहीं

2. निम्न में से बुंदेली की उपबोली कौन–सी है?

   (क) बनाफरी (ख) मदावरी

   (ग) विभट्टा (घ) ये सभी

4.3 बुंदेली भाषा के कवियों का परिचय, उनकी रचनाओं का मूल पाठ एवं व्याख्या

बुंदेली भाषा के अंतर्गत कवि ईसुरी, जगनिक, माधव शुक्ल 'मनोज' तथा संतोष सिंह बुंदेला के साहित्यिक जीवन परिचय एवं उनकी रचनाओं के मूल पाठ व व्याख्या को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.3.1 ईसुरी

विख्यात लोक कलाकार ईसुरी का जन्म सन् 1841 में उत्तर प्रदेश के झांसी जिले में हुआ था। उनके गांव का नाम मऊरानीपुर मेंढ़की था। बचपन से ईसुरी का मन लोक जीवन को समझने में लगा था, संभवतः इसी कारण उनके परिवार के लाख चाहने के बावजूद ईसुरी का पढ़ने में मन नहीं लगा। ईसुरी के बारे में यह बात प्रचलित है कि वे आशु कवि थे, अपनी काव्य प्रतिभा से दृश्य को तत्काल काव्य के रूप में प्रस्तुत कर देते थे।

ईसुरी का विवाह श्यामबाई के साथ हुआ था लेकिन वे ईसुरी का लम्बे समय तक साथ नहीं निभा पाई। एक बेटी को जन्म देने के बाद श्यामबाई चल बसी और ईसुरी जीवन भर 'रजऊ' नामक काल्पनिक प्रेमिका से प्रेम करते रहे। ईसुरी की कविता में 'रजऊ' नायिका बनकर आती है।

छतरपुर के राजा ने ईसुरी को अपने दरबार में आने का निमंत्रण दिया था। लेकिन उन्होंने दरबारी कवि बनने का आमंत्रण यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि उन्हें नौकर बनना पसंद नहीं है। उनका मन गंवई जीवन में रमा था। दरबारी कवि का निमंत्रण ठुकरा कर वे खुश थे। नाच मंडलियों के साथ जुड़कर काव्य रचा करते थे। सन् 1909 में ईसुरी की मृत्यु हो गई थी।

साहित्यिक योगदान

बुंदेली कविता के महाकवि के रूप में विख्यात ईसुरी का जीवन लोक साहित्य के सृजन में व्यतीत हुआ। ईसुरी विख्यात साहित्यकार पं. गंगाधर व्यास के समकालीन थे। उनकी कविता का प्रभाव बुंदेली समाज पर इस हद तक पड़ा था कि आज भी तीज–त्योहार या पर्व उनके गीतों के बगैर अधूरा रह जाता है।

ईसुरी की कविता में बुंदेली समाज की संस्कृति, प्राकृतिक सौंदर्य और गंवई मिट्टी की सोंधी खुशबू समाई हुई है। ईसुरी को सबसे ज्यादा लोकप्रियता उनके फाग गीतों के कारण मिली। लोक जीवन की सहजता, संवेदना, भदेसपन और ठेठपन उनके फागों की विशिष्टता है। चौकड़िया फाग उन्हें प्रिय था। ईसुरी के फागों में विरह, श्रृंगार, भक्ति और सामाजिक जीवन की विसंगतियां बहुतायत से विद्यमान हैं लेकिन प्रेम उनके फागों का स्थाई भाव है। प्रेम में स्वयं अकंठ डूबे ईसुरी के लिए काव्य अपने प्रेम की अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जिसे किसी के अधीन नहीं छोड़ा जा सकता है।

साहित्यिक विशेषताएं

आधुनिक काल के बहुचर्चित लोक कवि ईसुरी की काव्य–यात्रा के कई पड़ाव हैं लेकिन मंजिल एक ही है– बुंदेली लोक जीवन की अभिव्यक्ति। ईसुरी की रचनाओं में बुंदेली भाषा की ठसक और ग्रामीण जीवन की विभिन्न छवियां चित्रित हैं। गांव की लोक–संस्कृति से जुड़े रीति–रिवाज, संस्कार आदि उनकी कविताओं में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। गांव का प्राकृतिक सौंदर्य उनकी कविताओं में बार–बार लौटता है। ईसुरी की कविताओं में बुंदेली समाज का व्यावहारिक ज्ञान देखा जा सकता है। कल्पना की अतिशयता उनके काव्य में नहीं है बल्कि जीवन का वास्तविक यथार्थ है। ईसुरी की कविताओं में सामाजिक परिवेश, राजनीति, भक्ति, संयोग, वियोग, लौकिक–अलौकिक संबंध, शिक्षा और नीति विषयक विषय देखे जा सकते हैं। बुंदेली समाज में प्रचलित तथा लुप्त हो चुके शब्दों को ईसुरी ने बेहद सम्मान के साथ अपने काव्य में दर्ज किया। बुंदेली की ग्रामीण बोलचाल की भाषा का वैभव ईसुरी के फागों की विशेषता है।

रचनाओं का मूलपाठ

(1) वंदना

सुमरन करों सारदा माता
जीसें सनमुख रयें विधाता
ग्यान–ध्यान परमेसुर दैवें
कृपा कोर मो पै कर लेबैं।
छंद–बंद नइ एकउँ मौरें
बंद अखोती, आखर थोरे
ईसुर ध्यान धरूँ मन माईं
पूरन कारज करहिं गुसाईं।

(2) भक्तिपरक फागें

भजमन राम सिया भगवानै
कुछ संग नईं जानैं
धन सम्पत सब माल खजानौ
रैंजैं येई ठिकानौं
माई बन्द उर कुटुम कबीला।
जे स्वारथ सब जानैं

कैंड़ा कैसो छोर ईसुरी
हेसा हुये खानैं।

चल मन बिन्दावन में रइये
कृस्न राधिका कइये
झाड़ूदार होय गोकुल के
गैंलें साफ बनइये
जे द्वारे देवतन खाँ दुरलभ
तिनें बुहारू दइये
बचे–खुचे ब्रजजन के टूँका
माँग–माँग के खइये
ईसुर कअत दरस के लानें
का–का मजा दिखइये।

रसना राम–राम कह जारी
कौन जात हैं हारी
जौ हरनाम सजीवन बूटी
खात बनै तौ खारी
कॉलौं दिन उर रात सिखइये
बऔ जात बिरथॉरी
ईसुरी हमना कोउ तुमाये
तैंनाँ कोउ हमारी

दीपक दया धरम कौ जारौ
सदा रात उजियारौ
धरम करे बिन करम खुलैना
ज्यौं कुंजी बिन तारौ
समझा चुके करें न रइयो
दिया तरैं अंदयारौ
कात ईसुरी सुनलौ भइया
लगजै यार न वारौ।

(3) ईसुरी की श्रृंगारपरक फागें

हमखाँ कोउ रजउ की सानी
दूजी नईं दिखानी
दस उर चार भुवन चउदा में
तीन लोक में छानी
बादसाय के बेगम नइयाँ
देउतन कें देउतानी
'ईसुरी' देवलोक में नइया
जस वृषमान भुमानी

अँखियाँ जब काऊ से लगतीं,
सब–सब रातन जगतीं।
झपतीं नई झीम ना आवै,
काँ उसनींदें भगती।
बिन देखें से दरद दिबानी,
पके खता सी दगतीं
ऐसौ हाल होत है ईसुरं,
पलक न पलतर दबती।

तोरे नैनाँ हैं मतवारे,
तन घायल कर डारे।
खंजन खरल सैल से पैने,
बरछन सें अनयारे।
तरबारन सें कमती नइयाँ,
इनसे सबरे हारे।
'ई सुर' चले जात गैलारे,
टेर बुलाकें मारे।

तुमने मोह टोर दऔ सइयाँ।
खबर हमारी नइयाँ।
कोंचन में हो निपकन लागीं,
चुरियन छोड़ी बहियाँ
सूकी देह छिपुरिया हो रई,
हो गये प्रान चलैंयाँ
जो पापिन ना सूकीं अँखियाँ,
झर–भर देत तलैयाँ
उनें मिला दो हमें ईसुरी।
लाग–लाग के पैंया।।

काजर काय पै दइये कारे।
बारे बालम हमारो
साँज भये ब्यारी की बेराँ,
करें बिछौना न्यारे।
जब छुव जात अनी जोवन की,
थर–थर कॅपत विचारे
का काऊ खाँ खोर 'ईसुरी',
फूटे करम हमारे।

ईसुरी : प्रकृति परक फागें

अब रित आई बसंत बहारन,
पान फूल फल डारन
बागन बनन, बंगलन बेलन,

बीथी बगर बजारन
हारन हद्द पहारन पारन,
धवल धाम जल धारन
कपटी कुटिल कंदरन छाई,
गई बैराग बिगारन
ईसुर कंत अंत घर जिनके,
तिनें देत दुःख दारुन

हराँ हराँ फगुना ने अपने नौंने गोड़ पसारे
पसर चरैया बंसी में है
अपनौ राग बजार्यै
ईसुर बढ़न लगे दिन दूने
जैसें जैसेंई लगे सलौने

(4) लोक जीवन की चौकड़ियाँ

हंसा उड़ चल देस बिरानें सरवर जात सुखानें
इते रमें की कौन भलाई, जितै बकन के थानें
समुद भरे हैं अगम उतै चल, सुख पावै मन मानें
बचत बनें तो बचौ ईसुरी तानें काल कमानें।

तन कौ तनक भरोसौ नइयाँ, राखै लाज गुसैयाँ
तरवर पत्र गिरत धरनी में, फिर ना लगत डरैंयाँ
जर बर देह मिले माटी में, फिर न चुनें चिरइयाँ
ईसुर देही काम न आवै, पसु की बनत पनइयाँ।

बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई फूस चारे की
वे बन्देज बड़ी वे बाड़ा, तईं पै दस द्वारे की
किबार–किवरियाँ एकउ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चाँय निबारौ जिदना हमै कौन बारे की

जिदना मन पंछी उड़ जानें
डरौ पींजरा रानैं
भाई न जै हैं बन्द न जैहें
हंस अकेला जानें
ई तन भीतर दस द्वारे हैं,
की हो कें कड़ जानें
कैवे खों हो जै है ईसुर
ऐसे हते फलानें।

पर्यावरण एवं नीतिपरक चौकड़ियां

गाँजौ पियौ न प्रीतम प्यारे
जरजें कमल तुमारे

जारत काम बिगारत सूरत
सूकत रकत नियारे
जौतौ आय साधु संतन कौं
अपुन गिरस्ती बारे
ईसुर कात छोड़ दो ईखाँ
हौ उमर के बारे।

इनै काटबौ ना चइयत तौ
काट देत जै कालन
ऐसे रुख भूख के लानें
लगवा दये नंद लालन
जे कर देत नई सी ईसुर
मरी मराई खालन।

आओ जौ कलजुग की पारौ
सत युग दै गऔ टारौ
मौं देखी पंचायत होत है
देखौ चीकनों दुआरौ
कर पंचायत सरपंच चले गए
कौनऊ भऔ न निबारौ
ईसुर कात चलौ भग चलिये
इतै न होत गुजारौ।

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

वंदना

1. सुमरन करों सारदा माता
जीसें सनमुख रयें विधाता
ग्यान–ध्यान परमेसुर दैवें
कृपा कोर मो पै कर लेबैं।
छंद–बंद नइ एकउँ मौरें
बंद अखोती, आखर थोरे
ईसुर ध्यान धरूँ मन माईं
पूरन कारज करहिं गुसाई।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत सरस्वती वंदना बुंदेलखंड के प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी द्वारा रचित है। इस फाग में ईसुरी ने मां सरस्वती के प्रति अपनी भक्ति को ज्ञापित किया है। ऐसी मान्यता रही है कि मां शारदा की कृपा प्राप्त होने से बुद्धि और विवेक में अप्रत्याशित वृद्धि हो जाती है। शारदा को ज्ञान की देवी कहा जाता है।

व्याख्या– इस वंदना के माध्यम से कवि मां शारदा की उपासना करते हैं। कवि कहते हैं कि हे शारदा माता, मैं तुम्हारे नाम का बार–बार जाप कर रहा हूं क्योंकि तुम्हारे आगे

तो विधाता भी ज्ञान और विवेक पाने की आकांक्षा में झुककर खड़े रहते है। तुम्हारा ध्यान करने से परमेश्वर की भी कृपा प्राप्त हो जाती है। मैं काव्य रचना की ओर उन्मुख होना चाहता हूं इस कारण मुझ पर थोड़ी–सी कृपा कर दो। मुझ से एक भी छंद सुगठित तरीके से नहीं बन पा रहा है। मेरी अखोती में शब्द भी बेहद कम हैं। इसलिए मैं आपका ध्यान मन में रखता हूं। आप मेरे इस काम को पूरा करने के लिए अपनी कृपा प्रदान करें।

विशेष

1. शारदा ज्ञान की देवी है। कवि ने शारदा माता के प्रति अपनी भक्ति को अभिव्यक्त किया है।
2. बुंदेलखंड के लोक जीवन में मां शारदा की आराधना को काफी महत्व प्रदान किया गया है।

भक्तिपरक फागें

1. भजमन राम सिया भगवानै
कुछ संग नई जानैं
धन सम्पत सब माल खजानौ
रैंजैं येई ठिकानौं
माई बन्द उर कुटुम कबीला।
जे स्वारथ सब जानैं
कैंड़ा कैसो छोर ईसुरी
हेसा हुये खानैं।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी द्वारा रचित है। ईसुरी ने राम–सीता और राधा कृष्ण को समर्पित फाग लिखे हैं जो आज भी बुंदेलखंड के जनमानस के कंठाहार बने हुए हैं। प्रस्तुत फाग में ईश्वरीय शक्ति पर भरोसा रखते हुए मनुष्य जीवन की क्षणभंगुरता को रेखांकित किया गया है।

व्याख्या– हे मन, तुम सीता–राम के भजन में ध्यान लगाओ। साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है। धन, सम्पत्ति, माल, खजाना सब यहीं रह जाने वाला है। इसलिए इसके संग्रह में अपना समय बर्बाद न करो। भाई–बंधु, कुटुम्ब, कबीला, नाते–रिश्ते सब का निजी स्वार्थ है, इसलिए तुम्हें पहचानने का स्वांग रचते हैं। ईसुरी कहते हैं कि जुलाहे की तानें भरने वाला सूत की लच्छी के एक सिरे की भांति आत्मा निकलकर हंस की तरह उड़ जाएगी। इसलिए किसी की परवाह किए बगैर जितना वक्त जीवन के लिए मिला है, सारा वक्त सीता–राम के भजन में लगाना ही श्रेयस्कर होगा।

विशेष

1. शरीर की क्षणभंगुरता को रेखांकित किया गया है।
2. ईश्वर की भक्ति को प्रस्तावित किया है। सम्पति को निरर्थक बताया है।

2. चल मन बिन्दावन में रइये
कृस्न राधिका कइये

झाड़ूदार होय गोकुल के
गैंलें साफ बनइये
जे द्वारे देवतन खाँ दुरलभ
तिनें बुहारू दइये
बचे–खुचे ब्रजजन के टूँका
माँग–माँग के खइये
ईसुर कअत दरस के लानें
का–का मजा दिखइये।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग ईसुरी द्वारा रची गई है। अध्यात्मपरक फागों में राम तथा श्रीकृष्ण के नाम स्मरण की महिमा का बखान ईसुरी ने किया है। ईश्वरीय सत्ता में ईसुरी को खूब यकीन है। श्रृंगारपरक फागों से इतर अध्यात्मपरक फाग मोहमाया को व्यर्थ मानते हैं और जीवन को राम और कृष्ण की सेवा में समर्पित कर देने का आह्वान करते हैं। उन्हीं की शरण में जीवन की सार्थकता की बात स्वीकार करते हैं।

व्याख्या– हे मन, तू चलकर वृन्दावन में रह। यहां रहकर राधा–कृष्ण का स्मरण कर। इस गोकुल नगरी में झाड़ूदार बनकर गली–गली की साफ–सफाई करते हुए जीवन व्यतीत कर। ब्रजजन के बचे–खुचे खाने को मांग कर खा। ईसुरी कहते हैं कि चार हाथ वाले विष्णु के अवतार कृष्ण भगवान के आगे दो हाथ वाले इंसान की क्या बिसात है।

विशेष

1. जीवन को कृष्ण भक्ति में समर्पण करने की प्रेरणा दी गई है।
2. कृष्ण–राधा के स्मरण से ही जीवन सार्थक हो सकता है।
3. कृष्ण की नगरी वृन्दावन के महत्व को रेखांकित किया गया है।

3. रसना राम–राम कह जारी
कौन जात हैं हारी
जौ हरनाम सजीवन बूटी
खात बनै तौ खारी
कॉलौं दिन उर रात सिखइये
बऔ जात बिरथॉरी
ईसुरी हमना कोउ तुमाये
तैंनाँ कोउ हमारी

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'फाग' बुंदेलखंड के लोकप्रिय कवि ईसुरी के द्वारा रचा गया है। ईसुरी ने बुंदेलखंड के जनजीवन को अपने काव्य में उतारा है। श्रृंगारपरक फागें उनकी प्रसिद्धि का आधार हैं लेकिन भक्तिपरक फागें भी लोकमानस में बेहद प्रचलित रहे हैं।

व्याख्या– रसना, राम–राम का नाम स्मरण करने से तुम थक नहीं जाओगी। यही राम नाम तो संजीवनी है। जिस किसी ने इस संजीवनी का सेवन किया है, वही जीवन की

सबसे बड़ी उपलब्धि होगी। वरना यह जीवन क्षणभंगुर की तरह है, कब प्राण निकल जाय किसी को इसका अनुमान तक नहीं है। यही बात हर बार आदमी को कितनी बार बताई जाय। ईसुरी कहते हैं यह बात मैंने न जाने कितनी बार समझाई है लेकिन हर बार मेरी बताई गई बात व्यर्थ चली जाती है। इस संसार में न मैं तुम्हारा कोई लगता हूं, न तुम मेरे कोई लगते हो। यहां कोई किसी का नहीं है।

विशेष

1. ईसुरी ने इस अध्यात्मपरक फाग में रामनाम स्मरण के महत्व को समझाने का प्रयास किया है।
2. मनुष्य का जीवन रामनाम के बिना व्यर्थ है।
3. जीवन की झणभंगुरता पर जोर दिया गया है।
4. दीपक दया धरम कौ जारौ
   सदा रात उजियारौ
   धरम करे बिन करम खुलैना
   ज्यौं कुंजी बिन तारौ
   समझा चुके करें न रइयो
   दिया तरैं अंदयारौ
   कात ईसुरी सुनलौ भइया
   लगजै यार न वारौ।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग ईसुरी के द्वारा लिखी है। ईसुरी ने आध्यात्मिक फागों की रचना बड़े मन से की है। उन्हें ईश्वरीय सत्ता पर अटूट विश्वास है। ईसुरी की विशेषता यह है कि वे धार्मिक रिवाजों को नैतिक जीवन के साथ नत्थीकर एक आदर्श समाज के निर्माण का स्वप्न रच देते हैं।

व्याख्या– दया और धर्म का दीपक जलाना ही श्रेयस्कर है। उसी में सदैव प्रकाश विद्यमान रह सकता है। धर्म के बिना कर्म का कोई औचित्य नहीं है। जिस तरह कोई भी ताला बगैर चाबी के नहीं खुल सकता है, उसी तरह धर्म के बिना कर्म अधूरा है। मैं न जाने कितनी बार एक ही बात समझाता रहा हूं। दीपक तले अंधेरा नहीं रहना चाहिए। ईसुरी कहते है। कि यदि इस तरह से विचार करोगे, तब जीवन की नैया पार लग सकेगी।

विशेष

1. धर्म–कर्म को सिक्के के दो पहलू स्वीकार किया गया है।
2. ईसुरी ने अपने फाग में मुहावरों, बिम्बों और रूपकों का गजब का इस्तेमाल किया है।

ईसुरी की शृंगारपरक फागें

1. हमखाँ कोउ रजउ की सानी
   दूजी नईं दिखानी
   दस उर चार भुवन चउदा में

तीन लोक में छानी
बादसाय के बेगम नइयाँ
देउतन कें देउतानी
'ईसुरी' देवलोक में नइया
जस वृषमान भुमानी

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'फाग' ईसुरी की 'रजऊ विरह' से उद्धृत है। लोक कवि ईसुरी ने शृंगार वर्णन के दौरान बेहद शानदार 'रजऊ विरह' रचा है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि मेरी प्रिय रजऊ का कोई मुकाबला ही नहीं है। उसकी तरह समूची दुनिया में कोई दूसरी नहीं है। मैंने चारों दिशाओं में और चौदह भुवन में अपनी प्रिया की तरह किसी दूसरे को नहीं देखा है। तीनों लोकों को छान मारा लेकिन उसकी तरह कोई दूसरी नहीं दिखाई पड़ी। मेरी प्रिया ऐसी गुणी है कि किसी बादशाह की बेगम में उतना गुण नहीं है। देवताओं की पत्नी भी मेरी प्रिया की तरह नहीं है। ईसुरी कहते हैं कि मेरी 'रजऊ' श्री वृषभानु कुमारी राधा के रूप में अवतरित हुई है।

विशेष

1. कवि की 'रजऊ' पूरी दुनिया में अकेली है। ऐसी गुणी कोई दूसरी नहीं।
2. उपमा अलंकार का शानदार अंकन है।
3. भाषा में लयात्मकता है।

2. अँखियाँ जब काऊ से लगतीं,
सब–सब रातन जगतीं।
झपतीं नई झीम ना आवै,
काँ उसनींदें भगती।
बिन देखें से दरद दिबानी,
पके खता सी दगतीं
ऐसौ हाल होत है ईसुरं,
पलक न पलतर दबती।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'फाग' ईसुरी द्वारा रचित है। उन्होंने नायक के विरह वर्णन का जीवंत चित्र इस फाग में उकेरा है। प्रेम के बाद प्रेमी की दशा कैसी हो जाती है, यह फाग उसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

व्याख्या– जब नायक की आंखें किसी से लग गई हैं, यानी आंखें चार हो गई हैं, तब से नायक की आंखों में नींद गायब हो गई है। नायक पूरी रात अपनी आंखें झपक तक नहीं पाता है। नींद का कोई झोंक भी नहीं आता है। हमेशा अर्धनिद्रा की स्थिति बनी रहती है। अपनी प्रिया को देखे बिना हृदय में ऐसा दर्द उठता है मानों मन के भीतर कोई फोड़ा पक कर टीस कर रहा हो। यहां मन के भीतर आग दहकने जैसा भाव है। ईसुरी कहते हैं कि अब स्थिति यह हो गई है कि पलक झपकने का यत्न भी करते हैं तो पलक नहीं झपकती है।

विशेष

1. सामाजिक मान्यता है कि व्यक्ति जब प्रेम में पड़ जाता है तब उसकी रातों की नींद उड़ जाती है। ईसुरी के इस फाग में इस मान्यता को बल मिलता है।
2. रूपक और बिम्बों का इस्तेमाल बखूबी किया गया है।
3. भाषा लयात्मक है।

3. तोरे नैनाँ हैं मतवारे,
तन घायल कर डारे।
खंजन खरल सैल से पैने,
बरछन सें अनयारे।
तरबारन सें कमती नइयाँ,
इनसे सबरे हारे।
'ई सुर' चले जात गैलारे,
टेर बुलाकें मारे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'फाग' बुंदेलखंड के सबसे लोकप्रिय कवि ईसुरी द्वारा रचित है। ईसुरी ने श्रृंगारपरक फागों के विविध रूपों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– इस फाग में प्रियतम के 'नैन' की तारीफ की गई है और उलाहना भी दी गई है। प्रियतम तुम्हारी आंखें बड़ी मतवाली हैं। इतनी मदहोश कर देने वाली तुम्हारी आंखों ने मुझे घायल कर दिया है। तुम्हारी आंखें नयन खंजन की तरह आकर्षक हैं जो पर्वत और भाले की तरह नुकीली हैं। तुम्हारी आंखें किसी तलवार से कम भी नहीं हैं। एक बार किसी की तरफ अपनी नजर उठाकर देख लो तो कोई भी घायल हुए बिना नहीं रह सकता है। तुम्हारी आंखों के आगे सभी हार मान चुके हैं। तुम्हारी आंखें राह चलते राहगीर को आमंत्रित करती हैं और फिर उसे मार देती हैं।

विशेष

1. उपमा अलंकार का बेजोड़ उदाहरण है।
2. भाषा लयात्मक है।
3. प्रियतमा की तारीफ है और उसकी निष्ठुरता का बयान भी है।

4. तुमने मोह टोर दऔ सइयाँ।
खबर हमारी नइयाँ।
कोंचन में हो निपकन लागीं,
चुरियन छोड़ी बहियाँ
सूकी देह छिपुरिया हो रई,
हो गये प्रान चलैंयाँ
जो पापिन ना सूकीं अँखियाँ,
झर–भर देत तलैयाँ

उनें मिला दो हमें ईसुरी।

लाग–लाग के पैंया।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'फाग' लोक कवि ईसुरी के द्वारा रचित है। ईसुरी ने अपने श्रृंगारपरक फागों में मिलन और विरह का अद्‌भुत अंकन किया है। संदर्भित फाग विरह वर्णन का शानदार नमूना है।

व्याख्या– नायिका अपने प्रियतम का स्मरण करते हुए उससे मन ही मन संवाद करते हुए कहती है, हे प्रियतम तुम्हारे मन में मेरे प्रति जरा भी मोह नहीं है। यदि तनिक भी मोह होता तो क्या तुम मेरी सुध नहीं लेते? तुमसे मिलन की उम्मीद में, मैं, सूखती चली जा रही हूं। मेरी दशा डराने वाली हो गई है। मेरी कलाइयां इतनी पतली होती जा रही हैं कि उसमें चूड़ियां भी नहीं टिक पा रही हैं। मेरी आंखों से आंसू की धारा बहते रहती है, ऐसा लगता है मेरी आंखों ने कोई पाप कर दिया है। ये आंखें कभी सूखती ही नहीं हैं। सिर्फ इतना ही नहीं मेरी आंखों से अश्रु की धारा इतनी बहती है कि पूरी तलैया भर देती हैं। ईसुरी कहते हैं हे भगवान मुझे मेरे प्रियतम से मिलन करवा दो। मैं बार–बार तुम्हारे चरण पकड़ती हूं।

विशेष– नायिका के विरह वर्णन की अद्‌भुत अभिव्यक्ति इस फाग में हुई है।

5. काजर काय पै दइये कारे।

बारे बालम हमारो

साँज भये ब्यारी की बेराँ,

करें बिछौना न्यारे।

जब छुव जात अनी जोवन की,

थर–थर कॅपत विचारे

का काऊ खाँ खोर 'ईसुरी',

फूटे करम हमारे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– ईसुरी की श्रृंगारपरक फाग का यह बेहद उत्कृष्ट नमूना है। ईसुरी ने समाज की विडम्बना को भी श्रृंगारपरक फागों में अभिव्यक्त कर दिया है। यही वजह है कि ईसुरी को अवतारी कवि माना गया है। इस फाग में नायिका का दिल टूट गया है। वह अपनी किस्मत को कोस रही है। एक तरह से बेमेल विवाह की वजह से स्त्री की मनोदशा कैसी हो सकती है, संदर्भित फाग से समझा जा सकता है।

व्याख्या– नायिका कहती है मैं किसके लिए अपनी आंखों में काजर लगाऊँ? मेरी सुन्दरता पर कौन मोहित होता है? मेरे प्रियतम अभी अबोध है। प्रेम और मिलन की भावना को वे नहीं समझते हैं। शाम को भोजन करने के उपरांत अपना बिस्तर अलग स्थान में लगाकर सो जाते हैं। यदि यदाकदा मेरे स्तन का ऊपरी हिस्सा भी स्पर्श हो जाता है, तब उनकी हालत खराब हो जाती है। वे बेचारे थर–थर काँपने लग जाते हैं। ईसुरी कहते हैं कि इस स्थिति के लिए मैं किसे दोष दूं। मेरी किस्मत ही फूटी थी जो ऐसा जीवन मुझे मिला।

विशेष

1. अनमेल विवाह की समस्या को ईसुरी बेहद खूबसूरती से अभिव्यक्त करते हैं।
2. नायिका यौवना है और नायक बालक। दोनों का मिलन कैसे संभव है?

ईसुरी : प्रकृति परक फागें

1. अब रित आई बसंत बहारन,
पान फूल फल डारन
बागन बनन, बंगलन बेलन,
बीथी बगर बजारन
हारन हद्द पहारन पारन,
धवल धाम जल धारन
कपटी कुटिल कंदरन छाई,
गई बैराग बिगारन
ईसुर कंत अंत घर जिनके,
तिनें देत दुःख दारुन

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग महाकवि ईसुरी के द्वारा रचा गया है। ईसुरी ने बुंदेलखंड के जनजीवन को अपने काव्य के माध्यम से चित्रित किया है। प्रकृति प्रेम का अनूठा और जीवंत चित्रण ईसुरी के काव्य में मिलता है।

व्याख्या– बसंत ऋतु आ गई है। बहारों में फूल खिल गए हैं। लताओं, वीथिकाओं, मैदानों, बाजार–हाट, खेतों और पहाड़ों में वसंत के आगमन की निशानी दिखाई देने लगी है। बसंत का मौसम ऐसा है कि यह केवल गली–कूचों में ही नहीं बल्कि पहाड़ की कंदराओं में निवास करने वाले तपस्वियों और ऋषिमुनियों के वैराग्य भंग कर दे। देखो प्रिय मंजरिया बौरा गई है। भ्रमर ने अपने गीत से सारा वातावरण गुंजायमान कर दिया है। ऐसे मौसम में कौन अपनी प्रियतमा से दूर रहना चाहेगा। बसंत के आगमन के कारण ही हजारों प्रेमी अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा में राह ताक रहे हैं। इस ऋतु में जिसकी प्रियतम साथ नहीं है उसके लिए तो यह ऋतु बेहद दुख पहुंचाने वाली हो जाती है।

विशेष

1. बसंत ऋतु का जीवंत चित्रण है।
2. प्रकृति के सौन्दर्य का अद्भुत बखान है।

2. हराँ हराँ फगुना ने अपने नौंने गोड़ पसारे
पसर चरैया बंसी में है
अपनौ राग बजाऱ्यै
ईसुर बढ़न लगे दिन दूने
जैसें जैसेंई लगे सलौने

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग ईसुरी के द्वारा रचित है। कवि ने प्रकृति चित्रण का अद्भुत रूप अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– धीरे–धीरे फागुन का महीना अपने पैर पसार रहा है। मौसम बेहद सुहावना हो गया है। ऐसे मौसम में चरवाहे अपने बंसी से अपना अलग राग बजा रहा है। फागुन

के महीने में बंसी का धुन सुनना कितना सुहावना है। इस कारण ही जैसे जैसे दिन बढ़ता जाता है मानो दिन दुगना लगने लगा हो। अर्थात् मन को यह मौसम इतना मनभावक हो गया है कि दिन दुगने–दुगने से लगने लगे हैं।

विशेष

1. ईसुरी ने फागुन महीने के मौसम की विशेषता को रेखांकित किया है।
2. प्रकृति का मानवीकरण है।

लोक जीवन की चौकड़ियाँ

1. हंसा उड़ चल देस बिरानें सरवर जात सुखानें
इते रमें की कौन भलाई, जितै बकन के थानें
समुद भरे हैं अगम उतै चल, सुख पावै मन मानें
बचत बने तो बचौ ईसुरी तानें काल कमानें।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत चौकड़ी में बुंदेलखंड के लोक कवि ईसुरी लोक–जीवन में व्याप्त विकृतियों से रोष व्यक्त करते हुए यहां से हट जाने का आग्रह करते हैं। इस फाग में जीवन दर्शन का समावेश है और लोक जीवन का सम्मिश्रण भी है।

व्याख्या– हे हंस, अब उड़कर इस संसार को छोड़ देने में ही भलाई है क्योंकि यहां की नदी सूखती जा रही है। यहां रहने से कुछ भला होने वाला नहीं है। इस संसार में रहने का क्या सुख जहां बगुले की प्रशंसा होती है। उसके गुणों का बखान किया जाता है। यहां इसे इस रूप में समझा जाना चाहिए कि इस संसार में हंसरूपी भले लोगों को कोई पूछता तक नहीं है और बगुला रूपी ढोंगी व्यक्ति की प्रशंसा हर कोई करता है। हंस को ऐसी जगह चले जाना चाहिए जहां अच्छाइयों का समुद्र है। वहां अपने मन के हिसाब से रहा जा सकता है। यहां शांति नहीं मिल सकती है। ईसुरी कहते हैं कि इस संसार में बेईमानी और प्रपंच से बचे रहकर ईश्वर के भजन में अपना मन रमाने का यत्न करना चाहिए।

विशेष

1. इस फाग के आध्यात्मिक अर्थ में हंस को आत्मा, सरोवर को संसार, समुद्र को परलोक और बगुले को बुरे व्यक्ति का प्रतीक माना गया है।
2. बुराई से बचने तथा ईश्वर के भजन में मन रमाने की प्रेरणा दी गई है।

2. तन कौ तनक भरोसौ नइयाँ, राखै लाज गुसैयाँ
तरवर पत्र गिरत धरनी में, फिर ना लगत डरैंयाँ
जर बर देह मिले माटी में, फिर न चुनें चिरइयाँ
ईसुर देही काम न आवै, पसु की बनत पनइयाँ।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– लोक कवि ईसुरी ने चार कड़ियों वाली फागें लिखी जिन्हें 'चौकड़ियां' कहा गया। ये चौकड़ियां बुंदेलखंड में लोक जीवन में बेहद लोकप्रिय है। इन चौकड़ियों जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। ईसुरी ने जितनी शिद्दत से श्रृंगारपरक फागें लिखीं हैं, उतनी ही शिद्दत से जीवन–दर्शन को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि शरीर का क्या ठिकाना है। इस शरीर को राम चला रहे हैं। न जाने किस दिन इस वृक्ष से टूट कर पत्ते धरती पर गिरते हैं, उसी तरह अचानक शरीर की गति भी रुक जाती है। जो पत्ते पेड़ से टूटकर गिर जाते हैं, दोबारा वही पत्ते कभी पेड़ पर नहीं लगते हैं।

जब यह शरीर जलकर भस्म हो जाएगा, तब चिड़िया भी इसे नहीं चुगेगी। ईसुरी कहते हैं आदमी के मृत्यु के बाद उसका शरीर किसी के काम नहीं आता है जबकि मरे हुए पशु के चमड़े से जूते बनते हैं।

विशेष

1. मनुष्य की नश्वरता का दर्शन है।
2. जिस व्यक्ति ने जन्म लिया है, उसका मरना निश्चित है।
3. मरने के बाद शरीर के व्यर्थ हो जाने की वास्तविकता को रेखांकित किया गया है।

3. बखरी रैयत है भारे की, दई पिया प्यारे की
कच्ची भीत उठी माटी की, छाई फूस चारे की
वे बन्देज बड़ी वे बाड़ा, तईं पै दस द्वारे की
किबार–किवरियाँ एकउ नइयाँ, बिना कुची तारे की।
ईसुर चाँय निबारौ जिदना हमै कौन बारे की

सन्दर्भ एवं प्रसंग– लोक कवि ईसुरी ने चार कड़ियों वाली फागें लिखी जिन्हें 'चौकड़ियां' कहा गया। ये चौकड़ियां बुंदेलखंड में लोक जीवन में बेहद लोकप्रिय है। इन चौकड़ियों जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। ईसुरी ने जितनी शिद्दत से श्रृंगारपरक फागें लिखीं हैं, उतनी ही शिद्दत से जीवन–दर्शन को भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– मनुष्य का शरीर किराये के मकान की तरह से होता है जो ईश्वर द्वारा प्रदत्त अमूल्य वरदान है। इस मकान की दीवारें कच्ची मिट्टी की बनी हैं। मकान की छत घास–फूस से बनी है। इस मकान में कुछ भी ठीक से प्रबंध नहीं है, इस कारण उपेक्षित भी है। इस शरीर में दस इन्द्रियां दस द्वार वाली बखरी है। शरीर रूपी मकान में दरवाजे–खिड़कियां भी नहीं हैं। उसमें ताला चाबी भी नहीं है। ईसुरी कहते हैं इस किराये के मकान को किसी भी वक्त खाली करवा लिया जा सकता है। इस बात पर मुझे कोई सुविधा अथवा दुविधा नहीं है।

विशेष

1. जीवन दर्शन को रेखांकित किया गया है।
2. मनुष्य का जीवन ईश्वरीय देन है। इसे देने और लेने वाले ईश्वर ही हैं।
3. मनुष्य की नश्वरता पर जोर दिया गया है।

4. जिदना मन पंछी उड़ जानें
डरौ पींजरा रानैं
भाई न जै हैं बन्द न जैहें

हंस अकेला जानें
ई तन भीतर दस द्वारे हैं,
की हो कें कड़ जानें
कैवे खों हो जै है ईसुर
ऐसे हते फलानें।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत 'चौकड़ी' बुंदेलखंड के प्रसिद्ध लोक कवि ईसुरी के द्वारा रचित है। अपनी इस रचना में कवि जीवन की वास्तविकता को रेखांकित करते हैं।

व्याख्या– एक दिन यह प्राण रूपी पंछी उड़ जाएगा और यह देहरूपी पिंजड़ा यहीं धरा रह जाएगा और जाना भी अकेले ही है। साथ में न कोई भाई जाने वाला है, न कोई बंधु साथ जाएगा। प्राणरूपी हंस को अकेले जाना है। इस देह में दस इन्द्रियां द्वार की भांति हैं। किसी भी द्वार के रास्ते प्राण निकल जाएंगे। ईसुरी कहते हैं कि आदमी का गुण–अवगुण ही इस संसार में रह जाता है। लोग सिर्फ इतनी ही चर्चा करते हैं कि फलाना व्यक्ति कैसा था।

विशेष

1. जीवन की झणभंगुरता को रेखांकित किया गया है।
2. रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. व्यक्ति का गुण रह जाता है। शरीर का मिट जाना तय है।

पर्यावरण एवं नीतिपरक चौकड़ियां

1. गाँजौ पियौ न प्रीतम प्यारे
जरजें कमल तुमारे
जारत काम बिगारत सूरत
सूकत रकत नियारे
जौतौ आय साधु संतन कौं
अपुन गिरस्ती बारे
ईसुर कात छोड़ दो ईखाँ
हौ उमर के बारे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– बुंदेलखंड के लोक कवि ईसुरी ने नीतिपरक चौकड़ियों की रचना कर सही मार्ग पर चलने की सलाह देते हैं। नशा जीवन को किस तरह से नुकसान पहुंचाता है प्रस्तुत चौकड़ी में उसी की तरफ इशारा किया गया है।

व्याख्या– हे प्रियतम, तुम गांजा पीना छोड़ दो। इसके धुएं से तुम्हारा हृदय कमल जल जाएगा। इसके नशे में तुम अपना काम–धंधा भी ठीक तरीके से नहीं कर पाते हो। गांजा पीने की वजह से तुम्हारे चेहरे की चमक भी खत्म हो जाएगी। तुम कुरूप दिखने लगोगे। असल में गांजा पीने का काम साधु–संतों का है, क्योंकि उसे अपना परिवार नहीं चलाना होता है। तुम गृहस्थ जीवन जी रहे हो। ईसुरी कहते हैं अभी तुम्हारी उम्र भी ज्यादा नहीं हुई है। इस कारण इसे पीना छोड़ दो। इसी में तुम्हारी भलाई है।

विशेष

1. नशे से होने वाले नुकसान को चित्रित किया गया है।
2. कवि का संकेत है कि गृहस्थ जीवन जीने वाले के परिवार को नशा बर्बाद करके रख देता है।

2. इनै काटबौ ना चइयत तौ
काट देत जै कालन
ऐसे रुख भूख के लानें
लगवा दये नंद लालन
जे कर देत नई सी ईसुर
मरी मराई खालन।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत फाग ईसुरी के द्वारा लिखी गई है। इस फाग में नीतिपरक विचार को अभिव्यक्त किया गया है।

व्याख्या– महुआ के वृक्ष को क्यों काटते हो। यह वृक्ष तो मनुष्यों का पालन करता है। इस वृक्ष को काटकर अपना ही नुकसान है। यह वृक्ष अकाल तक को काटने की क्षमता रखता है। ऐसे वृक्षों को स्वयं भगवान ने मनुष्यों के उपकार के लिए लगाया है। महुआ का पेड़ भूख को कम करता है। यह मृतप्राय चमड़ी को नया कर देता है। इसलिए इसे काटना नहीं चाहिए।

विशेष

1. ईसुरी मनुष्यों के हित में लगाए गए पेड़ को न काटने की सलाह देते हैं।
2. महुआ का पेड़ बुंदेलखंड का जातीय वृक्ष है।

3. आओ जौ कलजुग की पारौ
सत युग दै गऔ टारौ
मौं देखी पंचायत होत है
देखौ चीकनों दुआरौ
कर पंचायत सरपंच चले गए
कौनऊ भऔ न निबारौ
ईसुर कात चलौ भग चलिये
इतै न होत गुजारौ।

सन्दर्भ एवं प्रसंग– प्रस्तुत चौकड़ी महाकवि ईसुरी के द्वारा रचित है। कलयुग में हो रही बेईमानी, छल–प्रपंच को उन्होंने अपनी इस चौकड़ी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या– वर्तमान समय कलयुग का है। सतयुग जा चुका है। इस कलयुग में व्यक्ति का मुंह देख पंचायत में न्याय होता है। जिसका घर द्वारा अच्छा है, जो धनी है, फैसला उसी के पक्ष में कर दिया जाता है। ऐसी पंचायतों का प्रचलन खूब हो रहा है जिसमें छल–प्रपंचल का ही जोर चलता है। किसी का मन साफ नहीं है। सभी के मन में छल भर गया है। ईसुरी कहते हैं ऐसी जगह में रहने से क्या लाभ है; यहां से भाग जाने में ही भलाई है। ऐसी जगह में गुजारा नहीं हो सकता है।

विशेष

1. न्याय शक्ति संपन्न लोगों के हाथों की कठपुतलती है।
2. पंचायत न्याय के बजाय बेईमान के हक में फैसला सुना देती है।
3. कवि इस युग की न्याय व्यवस्था को प्रश्नांकित करता है।

4.3.2 जगनिक

जगनिक आदिकालीन कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। मध्यप्रदेश के बांदा जिला स्थित कालिंजर के चंदेल राजा परमर्दिदेव के समय भट्ट राव के परिवार में जन्मे जगनिक की काव्य प्रतिभा जन्मजात थी। आल्हा और ऊदल के जीवन से प्रभावित होकर जगनिक ने 'आल्हखंड' जैसे विशाल काव्य ग्रंथ का सृजन किया।

जगनिक महोबा के चंदेल नरेश परमर्दिदेव के दरबार में बहुत समय तक थे। यहां रहकर इन्होंने काव्य रचना के साथ–साथ रणभूमि में अपना कौशल दिखाने से भी पीछे नहीं रहते थे। जगनिक स्वयं एक वीर योद्धा थे और कुशल रणनीतिकार भी थे। इसी कुशलता के कारण जगनिक हमेशा राजदूत की भूमिका निभाते थे। कन्नौज चले गए आल्हा–ऊदल को फिर से मना कर महोबा लाने तथा पृथ्वीराज चौहान की सेना से टक्कर लेने का श्रेय जगनिक को जाता है।

जगनिक के जन्म स्थान को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान इनका जन्म राजस्थान स्वीकार करते हैं तो कुछ की दृष्टि में मोहाबा में जन्मा बताते हैं। 1150 वि. में जन्मे जगनिक को बुंदेलखंड का मूलनिवासी माना गया है।

साहित्यिक योगदान

जगनिक की दो रचनाएं उपलब्ध हैं। 'आल्हखंड' और 'विजयपाल रासो' के रचयिता जगनिक की कीर्ति आज तक विद्यमान है। 1865 में फर्रूखाबाद के कलक्टर सर चार्ल्स इलियट ने 'आल्हखंड' को प्रकाशित करवाया तथा श्याम बिहारी श्रीवास्तव ने विजयपाल रासो की खोज की थी। 'आल्हखंड' वीर रस प्रधान प्रबंध काव्य है। इस रचना में बावन युद्धों का वर्णन है। इस कृति को समूची भारतीय भाषाओं में सम्मान हासिल हुआ है। 'आल्हखंड' में अपने देश के लिए बलिदान होने वाले आल्हा–उदल की वीरता की कथा मिलती है। 'आल्हखंड' मौखिक परंपरा से विकसित काव्य है। इस काव्य में वीरता का वर्णन तो है ही, साथ ही उसमें बुंदेली संस्कृति, भाषा और समाज का गहरा असर भी विद्यमान है। जगनिक की कविता बुंदेलखंड के जन–जन का कंठाहार बना है। इस कृति की प्रसिद्धि केवल बुंदेलखंड की सीमा तक ही सीमित नहीं रही है। भारतीय समाज में 'आल्हखंड' की पंक्तियां खूब प्रसिद्ध हुई। जगनिक की लिखी यह पंक्ति आज भी उदाहरण के लिए कहीं भी सुनने को मिल जाती है–

"बारह बरिस लै कूकर जीऐ, औ तेरह लौ जिऐं सियार
बरिस अठारह छत्री जिऐं, आगे जीवन को धिक्कार।"

'आल्हखंड' बुंदेली बोली का प्रथम काव्य है जिस पर बुंदेली समाज को गर्व है। इस कृति को आदिकालीन हिन्दी काव्य परंपरा में मजबूत आधार स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया जाता है।

साहित्यिक विशेषताएं

जगनिक को काव्यकला के साथ–साथ संगीत कला का अद्‌भुत ज्ञान था। उनके द्वारा रचित आल्हा का गायन सस्वर गाए जाने की परंपरा है। उनकी संगीत साधना का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज के दौर में भी आल्ह का गायन परंपरागत धुन में ही किया जाता है। जगनिक की रचनाओं में देशकाल और वातावरण का बखूबी उल्लेख मिलता है। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रवृति जगनिक के काव्य में देखी जा सकती है। जगनिक ने अपने काव्य में लोक जीवन को अनदेखा नहीं किया था इस कारण उनकी रचनाएं आम जनजीवन से जुड़ गई। बुंदेली समाज में प्रचलित शब्दों तथा मुहावरों का प्रयोग जगनिक के काव्य में खूब हुआ। यही उनकी लोकप्रियता का आधार भी बना।

रचनाओं का मूलपाठ

आल्हखंड

सुमरन कर कें नारायन कौ, औ गनपति के चरन मनाय।
कहौं मनौआ अब आल्हा कौ, शारद मोकों होहु सहाय।।
माहिल राजा की चुगली में, बाराबाँट भये परमाल।
आल्हा छाये गढ़ कनउज में, महुबे विपत रही सब काल।।

माहिल चलि गये गढ़ उरई से औ दिल्ली में पहुँचे जाय।
जहाँ कचहरी पृथ्वीराज की, माहिल उतरि परे अरगाय।।
जाये जुहार पृथ्वीराज कौं, माहिल रहिगे माथ नवाय।
परी दृष्टि जब पृथ्वीराज की ऊँची चौकी लये बैठाय।।

बोले राजा फिर माहिल सें, जी की बात कहो समुझाय।
यह सुन माहिल बोलन लागे, सुनियौ विनय पिथौरा राय।।
आल्हा–ऊदल हैं कनबज में कोऊ मर्द महोबे नांय।
सूनी परी सबै नगरी है, चलि कै लूट लेउ करबाय।।

डंका बजौ गढ़ दिल्ली में, लश्कर तुरत होय तैयार।
बजौ नगाड़ा तब लश्कर में, क्षत्री सबै भये हुशयार।।
पहले डंका में जिनबंदी, दूजे बाँध लये हथयार।
तीजे डंका में बाजत खन, क्षत्री फाँद भये असवार।।

हाथी चढ़ैया हाथिन चढ़ि गये, बाँके घोड़न के असवार।
कोउ नालकिन, कोउ पालकिन, कोउ गजरथ पै भये सवार।।
ताहर चंदन गोपी तीनों साजे कुँअर बीर बलवान।
हाथी साजे आदि भयंकर, तापर चढ़े भूप चौहान।।

सात लाख सेना दल सजिकै, कूच कौ डंका दियौ बजाय।
डोली धरती धौसा धमके, सूरज रहे धुंध में छाया।।
सात दिना की मंजिल करिकैं, महुबा धुरी दवाई जाय।
घेरा डारौ चार दिशा सों, फाटक बंदी दई कराय।।

बाहर कौ भीतर जाबै ना, ना भीतर कौ बाहर जाय।

ऐसौ समय परौ महुबे पै, विपदा कछू कही न जाय।।
उड़ै चिरैया जो महुबे सैं, चौड़ा बाज देत छुड़वाय।
तुल तुल पानी महुबे जावै, दुख कौ कछू ठिकानौं नाय।।

दोनों फौजन के अंतर में, रहिगो डेढ़ कदम मैदान।
खेंच सिरोही लई छत्रिन नें डारन लगे खेत खरिहान।।
पैदल के संग पैदल भिर गये, अरु असवादन सें असवार।
खट–खट–खट–खट तेगा बाजै, रण में छपक चलै तलवार।।

चलै जुनब्बी औ गुजराती, मानासाही चलै कटार।
मुरचन–मुरचन नचै बेंदुला, ऊदल कहें पुकार–पुकार।।
नौकर–चाकर तुम नाहीं है, तुम सब भैया लगौ हमार।
भागि न जइयो कोइ समुहे तें, यारो रखियो धरम हमार।।

आल्हा, देव, इंदल, जगनिक रोवन लगे जार–बेजार।
हा, हा करि सब रोवन लागे, सिगरी राये उठी रनिवास।।
आल्हा आये दरबाजे पर, घोड़न जीन लियो उतराय।
तौ लौं जगनिक गै द्वारे पै, तब आल्हा ते कही सुनाय।।

काहे जीन उतार दियो तुम, सो तुम देउ हाल बतलाय।
बोले आल्हा तब जगनिक ते, घटिहा बसैं रजा परमाल।।
मलिखे मारे गै सिरसा में, नाहीं खबर दई पहुँचाया।
हाथी सजावो कजरी वन के सिंहल दीपी लेउ सजाय।।

बडदन्ता औ छुट दन्ता सब, हाथी तुरत लेउ सजवाय।
इकदन्ता औ दुइदन्ता पर, हौदा धरौ सोबरन क्यार।।
मेगुल भूरा हाथी साजौ, छोटे पर्वत की उनहार।
खूनी हथिनी को सजवायो, पाँचन देउ जंजीर बँधाय।।

भोंरा गज, अंगद पंगद गज, औ मलयागिरि लये सजाय।
मैन कुंज धौलागिरि साजे, भूरा हाथी लये सजाय।।
मुकना हाथी सब सजवाये, मुड़िया हौदा दये धराय।
चंदन दीनों निज मस्तक पर, भुजदंडन पर लियो लगाय।।

लंग चढ़ाय लई रेशम की, जामें गढ़ै नाहिं हथियार।
पहले पहिरे वस्त्र बनाती, ताके ऊपर कुलह कबार।।
तेहि पर पहिरे झीलम अपनी, जामें टूट जाय तलवार।
तारे ऊपर बख्तर पहिरे, जामें सेल नाहिं अनियाय।।

टोप झल रिहा धरि माथे पर, गोली लगत चीप ह्वै जाय।
बारह छुरियाँ कम्मर बाँधे, कलहा दुइ बाँधे तलवार।।
अगल–बगल में दुइ पिस्तौलें, दहिने सिंहिनि मूठ कटार।
भाला सोहे नागदोनि को, बायें ओर गेंड़ की ढाल।।

जोड़ी बाँधे कड़ाबीन की, गोली टका भरे की खाय।
लैकैं पटुका कम्मर बाँधे कम्मर तीन–तीन बल खाय।।
लाल कमनियाँ है मुलतानी–गाँसी डेढ़ सेर की खाय।
रीतिनीति से जो कोउ बर्ते, ताकी कबहुँ होय नहिं हार।।

हा, हा खाते कों ना मारै, नां तिरिया पर डारै हाथ।
बालक बूढ़े कों ना मारै, ना भागे के परै पिछार।
पहिली चोट करै कबहूँ नहिं, ना निर्बल पर करैं प्रहार।
ताकौं मारै ना काहू विधि, जारे पास नाहिं हथियार।

पाँव पिछारू कों ना देवै, ताकी जीत होय सब काल।
धन्न जनम है बा क्षत्री कौ, परहित सीस देय कटवाय।।
जग में सुख के साथी सब ही, दुःख में बिरले होत सहाय।
अब जो तुम कनवज ना जैहो, तो हम पेट फारि मर जाय।।

यह गति देखी जब मल्हना की, जगनिक बोले बैन सुनाय।
पवन बछेरा हरनागर दो, तौ हम आल्हा पै चलि जायें।
मल्हना जगनिक के संग लौटीं, ब्रह्मनंद की लियौ बुलाय।
घोड़ा हर नागर उन माँगों, समै समझ कें देउ मँगाय।।

पाती लिखी मल्हनदे रानी, नैनन बहै नीर की धार।
स्वस्ति श्री आल्हा कों लिखि कों, लिखी बात सब ब्यौरेवार।।
सात लाख दल लैकें महुबो, घेरौ आय पिथौरा राय।
पाँव पिछारन ना धरियो तुम, नहिं क्षत्रिपन जाय नसाय।।

जो सुनि लौहौं भगे ककौजो, तो मैं पेट फारि मरि जाऊँ।
सम्मुख रण में जो जूझेंगे, लैकें साथ सती हो जाऊँ।।
इतनी सुनि हँसि लाखन बोले, रानी बचपन करौ परमान।
इंद्र डोल जाँय इंद्रासन, औ शिव डोल जाय कैलास।
लाखन डोलन के नाहीं हैं, जौलौं तन में रैहै साँस।।

माय सपथ माता तिलका की, पितु जयचंद के रक्त न हौउ कटि–कटि माँस गिरे धरनी पै, पै ना धरौ पिछारू आज।
अगल–बगल में आल्हा, ऊदल भैयद चले अगारू आज या विधि भेंटे हैं जयचंद्र सों, देखत वीर रहे हरषाय।

आज्ञा माँगी तब आल्हा ने, स्वामी सुनौ कनौजी राय।
भूल चूककर क्षमा हमारी, हँसि कै आयुसु देहु सुनाय।।
बोले जयचंद तब आल्हा सें, हैं सब सीस तुम्हारे भार।
विजय तुमारी महुबे होवै, औ मैदान फरै तलवार।।

लेत जुहारी सब रैयत की, लाखन हाथ जोर सिर नाय।
भूल चूक कर क्षमा हमारी, आयसु देउ महोबे जॉय।।
हुकुम मानियो मात–पिता कौ, याही कहें जात समुझाय।
कूच बोलि लाखन नें दीनी, रणचण्डी देवी कौ ध्यान।।

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

आल्हखंड

(1) सुमरन कर कें नारायन कौ, औ गनपति के चरन मनाय।
कहौं मनौआ अब आल्हा कौ, शारद मोकों होहु सहाय।।

माहिल राजा की चुगली में, बाराबाँट भये परमाल।

आल्हा छाये गढ़ कनउज में, महुबे विपत रही सब काल।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। यह प्रसंग 'सिरसा की दूसरी लड़ाई' से लिया गया है। 'माहिल' ने राजा परमाल से ऐसी चुगली की थी कि 'आल्हा–ऊदल' रूठकर महोबा छोड़कर कन्नौज जा बसते हैं। उसी समय पृथ्वीराज चौहान मौका भांपकर महोबा पर आक्रमण कर देते हैं। बहुत भयानक युद्ध शुरू हो जाता है। महोबा राज्य पर एक बड़ी विपत्ति आ जाती है। उसी प्रसंग का उल्लेख उपरोक्त काव्यांश में हुआ है।

व्याख्या : भगवान नारायण को याद करते हैं और भगवान गणेश के चरणों में वंदन करते हैं। आल्हा ने रुष्ट होकर महोबा छोड़ दिया है। हे सरस्वती! ज्ञान की देवी, अब तुम ही सहायता कर सकती हो। माहिल ने राजा परमाल से ऐसी चुगली कर दी है कि राजा ने नाराज होकर आल्हा को राज्य छोड़कर जाने के लिए कह दिया। जब से आल्हा कन्नौज में जाकर बसे हैं, तब से ही महोबा राज्य में विपत्ति का समय शुरू हो गया है।

विशेष

1. भगवान विष्णु, गणेश और सरस्वती की वंदना की गई है।
2. आल्हा के कन्नौज जाते ही महोबा राज्य संकट में पड़ गया है।
3. बुंदेली और ब्रज भाषा का प्रयोग है। भाषा में लयात्मकता है।

(2) माहिल चलि गये गढ़ उरई से औ दिल्ली में पहुँचे जाय।

जहाँ कचहरी पृथ्वीराज की, माहिल उतरि परे अरगाय।।

जाये जुहार पृथ्वीराज कौं, माहिल रहिगे माथ नवाय।

परी दृष्टि जब पृथ्वीराज की ऊँची चौकी लये बैठाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश 'आल्हा–ऊदल' से लिया गया है। प्रस्तुत अंश सिरसा के द्वितीय युद्ध से संबंधित है। माहिल की चुगली के कारण परमाल ने आल्हा को राज्य से निष्कासित कर दिया है। आल्हा नाराज होकर कन्नौज जाकर बस गया है। कन्नौज के राजा जयचंद ने आल्हा की वीरता का सम्मान करते हुए अपने राज्य में बेहद सम्मानित स्थान दिया है। उधर माहिल प्रपंच एक बार फिर शुरू होता है। वह सोचता है कि अभी महोबा में वीर आल्हा नहीं है। यदि इसी समय दिल्ली जाकर राजा पृथ्वीराज चौहान को महोबा से युद्ध करने के लिए तैयार कर लिया जाए तब वह अपना बदला अच्छे से चुका सकता है।

व्याख्या : उरई से निकलकर माहिल दिल्ली पहुंच गया है। दिल्ली में राजा पृथ्वीराज का शासन है। माहिल बड़ी शांति से उनके पास पहुंचता है। पृथ्वीराज चौहान जैसे शक्तिशाली राजा के पास अपना निजी लाभ साधने के उद्देश्य से माहिल दिल्ली पहुंचता है। इसलिए वह जरूरत से ज्यादा विनम्रता दिखाने का प्रयास करता है।

दिल्ली दरबार में पहुंचते ही वह पृथ्वीराज को बड़ी विनम्रता के साथ नमस्कार करता है। अपना माथा उनके आगे झुकाता है। जब पृथ्वीराज की दृष्टि माहिल पर पड़ती है तब वे भी माहिल का उचित सम्मान करते हैं और उसे बैठने के लिए ऊँचा आसन देते हैं।

विशेष

1. माहिल की विनम्रता कृत्रिम है। वह स्वार्थवश राजा पृथ्वीराज का सम्मान करते समय आवश्यकता से अधिक विनम्र हो जाता है।
2. राजा पृथ्वीराज चौहान भी अपने विवेक का परिचय देते हैं। उसे ऊँचे आसन पर बिठाते हैं। अपना राजधर्म बखूबी निभाते हैं।

(3) बोले राजा फिर माहिल सें, जी की बात कहो समुझाय।

यह सुन माहिल बोलन लागे, सुनियौ विनय पिथौरा राय।।

आल्हा–ऊदल हैं कनबज में कोऊ मर्द महोबे नांय।

सूनी परी सबै नगरी है, चलि कै लूट लेउ करबाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : यह काव्यांश 'आल्हखंड' से उद्धृत है। सिरसा युद्ध की पीठिका तैयार करने के लिए माहिल दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान से जाकर मिलता है और बताता है कि यह महोबा को लूटने का एक बेहतर अवसर है। राजा माहिल के गलत सुझाव को स्थिर चित्त से सुनते हैं।

व्याख्या : राजा पृथ्वीराज चौहान माहिल को उचित सम्मान देते हुए यहां आने के उद्देश्य के विषय में जानना चाहते हैं। वे कहते हैं कि माहिल जो तुम्हारे मन में बातें हैं, उसे स्पष्ट तरीके से मुझे समझाओ। तब माहिल अपने आने का कारण बताते हुए कहता है कि महाराज इन दिनों आल्हा–ऊदल कन्नौज जाकर बस गए हैं। उनके चले जाने से महोबा में कोई मर्द नहीं बचा है। अर्थात् उस राज्य में ऐसा कोई नहीं है जो रणभूमि में टिक सके। आल्हा–ऊदल के कन्नौज में न रहने की वजह से वह राज्य सूना हो चुका है। इस समय महोबा वीरों से खाली हो चुका है। यही सबसे उचित अवसर है कि महोबा पर आक्रमण कर उस पूरे राज्य को लूट लिया जाए। यह इतना अच्छा संयोग है कि महोबा के साथ–साथ सिरसा को भी लूटा जा सकता है।

विशेष

1. माहिल की कुटिलता देखने लायक है।
2. वह आल्हा–ऊदल की शक्ति से वाकिफ है। वह जानता है कि यदि दोनों भाई महोबा में रहे, तब कोई उस राज्य का बाल भी बांका नहीं कर सकता है।
3. आल्हा–ऊदल के महोबा में न रहने से राज्य की शक्ति समाप्त हो गई है।

(4) डंका बजौ गढ़ दिल्ली में, लश्कर तुरत होय तैयार।

बजौ नगाड़ा तब लश्कर में, क्षत्री सबै भये हुशयार।।

पहले डंका में जिनबंदी, दूजे बाँध लये हथयार।

तीजे डंका में बाजत खन, क्षत्री फाँद भये असवार।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से लिया है। यह एक ऐतिहासिक वीर काव्य है। यह कृति जगनिक द्वारा रचित है। 'आल्हखंड' मौखिक परम्परा की उद्‌भुत रचना है। वीर काव्य की परम्परा में इस रचना की खूब सराहना होती है। प्रस्तुत प्रसंग में माहिल ने दिल्ली जाकर राजा पृथ्वीराज चौहान को महोबा पर आक्रमण करने के लिए राजी कर लिया है। पृथ्वीराज की सेना महोबा पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गई है।

व्याख्या : युद्ध के लिए दिल्ली में डंका बज उठा। सारे सैनिक तैयार हो गए। सैनिक अपनी मातृभूमि की खातिर प्राणोत्सर्ग देने के लिए लालायित हो उठे हैं। सेना की ओर से नगाड़ा बज उठा है। डंके के बजते ही सारी सेना सर्तक हो गई है। पृथ्वीराज की सेना इतनी सचेत है कि नगाड़े के पहले डंके की आवाज सुनकर युद्ध में 'जिनबंदी' को पहनकर तैयार हो गई है। दूसरे डंके की आवाज सुनकर अपने हथियारों को अपने हाथों में उठा लिया है। तीसरे डंके की आवाज जैसे ही खन से निकलती है, सभी अपनी–अपनी सवारी पर चढ़ जाते हैं।

विशेष

1. पृथ्वीराज चौहान की सेना कितनी सतर्क और सचेत है। इसका वर्णन बखूबी किया गया है।
2. ऐसा लगता है कि मानो सेना को बस युद्ध करने के लिए संकेत मिलने की जरूरत है। संकेत मिलते ही वह तैयार हो जाती है।

(5) हाथी चढ़ैया हाथिन चढ़ि गये, बाँके घोड़न के असवार।

कोउ नालकिन, कोउ पालकिन, कोउ गजरथ पै भये सवार।।

ताहर चंदन गोपी तीनों साजे कुँअर बीर बलवान।

हाथी साजे आदि भयंकर, तापर चढ़े भूप चौहान।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से लिया गया है। महोबा पर आक्रमण करने के लिए पृथ्वीराज चौहान की सेना तैयार हो चुकी है। यह प्रसंग 'सिरसा की दूसरी लड़ाई' प्रसंग से उद्धृत है।

व्याख्या : पृथ्वीराज चौहान की सेना महोबा पर आक्रामण के लिए निकलने वाली है। हाथी, हाथिन और घोड़े पर सैनिक सवार हो चुके हैं। कोई 'नालकिन' पर बैठ गया है, कोई 'पालकिन' पर विराजमान है। कोई हाथीरथ पर सवार है। ताहर, चंदन और गोपी तीनों इस तरह से सजे हुए हैं जिन्हें कोई भी देखकर कह सकता है कि ये तीनों कुँवर वीर बलवान हैं। जब सारी सेना तैयार हो गई, सभी सैनिक अपनी–अपनी सवारियों पर सवार हो गये। तब एक हाथी जिसे देखकर हृदय काँप उठे, उसे सजाया गया है। हाथी राजा पृथ्वीराज के लिए तैयार है। उस विशालकाय हाथी पर राजा पृथ्वीराज सवार हो गए हैं।

विशेष

1. सजी–धजी सेना का वर्णन अद्‌भुत है।
2. पृथ्वीराज की सेना विशाल है। कवि ने इस सेना का बखान जिस तरह से किया है, उससे पता चलता है कि पृथ्वीराज की सेना शक्तिशाली थी।

(6) सात लाख सेना दल सजिकै, कूच कौ डंका दियौ बजाय।

डोली धरती धौसा धमके, सूरज रहे धुंध में छाया।।

सात दिना की मंजिल करिकैं, महुबा धुरी दवाई जाय।

घेरा डारौ चार दिशा सों, फाटक बंदी दई कराय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश जगनिक के आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान की सेना महोबा पर आक्रमण करने के लिए निकल

चुकी है। पृथ्वीराज को 'माहिल' ने दिल्ली आकर बताया था कि अभी महोबा पर आक्रमण करने का उचित अवसर है क्योंकि राजा परमार ने आल्हा–ऊदल को राज्य से निष्कासित कर दिया है। अब महोबा में कोई वीर नहीं है। अकेले परमार के पास इतनी शक्ति नहीं है, वह पृथ्वीराज का मुकाबला कर सके। राजा पृथ्वीराज माहिल जैसे दुष्टात्मा की शातिर चाल का शिकार हो गए हैं।

व्याख्या : पृथ्वीराज चौहान की सेना बहुत विशाल है। सात लाख सैनिकों से भरा सेना दल सजकर तैयार है। सेना महोबा पर आक्रमण के लिए कूच करने वाली है। इसके संकेत डंका बजाकर कर दिया गया है। ऐसा लगता है मानो विशाल सेना की पदचाप से धरती हिलने लगी है। इतनी विशाल सेना एक साथ आगे बढ़ रही है जिस कारण पूरे वातावरण में धूल उड़ने लगी है। ऐसी धुंध छायी है कि सूरज की रोशनी कम पड़ने लगी है। पृथ्वीराज की सेना पूरे सात दिन तक यात्रा करके अपनी मंजिल पर पहुंच चुकी है। पृथ्वीराज की सेना ने महोबा पहुंचकर चारों दिशा में घेरा डाल दिया है और दरवाजे को बन्द करवा दिया गया है।

विशेष

1. पृथ्वीराज की विशाल सेना का वर्णन है।
2. सेना के पदचाप से 'धरती' तक हिलने' लगी है, सूरज धुंध के कारण छिप गए हैं, में अतिश्योक्ति अलंकार है।

(7) बाहर कौ भीतर जाबै ना, ना भीतर कौ बाहर जाय।
ऐसौ समय परौ महुबे पै, विपदा कछू कही न जाय।।
उड़ै चिरैया जो महुबे सैं, चौड़ा बाज देत छुड़वाय।
तुल तुल पानी महुबे जावै, दुख कौ कछू ठिकानौं नाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड के सिरसा रणभूमि प्रसंग से लिया गया है। माहिल ने राज परमाल से चुगली कर के आल्हा–ऊदल को महोबा से बाहर निकलवा दिया, फिर दिल्ली जाकर राजा पृथ्वीराज चौहान को महोबा पर आक्रमण करने के लिए तैयार कर लिया। पृथ्वीराज की सेना महोबा पर आक्रमण के लिए सात दिनों की यात्रा कर पहुंच चुकी है। अपनी छावनी डाल ली है।

व्याख्या : पृथ्वीराज चौहान की विशाल सेना ने महोबा को चारों दिशाओं से इस तरह से घेर लिया है कि अब न कोई राज्य से बाहर निकल सकता है और न कोई राज्य के भीतर प्रवेश कर सकता है। इतना कठिन दौर महोबा ने पहले कभी नहीं देखा है। ऐसी भारी विपदा आ पड़ी है कि कुछ कहते भी नहीं बन रहा है।

इतनी जबर्दस्त किलेबंदी कर दी गई है कि एक छोटा–सा परिंदा भी बाहर–भीतर नहीं हो सकता है। एक चिड़िया भी यदि ऐसी कोशिश करे तो पृथ्वीराज का सेनापति चौड़ा उस चिड़िया के पीछे बाज छोड़ देता है। कहने का मतलब यह है कि पृथ्वीराज की सेना की घेराबंदी के बाद एक छोटी चिड़िया भी अपनी मर्जी से उड़ नहीं सकती है। यदि वह उड़ने की कोशिश करेंगी, तब उसके पीछे बाज पक्षी को छोड़ दिया जाएगा। महोबा पर भारी संकट आन पड़ा है।

विशेष

1. सेना की घेराबंदी जबर्दस्त है। एक परिंदा भी बाहर–भीतर नहीं हो सकता है।
2. पृथ्वीराज की सेना अभी पहुंची ही है, महोबा में मुश्किल खड़ी हो गई है।

(8) दोनों फौजन के अंतर में, रहिगो डेढ़ कदम मैदान।
खेंच सिरोही लई छत्रिन नें डारन लगे खेत खरिहान।।
पैदल के संग पैदल भिर गये, अरु असवादन सें असवार।
खट–खट–खट–खट तेगा बाजै, रण में छपक चलै तलवार।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हा–ऊदल से उद्धृत किया गया है। यह प्रसंग सिरसा रणभूमि का है। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान की चतुरंगी सेना ने महोबा को सभी दिशाओं से घेर लिया है। युद्ध का नगाड़ा बज चुका है।

व्याख्या : पृथ्वीराज चौहान की सेना और राजा परमाल की सेना युद्ध करने के लिए तैयार हो चुकी हैं। अब दोनों सेना आपस में भिड़ते वाली हैं। दोनों सेनाओं के बीच महज डेढ़ कदम की दूरी बची है। मतलब दोनों सेनाएं आमने–सामने आ चुकी हैं। क्षत्रियों ने अपनी सीमा रेखा भी खींच ली है और खेत–खलिहानों में अपना तम्बू गाड़ लिया है।

युद्ध में दोनों सेनाएं युद्ध के नियमों का पालन करके ही आपस में युद्ध कर रही हैं। पैदल सैनिक से पैदल सैनिक युद्ध कर रहा है। ऐसा नहीं है कि कोई घोड़े पर सवार सैनिक, पैदल सैनिक से भिड़ेगा। सभी सैनिक अपने बराबर वाले से ही युद्ध कर रहे हैं। घोड़े पर सवार सैनिक अपने बराबरी वालों से ही युद्ध कर रहा है। युद्ध कौशल में पारंगत सेनाएं एक हाथ में तेगा और एक हाथ में तलवार लेकर युद्ध भूमि में भिड़ी हुई हैं। तलवार जब तेगा से टकराती है, तब 'खट–खट' की ध्वनि निकलती है। तलवार चलने की गति इतनी अधिक है कि हवा में 'छपक' की गूंज उठती है।

विशेष

1. युद्ध नैतिक नियम से लड़ा जा रहा है।
2. हर सैनिक अपने बराबरी वाले सैनिक से ही युद्ध कर रहा है।

(9) चलै जुनब्बी औ गुजराती, मानासाही चलै कटार।
मुरचन–मुरचन नचै बेंदुला, ऊदल कहें पुकार–पुकार।।
नौकर–चाकर तुम नाहीं है, तुम सब भैया लगौ हमार।
भागि न जइयो कोइ समुहे तें, यारो रखियो धरम हमार।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत किया गया है। यह प्रसंग राजा पृथ्वीराज की सेना और महोबा की सेना में हुए भयानक युद्ध का जीवंत वर्णन है। दोनों ओर की विशाल सेनाएं आपस में युद्ध कर रही हैं। लेकिन महोबा की सेना मुश्किल में है। पृथ्वीराज की चतुरंगी सेना के आगे टिक पाना बहुत मुश्किल जान पड़ता है।

व्याख्या : इस युद्ध में तलवार के अतिरिक्त भी हर तरह के हथियारों से सेनाएं लैस हैं। गुजरात की जुनब्बी और मानासादी की कटार भी उपयोग में लाई जा रही है। महोबा की सेना त्राहि–त्राहि कर रही है। पृथ्वीराज की सेना प्रत्येक विभाग में परमाल की सेना से मजबूत है। महोबा की सेना ऊदल को पुकार रही है। पृथ्वीराज की सेना

भारी पड़ रही है। महोबा की सेना में खलबली मच गई है। ऐसा लगता है मानो महोबा की सेना डर कर भाग खड़ी होगी। महोबा की सेना में आत्म–विश्वास बना रहे इसलिए उससे कहा जा रहा है कि तुम हमारे नौकर चाकर नहीं हो, तुम सारे लोग हमारे भाई हो। इसलिए इस विकट की घड़ी में साथ मत छोड़ना। अपने समूह में टिके रहने का आग्रह किया जा रहा है। यह भी कहा जा रहा है कि तुम्हारे साथ होने से ही हमारा धर्म बच पाएगा। इसलिए हमारा साथ मत छोड़ना।

विशेष

1. तरह–तरह के हथियारों का जिक्र हुआ है।
2. महोबा की सेना कमजोर पड़ गई है। इसलिए उसे नौकर न मानकर अपना भाई बंधु कहा जा रहा है ताकि वह युद्ध भूमि से न भाग जाए।

(10) आल्हा, देव, इंदल, जगनिक रोवन लगे जार–बेजार।

हा, हा करि सब रोवन लागे, सिगरी राये उठी रनिवास।।

आल्हा आये दरबाजे पर, घोड़न जीन लियो उतराय।

तौ लौं जगनिक गै द्वारे पै, तब आल्हा ते कही सुनाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में पृथ्वीराज की सेना द्वारा महोबा पर आक्रमण किए जाने से घबराई महोबा सेना की स्थिति का चित्रण है। पृथ्वीराज की चतुरंगी सेना ने महोबा की सेना को पछाड़ दिया है। अपनी ऐसी स्थिति देखकर महोबा की सेना के पास रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा है।

व्याख्या : पृथ्वीराज की सेना महोबा की सेना पर भारी पड़ गई है। आल्हा, देव, इन्दल और जगनिक जैसे प्रतापी शूरवीर भी यह देखकर चकित हैं। जार–बेजार होती अपनी सेना को देखकर उन्हें भी रोना आ रहा है। सिर्फ महोबा की सेना की ही ऐसी हालत खस्ता नहीं हुई है। परमाल के हरम में रह रही रानियां भी ऐसी स्थिति देखकर कांप उठी हैं। वे सभी रानियाँ भी चीख–चीख कर रोने लगी हैं।

अपनी परास्त होती हुई सेना की स्थिति को देखकर जगनिक कन्नौज पहुंचते हैं। आल्हा को अपनी स्थिति बताने के बाद उनसे आग्रह करते हैं कि अब तुम्हारी जरूरत है। तुम महोबा से जाते वक्त घोड़े से जीन भी उतार लाए हो। अब बिना जीन के घोड़ा किसी काम का नहीं रहता है। जब उस पर लगाम ही नही रहेगी तो वह घोड़ा किस काम का रहेगा। जगनिक, आल्हा को सारी दास्तान सुनाते हैं।

विशेष

1. प्रसंग यह है कि जब महोबा की सेना परास्त होने लगी थी तब परमाल की पत्नी का संदेश लेकर जगनिक आल्हा के पास पहुंचते हैं।
2. जगनिक, रानी का पत्र आल्हा को देते हुए पृथ्वीराज सेना ने महोबा की सेना की कैसी दुर्गति कर दी है यह हाल भी सुनाते हैं।

(11) काहे जीन उतार दियो तुम, सो तुम देउ हाल बतलाय।

बोले आल्हा तब जगनिक ते, घटिहा बसैं रजा परमाल।।

मलिखे मारे गै सिरसा में, नाहीं खबर दई पहुँचाया।

हाथी सजावो कजरी वन के सिंहल दीपी लेउ सजाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में जगनिक महोबा की रानी का संदेश लेकर आल्हा के पास पहुंचते हैं। जगनिक आल्हा से पूछते हैं–

व्याख्या : तुम महोबा छोड़ने के वक्त घोड़े की जीन क्यों उतार लाए थे। अब तुम बताओ कि जीन के बगैर घोड़े की क्या उपयोगिता बचती है और इतना भी क्रोध ठीक नहीं है। महोबा की जनता पर बड़ी मुसीबत आन पड़ी है, इसलिए क्रोध त्यागकर महोबा चलो। वहां पृथ्वीराज की सेना ने आक्रमण कर दिया है। आल्हा तब जगनिक से कहता है कि राजा परमाल की नीयत ठीक नहीं है। वह बेहद घटिया इंसान है। उसने मुझे अपने अहंकार में आकर राज्य से निष्कासित कर दिया है। सिरसा के युद्ध में मलखान मारा गया लेकिन इसकी भी सूचना मुझे नहीं दी गई। बहुत अनुनय विनय के बाद आल्हा युद्ध में शामिल होने के लिए राजी होते हैं। वे पृथ्वीराज की सेना से मुकाबला करने के लिए सलाह देते हैं कि कजरी वन के हाथियों को सजाओ। सिंहल द्वीप वाले हाथी का उपयोग करो।

विशेष

1. आल्हा महोबा के राजा को बहुत भला–बुरा कहता है फिर भी वह महोबा की मुश्किल घड़ी में साथ देने के लिए तैयार हो जाता है।
2. कजरी वन और सिंघल द्वीप का हाथी उत्तम कोटि का होता है। पृथ्वीराज की सेना से मुकाबला करने के लिए आल्हा रणनीति तैयार करता है।

(12) बडदन्ता औ छुट दन्ता सब, हाथी तुरत लेउ सजवाय।
इकदन्ता औ दुइदन्ता पर, हौदा धरौ सोबरन क्यार।।
मेगुल भूरा हाथी साजौ, छोटे पर्वत की उनहार।
खूनी हथिनी को सजवायो, पाँचन देउ जंजीर बँधाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में जगनिक कन्नौज में रह रहे आल्हा से जब मिलते हैं, और पृथ्वीराज की सेना के आक्रमण की कथा सुनाते हैं, तबा आल्हा अपना गुस्सा त्यागकर युद्ध में किस तरह से अपनी स्थिति मजबूत की जा सकती है। यह रणनीति तैयार कर रहे हैं।

व्याख्या : पृथ्वीराज की सेना महोबा की सेना पर भारी पड़ रही है। हर तरीके से पृथ्वीराज की सेना मजबूत और सक्षम है। महोबा की हार हो रही है। जगनिक से आल्हा कहते हैं कि महोबा की सेना को मजबूत करना होगा। बड़े दाँत वाले हाथी और छोटे दाँत वाले हाथी दोनों को युद्ध में उपयोग करने के लिए तैयार करना होगा। एक दाँत तथा दो दाँत वाले हाथी को 'हौदा' लगवा दो। 'हौदा' हाथी के पीठ पर कसे जाने वाले आसन को कहा जाता है। जिस तरह से घोड़े की पीठ पर जीन कसी जाती है। उसी तरह से हाथी की पीठ पर हौदा बाँधा जाता है। 'मेगुला' और 'छोटा पर्वत' नामक हाथी को भी युद्ध पर ले जाने के लिए तैयार करो। खूनी हाथी को तैयार करो लेकिन उसके पैर को जंजीर से बाँधा जाय, कहीं ऐसा न हो जाए कि वह अपनी ही सेना को रौंद कर रख दे।

विशेष

1. भारतीय युद्धों के इतिहास में हाथी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है।
2. इस प्रसंग में हाथी की विभिन्न नस्लों का उल्लेख किया गया है।

(13) भोंरा गज, अंगद पंगद गज, औ मलयागिरि लये सजाय।
मैन कुंज धौलागिरि साजे, भूरा हाथी लये सजाय।।
मुकना हाथी सब सजवाये, मुड़िया हौदा दये धराय।
चंदन दीनों निज मस्तक पर, भुजदंडन पर लियो लगाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत प्रसंग आल्हखंड से उद्धृत है। यह जगनिक की कृति है। वीर रस की काव्य परंपरा में जगनिक की रचना बेहद लोकप्रिय है। यह मौखिक परंपरा की भी उत्कृष्ट कृति मानी गई है। उद्धृत प्रसंग में आल्हा और जगनिक बात कर रहे हैं और आल्हा युद्ध में किन–किन हाथियों को शामिल करना उचित होगा इस पर विचार कर रहे हैं।

व्याख्या : आल्हा बताते हैं कि भौंरा, अंगद, पंगद नामक हाथी को भी युद्ध के लिए तैयार करना होगा। इन हाथियों को सेना में शामिल करने से हमारी शक्ति में वृद्धि होगी और पृथ्वीराज की सेना से मुकाबला किया जा सकेगा। जिन हाथियों को मलयगिरि से लाया गया है, उन्हें भी युद्ध में शामिल करने के लिए सजाया जाए। मैन कुंज धौलगिरि और भूरा हाथी को भी युद्ध में शामिल कर लिया जाए। ये सब अच्छी नस्ल के हाथी हैं। इन हाथियों को रणभूमि में उतारने की तैयारी कर ली जानी चाहिए। सिर्फ इतना ही नहीं जो कमजोर नस्ल के भी हाथी हैं अर्थात् 'मुकना' हाथी को भी सजा लें। इनके पीठ पर भी बैठने के लिए मुड़ा हुआ आसन लगा दिया जाए जिससे बैठकर युद्ध करते वक्त नीचे गिरने का खतरा न रहे है। इनके माथे और भुजाओं पर चंदन का लेप लगा दिया जाए।

विशेष

1. इस प्रसंग में भी हाथियों की उत्तम नस्ल का उल्लेख किया गया है।
2. जमीनी युद्ध में हाथियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। उत्तम नस्ल के हाथियों के साथ–साथ थोड़ा कम उत्तम नस्ल को भी तैयार करने की बात की गई है।

(14) लंग चढ़ाय लई रेशम की, जामें गढ़ै नाहिं हथियार।
पहले पहिरे वस्त्र बनाती, ताके ऊपर कुलह कबार।।
तेहि पर पहिरे झीलम अपनी, जामें टूट जाय तलवार।
तारे ऊपर बख्तर पहिरे, जामें सेल नाहिं अनियाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत प्रसंग आल्हखंड से उद्धृत है। आल्हा जब राजा परमाल के व्यवहार से नाराज होकर महोबा छोड़कर कन्नौज जा बसते हैं तो माहिल इस बात की सूचना दिल्ली के राजा पृथ्वीराज को देता है। पृथ्वीराज महोबा पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाते हैं। दिल्ली की सेना महोबा की सेना पर भारी पड़ जाती है। अब महोबा के पास एक ही उपाय बचता है कि किसी तरह शक्तिशाली आल्हा को पृथ्वीराज की सेना से युद्ध करने के लिए मनाया जाए। जगनिक जब आल्हा के पास संदेश लेकर पहुंचते हैं तब वे परमाल को भला–बुरा कहते हैं फिर युद्ध की तैयारी कैसे करनी है इस मुद्दे पर बात करते हैं। इस प्रसंग में सेना की कैसी तैयारी हो इस बात का उल्लेख है।

व्याख्या : सेना किस तरह के वस्त्र पहने, इस प्रसंग में समझाया जा रहा है। पहले मजबूत किस्म का वस्त्र पहनना है, उसके ऊपर से रेशम का वस्त्र चढ़ा लेना है ताकि दुश्मनों के सेना के हथियार हमारी सेना के शरीर पर वार करे तो जख्मी न हो। उसके ऊपर झीलम पहन लें ताकि तलवार का जब तुम पर वार पड़े तब तलवार ही टूट जाए। इन वस्त्रों के ऊपर से कवच को भी पहने ले ताकि भाले की नोक से भी हमारी सेना घायल नहीं हो पाए।

विशेष

1. युद्ध में जाने से पहले कपड़े का कितना महत्त्व होता है इस प्रसंग के वर्णन में मालूम चलता है।
2. युद्ध में जाने से पहले की रणनीति तैयार की जाती है।

(15) टोप झल रिहा धरि माथे पर, गोली लगत चीप ह्वै जाय।

बारह छुरियाँ कम्मर बाँधे, कलहा दुइ बाँधे तलवार।।

अगल–बगल में दुइ पिस्तौलें, दहिने सिंहिनि मूठ कटार।

भाला सोहे नागदोनि को, बायें ओर गेंड़ की ढाल।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध रणभूमि में किस तरह से तैयारी करनी है। वह इस प्रसंग में बताता है। आल्हा केवल वीर योद्धा ही नहीं है वह कुशल रणनीतिकार भी है। युद्ध में शामिल होने से पहले की रणनीति वह तैयार कर रहा है। पहले हाथियों के विभिन्न प्रकारों का जिक्र करता है। फिर सेना के वस्त्रों का वर्णन करता है। अब कवच का उल्लेख कर रहा है।

व्याख्या : सैनिक माथे पर झल्लर वाली टोपी भी पहन लें ताकि गोली सिर में न लगे। कमर में बारह छुरियां बांध लें और दोनों तरफ तलवार भी बाँध लें। अपने अगल बगल दोनों तरफ पिस्तौल भी रखें। दाहिने तरफ सिंहिन मूठ वाली तलवार को रख लें। भाले से बचाव के लिए 'नागदेनी' कवच को पहनकर रखना है। बाईं ओर गैंडे की खाल से बने कवच को भी धारण करना है। कहने का अर्थ यह है कि महोबा के सैनिक युद्ध में जाने से पहले इतनी तैयारी कर लें कि प्रतिद्वंद्वी सेना के किसी भी हथियार के वार के असर को असफल कर दें।

विशेष

1. परमाल के समय में गोली और बारूद का इस्तेमाल संदेह पैदा करता है। पिस्तौल का उपयोग भी चौंकाता है। ऐसा लगता है, मानो यहां प्रक्षिप्त अंश को जोड़ा गया है।
2. आल्हा की रणभूमि में जाने से पहले की रणनीति अद्‌भुत है।

(16) जोड़ी बाँधे कड़ाबीन की, गोली टका भरे की खाय।

लैकैं पटुका कम्मर बाँधे कम्मर तीन–तीन बल खाय।।

लाल कमनियाँ है मुलतानी–गाँसी डेढ़ सेर की खाय।

रीतिनीति से जो कोउ बर्ते, ताकी कबहुँ होय नहिं हार।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध रणभूमि में किस तरह से तैयारी करनी है। वह इस प्रसंग में बताता है। आल्हा केवल

टिप्पणी

वीर योद्धा ही नहीं है वह कुशल रणनीतिकार भी है। युद्ध में शामिल होने से पहले की रणनीति वह तैयार कर रहा है। पहले हाथियों के विभिन्न प्रकारों का जिक्र करता है। फिर सेना के वस्त्रों का वर्णन करता है। अब कवच का उल्लेख कर रहा है।

व्याख्या : अपने सैनिकों को इस तरह से तैयार करता है कि प्रतिद्वंद्वी सेना गोली भी चलाए तो शरीर से टकरा कर नीचे जमीन पर गिर जाए। इसके लिए अपने शरीर के दोनों ओर कड़ाबीन भी बांध लेना है। जमीनी युद्ध में भुजाओं के अतिरिक्त कमर की भी भूमिका बहुत होती है। खासकर तलवार बाजी में कमर की लचक भी ठीक से होनी चाहिए। इसलिए कमर में 'पटुका' बांध लेना है। मुलतानी के लाल बाँस से बनी कमान का इस्तेमाल करना है। इस्तेमाल से पहले उस कमान को तेल में भिगोकर रखना है ताकि कमान में मजबूती आ जाए। इस तरह से जो सेना रणनीति बनाकर रणभूमि में उतरेगी, उस सेना की कभी हार नहीं हो सकती है।

विशेष

1. युद्धकला का जबर्दस्त वर्णन है।
2. आल्हा की सुरक्षा कवच की जानकारी भी लाजवाब है। वह केवल युद्धकला में ही निपुण नहीं हैं बल्कि युद्ध की रणनीति तैयार करने में भी कुशल हैं।

(17) हा, हा खाते कों ना मारै, नां तिरिया पर डारै हाथ।

बालक बूढ़े कों ना मारै, ना भागे के परै पिछार।

पहिली चोट करै कबहूँ नहिं, ना निर्बल पर करैं प्रहार।

ताकौं मारै ना काहू विधि, जारे पास नाहिं हथियार।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में सिरसा युद्ध में महोबा की हार निश्चित हो गई है। आल्हा को राजा परमाल ने अपने राज्य से निष्कासित कर दिया। लेकिन पृथ्वीराज की सेना से युद्ध लड़ने में आल्हा की जरूरत है। आल्हा के बिना इस रणभूमि में पृथ्वीराज की सेना को हराना असंभव है। जगनिक को आल्हा को मनाने के लिए कन्नौज भेजा गया है। आल्हा पहले परमार के बारे में खरी–खोटी सुनाता है। फिर महोबा आने के लिए राजी हो जाता है। वह युद्ध की रणनीति तैयार कर चुका है। इस प्रसंग में नैतिक नियमावली का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या : युद्ध भूमि के नियमों का वर्णन करते हुए आल्हा बताता है कि किसी भी दशा में दुश्मन सेना को खाते हुए नहीं मारना है। यह युद्ध का नैतिक नियम है कि खाना खाते वक्त किसी पर आक्रमण नहीं करना चाहिए। युद्ध के दौरान किसी स्त्री पर भी वार नहीं करना है। बालक और बुजुर्ग को भी छोड़ देना है। उन पर प्रहार नहीं करना है। युद्ध से डर कर जो सैनिक भाग रहा है। उसे भी छोड़ देना है। भागते हुए सैनिक पर पीछे से प्रहार नहीं करना है। अपनी तरफ से पहला वार भी नहीं करना है। कमजोर पर प्रहार नहीं करना चाहिए। जिस सैनिक के पास हथियार नहीं है, उसे भी किसी भी तरीके से नहीं मारना चाहिए।

विशेष

1. युद्ध में नैतिक नियमों का सख्ती से पालन करने की चर्चा है।
2. युद्ध लड़ने से पहले इन नियमों को ठीक से समझाया गया है।

(18) पाँव पिछारू कों ना देवै, ताकी जीत होय सब काल।

धन्न जनम है बा क्षत्री कौ, परहित सीस देय कटवाय।।

जग में सुख के साथी सब ही, दुःख में बिरले होत सहाय।

अब जो तुम कनवज ना जैहौ, तो हम पेट फारि मर जाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में जगनिक से मल्खान कहता है कि कन्नौज जाओ और आल्हा को युद्ध में शामिल होने के लिए तैयार कर महोबा लेकर आओ। जगनिक कन्नौज जाकर आल्हा से मिलते हैं और पृथ्वीराज द्वारा महोबा पर आक्रमण की जानकारी देकर उनसे रणभूमि में उतरकर महोबा की रक्षा के लिए अनुनय–विनय करते है। रणभूमि में किस तरह से पृथ्वीराज की सेना को परास्त किया जाए आल्हा ने इसकी रणनीति तैयार कर ली है।

व्याख्या : जो वीर योद्धा अपना पैर पीछे नहीं करता है, वह हर समय जीत का भागी बनता है। रणभूमि में जीत उसी योद्धा को हासिल होती है जो अपना पैर पीछे नहीं करता है। उस क्षत्रिय का जन्म धन्य है जो किसी दूसरे के हित में अपना सिर तक कटवा लेता है। यहां मल्खान कहता है–इस संसार में सुख के समय सभी साथ निभाते हैं लेकिन दुख में कोई बिरला ही साथ होता है। संकट के समय बहुत कम लोग सहायता करते हैं। मल्खान, जगनिक से कहता है कि अब इस संकट के समय तुम हमारा साथ दो और जाकर आल्हा को समझा–बुझा कर लेकर आओ। यदि तुमने ऐसा नहीं किया, तब समझ लो मैं अपना पेट फाड़ कर यहीं मर जाउंगा।

विशेष

1. मल्खान युद्ध कला में आल्हा की तरह निपुण है। वह परमाल का सेनापति है। एक जगह ऐसा भी संदर्भ आता है कि जब मल्खान और पृथ्वीराज के सेनापति चौड़ा का मुकाबला होता है। तब चौड़ा बुरी तरह से परास्त हो जाता है। मल्खान, चौड़ा को बाँधकर स्त्री के वस्त्र पहनाकर संदूक में डाल देता है और पृथ्वीराज के पास भेज देता है। पृथ्वीराज इस घटना से बहुत क्रोधित हो जाता है।
2. मल्खान बाहुबली योद्धा है।

(19) यह गति देखी जब मल्हना की, जगनिक बोले बैन सुनाय।

पवन बछेरा हरनागर दो, तौ हम आल्हा पै चलि जायें।

मल्हना जगनिक के संग लौटीं, ब्रह्मनंद की लियौ बुलाय।

घोड़ा हर नागर उन माँगों, समै समझ कें देउ मँगाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। पृथ्वीराज के महोबा पर आक्रमण करने के उपरांत महोबा नरेश परमाल की सेना बुरी तरह से परास्त होने लगी है। समूचे महोबा पर संकट छा जाता है। महोबा में यह संकट आया हुआ है और आल्हा कन्नौज जाकर बस गया है। उसे बुलाने के लिए मल्खान जगनिक को तैयार करते हैं और कहते हैं जाओ आल्हा को यहां का हाल बताओ और उसे लेकर आओ। यदि तुम नहीं जाओगे, तब मुझे ही जाना पड़ेगा।

व्याख्या : मल्खान की ऐसी स्थिति हो गई है कि उसे समझ में ही नहीं आ रहा है कि किस तरह से पृथ्वीराज की सेना पर काबू पाया जा सकता है। मल्खान की स्थिति बहुत विकट हो गई है। इसलिए जगनिक कन्नौज जाने का वचन देते हैं। वह आल्हा के पास जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। मल्खान जगनिक के साथ लौटेगा और ब्रह्मानंद भी बुलाने पर आएगा। पृथ्वीराज की सेना के विरुद्ध आल्हा और ब्रह्मानंद के बगैर नहीं लड़ा जा सकता है। राज्य के जिन नागरिकों के पास घोड़ा है उन्हें मंगवा कर अपनी सेना में शामिल करना होगा। यही समय की मांग है। राज्य की जनता इस संकट को समझकर अपना घोड़ा दे देंगे।

विशेष

1. राज्य के सभी योद्धाओं को साथ मिलकर युद्ध लड़ने की सलाह है। मशवरा किया जा रहा है।
2. इस युद्ध में राज्य के नागरिकों से भी सहयोग मांगने की बात की जा रही है।

(20) पाती लिखी मल्हनदे रानी, नैनन बहै नीर की धार।

स्वस्ति श्री आल्हा कों लिखि कों, लिखी बात सब ब्यौरेवार।।

सात लाख दल लैकें महुबो, घेरौ आय पिथौरा राय।

पाँव पिछारन ना धरियो तुम, नहिं क्षत्रिपन जाय नसाय।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश आल्हखंड से उद्धृत है। इस प्रसंग में जगनिक को कन्नौज भेजे जाने की तैयारी है ताकि वह आल्हा को बुलाकर लाए। मल्खान की पत्नी आल्हा के नाम एक पत्र लिखकर संदेश भेजती है कि पृथ्वीराज ने किस तरह से महोबा पर आक्रमण किया है। उस पत्र में वर्णन करती है।

व्याख्या : जगनिक जब आल्हा को बुलाने के लिए कन्नौज रवाना हो रहे होते हैं, तब मल्खान की पत्नी की आंखों से आंसू की धारा बहने लगी है। पृथ्वीराज के अत्याचार का विवरण वह पत्र के माध्यम से लिखकर जगनिक के हाथों आल्हा को भेजती है। उस खत में आल्हा की कुशलता और शुभ के लिए प्रार्थना करती है तथा महोबा की वास्तविक स्थिति का विवरण भी लिखती है। वह उस पत्र में लिखती है कि किस तरह से सात लाख सैनिकों के दल ने पूरे महोबा को घेर लिया है। यह सैन्य दल पृथ्वीराज चौहान का है। हे आल्हा इस संकट की घड़ी में तुम महोबा की रक्षा करो। यही तुम्हारे क्षत्रिय होने का धर्म भी है।

विशेष

1. मल्खान की पत्नी आल्हा को मार्मिक चिट्ठी लिखकर अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करने की गुहार लगाती है।
2. सात लाख सैनिकों की भारी संख्या ने महोबा को धेर लिया।

(21) जो सुनि लौहौं भगे ककौजो, तो मैं पेट फारि मरि जाऊँ।

सम्मुख रण में जो जूझेंगे, लैकें साथ सती हो जाऊँ।।

इतनी सुनि हँसि लाखन बोले, रानी बचपन करौ परमान।

इंद्र डोल जाँय इंद्रासन, औ शिव डोल जाय कैलास।

लाखन डोलन के नाहीं हैं, जौलौं तन में रैहै साँस।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश 'आल्हखंड' से उद्धृत है। पूरे महोबा को पृथ्वीराज की सेना ने घेर लिया है। इस युद्ध में परमाल की हार निश्चित है लेकिन परमाल की पत्नी जानती है कि यदि आल्हा को बुला लिया जाए, तब पृथ्वीराज की सेना हमें किसी सूरत में नहीं हरा पाएगी।

व्याख्या : तुम यह बात ठीक से समझ लो, यदि तुम रणभूमि को छोड़कर कन्नौज भाग गए तो मैं अपना पेट फाड़कर मर जाऊँगी और यदि रणभूमि में डटकर संघर्ष किया फिर हार भी गए तो मुझे कोई गम नहीं होगा। सभी रानियों को साथ लेकर मैं भी सती हो जाऊँगी। रानी की इस बात को सुनकर कर लाखन बोलता है कि रानी तुम बच्चों की तरह क्यों बात करती हो। यदि इंद्र का सिंहासन हिलने लगे, शिव का कैलाश पर्वत भी हिलने लगे लेकिन रणभूमि से लाखन का मन नहीं डोल सकता है। जब तक मेरे शरीर में साँस चलती रहेगी, तब तक मैं रणभूमि में युद्ध करता रहूंगा।

विशेष

1. रानी ने अपने मुंह से सती हो जाने की बात कही है। भारतीय युद्धों के इतिहास में राजा की हार की बाद रानियां आग में कूद कर अपनी जान दे देती थीं ताकि दुश्मन उन पर अत्याचार न कर सके।
2. लाखन की रणभूमि में डटे रहने की दृढ इच्छा का प्रतिबिंबन हुआ है।

(22) माय सपथ माता तिलका की, पितु जयचंद के रक्त न हौउ कटि–कटि माँस गिरे धरनी पै, पै ना धरौ पिछारू आज।

अगल–बगल में आल्हा, ऊदल भैयद चले अगारू आज या विधि भेंटे हैं जयचंद्र सों, देखत वीर रहे हरषाय।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत वाक्यांश 'आल्हखंड' से उद्धृत है। इस प्रसंग में लाखन शपथ खाता है कि चाहे जैसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो जाए। वह पृथ्वीराज की सेना के आगे डटकर मुकाबला करेगा। किसी भी कीमत में अपना कदम पीछे नहीं हटाएगा।

व्याख्या : मां तिलका और पिता जयचंद की शपथ खाकर कहता हूं कि यदि मैं इस युद्ध में अपना कदम पीछे हटा लेता हूं तो मैं तिलका का बेटा नहीं और मेरे शरीर में पिता जयचंद का रक्त नहीं। मेरे शरीर का टुकड़ा–टुकड़ा धरती पर कट कर गिर जाए फिर भी मैं अपना कदम पीछे नहीं हटाऊँगा।

आल्हा–ऊदल दोनों भाई आगे–आगे चल रहे हैं और लाखन उनके साथ–साथ चल रहे हैं। इस तरह से वे सभी जयचंद से मिले हैं। इन लोगों को देखकर, इनकी आभा देखकर सब हर्षित हो रहे हैं।

विशेष

1. युद्ध में डटे रहने के लिए संकल्पबद्ध हैं।
2. आल्हा–ऊदल के साथ आ जाने से महोबा की सेना मजबूत हो गई है।

(23) आज्ञा माँगी तब आल्हा ने, स्वामी सुनौ कनौजी राय।

भूल चूककर क्षमा हमारी, हँसि कै आयुसु देहु सुनाय।।

बोले जयचंद तब आल्हा सें, हैं सब सीस तुम्हारे भार।

विजय तुमारी महुबे होवै, औ मैदान फरै तलवार।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश 'आल्हखंड' से लिया गया है। इस प्रसंग में आल्हा कन्नौज से विदा हो रहे हैं। वह यहां परमार से नाराज होकर आ गए थे लेकिन महोबा में आयी विपदा के कारण वे फिर महोबा की ओर रुख करने के लिए राजा जयचंद से आज्ञा मांग रहे हैं।

व्याख्या : कन्नौज के राजा जयचंद से आल्हा ने आज्ञा मांगी है। वे कह रहे हैं आपने मुझे शरण दिया है। इतने सम्मान के साथ अपने राज्य में रहने का अवसर प्रदान किया है। इस बीच में मुझ से कोई भूल–चूक हो गई हो तो मेरी गलती को क्षमा कर दें और हँसकर मुझे आशीर्वाद प्रदान करें ताकि मैं महोबा में आई विपत्ति को दूर करने में सहायक हो सकूँ।

आल्हा की विनम्रता से प्रसन्न होकर जयचंद ने आल्हा से कहा–इन सारे सिरों की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है। यानी अब महोबा की जनता की रक्षा की जिम्मेदारी तुम्हारी है। तुम महोबा में राजा पृथ्वीराज की सेना को पराजित कर जीत हासिल करोगे। युद्ध के मैदान में तुम्हारी तलवार के आगे कोई भी योद्धा टिक नहीं सकता है।

विशेष

1. आल्हा कन्नौज के राजा जयचंद से आज्ञा और आशीर्वाद मांगता है।
2. वीरता के साथ विनम्रता भी आल्हा के व्यक्तित्व का हिस्सा है।

(24) लेत जुहारी सब रैयत की, लाखन हाथ जोर सिर नाय।

भूल चूक कर क्षमा हमारी, आयसु देउ महोबे जॉय।।

हुकुम मानियो मात–पिता कौ, याही कहें जात समुझाय।

कूच बोलि लाखन नें दीनी, रणचण्डी देवी कौ ध्यान।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत काव्यांश 'आल्हखंड' से लिया गया है। यह प्रसंग कन्नौज में जाकर रह रहे आल्हा का महोबा की ओर प्रस्थान करने के समय का है। आल्हा कन्नौज के राजा जयचंद से आज्ञा लेकर पृथ्वीराज की सेना से युद्ध करने के लिए महोबा की ओर कूच करने के लिए तैयार है। साथ में जयचंद का पुत्र लाखन भी इस युद्ध में आल्हा के साथ जा रहा है। लाखन अपने पिता से आज्ञा लेता है।

व्याख्या : लाखन भी अपने राज्य को छोड़कर महोबा की सहायता करने के लिए जा रहा है। हाथ जोड़े और अपने सिर को झुकाकर राज्य की सभी प्रजा से अभिवादन स्वीकार करते हुए कह रहा है कि मुझसे जो भूल–चूक हुई हो, उसे क्षमा कीजिए। महोबा युद्ध लड़ने के लिए जा रहा हूं इसलिए मुझे आप लोग अपना आशीर्वाद दीजिए।

अपने माता–पिता के आदेशों का पालन करना यही यहां से जाते समय सबको समझा रहा हूं। मां रणचंडी को अपने मन में ध्यान करते हुए कन्नौज की धरती से विदा होता है और महोबा की तरफ निकल पड़ता है।

विशेष

1. राजकुमार लाखन जिस तरह से अपनी प्रजा के आगे सिर झुकाकर आज्ञा मांग रहा है और अपनी भूल–चूक के लिए क्षमा याचना कर रहा है। वह आदर्श रूप है।
2. मां दुर्गा का स्मरण कर वह अपने राज्य से विदा होता है।

4.3.3 माधव शुक्ल 'मनोज'

बहुचर्चित कवि माधव शुक्ल मनोज का जन्म 1 अक्टूबर, 1930 को सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था। कवि, साहित्यकार, समाज चिंतक, स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेली कविता के स्थापित कवि हैं। लोक साहित्य और लोक कलाओं में विशेष रुचि रखने वाले 'मनोज' बुंदेलखंड के विख्यात नृत्य राई पर शोध करने के लिए भी जाने जाते हैं।

माधव शुक्ल 'मनोज' एक कृषक परिवार में जन्मे थे। उनका परिवार आर्थिक रूप से बेहद कमजोर था, इस कारण उनकी परंपरागत शिक्षा में कई अवसरों में व्यवधान भी आया। आर्थिक दिक्कतों ने उन्हें जल्द ही ठोस आय के स्रोत खोजने के लिए बाध्य किया था। वे उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे लेकिन आर्थिक आधार मजबूत न होने के कारण उन्हें अध्यापन की ओर जाना पड़ा। तात्कालीन समस्याओं ने उन्हें यह निर्णय लेने के लिए बाध्य अवश्य किया था लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अपना विशिष्ट योगदान दिया। इसी योगदान के कारण उन्हें 1984 में राष्ट्रपति शिक्षक पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उनका जीवन संघर्ष उनकी कविताओं का मुख्य आधार बना।

साहित्यिक योगदान

आधुनिक बुंदेली कविता में माधव शुक्ल 'मनोज' बड़े सम्मानित नाम हैं। उनकी कविताओं में बुंदेली जीवन का संघर्ष, यातना और स्वप्न प्रतिबिंबित होता है। ग्रामीण जीवन का यथार्थ 'मनोज' की कविता का मूल आधार है। उन्होंने पुरानी परंपरागत शैली को नकार दिया और मौलिक काव्य रचना की ओर मुखातिब होकर एक नई काव्य शैली को विकसित करने में अपनी अहम भूमिका निभाई। माधव शुक्ल 'मनोज' ने पद्य तथा गद्य विधाओं में प्रचुर लेखन किया है। 'सिकता कण', 'भोर के साथी', 'माटी के बोल', 'एक नदी कंठी–सी', 'नीला बिरछा', 'धुनकी रुई पै पौआ' आदि काव्य संग्रह प्रमुख हैं। मनोज ने बुंदेली गघ को एक नया आयाम दिया है।

'बुंदेलखंड के शिशु गीत', 'बुंदेलखंड के लोक नृत्य', 'नौरता', 'प्यास का बवंडर', 'अग्नि कुंड' तथा 'ईसुरी' की कविता' इनके प्रमुख गद्य संकलन हैं। मनोज ने 'बेला नटनी' शीर्षक से बुंदेली संगीत रूपक लिखा है। 'राजा हरदौला बुंदेला' शीर्षक से लिखा नाटक बेहद चर्चित हुआ। मनोज ने 'विन्यास' नामक साहित्यिक पत्रिका का संपादन भी किया। साहित्य सेवा में अमूल्य योगदान के लिए इन्हें अनेक साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त हुए।

साहित्यिक विशेषताएं

माधव शुक्ल 'मनोज' की कविता में बुंदेली लोक जीवन का वैभव अपनी पूरी आभा के साथ उभर कर अभिव्यक्त हुआ है। इन्होंने ग्रामीण जीवन के श्रम को अपनी कविता के मुख्य विषय के रूप में चुना। श्रम के सौंदर्य को विविध रूपों में मनोज की कविताओं में देखा जा सकता है। अमानवीय होते समाज में मानवीय संबंधों को माधव शुक्ल 'मनोज' ने अपनी कविता में पूरी संवेदना के साथ प्रकट किया है। आजीवन क्रांतिकारी जीवन जीने वाले मनोज की कविताओं में सामाजिक विद्रूपताओं तथा व्यवस्था के खिलाफ स्वर गूंजता है। मनोज के काव्य में विद्रोह का स्वर मुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है।

टिप्पणी

रचनाओं का मूलपाठ

(1) हाथ उठा चौकन्ना से

बड़ी रसीली काँ गई रातें,
काँ गये वे दिन गन्ना से।
इतै उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
आसमान आसा पै टाँगें,
निकर गये निस दिन चौमासे।
चौपर–सी जा नल की बाजी
परे न अब लों सीधे पाँसे।
घूरे के दिन फिर गये तो भी,
ऊँसई के ऊँसई हम रये।
बड़े–बड़ों के आगे हम तो,
फिक गये एक अधन्ना से।
इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
आसा कौ मैदान दूधिया,
जामें हँसे चँदनियाँ–सी'।
भर–भर खूब कुलाँचें मारे,
ममता जहाँ हिरनियाँ सी।
कहूँ पै बज गई बीन मुरलिया,
नटिया और बहेलिया की।
हम हाथों की एक ढुलकिया,
बज रये तिक तिक धिन्ना से।
इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
लगे नोंन–सी जा जिंदगानी,
बातें फीकी गाजर सी।
ऊँसई सी जा लगन लगी है,
दुनियाँ जूठी पातर–सी।
लैं लैं खूब करोंटा काटीं
सब रातें भुनसारें खों।
खुली–खुली सी पोथी रै गई

उलट गये हम पन्ना से।
इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।
लटके रै गये रोंठा सपनें
पक गई साँसें रमुआँ की।
अरथी बँधन लगी बे मौसम,
बीस बरस के धुनआँ की।
फरीं न फूलीं जे तिसनाए
घुट गये घर के घुआँ में।
हम खुटियन पै लटके रै गये
फटे पुराने उन्ना से।
इतै–उतै हम फिरतई रै गये,
हाथ उठा चौकन्ना से।

(2) नीके बसंती आ गये दिना

बजी ढुलकिया तिक–तिक धिन्ना,
नीके बसंती आ गये दिना।
सपनों की क्यारी में झूमे सुमन
मुस्कावे आँखियन में नीलो गगन।
अँगना में इठलाकें फूलें धना,
नीके बसंती आ गये दिना
धरती मगन है, मौसम मगन,
गेहूँ की बालों पै नाचै पवन।
हरिया के बूँटन लागे चना,
नीके बसंती आ गये दिना।
जीवन में जीवे की लागी लगन,
खुशबू में मँहकन लगी है चमन।
मौसम बजाउन लगौ झुनझुना,
नीके बसंती आ गये दिना।

(3) फागुन आ गऔ

फागुन आ गऔ,
नवरंग छा गऔ,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया
अमवा पै कूकन लागी कोयलिया

खेतों में गूँजन लागी मुरलिया।
चौपालें टिमकी पै थिरकन लागीं।
सबकौ मन हो गऔ पिया,
हो गई जा धूरा गुला पिया
चल रई है पुरवैया लैकें अँधूरा,
लग रई है माथे पै मौसम की धूरा,
मिल जुर कें सब कोऊ गाउत है फागें,
मिट गऔ है मन कौ मलाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।
हँस रई चिरौंजी सी दाँतों की पाँतें,
मिसरी सी मीठी हैं सब काऊ की बातें,
उठकें उमंगों पै डोलत–फिरत हैं,
कोऊ अब नइयाँ अलाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।
टेसू भी फूले, सेमर भी फूली,
आगत के सपनों में आषायें झूलीं।
बासंती रंगों में रंग ई जा देहिरा,
मुखड़ा रंगीलौ निकाल पिया,
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।।

(4) कब से देखूँ बाट पिया की

कब से देखूँ बाट पिया की लौट अबहूँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

राह देखती बाट जोहती,
देखूँ कौन डगरिया रे।
फरर फरर पुरवैया बैरिन,
खींचे रोज चुनरिया रे।
पोरा गिन गिन तड़पूँ तुम बिन,
सूनी सेज सिजरिया रे।
नहीं सुहावै पनघट कुइया,
भरी न जाय गगरिया रे।
कटे न काटे कटतीं रतियाँ,
दूभर हो गई निंदिया रे।
अँधियारे में बड़ी चिलकनूँ,
फीकी हो गई बिंदिया रे।

कहूँ कौन सें बात हिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

ना कोऊ घर में देखे परखे
मोरी नई उमरिया रे।
आज फूल–सी मैं कुमला गई
तरसत नाहिं सँवरिया रे।
गोरी थी सो साँवरी हो गई
तानें देत जिठनियाँ रे।
भई दूबरी ढीली हो गई
कम्मर की करधनियाँ रे
चर्चा करें पड़ौसन गुइयाँ
मैं बिरहा की मारी रे।
रोज चिढ़ावै ननद नवेली
मैं लाजवंती हारी रे।

मन ही मन में रही जिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

प्यासे बैल पियें नहिं पानी
सूनों खेत मड़ैया रे।
द्वार सूँघती तुमें रँभाती
घर की सुरहन गैया रे।
नहिं पठायौ खबर संदेसौं
रम गये कहाँ रमैया रे।
लिये सुमरनी टेरूँ तुमखों
प्यारे भूमि भुमैया रे।
पूजूँ तुलसी कौ तुलसानो,
भर–भर नैन सुरतियाँ रे,
दिन डूबे तक दरवाजे की
खोले रहूँ किबरियाँ रे।

करूँ आरती साँझ दिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।
झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

(5) अँगना के फूल खिला जइयो

चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।

ऊपर है बादर, नीचे है धरती
परती के भाग जमा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
परवत की धारा, जमुन जल पानी,
नैया खों समतल बहा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
भूलौ सौ मौसम, सूखी बदरिया
सूखी सी आँख जुड़ा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
आगत की आशा, नन्हों सौ सपनों,
संझा सकारे हँसा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
खादी बिछौना, सादौ उढ़ौना,
सूती उसीसौ भरा जइयो,
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
गाँव के राजा, हौ तुम महाराजा,
गेहूँ कौ देस बना जइयो
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
पूरन सें अइयो सो सब दिन रहियो
रैन जुन्हैया नहा जइयो।
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।
छोटी सी धरती, बड़ौ अँधियारौ
मन कौ उजयारौ लगा जइयो,
चले अइयो हो,
अँगना के फूल खिला जइयो।

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

हाथ उठा चौकन्ना से

बड़ी रसीली काँ गई रातें

.....

.....

हाथ उठा चौकन्ना से।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : यह कविता माधव शुक्ल 'मनोज' की है। कवि ने इस कविता में बुंदेलखंडी समाज की प्रगति और विकास की नकली कहानी का व्यापक चित्रण किया है। इस कविता में बुंदेलखंडी समाज की विकट हो रही समस्याओं को भी उभारा है।

व्याख्या : बुंदेली चेतना के श्रेष्ठ कवि माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेलखंडी समाज की अच्छे दिनों के बदल जाने तथा समस्याओं सो घिरने का चित्रण करते हुए बताते हैं कि खुशहाल जीवन की वह सुकून देने वाली रसीली रातें कहां गई और गन्ने जैसे मीठे दिन आज कहां गुम हो गए? आज हम बेरोजगारी अशिक्षा, पेयजल जैसी समस्याओं से घिरे इधर–उधर होते रह गए हैं। राजनीति के जंजाल और भ्रष्टाचार के चलते हम सावधानीपूर्वक आगे बढ़ रहे थे, फिर भी हमारे बुंदेलखंड और हमारा विकास नहीं हो पाया।

कविता के दूसरे बंध में कवि ने किसानों की समस्या को चित्रित करते हुए लिखा है कि इस वर्ष भी वर्षा की उम्मीद में सारा चौमासा निकल गया। अब तक एक बूंद भी नहीं बरसी। ऐसा लगता है मानो इस साल भी सूखा पड़ जाएगा। यह कैसी विडम्बना है। नल से पानी आना भी बंद हो गया है। क्योंकि भूमिगत जल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। गोबर के भी दिन फिर गए हैं। वह गोबर से खाद में तब्दील हो गया लेकिन हम लोग खाली के खाली रह गए। बारिश के बिना खेत बोया तक नहीं जा सका। बड़े–बड़े साहूकारों के आगे हम हाथ जोड़कर कर्जा लेने के लिए गिड़गिड़ा रहे हैं, बुंदेलखंडी किसानों की दशा इतनी खराब हो गई। दुनिया ने कितनी तरक्की कर ली है लेकिन हम कितने पीछे रह गए हैं। इधर–उधर भटकते रहने के कारण दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर चल तक नहीं पा रहे हैं।

कवि बुंदेलखंड के किसानों की समस्या, स्वच्छ ईंधन और शुद्ध पेयजल की समस्या का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि आशा और विश्वास हमें दूध की भांति शक्ति देने वाला है जो हमें चांदनी रात में हँसाता है। बुंदेलखंड में इतनी गरीबी के बावजूद मां की गोद में बच्चा खुशी–खुशी सो जाता है। कहीं पर कृष्ण की मुरली बज कर सुकून बांट रही है और यहां कोई हमें बहेलियों की तरह नोच–खसोट रहा है। हम बुंदेली, ढोलक की तरह बज रहे हैं अर्थात् समस्याओं से नहीं निकल पा रहे हैं औरा चिन्ता से घिरे रह गए हैं।

नमक की भांति हमारी जिन्दगी सस्ती और खारी हो गई है। नेताओं की बातें गाजर–मूली की तरह जुमले हो गए हैं। हम लोगों का जीवन न जाने कैसे व्यतीत होगा। यह चिन्ता हमें खाए जा रही है। यह दुनिया हमें जूठी पत्तल की तरह व्यर्थ–सी लगने लगी है। रात में बिजली चली जाने तथा मच्छरों के काटने के कारण रात को नींद भी नहीं आती है। रात भर करवटें बदल–बदल कर गुजारनी पड़ती हैं।

सरकार की योजनाएं और नेताओं के बाद केवल कागजों में पूरे होते हैं। असल जीवन में कुछ भी बदलाव नहीं हो सका है। हम आज तक मूलभूत सुविधाओं से वंचित रह गए हैं। जिस तरह से किताबों के पन्ने पलट दिए जाते हैं ठीक उसी तरह हमारे विकास की फाइलों में सिर्फ खानापूर्ति के लिए पन्ने भरे गए हैं। हम लोग इधर–उधर फिरते रह गए हैं। इसलिए अब हमें चौकन्ना होकर अपना हाथ ऊपर उठाना है। मतलब बदलाव के लिए कमर कस लेना है।

खट्टे आम की भांति हमारे सपने अधूरे रह गए हैं। बीस साल के धुनवा नामक किसान की मौत कर्ज और बेरोजगारी से हो गई है। यह बेहद दुखदायी घटना है और हमारे समाज की सबसे बड़ी त्रासदी है। रमुआ नामक मजदूर की भी सांसें फूलने लगी हैं। फैक्ट्रियों से निकलने वाले जहरीले धुएं से वायु प्रदूषण की समस्या भी बढ़ गई है। सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा नहीं बची है। बुंदेली गृहिणी कहती है कि लकड़ियों के ईंधन से भोजन पकाते–पकाते धुएं से दम घुटने लगा है, परेशान हो गए हैं। अब हमें स्वच्छ ईंधन की जरूरत है। हम फटे–पुराने कपड़ों की तरह से हो गए हैं जिसका उपयोग घिसे–पिटे कामों के लिए किया जाता है। हम सिर्फ कठपुतली होकर रह गए हैं। अब हम सावधानीपूर्वक अपने विकास के मार्ग को खोलना चाहते हैं।

विशेष

1. बुंदेलखंड की विकट समस्याओं तथा उसके विभाग की वास्तविक तस्वीर खींची गई है।
2. नेताओं ने बुंदेलखंडियों का सिर्फ इस्तेमाल किया है , उसके विकास के बारे में कभी नहीं सोचा है।
3. इस कविता में प्रतीकात्मक रूप में बहुत सारी समस्याओं और मसलों को उभारने का प्रयास किया गया है।
4. कविता बदलाव के लिए प्रेरित करती है।
5. टटके बिम्बों और रूपकों का प्रयोग है।

नीके बसंती आ गये दिना

बजी ढुलकिया तिक–तिक धिन्ना,

.....

.....

नीके बसंती आ गये दिना।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता में माधव शुक्ल मनोज ने बुंदेलखंड अंचल में बसंत ऋतु के खूबसूरत दिनों का चित्रण किया है। इस कविता में लोक–संस्कृतिक का सूक्ष्म विश्लेषण दिखाई पड़ता है।

व्याख्या : बुंदेली चेतना के श्रेष्ठ कवि माधव शुक्ल मनोज ने बसंत ऋतु में बुंदेलखंड अंचल की लोक संस्कृति का चित्रण करते हुए लिखा है कि–बसंत के अच्छे दिन आ गए हैं। युवक–युवतियों और प्रेमी–प्रेमिकाओं के सपनों की क्यारी में फूल खिल रहे हैं अर्थात् बसंत में राग–रंग का आनंद हर कोई उठा रहा है। संगीत समारोह में ढोलक की धुन 'तिक तिक धिन्ना' बज रही है। इस धुन में मग्न होकर सारे लोग नृत्य कर रहे हैं।

पत्नी और प्रेमिका आंगन में इठला रही हैं और प्रेम की खुशी में झूम उठी हैं। आसमान की तरह नीली–नीली सुंदर आंखें भी चमक रही हैं। अपनी मुस्कुराहट बिखेर रही हैं।

बसंत के अच्छे दिनों में प्रकृति के सौंदर्य में धरती भी मग्न है और मौसम भी मग्न है। सुहावने मौसम में हर कोई खुशी मना रहा है। तेज हवा के कारण खेतों में लगी गेहूं की बाली नाचती हुई प्रतीत हो रही है और चने के बूंटों को तोते चुन–चुन कर खा रहे हैं अर्थात् बसंत में खेत लहलहा रहे हैं।

बसंत के अच्छे दिनों में, सबकी जिन्दगी में नई उमंग जाग चुकी है। सबको जीवन जीने की लगन लग गई है अर्थात् हर कोई अच्छी और खुशहाल जिन्दगी जीना चाह रहा है। सुहावना मौसम झुनझुने (खिलौना) की तरह सबको आकर्षित कर रहा है। फूलों की खुशबू से चमन महकने लगा है। अर्थात् बसंत के अच्छे दिनों में, सबका जीवन सुखमय हो गया है।

विशेष

1. इसमें बसंत के मौसम में बुंदेलखंड अंचल के लोक जीवन का चित्रण हुआ है।
2. प्रकृति–सौंदर्य की छटा बिखरी दिखाई दे रही है।
3. भाषा–साहित्यिक बुंदेली है।
4. लोकगीत शैली है।
5. संगीतात्मकता, लयात्मकता और गेयता है।
6. पुराने और ठेठ बुंदेली शब्दों का प्रयोग हुआ है।

फागुन आ गओ

फागुन आ गओ,

.....

.....

हो गई जा धूरा गुलाल पिया।।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता माधव शुक्ल 'मनोज' की कविता 'फागुना आ गओ' शीर्षक से उद्धृत है। माधव शुक्ल मनोज की गणना बुंदेली चेतना के श्रेष्ठ कवियों में होती है। इस कविता में कवि ने बुंदेलखंड के अंचल की बसंत ऋतु के सौंदर्य का मार्मिक वर्णन किया है। इस कविता के माध्यम से कवि ने बसंत ऋतु में किसान दम्पत्ती और ग्रामीणों में जिस तरह खुशी का भाव उत्पन्न होता है। उस भाव को अभिव्यक्त किया है।

व्याख्या : माधव शुक्ल मनोज बसंत ऋतु में अखंड बुंदेलखंड की प्रकृति की छटा का बखान किसान दम्पति के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि किसान की पत्नी अपने पति से कह रही है, हे प्रिय! फाल्गुन आ गया है, चारों तरफ प्रकृति के नौरंगों का सौंदर्य बिखर गया है। बसंती मौसम मन को लुभा रहा है। अपने यहां की धूल गुलाल हो गई है। यानी फाल्गुन और चैत्र महीने में होने वाली बसंत ऋतु में राग–रंग का मौसम बन रहा है।

बसंत में प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों के बारे में कवि कहता है कि आम के पेड़ पर कोयलें कूक रही हैं। कोयलों की कूकनी की मधुर आवाज मन को सुकून दे रही

है। खेतों में फसलें पककर तैयार हो गई हैं। खेत सरसों के पीले फूलों से भरे–लहलहाते मनमोहक लग रहे हैं।

गांवों में चौपालों–चबूतरों पर सुबह–शाम चर्चा करते हुए लोग आनंदित हो रहे हैं क्योंकि इस साल फसल बहुत अच्छी हुई है। सबका मन गुलाब की तरह खिल उठा है। सारे किसान खुशी में झूम रहे हैं।

मौसम बड़ा सुहावना है, ठंडी–ठंडी पुरवाई (पूर्व दिशा से चलने वाली हवा) चल रही है। बगडूरे भी आ रहे हैं। माथे पर मौसम की धूल लग रही है अर्थात् इस सुहावने मौसम में राग–रंग में रंगने का मन हो रहा है।

मनोज जी बुंदेलखंड के प्रमुख त्योहार फाग (होली) के दौरान लोकजीवन का चित्रण करते हुए कहते हैं कि यहां की कृषि प्रधान लोक–संस्कृति में पले–बढ़े लोगों में 'संतोष की भावना' अधिक है। बुंदेलखंड के पर्वतों, नदियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। हवाओं से क्रीड़ा करती, लहलहाती यहां की फसलों में 'स्वच्छंद श्रृंगार' की प्रवृत्ति है। गांव में सब लोग मिल–जुलकर गा रहे हैं। नाच रहे हैं, खुशी मना रहे हैं। अर्थात् बुंदेलखंड के ग्रामीण इलाके में फाग (होली) का त्योहार बड़ी–धूम धाम से पारंपरिक तरीके से मनाया जा रहा है। किसानिन कहती है–हे प्रिय! अब मन का मलाल भी मिट गया है क्योंकि धूल गुलाल–सी पवित्र हो गई है।

हर कोई चिरौंजी की तरह बत्तीसी दिखाकर दिल खोलकर हँस रहा है। सब लोगों की बातें मिसरी (बड़ी शक्कर) की तरह मीठी–मीठी लग रही हैं, जो मन को सुकून दे रही हैं। इस मौसम में कोई भी दुःखी और बैचेन नहीं दिखाई दे रहा है। हर कोई नई उमंगों को लेकर झूम रहा है।

टेसू में भी लाल–पीले फूल खिल गए हैं, जिनसे फाग पर रंग बनाकर फाग खेलते हैं अपने यहां पर। खेत पर नदी किनारे लगे सेमल (कटीला पेड़) में भी फूल लग गए हैं, जो बहुत सुंदर लग रहे हैं। प्रिय! बसंती रंग चहुँओर बिखर गया है। सपनों में आशाएं लेकर झूलने लगे हैं। अब प्रिय प्यारे अपना रंगीला–खूबसूरत मुखड़ा निकाल लो अर्थात् अब हम भी बसंती मौसम में राग–रंग का आनंद उठाएं।

विशेष

1. इसमें बसंत ऋतु के दौरान बुंदेलखंड के लोकजीवन का चित्रण किया गया है।
2. भाषा मानक बुन्देली है।
3. इसमें ठेठ बुंदेली शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।
4. लयात्मकता, संगीतात्मकता और गेयता है।
5. लोकगीत शैली है।
6. प्रकृति का मनमोहक चित्रण हुआ है।

कब से देखूँ बाट पिया की

करूँ आरती साँझ दिया की, लौट अबहुँ नहिं आये रे।

.....

.....

झर गई चम्पा, झर गई बेला, झर गये फूल कनेरा रे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : इस लोकगीत/कविता में बुंदेलखंड की स्त्री की बिरह व्यथा का मार्मिक वर्णन किया गया है। राजनैतिक उदासीनता के कारण अखंड बुन्देलखंड में बेरोजगारी की समस्या जड़ें जमा चुकी है। यहां पर न तो पूरे शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार मिल पाता है और न ही अनपढ़ जनता को। हर दो–तीन साल के अंतराल के बाद पूरे बुंदेलखंड में भयानक सूखा पड़ता है। इसलिए बुंदेलखंड के पुरुष अपने घर–परिवार की जीविका चलाने के लिए दिल्ली, हरियाणा की ओर रोजगार की खोज में पलायन कर जाते हैं। इस स्थिति में प्रवासी मजदूर किसान की स्त्री व्यथित होकर कहती है–

व्याख्या : कवि मनोज कहते हैं कि एक दिन प्रवासी गरीब मजदूर किसान की स्त्री (लुगाई) कहती है–कबसे देखूँ बाट पिया की लौट अबहूँ नहिं आए रे। अर्थात् मैं बहुत देर से अपने प्रियतम/पति के घर लौटने की प्रतीक्षा कर रही हूं, लेकिन वो अभी तक नहीं आए हैं। प्रियतम की बाट जोहते–जोहते आंखों में झुर्रियां पड़ गई हैं। मेरी सुन्दरता भी चम्पा की तरह झड़ गई है और बेला की तरह मेरे लम्बे–लम्बे बालों की सुगंध भी खत्म हो गई। कनेर के फूल की भांति चेहरे की मुस्कान भी चली गई है। जिस तरह कनेर से उसके फूल झड़ जाने पर कनेर का पेड़ सौन्दर्यहीन लगने लगता है। ठीक उसी तरह आज मेरी दशा है क्योंकि प्रियतम की बिरह–वेदना में मेरी सुंदरता भी नष्ट हो गई है। एक ओर बिरह–वेदना की चिंता है और दूसरी ओर, घर और बाहर का मेहनत–मजदूरी का काम करना पड़ रहा है जिससे मेरी सुंदरता हर रोज कम होती जा रही है।

वह कहती है–राह देखती रहती हूं, बाट जोहती रहती हूं लेकिन वो कहीं से आते दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। अब मैं थक गई हूं, किस दूसरी राह में प्रतीक्षा करूं। ये बात आज से 30–40 साल पहले की है। जब मोबाइल फोन का इतना प्रचलन नहीं था। जितना आज के दौर में है। तब लोग अपनों की राह पर इसी तरह बाट जोहते थे, जिस तरह ये स्त्री कर रही है। तब का समाज अलग था, आज से बहुत अलग। आज तो मोबाइल फोन और सूचना तकनीक का दौर है, जिससे हमें हर पल–दुनियाभर की खबरें मिलती रहती हैं। जिससे आज हमें इस प्रवासी की पत्नी की तरह चिंता नहीं करनी पड़ती। लेकिन विडंबना यह है कि आज भी बुंदेलखंड के कुछ आदिवासी इलाके ऐसे भी हैं, जिनकी स्थिति ठीक इस प्रवासी की स्त्री की तरह है क्योंकि आदिवासियों के लिए जल, जंगल और जमीन का अस्तित्व बचाने का सवाल हर रोज गहराता जा रहा है।

प्रवासी की व्यथित स्त्री कहती है कि अब तो बसंत में चलने वाली पुरवाई भी दुश्मन लगने लगी है, क्योंकि बसंत प्रेम बंधन के लिए सबसे अच्छा मौसम है। जब प्रियतम ही नहीं आए तो मैं इस सुहावने में किसके साथ रासलीला रचाऊँ–रंग–रंगलियां मनाऊँ। हर रोज फरर–फरर चलने वाली पुरवाई हवा में मेरी चुनरी उड़ जाती है। इस चुनरी को उठाने वाले प्रियतम का इंतजार है।

हे प्रियतम! तुम्हारे बिना मैं हर रोज पोरा (उंगलियों के भाग) गिन–गिन कर तड़प रही हूं। आपके बिना सेज (बिस्तर) सूना पड़ा हुआ है। आप लौट आओ जल्दी। विरह–वेदना में व्यथित स्त्री आगे कहती है। हे प्रियतम! आपके बिना अब पनघट की कुइया (छोटा/संकरा कुआं) से पानी भरना भी अच्छा नहीं लग रहा है। पनघट से एक भी गगरी (मिट्टी का कलश) नहीं भरी जा पा रही है। आप लौट आओ, जल्दी, तभी मेरे दिल की प्यास बुझेगी।

आपके प्रेम के बिना रातें भी नहीं कट रही हैं। रातें बहुत लम्बी लग रही हैं और नींद भी नहीं आ रही है। सोना दूभर हो गया है। अंधेरे में मेरे माथे पर चमकने वाली

टिप्पणी

बिंदिया (सुहागिनों का श्रृंगार) भी अब फीकी पड़ने लगी है। आप अब तक नहीं आए हैं, मैं किससे अपने ह्रदय (आत्मा) की बात कहूं? ये चिंता सता रही है। चम्पा, बेल और कनेर के फूल की तरह जवानी की सुंदरता भी दिन–पर–दिन फीकी पड़ती जा रही है।

घर (ससुराल) में कोई भी मेरी नई उमरिया (जवानी) को देख–परख रहा है अर्थात् नई नवेली दुल्हन से ससुराल में भरपूर घर और बाहर का काम कराया जा रहा है। ससुराल के लोग सास–ससुर और ननद–देवर बगैरा भी अपने हिस्से का काम नई नवेली दुल्हन से करा रहे हैं। जिससे वह अपने को शोषित, पिंजड़े में बंद स्त्री महसूस कर रही है और अपने प्रियतम के लौट आने पर अपने दिल की सारी बात कह देना चाह रही है और आजादी, सुख के पलों में जीवन जीना चाह रही है।

हे प्रियतम! आज मैं फूल–सी मुरझा गई हूं। आपसे मिलने के लिए तरस रही हूं। गोरी–नारी (खूबसूरत) थी, तो मेहनती काम करते–करते साँवली (काली) पड़ गई हूं। जेठानी (पति के बड़े भाई की पत्नी) हर रोज ताने मार रही है।

प्रियतम से शिकायत करते हुए और अपने हाल चाल बताते हुए वह कह रही है कि काम करते–करते मैं दुबली–पतली और कमजोर हो गई हूं। जिससे कमर की करधौनी (आभूषण) भी ढीली पड़ने लगी है। पड़ोसी स्त्रियां चर्चा करती हैं कि मैं बिरह की मारी हूं। नई नवेली ननद (पति की बहिन) मुझे रोज चिढ़ाती है और परेशान करती है। मैं लाजवंती (लाज बचाने वाली स्त्री) बनकर इन सब से हार गई हूं। मन ही मन में सब कुछ अच्छा–बुरा व्यवहार सहकर जी रही हूं। लेकिन आप अब तक लौट कर नहीं आ पाए हैं। मैं आपके बिरह में हर रोज बिलखती रहती हूं।

कवि मनोज बुंदेली लोक–संस्कृति का चित्रण बिरहिणी के माध्यम से करते हुए कहते हैं कि स्त्री अपने प्रियतम से शिकायत करते हुए कहती है कि प्यासे बैल पानी नहीं पीते हैं, खेत–खलिहान और घर–मड़ैया सब सूने पड़े हैं क्योंकि इस साल फिर से सूखा पड़ा है। कैसे होए अपना गुजारा? अपनी गाय दरवाजे पर आकर सूँघती है और तुम्हारे लिए रंभाती है। तुम्हारे बिना सब सूना पड़ा है। अब तो लौट आओ प्रियतम!

तुमने अब तक कोई खबर और संदेश भी नहीं भेजा है। कहां रम गए हैं आप। हे भगवान! क्या हो गया इनके (प्रियतम/पति) के साथ? अब तक क्यों नहीं लौटे? कभी कभार ऐसा होता है कि दुर्घटना घट जाती है या पूंजीपति मालिकों द्वारा प्रवासी मजदूरों का शोषण कर मार दिया जाता है। कहीं ऐसा ही नहीं हुआ मेरे पति के साथ। ये चिंता सता रही है।

मैं तुम्हें सपनों में, यादों में बुलाती हूं मेरे प्यारे भूमि भूमिया रे। आपको वापस पाने के लिए तुलसी पर जल चढ़ाकर पूजा कर रही है। आंखों में आंसू भरकर हर रोज फूट–फूटकर रो रही हूं। शाम तक दरवाजे के किवाड़ (गेट) खोले रहती हूं कि अब ही पति लौट आएं। संध्या (शाम) को आरती करती हूं कि मेरे पति अब ही लौट आएं। लेकिन आप अब तक नहीं लौटे हैं। मैं चम्पा की तरह मुरझा गई हूं। भगवान जाने पति के साथ क्या हुआ? इसी विरह वेदना में स्त्री हर रोज सूखती जा रही है।

विशेष

1. स्त्री की विरह वेदना का मार्मिक वर्णन है।
2. बुंदेलखंड की बेरोजगारी, सूखे की समस्या पर प्रकाश डाला गया।

3. स्त्री शोषण के खिलाफ आवाज उठाई गई है।

4. उपदेशात्मक शैली है।

अंगना के फूल खिला जइयो

चले अइयो हो,

.....

.....

अँगना के फूल खिला जइयो।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : इसमें बुंदेलखंड ग्रामवासी किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि अँगना के फूल खिला जइयो अर्थात् हे भगवान! हमें धन–धान्य से संपन्न कर दो ताकि हम सुखमय जीवन जी सकें।

व्याख्या : कवि मनोज कहते हैं कि एक बुंदेलखंडी ग्रामीण किसान भगवान से प्रार्थना कर रहा है कि हे भगवान! अँगना के फूल खिला जइयो अर्थात् हमें धन–धान्य से संपन्न कर देना ताकि हम सुखमय जीवन जी सकें। वह कहता है–हे भगवान! आकर हमारे आंगन के फूल खिला जाना अर्थात् हमें धन–धान्य से परिपूर्ण कर जाना। ऊपर आसमान और बादल हैं और नीचे धरती और भूमि। परती यानि ऊसर भूमि को फिर से उपजाऊ (उर्वर) कर जाना। ताकि खेती में अच्छी उपज हो सके।

पहाड़ों से जमुना (यमुना) की धारा को कभी बंद मत होने देना, उसे निरंतर बहाए रखना। समतल भूमि में भी पानी की कभी कमी नहीं होने देना ताकि हमारी नैया पार हो सके।

जब बुंदेलखंड में सूखा (अकाल) पड़ता है, तब किसान कह रहा है। भगवान! बरसात का मौसम तो हमारे इलाके को भूल ही गया है। सारे बादल रुखे–सूखे निकले जा रहे हैं। सूखे की मार से हमारी आंखें भी सूख गई हैं। आपसे विनती है कि हमारे बुदेलखंड में बरसात कर देना, बादल वर्षा देना और हमारी दुःखमय (सूखी) जिन्दगी में फिर से खुशहाली (नमी) ला देना।

हे भगवान! हमारे यहां आना और आंगन के फूल खिला जाना। आपसे हम आशा करते हैं कि हमारे नन्हे–मुन्ने बच्चों के सपने साकार करेंगे आप। वे अच्छा पढ़ेंगे–लिखेंगे और खाएंगे–पिएंगे जब आप हमें धन–धान्य से संपन्न कर दोगे। हमें विश्वास है कि आप हमारे परिवार को शाम–सुबह खुशी से हँसाते रहोगे।

अब किसान भगवान से प्रार्थना करता है कि आप आकर हम जैसे गरीब किसान को अच्छी पोशाक और रहन–सहन कर जाना। बिस्तर के लिए खादी के बिछौना, पहनने के लिए सादा कमीज–कुर्ता और सूती पंचा (धोती) और मुड़ाछा (पगड़ी) खरीदने लायक फसल की कीमत दिला जाना। क्योंकि किसान को अपनी फसलों के दाम इतने कम मिलते हैं, जिससे उनका ठीक से घर का खर्च भी नहीं चलता। किसानों की दशा में सुधार जरूर होना चाहिए।

आगे किसान कहता है। तुम गांव के राजा हो, तुम ही महाराजा हो। तुम हमारे गांव को गेहूं (अनाजों) का देश बना जाना ताकि कभी खाद्यान्न की कमी न पड़े।

हे भगवान! आप सुबह से आना और दिनकर हमारे यहां रहना। रात में चांदनी रात में हमारे साथ खेत पर नहाना क्योंकि रात में फसल की सिंचाई करनी है।

ये छोटी सी धरती है लेकिन यहां बड़ा अंधकार है। हमारे बुंदेलख्खंड में एक तो अज्ञान का अंधकार है और दूसरा रूढ़िवादी सोच का और तीसरा शासन–प्रशासन द्वारा जनता के शोषण का। जिनका अंत करना बहुत जरूरी है। हे भगवान! आपसे विनती है कि आकर, हमारे मन में ज्ञान का उजाला कर जाना ताकि हम लोग सुखमय जीवन जी सकें।

विशेष

1. किसान की ईश्वर में गहन आस्था और विश्वास दिखाई दे रहा है।
2. बुंदेलखंड के किसान जागरूक बनना चाहते हैं।
3. किसान–संस्कृति का मार्मिक वर्णन है।
4. भाषा–ठेठ बुंदेली है और शैली चित्रात्मक है।

4.3.4 संतोष सिंह बुंदेला

बुंदेलखंड के लोकप्रिय कवि संतोष सिंह बुंदेला का जन्म 18 मई, 1930 को छतरपुर जिले के पहाड़गांव जागीर में हुआ था। इनके पिता का नाम दीवान दिल्लीपत सिंह था। इनके पिता की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी। जल्दी ही घर–परिवार को चलाने का जिम्मा बुंदेला के कंधों पर आ गया था। 1954 में इनका विवाह प्रेमकुंवरि के साथ संपन्न हुआ था। युवा अवस्था में बुंदेला काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए। उसी दौरान फिल्मों में भी अपनी किस्मत आजामाई लेकिन किस्मत को कुछ और मंजूर था। फिल्मी दुनिया को बुंदेला ने बहुत जल्दी अलविदा कह दिया और काव्य लिखने लगे। मंच पर जब संतोष सिंह बुंदेला ने कविता पढ़ना शुरू किया तब उनकी ख्याति परवान चढ़ने लगी। देखते ही देखते बुंदेला मंच की शान हो गए। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी बुंदेला मंच पर सस्वर कविता का वाचन करते थे। उनके नाम से श्रोताओं की भीड़ उमड़ पड़ती थी। महज तिरसठ वर्ष की आयु में 20 जून, 1993 को उनकी मृत्यु हो गई।

साहित्यिक योगदान

बुंदेली आधुनिक लोक गीतों को नए मुकाम तक ले जाने वाले संतोष सिंह बुंदेला ने अनेक कालजयी पंक्तियां रची हैं जिन्हें सदियों तक याद किया जाता रहेगा। बुंदेला के गीतों में बुंदेलखंड का लोकजीवन प्रतिबिंबित होता है। 'रमटेरा की तान', 'मिठउआ कुआं कौ नीर', 'उरियां ज्यों चुरियां खनकें' जैसी पंक्तियां लिखकर बुंदेला बुंदेली भाषा के अमर गायक के रूप में स्थापित हो गए।

बुंदेला ने अपने गीतों में लोकाचरणों, लोक विश्वासों, लोक संस्कारों, लोक संस्कृति और लोक बिंबों का अद्‌भुत संयोजन किया। उनके इस संयोजन से श्रोता चमत्कृत हुए बिना नहीं रह पाते थे। बुंदेली लोक गायकी को बुंदेला ने एक नई पचान दिलाने में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने काव्य कला का सुंदर समावेश अपने गीतों में किया था।

साहित्यिक विशेषताएं

बुंदेला के गीतों में जीवन का यथार्थ है। उनके यहां कृत्रिम संवेदनाओं के लिए तनिक भी अवकाश नहीं है। बुंदेलखंडी सांस्कृतिक परंपराओं का बुंदेला के गीतों में सुंदर समावेश हो पाया है। वे अपने सांस्कृतिक वैभव पर अगाध आस्था रखते हैं, इस कारण

उनके यहां चित्रकूट, पन्ना, रामलला आदि बेहद श्रद्धा के भाव से उभरते हैं। बुंदेलखंडी देवी–देवताओं के प्रति अटूट आस्था रखते हैं। राम, कृष्ण, शिव और हनुमान जैसे मिथकीय चरित्रों को बुंदेला ने अनोखे तरीके से अपने गीतों में स्थापित किया है।

बुंदेलखंड की प्रकृति, वातावरण, बदलते मौसम के रूप सौंदर्य को बुंदेला ने अपने गीतों में सहेजने का कार्य किया है। बुंदेलखंड का सामाजिक जीवन, नाते–रिश्ते, किसान–मजदूर, खेत, कुआं, पनघट, तीज त्योहारों को आधार बना कर संतोष सिंह बुंदेला ने अद्‌भुत गीतों को रचा है। उनके गीतों में परंपरा और आधुनिकता का सुंदर सम्मिरण दिखाई पड़ता है। लोक जीवन का सौंदर्य उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। बुंदेला ने आधुनिक लोक मानस में गीतों के प्रति आकर्षण पैदा किया है।

रचनाओं का मूलपाठ

(1) ऐसौ जौ बुंदेलखंड है, सौ नौनें सें नौंनौ

ऐसौ जौ बुंदेलखंड है सौ नौनें सें नौंनौ
ई–माटी में आधी माटी और आधी में सौनौं।
गलियन में जी के हीरा डरे।
पग–पग पै निर्मल नीर भरे।
गाँव लगें रमनीक इतै के नदियाँ ताल भरे हैं,
गेर–गरे पर्वत मालायें मानो कोट फिर हैं,
चंबल, केन, नरबदा, जमुना जनमन के सब पीरा हरे।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
चित्रकूट चिंता हर लेबैं, पाप हरन मन्दाकिन,
तुलसी के सब्दन में जो सब पतिक ते दामिन,
पन्ना जुगल किसोर, ओरछे रामलला धरतीरा धरे।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
सूरसती तुलसी से दिनकर एई भूमि में भये हैं,
उड़गन केसब दास ओड़छे आगन उपजाये हैं,
तानसेन बैजू प्रबीन कै किनर–किनर मंजीरा करे,
छत्रसाल मधुकर सों भये हैं और ऊदल बल धामा,
नांव अमर दतिया कौ कर गऔ दण्ड पेल कें गामा।
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
हर पत्थर भगवान इतै के, हर पत्थर हीरा है,
हर बेटी झाँसी की रानी, अथवा फिर मीरा है,
दुर्गावती सती अनसूइया, पान ज्ञान हरिक्षीरा करे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
लमटेरा हैं संत इतै कौ फाग उर्वसी जानो,
बिलबाई खेतन की रानी, अन्न सें भरे खजानो

दीवारी के गीत कन्हैया गोपिन के मन चीरा हरे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।
विर्चुन धो नोंन में खात ओ का कोका कोला पीने,
भूल जात मिष्ठान सभी है डुबरी खाली जीने,
मौआ, बेर, अचरवा तेंदू निर्धन के धन धीरा धरे,
पग–पग पै निर्मल नीरा भरे।

(2) मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर

मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर।
छायंरौ पीपर कौ गंभीर।।
मिटाले तनिक घाम की पीर, ओ पानी पीले गैलारे।
तनिक बैठकें तुम सुस्ताले, जा नै फिर जा रे।।
क्वांर कौ घामौ है, औ सूरज सामौ है।
को ठाकुर तुम आए कितैसें, और तुमै काँ जानें।
मो खाँ एसौ लगत होव, जैसें तुम जाने माने।।
पसीना बैठा बिलमा लेव।
और दो–दो बातें कर लेव।।
न आगे पानी मिले पसेव, हौ प्यासे मजलन के मारे।
और हम का करिये सत्कार, गाँव के भूखा अपढ़ गंवार।
गड़ई भर जल हाजिर,
करैं तुम खाँ सादर।
हमतौ है ग्वालन की बेटी, हार पहारन रइए।
गइयन बछियन से बाबू, मन की बातें कर लइये।।
हमारे गुइयाँ छेवल सगौन,
करें बातें हम, बे रए मौन।
दुक्ख मन कौ जानत है कौन, रहै मन ऐईसें समझारे।
आज जानें का मन में आई, और तुमसें इतनी बतराई।।
लाज सब टोरी है,
करी मौं जोरी है।
माँजी गड़ई निकारौ गगरा, जब बा पानी ल्याई।
मैंने पूछौ नावं तुम्हारौं, बोली गोरी बाई।।
न देखे ऐसे निछल सनेह,
है जबसें मैंने धरी है देह।
उमड़ आये आँखन में मेह, तौ टेड़ौं मौं करकें टारे।

बोली तुमसौ लम्बो ज्वान, हतौ भइया मोरौ मलखान।।
पुलिस ने मांडारौ,
दुखी घर कर डारौ।
फिर मैं बोलो बिन्ना तेरौ ब्याव भऔ कै नइयाँ।
झुक गये नैंन तनिक मुस्क्यानी, फिर भर दई तरइयाँ।।
तुरत मैं बोलो गोरी बाई,
आज सें मैं हौं तेरौ भाई।
नेह की नदिया–सी भर आई, खुसी सें नैंना कजरारे।
चूम लए ऊके मैंने पाँव, बताओ अपनो नाँव औ गाँव।।
और बा लिपट आई,
और बोली हर्षाई।
मोरी उमर तुम्हें लग जाबै, भाभी रहे सुहागन।
दूधन पूतन फलौ खेल है, चंदा सूरज आँगन।।
लौट आई मोर घर दौज,
मनाहौं अब मैं सावन रोज।
कौ मोरी जनम–जनम की खोज, करी तुम मइया रे।
रहत तौ औरन के मर भार, बिना सारे की है ससुरार।।
दुक्ख सब मिट गये हैं
कै भइया मिल गए हैं
मिठउआ है ई कुंआ कौ नीर।
छांयरौ पीपर कौ गंभीर।।

(3) लगा रऔ कुकरा कबसें टेर

लगा रऔ कुकरा कबसें टेर,
पसर खाँ हो रई देख अबेर,
दमरुआ न कर रे अबेर, भऔ उठ भैसा भुंसारौ,
पीरी पौ फट आई, अबै लौ उठो न दई मारौ,
भैंसिया ठाड़ी हैं,
ब गइयाँ ठाड़ी हैं।
बाँग सुनत मुर्गा की डुकरिया लरका खाँ चिल्लावौ,
उतै बहुरिया कहै विधाता, और रात रुक जाबै।
भओ नइयाँ दिन डूबत झेल,
समासई काऐ देत पठेल
बड़ानौ नहीं दिया कौ तेल, लाती तो भैंसन खाँ चारौ

अबै कछु बातई न हो पाई, और खलबल पारें है बाई
पीर पर न जानै
ठान अपनी ठानै
रातें हौन लगी कै हलकी, कै बाई बौरानी
कै कुकरा बैरी मोसें, लगी भँजाई पुरानी
बोल गई जल्दी स्यामा सौत
नई कुटनी खाँ आई मौत
अबै तौ रात है बांकी भौत, लगो है खोरन अंधयारो
सुनौ हो पसर मसर की बात, तुमारी मोखा़ं नहीं पुसात,
अकेलें मोय डर लागै
जियां मोरौ घबराबै,
छोड़ बिछौना उन्ना पैरे, दमरू सोचत जाबै,
हम हीरा सी नोंनी रातें, भैंसन संग गमाबै,
करौली तोखां करिआ खाय,
मोय न तोरी पसर सुहाय,
अकेलें को बाई सें काय, कात तौ बिदौ जात रारौ
गदरे ठाड़े धान के खेत, देख कें जी ललचइयाँ लेत
अकेलें का करिए,
समझ मन में रहिए
खोल किबारे भैंसे काड़ी काड़ी भैंस उ गइयां
बहू पाँर लौ गई पछयानी, चित्त ठिकाने नइयाँ
गेवंड़े फसल देख अलबेली
जैसें दुलहिन नई नबेली
कोऊ संग न हो सहेली, दूर परदेस में घरबारौ,
सुबह ज्यों मिंहदी के हाथ, किरन सौ गोरौ गोरौ जात,
साँस सी पुरुवाई
खबर घर की आई।

(4) हमारे रमटेरा की तान

हमारे रमटेरा की तान,
समझ लो तीरथ कौ प्रस्थान,
जात हैं बूढ़े बारे ज्वान, जहाँ पै लाल धजा फहराय,
नग नग फरक जात है, देहिया जो दीबारी गाय,
दिबारी आई है

उमंगें लाई है,
आज दिबारी के दिन नोंनी, लगै रात अंधियारी,
मानों स्याम बरन बिटिया नें पैरी जरी की सारी,
मौंनियाँ नचै छुट्टकें खोर
कै जैसे नाचै बन में मोर
दिबारी गावै कर कर सोर, कै भैया बिन बछला की गाय
बिन भैया की बिहिन बिचारी, गली बिसूरत जाय
भाई दोज आई है,
कैती का ल्याई है
आन लगे दिन ललत बसंती, फाग काउ नें गाई
ढुलक नगरिआ बजी समझलों, कै अब होरी आई
बजा रए झाँझे झेला चंग
नाचें नर नारी मिलकर संग
रंगेतन रंग गए हैं मन रंग, कहरवा जब रमसैयाँ गाय
पतरी कम्मर बूँदा बारी, सपनन मोय दिखाय
अरा रर होरी है
सरा ररर होरी है
गाई चैंतुअन ने बिलवाई चैत काटबें जावैं,
सोने चाँदी की नदियाँ सी पिसी जबा लहराबै,
दिखाबै अम्मन ऊपर मौर,
मौर पै गुंजारत हैं भौंर
कै मानौ तनै सुनहरे चौर, भौंर की सुंदर छटा दिखाय,
चलत लहरिया बाय चुनरिया, उड़ उड़ तनसें जाय,
गुलेलें जिन मारौ,
लऐं का तुम्हारौ
गांय बुंदेला देसा के हो ब्याह की बेला आई
ब्याहुन आये जनक जू के, तिरियन गारी गाई
करे कन्या के पीरे हाथ,
कै मामा लैकें आऔ भात,
बराती हो गये सकल सनाथ, बिदा की बेरा नी बहांय,
छूट चले बाबुल तोरे आँगन दूर परी हौं जाय,
खबर मोरी लय रइयो
भूल मोय ना जइयो

बरसन लागे कारे बदरा, आन लगो चौमासौ
बाबुल के घर दूर बसत है, जी में लगौ घुना सौ
आ गऔ सांवन कौ त्योहार
उमड़ौ भाई बहिन कौ प्यार
है बिटियाँ छोड़ चली ससुरार, बीरन राखी लेव बँधाय,
माँगै, भाभी देव, नौरता खाँ फिर लियौ बुलाय
और कछु नई चानैं
हमें इतनोई कानें।।

(5) सरग तरइयाँ कीनें गिन लईं

सरगर तरइयाँ कीनें गिन लईं कीनें बाँचे भाग।
कीनें मनखां वादो जानै को अंतर की आग।।
भाई रे कोऊ काऊको नइयाँ।
ए दुनियाँ है बदली की छइयाँ।।
जिन साँसन में कभऊँ मिलीती गंध कुसुम केसर की।
रात दिना मन हथक हतो छबि बरतन बिंदिया बेसर की।।
आज बा सांस समीर नहीं।
अपनी काऊ खाँ पीर नहीं।।
जे जग की मनमोहक बातें हैं, सब भूल भुलैयाँ।
भाई रे कोऊ काऊ कौ नइयाँ।।
हँस मिल बोल बैठ लो सबसे दो दिन कौ है मेला।
जा दुनियाँ सपने की सम्पत जै है अंत अकेला।।
आनी जानी स्वासा है।
ए जीवन वार बतासा है।
जानै तोरे तन तरुवर की, कब उड़ जाँय चिरइयाँ।
भाई रे कोऊ काऊ नइयाँ।।

रचनाओं की महत्वपूर्ण व्याख्याएं

ऐसौ जौ बुंदेलखंड है, सौ नौनें से नौंनो

ऐसौ जो बुंदेलखंड है.....

.....

.....

पग–पग पै निर्मल नीर भरे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता संतोष सिंह बुंदेला द्वारा रचित है। इस कविता में कवि ने बुंदेलखंड की अच्छाइयों एवं उसकी मनोरम सुन्दरता के विषय में बताया है। वहां की भौगोलिक संरचना को दिखाते हुए बुंदेलखंड की प्रकृति का ब्यौरा दिया है।

व्याख्या : कवि संतोष सिंह बुंदेला अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं कि यह बुंदेलखंड ऐसा है कि मानो अच्छे से अच्छा यानी सबसे अच्छा है। यहां की मिट्टी आधी मिट्टी है और आधी की जगह पर सोना रखा है। अर्थात् यहां की भूमि सिर्फ भूमि नहीं है। बल्कि बहुत ही उपजाऊ सोना उपजाने वाली भूमि है। आगे कवि का कहना है कि गीलापन अर्थात् इसके रास्तों में हीरा जवाहरात पड़े हुए हैं। यहां की हर गली में कोई न कोई प्रसिद्ध व्यक्ति निवास करता है। कोई योद्धा सैनिक, क्रांतिकारी, कवि, लेखक, राजा, महाराज आदि निवास करते हैं। इसकी भूमि में हम देखें तो कदम–कदम पर निर्मल और स्वच्छ जल भरा है। इन्हीं नदियों और तालाबों के कारण यहां के गांव सुंदर और मन को हरने वाले लगते हैं। इसके चारों ओर पर्वत मालाएं हैं जिसमें विध्यांचल सबसे बड़ी पर्वत श्रेणी है। यह क्षेत्र पर्वतों से संपूर्णतः घिरा हुआ है।

यहां पर केन, चंबल, नर्मदा, यमुना आदि नदियां बहती हैं, जो लोगों के मन की पीड़ा को हर लेती हैं। ये नदियां अपने जल से लोगों की फसलों को उपजाऊ बनाती हैं और पीने के लिए पानी देती हैं। इन्हीं नदियों के कारण कदम–कदम पर पानी मिल जाता है। यहां के स्थानों में चित्रकूट जहां भगवान राम अपने बनवास के बारह साल गुजार कर लंका गए थे लोगों की चिंता को हर लेता है और मंदाकिनी नदी लोगों के पापों को धो देती है। पन्ना के जुगल किशोर (श्री कृष्ण) जी के दर्शन मात्र से आदमी धन्य हो जाता है। ओरछा नरेश लाला हर दौल समस्त धरती को अपने ऊपर रखे हुए हैं अर्थात् सभी का भला करते हैं।

सूरदास, सती सावित्री, सती अनुसूइया और तुलसीदास जैसी महान आत्मा के लोगों ने इसी भूमि पर जन्म लिया है। उड़गन कवि केशवदास आदि यहीं ओरछा के दरबार में अपनी कविता पाठ व रचना कर्म करते रहे हैं। तानसेन, बैजू बाबरा आदि महान संगीतज्ञ इसी भूमि पर जन्मे और संगीतमय वातावरण का निर्माण किया है। योद्धाओं में छत्रछाल जैसे मधुर और आल्हा–ऊदल जैसे बलशाली योद्धा भी यहीं से हैं। दतिया जैसी जगह से गामा पहलवान हुए हैं जिन्हें आज संपूर्ण विश्व जानता है।

यहां के प्रत्येक पत्थर में भगवान हैं और पत्थर में हीरा है। प्रत्येक बेटी यहां झांसी की रानी है या फिर मीराबाई है। रानी दुर्गावती और सती अनुसूइया तथा मानसिंह तोमर जैसी महान हस्तियों का भी यहीं स्थान है।

यहां का संत लम्पट है और यहां सिर्फ फाग गाई जाती है। जो कि किसी भी उर्वशी काव्य से कम नहीं है। यहां के खेतों में बिलबाई सबसे ज्यादा उत्पन्न होती है, जिससे सभी का घर खजाने की तरह भरा रहता है।

यहां के लोग बेर को पीसकर (जिसे विर्चुन कहा जाता है) और धोकर, नमक घोलकर पीते हैं जो उनके लिए किसी कोका कोला से कम नहीं है और यहां के लोगों को किसी कोका कोला की जरूरत भी नहीं है। यहां की डुबरी को खाकर लोग–बाग सभी प्रकार की मिठाइयों को भूल जाते हैं। महुआ, बेर, आचार और तेंदू यहां निर्धन लोगों के धन होते हैं। इनसे ही वे अपना पेट पालते हैं। अंतः में कवि संपूर्ण जगह पर स्वच्छ जल भरे होने की बात करता है।

विशेष

1. प्रस्तुत कविता में बुंदेलखंड का भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक रीति–रीवाजों का चित्रण है।
2. बुंदेलखंड को सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

3. अतिशयोक्ति और छेकानुप्रास अलंकार का प्रयोग है जैसे–पग–पग, गलियन में हीराडरे आदि।
4. भाषा ठेठ बुंदेली है जिसमें ग्रामीण शब्दों नौंनो, विर्चुन आदि का इस्तेमाल खूब हुआ है। कहीं–कहीं खड़ी बोली का प्रयोग है।

मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर

संकेत : 'मिठौआ है.....

.....

.....

पीपर कौ गंभीर।'

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'मिठौआ है ई कुआँ कौ नीर' बुंदेली बोली के प्रसिद्ध कवि 'संतोष सिंह बुंदेला' द्वारा रचित है।

प्रस्तुत कविता में कवि ने गर्मी में धूप से आहत किसी भी व्यक्ति को पानी व प्रेम देने की बात की है। अर्थात् वहां के मनुष्यों के स्वभाव के बारे में बताने का प्रयास किया है। यहां उनकी आत्मीयता व वाक्पन शैली को दिखाया गया है।

व्याख्या : कवि ने एक राहगीर को संबोधित करते हुए लिखा है, जो कि थका हुआ एक कुएं के पास से गुजर रहा है। वह कहते हैं कि इस कुआं का जल बहुत ही ज्यादा मीठा है और इस पीपल के पेड़ की छांह बहुत ही गंभीरता से चैन देने वाली है। यहां बैठकर थोड़ा–सा सुस्ता ले और अपनी घाम (धूप) की पीड़ा को थोड़ा सा कम कर ले। थोड़ी देर बैठ कर सुस्ता ले और फिर चाहे चले जाना। क्वांर (जुताई) के महीने की धूप है और सूरज सिर पर है। तुम कौन ठाकुर हो? कहां से आये हो? और किधर जाना है? और मुझको तो ऐसे लता है कि तुम कोई जाने पहचाने से हो। आओ मेरे पास बैठकर अपना पसीना सोख जाने दो तब तक दो–चार बातें ही कर लो। आगे राहगीर से कवि कहता है कि न ही तो आगे पानी मिलेगा, प्यासे ही फिरोगे मारे–मारे और फिर अगर तुम्हें लगता हो कि हम सत्कार करें तो हम आपका सत्कार करेंगे, हम तो गांव के बूढ़े और गँवार आदमी हैं और तुम ठहरे रईस आदमी या शहरी आदमी।

आगे कवि उसकी पत्नी से संवाद करते हुए कहता है कि हम तो ग्वालन (दूध बेचने वालों की) की ढोटी हैं, खेत में ही रहते हैं और कोई बात करने को होता नहीं है तो गाय–बछड़ों से ही बात कर लेते हैं। हमारी गायें भी बहुत सुंदर हैं। हम बातें करते हैं और वे मौन रहती हैं। और फिर बाबू मन के दुख को कौन जानता है। इसीलिए मन को समझा लेते हैं और समझा रहे हैं। परंतु पता नहीं आज मन में क्या आई कि तुमसे इतनी बातें कर लीं। अपनी पूरी लाज (मर्यादा) तोड़ दी है और मन की मर्जी से आपसे मुंह बोली की है। उन्होंने आगे कहा है कि उसकी लड़की ने कहा कि मांजी घड़े में से लोटा निकालो और फिर उसके बाद वह पानी लाई। आगे राहगीर ने नाम पूछा तो वह गांव की लोगाई गोरी बाई बताती है। कभी भी मैंने ऐसे निश्छल प्रेम से पूर्ण लोग नहीं देखे जब से जन्म लिया है। कवि कहता है कि मेरी आंख भर आयी प्रेम के आंसुओं से और इसी कारण उसकी भी आंखें भर आईं तो वह मुंह को टेड़ा करके बात को टालने की कोशिश करने लगी। और फिर कुछ देर बाद बोली कि तुमसे लम्बा और जवान मेरा भाई मलखान था जिसको पुलिस ने मार दिया। हम आज तक दुखी हैं। फिर कवि कहता है कि बहना तेरी शादी हुई कि नहीं? उसके नैन थोड़े झुक गये और फिर वह हल्की मुस्कुराहट के साथ

आंखों में आंसू ले आई। तभी तुरंत लेखक ने कहा कि गोरी बाई आज से मैं तेरा भाई हूं। उस समय जैसे प्रेम का सागर उमड़ गया और फिर दोनों आंखें खुशी से चमकने लगीं और फिर लेखक ने उसके पैर छूते हुए गांव और नाम पूछा। वह लिपट गई और बोली (प्रेमपूर्वक) कि मेरी उम्र तुम्हें लग जाए और भाभी सदैव सुहागन रहे। पूनम की रात में आप दुग्ध पान करें और चंदा–सूरज अर्थात् छोटे–छोटे बाल बच्चे आपके आंगन में खेलें। वह इस भाई को प्राप्त करके कह रही है कि मेरी भाईदोज लौट आई और अब मैं रोज सावन मना सकूंगी अर्थात् राखी बांध सकूंगी। वह कहती है कि मेरी जनम–जनम की खोज पूरी हो गई है, जो तुमने पूरी की है। नहीं तो मेरे घर में औरों के मन की बातें बोझ जैसी लगती थी कि बिना सारे की ससुराल का क्या ठिकाना। लेकिन मेरे भईया अब जो तुम मिल गए तो सभी दुख मिट गये हैं। इस कुएं का जल बहुत ही मीठा है। आप कुछ देर ठहरकर विश्राम कर लीजिए।

विशेष

1. कवि स्वयं राहगीर के रूप में चित्रित है।
2. बुंदेल खंडी लोगों के चरित्र व उनकी वत्सलता और प्रेम का वर्णन है।
3. भावात्मकता है।
4. बिंबात्मकता है।
5. भाईदोज, श्रावण व साला प्रतीक रूप हैं।
6. भाषा बुंदेली है और कहीं–कहीं पर खड़ी बोली के शब्दों का व गंवई शब्दों का प्रयोग हुआ है।
7. भाव साम्य–

मोरी बिन्ना तोरी खातिर दोऊ जगत एक करूँ।
बस तोरी खुशी खातिर चाहै तो मारो मारो फिरूँ।।

लगा रऔ कुकरा कबसें टेर

'लगा रऔ.....

.....

.....

घर की आई।'

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'लगा रऔ कुकरा कबसें टेर' बुंदेली बोली के प्रसिद्ध कवि 'संतोष सिंह बुंदेला' द्वारा रचित है। कवि ने प्रस्तुत कविता में सुबह का चित्रण किया है। ऐसी सुबह जिसकी वजह से किसी नई नवेली दुल्हन की रात बर्बाद होती है। उसी को एक बेहद अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। सास बहू का संवाद भी दर्शनीय है।

व्याख्या : कवि कहता है कि सुबह–सुबह मुर्गे ने बांग दे दी है और इसका मतलब सुबह हो गई और गांव की सुबह के क्रियाकलाप जिसे पसर कहते हैं के लिए देर हो रही है। सास नीचे से आवाज लगा रही है कि अब और ज्यादा न देर करो अब सुबह हो गई। देखिए सुबह की लालिमा दिखाई देने लगी है अब न जागोगी तो दे पटकेंगे। बाहर भैंसें भी खड़ी हैं और गायें भी खड़ी हैं जिनको ले जाना है। जैसे ही मुर्गे की बांग सुनी बूढ़ी अम्मा ने लड़के पर चिल्लाना शुरू किया और वहां पर सो रही बहू मन ही मन सोच रही थी कि रात और रुक जाए। अभी दिन को डूबते ज्यादा देर नहीं हुई

कि फिर से सुबह–सुबह क्यों भेज देते हैं। अभी दीपक का तेल भी नहीं खत्म हुआ कि जाओ और भैंसों का चारा लेकर आओ। अभी कुछ बातें भी न हो पाईं और बाई (सासू) हैं कि जल्दबाजी हो रही है। ऐसा भी क्या जो दूसरों की पीर न जाने और अपनी बात ही हठपूर्वक मनवायें। रातें भी आजकल हल्की हो चली हैं, और बाई हैं कि पागल हो चली हैं।

वह आगे कहती हैं कि लगता है मुर्गा मुझसे बैरी हो गया है। वह कहती है कि श्यामा गाय लगता है नई कुटनी खाने से ज्यादा जल्दी–जल्दी बोल रही है। अभी तो बहुत रात बांकी है और गलियों में भी अंधेरा है और जो ये पसर, मसर की बात है वह मुझे पसंद नहीं है और फिर अकेले जाने में मुझे डर लगता है और मेरा जी घबराता है। तभी बहू ने बिस्तर छोड़कर कपड़े पहने और फिर दमरु के बारे में सोचती जा रही थी और कह रही है कि हम ये हीरा जैसी सुंदर रातें गाय–भैंसों के साथ बिता रहे हैं। करौली भैंस को काला साँप डस जाए क्योंकि उसे यह पसर न सुहानी लगे है। दूसरा अर्थ यह है कि यह करौली हमें (भैंसों को चराना) बिल्कुल नहीं सुहाता है और इसकी वजह से मेरी रातें बरबाद होती जा रही हैं। अगर मैं मम्मी (बाई) से कहता हूं तो अभी झगड़ा हो जाएगा क्योंकि अभी नये–नये अनाज से भरे खेत हैं और उनको देखकर जी ललचाता है। अकेले क्या किया जाए समझ नहीं आ रहा है, मन ही में रहा है। आगे उसने दरवाजे खोले भैंसें व गायें निकालीं। बहू पौंर (बैठक) तक पीछे चली गई और अभी भी उसका चित्त सही ढंग में नहीं है। वह एक नई नवेली दुल्हन है, जिसको देखकर गेंवड़े की अलबेली लहराती हुई फसल की याद आती है। इसी तरह उसकी जवानी उसके पति के खेत जाने से लहलहा रही है। उसके संग भी कोई नहीं है, न ही सहेली है और दूर विदेश में घरबार है, बिल्कुल उसी तरह जैसे सुबह–सुबह सूर्य की लालिमा की तरह मेंहदी के हाथ चमक रहे हैं। उसी समय जैसे ही पूरब से ठण्डी हवा चली और सास की याद आई और उसे घर की खबर आई और वह फिर से सचेत हो गई।

विशेष

1. गांव की सुबह की दशा का वर्णन है।
2. पत्नी व पति के विछोह का वर्णन है।
3. बुंदेली भाषा है।
4. चित्रात्मकता है।

हमारे रमटेरा की तान

'हमारे रमटेरा की .....

.....

.....

..... हमें इतनोई कानें।'

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'हमारे रमटेरा की तान' प्रसिद्ध बुंदेली कवि 'संतोष सिंह बुंदेला' द्वारा रचित है। कवि ने इस कविता में बताया है कि बुंदेलखंड में त्योहारों को कैसे मनाया जाता है। उसी कड़ी में दीवाली, होली व फिर एक लड़की को लेकर रक्षाबंधन को भी दिखाया है।

व्याख्या : कवि लिखते हैं कि हमारे रमटेरा (वाद्ययंत्र) की तान (लय) ऐसी है कि मानो किसी तीर्थ का प्रस्थान है। जहां पर लला ध्वज फहराते हैं। वहां पर बूढ़े–जवान सभी जाते हैं। जब दिवाली गाई जाती है, तब लोगों के अंग–अंग में फड़कन आ जाती है, यह अबकी जो दिवाली आई है वह उमंगें लाई है। आज दिवाली के दिन यह रात भी अंधेरी होकर सुंदर लग रही है और रात इस तरह लग रही है कि जैसे श्याम बिटिया ने जरी की सारी पहन ली है और वह चमक रही है। मौन चराने वाले गलियों में छुट्टा बाल खोलकर नाच रहे हैं। जैसे कि वन में मोर नाच रहा हो। वह लोग उस तरह दिवाली गा रहे हैं जैसे कि बिन बछड़े की गाय छटपटाती है और मदमस्त होकर चलती है और जो बहिन बिना भाई की है, वह आज बहुत दुखी है क्योंकि आज भाई दोज है और भाई नहीं है। अब बसंत के लालित्य पूर्ण दिन आने वाले हैं और यह आभास इसीलिए हुआ है कि किसी ने फाग गाई है। जैसे ही नगड़िया व ढ़ोलक बजी है, समझ लो कि 'अब होली आ गई है।

चारों ओर झांझें (वाद्ययंत्र) बज रहे हैं और उसी कारण नर–नारी खुशी से नाच रहे हैं। जब रमसैया गाय दिखाई दी तो रंग से रहित हृदय भी कई रंगों से रंग गये हैं और धीरे–धीरे जो बारिश हुई है उसने मन में अनेकों सपने भर दिये हैं। जिससे फसल अच्छी होने का संकेत है। लोग खुशी से कह रहे हैं कि सब नाचो होली है। चैत काटने वालों के द्वारा चैत काटने को जाया जा चुका है। और सोने–चांदी की नदी की तरह यह गेहूं के खेत लहरा रहे हैं। बारिश की पुकार करते मोर भी आमों के ऊपर दिखाई दे रहे हैं और उस मोर पर भंवरों को भी देखा जा सकता है। और ऐसा लग रहा है कि मानो सुनहरे खेत भौरों की छटा दिखा रहे हों। और ऐसी मधुर हवा चल रही है कि चलते हुए भी चुनरिया लहरा रही है और तन से बार–बार उड़ जा रही है। कोई भी गुलेल मारे किसी को भी मारे तुम्हारा क्या लिये जा रहा है।

अब कवि एक बुंदेली लोकगीत की पंक्ति का प्रयोग करते हुए कहता है कि अब ब्याह की बेला आ गई और जनक जी के यहां ब्याहने बुंदेला गये हैं। ऐसी गारी गायी जा रही हैं। लड़की के हाथ पीले करने के लिए मामा भात लेकर आये हैं। सभी बाराती तैयार हो गये क्योंकि बिदा की बेला हो गई थी और धीरे–धीरे बेटी बाबुल से दूर होती जा रही है और कहती जा रही है कि मुझे भूल मत जाना मेरी खबर लेते रहना। धीरे–धीरे बरसात का मौसम आ गया है और काले बादल बरसने लगे हैं। और वह सोच रही है कि बाबुल का घर कितना दूर है और यहां मैं रह रही हूं उसके मन में घुन सा लगने लगा और तभी सावन का त्योहार आ गया और भाई बहिन का प्यार उमड़ आया। उसके परिजन कहते हैं कि बिटिया अब यह घर छोड़कर ससुराल जा रही है। कृपया आप राखी बंधवा लीजिए। और तभी भाभी, भैया आदि को बुला लिया गया। और जब बहिन से पूछा गया कि क्या चाहिए तो वह बोली और ज्यादा कुछ नहीं चाहिए बस सभी एक रहें और खुश रहें हमें इतना ही कहना है।

विशेष

1. बुंदेलखंड के त्योहार व व्यावहारिक प्रकृति का वर्णन है।
2. अनुप्रास, उत्प्रेक्षा व उपमा अलंकार अलग–अलग पंक्तियों में हैं।
3. भाषा बुंदेली है।
4. बिम्बात्मकता है।

5. भाषा का प्रवाह बीच में टूटता दिखाई देता है।
6. परंपरा का वर्णन है।

सरग तरइयाँ कीनें गिन लईं

'सरग तरइयाँ.....

.....

.....

..... काऊ कौ नइयाँ।'

सन्दर्भ एवं प्रसंग : प्रस्तुत कविता 'सरग तरइयाँ कीनें गिन लईं' बुंदेली भाषा के प्रसिद्ध कवि 'संतोष सिंह बुंदेला' द्वारा रचित है। इसमें जगत के सार के बारे में बताते हुए कहा गया है कि कोई किसी का नहीं है। सब भ्रम है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड के तारों को किसने गिन लिया अर्थात् किसी ने नहीं और ऐसा कौन है जिसने भाग को बांच लिया है। ऐसा कौन है जिसने अपने मन को अपने अंतर वशीभूत कर लिया है और अपने अंदर की आग को वश में कर लिया है। यह सिर्फ स्वयं उसी के द्वारा जाना जा सकता है। अतः इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है और यह दुनिया बदल जाने वाली छइयां अर्थात् खिलौना है। जिन सांसों में कभी मधुर केसर की गंध मिली थी और रात दिन मन माथे की बिंदी और बेसर को देखने में रम गया था। आज वह सांस और वह समीर नहीं है और मेरी जो पीड़ा है उसकी चिंता किसी को नहीं है। ये जो जग की सुंदर मन को मोहने वाली बातें हैं वह सब भूल भुलैयां हैं। इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है। सभी लोग दो चार दिन हँस–हँस के बोल बैठ लो यह कुछ ही दिनों का जीवन मेला है। यह दुनिया तो सब सपनों की है और अंत में मनुष्य अकेलाा रह जाता है। अर्थात् अंत में सिर्फ आत्मा बचती है। सभी मोह बंधन टूट जाते हैं और सिर्फ ईश्वर शेष है। वह आगे कहते हैं कि यह सांस तो आनी जानी है और जीवन एक मीठा बतासा है जिसको एक न एक दिन घुल ही जाना है। तुम्हें खुद ही पता नहीं कि तुम्हारे इस शरीर रूपी वृक्ष से कब प्राण रूपी चिड़िया उड़ जाए। इसीलिए मनुष्य की ज्यादा चिंता नहीं करनी चाहिए और न ही ज्यादा मोह क्योंकि इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है।

विशेष

1. दार्शनिक कविता है।
2. जीवन के सार तत्व का निरूपण है।
3. रूपक अंलकार है।
4. भाषा बुंदेली है।
5. रहस्यात्मकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. ईसुरी का जन्म कब हुआ था?

(क) 1805 (ख) 1841

(ग) 1909 (घ) इनमें से कोई नहीं

4. जगनिक की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना का नाम क्या है?

(क) माटी के बोल (ख) विजयपाल रासो

(ग) आल्हखंड (घ) इनमें से कोई नहीं

5. माधव शुक्ल 'मनोज' बुंदेलखंड के किस विख्यात नृत्य पर शोध के लिए जाने जाते हैं?

(क) राई (ख) कत्थक

(ग) भरनाट्यम (घ) इनमें से कोई नहीं

6. कौन से कवि अपने सस्वर कविता वाचन के कारण मंच की शान हो गए थे?

(क) जगनिक (ख) ईसुरी

(ग) माधव शुक्ल 'मनोज' (घ) संतोष सिंह बुंदेला

4.4 बुंदेली भाषा के पठित कवियों का आलोचनात्मक विवेचन

बुंदेली भाषा के पठित कवियों ईसुरी, जगनिक, माधव शुक्ल 'मनोज' एवं संतोष सिंह बुंदेला के आलोचनात्मक विवेचन को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

4.4.1 ईसुरी

बुंदेलखंड के अद्वितीय कवि ईसुरी के फागों में श्रृंगार वर्णन, प्रेम, प्रकृति चित्रण, अध्यात्म और जीवन जगत की वास्तविकताओं का चित्रण बेहद सादगी और जीवंतता से हुआ है। ईसुरी का समूचा साहित्य मौखिक रूप से उपलब्ध था। बहुत बाद में जाकर उनके फागों का संकलन–संपादन का कार्य संभव हो सका। लोक में उनके फाग कंठाहार बन गए थे। हर उत्सव, त्योहारों, रीति–रिवाजों में ईसुरी का फाग गाया जाता रहा है। उनकी भाषा में जादुई असर था इसलिए उनके फागों का असर काफी गहरा था। ईसुरी का अनुभव काफी व्यापक था। कम पढ़े–लिखे होने के बावजूद राजनीतिक–सामाजिक समझ उनमें बहुत थी। बुंदेलखंड के सामाजिक जीवन का हर पहलू ईसुरी के फागों में गुंजायमान है।

ईसुरी ने बुंदेलखंड के समाज को बेहद करीब से देखा था। वहां की समस्याओं को महसूस किया था। गरीबी, बेरोजगारी, नशा, ऊँच–नीच, धर्म के नाम पर सामाजिक वर्गीकरण, बेमेल विवाह, अशिक्षा, गरीबी आदि पर ईसुरी ने बेहद प्रभावशाली फागों को रचा है। बुंदेलखंड में अनाज की किल्लत है। घर में खाने के लिए अनाज का एक दाना तक नहीं है। बच्चे भूख से बिलबिला रहे हैं। इस तरह की समस्या को ध्यान में रखते हुए ईसुरी ने लिखा–

"घर में नई अन्न कौ पउआ
अब भए मोल बिसउआ
मरे जात भूंकन के मारै
नन्ने–नन्ने छउआ।"

बुंदेलखंड के तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक ओर भूख बड़ी विकट समस्या थी तो दूसरी ओर नशे के प्रति अतिरेक लगाव था। इस कारण ईसुरी के ऐसे अनेक

फाग मिल जाएंगे जिसमें उन्होंने नशा न करने की सलाह देते हुए उससे होने वाली हानि और खतरे की तरफ इशारा करते हैं। अपने एक फाग में वे स्पष्ट कहते हैं–

"गाँजों पियौ न पीतम प्यारे
जरजैं कमल तुमारे
जारत काम बिगारत सूरत
सूकत रकत नियारे।"

अर्थात् गांजा पीने से तुम्हारा कमल की तरह जो ह्रदय है, वह जलेगा ही, साथ में तुम्हारी सूरत भी खराब हो जाएगी।

ईसुरी लोक में व्याप्त समस्याओं से वास्ता रखने वाले कवि हैं। उन्होंने जीवन के अनुभवों से वास्तविक ज्ञान को हासिल किया था। उन्होंने बुंदेलखंड के किसानों की समस्याओं को ध्यान में रखकर अपने फाग रचे। अंग्रेजी हुकूमत ने भारत के किसानों का दम निकाल कर रख दिया। अकाल पड़ा हो, या बाढ़ आ जाए अथवा सूखा पड़ जाए, उन्हें मालगुजारी हर कीमत पर चाहिए। साहूकारों का अन्याय भी कम नहीं था। किसानों की हालत इतनी खराब थी कि उनका खुद का परिवार पालना भी बहुत मुश्किल हो जाता था। ईसुरी ने अपने एक फाग में लिखा है–

"निनरै जैसी राम निबारै
घटी पटी सिरसारै
अगन–फूस लौ बइ औ जोती
ढार–ढार ढरबारै।
माल गुजारी मांगन चाहत
का दैबी सिरकारै।"

ईसुरी के फाग बुंदेलखंडी समाज का आईना हैं। न्याय–अन्याय, बेईमानी, धोखा जैसे तमाम बुराइयों का तीव्र विरोध ईसुरी के फाग में मिलता है। ईसुरी के फागों को दूर से जानने वाले लोगों को एकबारगी लग सकता है कि वे अपने फागों में गायकी शैली में बड़ी हल्की–फुलकी भावनाओं को अभिव्यंजित किया है लेकिन यह भ्रम तब जाकर एक झटके से टूट जाता है, जब ईसुरी के फागों का अध्ययन गंभीरतापूर्वक करने लग जाते हैं। ईसुरी ने समाज में अनैतिकता, अन्याय और अत्याचार जैसी सामाजिक बुराई को अपने फागों में बड़ी शालीनता के साथ अभिव्यक्त किया है। अपने एक फाग में पंचायत के लोभी और लालची हो जाने तथा दरवाजे देखकर फैसला सुनाने के रिवाजों पर रोष व्यक्त करते हुए लिखा है–

"आऔ जौ कलजुग की पारौ
सतजुग दै गऔ टारौ
मौं देखी पंच्याट होत है
देख चीकनौं दुआरौ।"

ईसुरी के सामने बुंदेलखंड का एक ऐसा समाज था जो अथाह पीड़ा और गरीबी का जीवन जीने के लिए बाध्य था। इसके जिम्मेदार कौन थे? समाज के उच्च शक्ति संपन्न लोग थे। उन उच्च शक्ति संपन्न लोगों को सीधे अपने निशाने लेते हुए ईसुरी ने लिखा है–

"जानै कौन जमानौ आऔ
गाँठन माल गमाऔ

भोजन बार बरक्कत नइयाँ
खाऔ जौन कमाऔ
अपनी मूड़ जोरियां बाँदे
फिरत लोग सब धाऔ।"

ईसुरी ने अपने फागों में सामाजिक स्थिति का चित्रण बखूबी किया है। ईसुरी के फाग आदर्श स्थिति के संकेतक की तरह सामने आते हैं। बुंदेलखंड के समाज में पारिवारिक रिश्तों की जो स्थिति थी सामाजिक रिश्तों का जो ताना–बाना था उसमें दरारें पड़ने लगी थी। ईसुरी इन सभी स्थितियों को बेहद करीब से देख रहे थे। वे जानते थे कि सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों में जब तक मधुरता का संचार नहीं होगा, तब तक कोई भी समाज न उन्नति कर सकेगा, न चैन से रह सकेगा। इस कारण ईसुरी के ऐसे अनगिनत फाग मिलते हैं जिसमें वे सामाजिक तथा पारिवारिक रिश्तों को बेहतर बनाने की सलाह देते नजर आते हैं। ईसुरी अपने एक फाग में लिखते हैं–

जाहर जा जगरीत जनाई
जुगन–जुगन चल आई
माता–पिता गुरु उर स्वामी
जाँसे विद्या पाई।
मिलत रथे जे पाँच ऐकसे
सदा रचे सुख पाई।"

बुंदेली समाज के धार्मिक रीति रिवाजों के चक्कर में फंस कर अपना धन और समय व्यर्थ करते लोगों को ईसुरी बहुत करीब से देख रहे थे। कम पढ़े लिखे लोगों को तो छोड़ ही दें, शिक्षित वर्ग भी पाखंड और आडम्बर में फंसते जा रहे थे। ईसुरी का एक फाग इस संदर्भ में कितना अधिक शिक्षाप्रद है, देखा जाना चाहिए–

हौनी अब नइ बचत बचायें
कोस लक्ष के धायें
पोथी–पुरान भागवत गीता
सालोत्तर समझायें
कागै हाड़ हंस खो मोती
मिलत रात अनचाये।"

ईसुरी स्पष्ट कहते हैं कि जिस घटना का होना तय है, वह घट कर रहेगी। उससे लाख कोस दूर भाग जाने के बाद भी वह टल नहीं सकती है। चाहे जितना धर्मग्रंथ, भागवत पुराण, गीता का पाठ कर लो, जो होना लिखा है, वह होकर रहेगा। इसी तरह ईसुरी ने बुंदेलखंडी समाज को चौरस के खेल में अपना समय व्यर्थ करते हुए देख रहे थे। मेहनतकश लोगों के लिए यह खेल कितना नुकसानदेह है, इसे भी वे भलीभांति समझ रहे थे। ईसुरी का मानना है कि यह खेल रईसों का है, मेहनत से कमाने खाने वाले लोगों के लिए यह खेल व्यर्थ का समय गंवाने वाला है। इस लिए इस खेल पर अपनी मेहनत की कमाई बर्बाद करना सरासर बेवकूफी है। उन्होंने लिखा है–

"चौपर है राजन के लानै
जिनै जगीरी खाने
बड़े भोर से बिछौ गलीचा

ठान ओइ की ठाने
निसदिन तार लगी चौपर की
मरे जात भैराने।"

ईसुरी ने अपने फागों में बुंदेलखंड के सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों को उद्‌घाटित किया है। उनके फागों का प्रभाव इतना व्यापक और गहरा था कि लोगों के मन में गहरे रूप से अंकित हो जाता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ईसुरी के फागों में केवल प्रेम और शृंगार की व्यंजना नहीं हुई है बल्कि जीवन के गहरे अनुभवों के आधार पर बुंदेलखंडी समाज को एक नई दिशा दिखाने का काम करता है। उससे आगे बढ़कर कहा जाय तो इस बात को भी मानने में हिचक नहीं हो सकती है कि जिस तरह कबीर की वाणी में सामाजिक बुराई के प्रति विरोध का स्वर मुखरित हुआ है, उसी तरह ईसुरी ने अपने फागों के माध्यम से बुंदेलखंड के सामाजिक ताने–बाने को गहराई से अभिव्यक्त किया है।

4.4.2 जगनिक

आल्हखंड एक वीररस प्रधान काव्य है। इस काव्य में युद्धों का जीवंत वर्णन किया गया है। तमाम तरह के अस्त्र–शस्त्रों की विशेषताओं का उल्लेख प्रमुखता से किया गया है। युद्ध की रणनीतियों के अलावा युद्ध से संबंधित नियमों का भी वर्णन शास्त्र सम्मत नीतियों के आधार पर किया गया है। जगनिक बुंदेलखंड के आदिकवि माने जाते हैं। उनके द्वारा रचित 'आल्हखंड' बुंदेली साहित्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। इस कृति में राजधर्म से लेकर नीति प्रवीणता का जैसा वर्णन इसमें मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

सिरसा के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की विशाल सेना महोबा पर आक्रमण कर देती है। पृथ्वीराज की सेना से टक्कर लेना महोबा के सम्राट परमाल के लिए बेहद कठिन होता है। दूसरी तरफ माहिल की बातों में आकर परमाल ने आल्हा को अपने प्रदेश से बाहर जाने का फरमान सुना दिया है। आल्हा महोबा से निकलकर कन्नौज जाकर बस जाते हैं। लेकिन पृथ्वीराज की सेना के आक्रमण की सूचना पाकर महोबा पर आए संकट को समाप्त करने का संकल्प लेते हैं। इस कृति में जगह–जगह नीतिपरक विचारों का वर्णन मिलता है। लेकिन सिरसा के युद्ध में पृथ्वीराज की विशाल सेना के विरुद्ध युद्ध की रणनीति तैयार करने के अलावा युद्ध की नियमावली को भी रेखांकित किया गया है। युद्ध में पृथ्वीराज की सेना से किस तरह से टक्कर लिया जा सकता है।

पृथ्वीराज चौहान ने महोबा पर आक्रमण कर दिया है। चारों तरफ से महोबा को घेर लिया गया है। परमाल की सेना कमजोर पड़ गई है। पृथ्वीराज की शक्तिशाली सेना से युद्ध की रणनीति का वर्णन 'आल्हखंड' के सिरसा युद्ध में उल्लेखनीय है। कमजोर सेना को मजबूत बनाने के लिए महोबा की सेना में राज्य के सभी हाथियों को शामिल करने की नीति बनाई जाती है। युद्ध में उच्च कोटि के हाथियों को शामिल करने के साथ–साथ निम्न कोटि के हाथियों को भी युद्ध में शामिल करने की बात कही गई है। अर्थात् युद्ध में हाथियों की भूमिका प्रमुख है, उसके उन्नत कोटि की कोई परवाह नहीं है। सिर्फ इतना ही नहीं 'खूनी हाथी' को भी युद्ध में शामिल करने की योजना बनाई जाती है–

"मेगुल भूरा हाथी साजौ
छोटे पर्वत की उनहार
खूनी हथिनी को सजबायो
पाँयन देउ जंजीर बँधाय।"

खूनी हथिनी को भी युद्ध के लिए तैयार करो। लेकिन उसके पाँव में जंजीर बाँध दो। ताकि उसके ऊपर नियंत्रण रखा जा सके। इस प्रसंग में हाथियों की अनगिनत कोटियों का उल्लेख मिलता है। अनेक तरह के हाथियों के प्रकार होते हैं। हर हाथी की अपनी–अपनी खास उपयोगिता भी होती है। लेकिन सभी का उपयोग युद्ध में कैसे होना चाहिए। उस पर विस्तार से इस प्रसंग में उल्लेख किया गया है।

पृथ्वीराज की सेना से युद्ध लड़ने के लिए सेना की पोशाक की चर्चा भी की गई है। युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों को किस तरह की विशेष पोशाक पहनाकर रणभूमि में उतारा जाए इस संदर्भ में भी नीति बताई गई है। सैनिक किस तरह के हथियारों को अपने साथ रखे। अपने पूरे शरीर को तलवार तथा गोलियों से बचाने के लिए कवच धारण करे। इसकी चर्चा इस खंड की खास विशेषता है। एक उदाहरण देखिए–

"तेहि पर पहिरे झीलम अपनी
जामें टूट जाय तलवार
ताके ऊपर बख्तर पहिरे
जामें सेल नाहिं अनियाय।"

सैनिक का वस्त्र ऐसा होना चाहिए जिस पर तलवार के प्रहार का भी कोई असर न हो। भाले की नोंक भी सैनिक को घायल न कर सके। इतनी मजबूत पोशाक तथा कवच पहनकर रणभूमि में उतरना चाहिए। बचाव के प्रत्येक तरीके का उल्लेख इस खंड में किया गया है। जगनिक की युद्ध की रणभूमि कौशल का बखान अद्‌भुत है। वे युद्ध में प्रयोग किए जाने वाले सभी हथियारों का केवल वर्णन करके ही नहीं रह जाते हैं बल्कि उसकी विशेषता को भी रेखांकित करते हैं।

युद्ध में केवल शक्तियों का ही उपयोग नहीं होता है बल्कि समाज में स्थापित नीति–नियमों का भी पालन करना आवश्यक समझा जाता है। 'सिरसा के द्वितीय युद्ध' में नैतिक नियमों के साथ युद्ध लड़ने की तैयारी की जाती है। जगनिक ने अपनी इस कृति में जिस तरह से युद्ध में नैतिक नियमों का उल्लेख किया है, वह सोचने के लिए बाध्य कर देता है। इस अंश के अध्ययन से एक यह भ्रम भी मिटता है कि 'आल्हखंड' में केवल वीरता का ही बखान नहीं है बल्कि युद्ध धर्म का सख्ती से पालन करने के लिए भी प्रेरित करता है। युद्ध में नैतिक नियमों का किस तरह से पालन करना है उसकी एक बानगी देखिए–

"हा, हा खाते कों ना मारै
नां तिरिया पर डारै हाथ
बालक बूढ़े कों ना मारै
ना भागे के परै पिछार।"

युद्ध में चाहे जैसी भी स्थिति रहे। हार–जीत का फैसला चाहे जिसके पक्ष में हो जाए लेकिन युद्ध हेतु बनाए गए नैतिक नियमों को नहीं तोड़ना चाहिए। युद्ध में दुश्मन चाहे जितना भी शक्तिशाली रहे लेकिन उसे खाना खाते वक्त नहीं मारना

चाहिए। उसे पहले भोजन पूरा कर लेने का अवकाश देना चाहिए। उसके बाद ही उससे युद्ध किया जाना चाहिए। युद्ध में स्त्रियों के ऊपर प्रहार नहीं करना चाहिए। यह क्षत्रिय धर्म के खिलाफ माना जाता है। स्त्रियों पर हाथ उठाना शास्त्र के खिलाफ माना ही गया है। लेकिन युद्ध के दौरान यदि कोई स्त्री सामने पड़ जाए तब उसके ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग करना अनुचित माना गया है। युद्ध चाहे जितना भी कठिन क्यों न हो, हार–जीत का महत्व चाहे जिस रूप में हो, बच्चे और बूढ़े पर प्रहार नहीं करना चाहिए। कमजोर पर वार करना नैतिकता के प्रतिकूल है। ऐसे व्यक्ति पर भी प्रहार करना उचित नहीं है, जो रणभूमि से अपनी हार की डर से भाग रहा हो। जो भागना चाहता हो, उसके पीछे से भागकर युद्ध नहीं करना चाहिए। जो भाग रहा हो, उसे भागने देना ही नैतिक धर्म के अनुकूल माना गया है।

'आल्हखंड' में युद्ध में नैतिक नियमों का वर्णन करते समय जगनिक तात्कालीन समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हैं। सिरसा के द्वितीय युद्ध के वर्णन में जगनिक ने युद्ध की नीति का जिक्र करते हुए नैतिक नियमों का खूब हवाला देते हैं। नैतिक नियमों का पालन करना भी युद्ध नीति का हिस्सा है। एक प्रसंग में जगनिक ने लिखा है–

"पहिली चोट करै कबहूँ नहिं
नर निर्बल पर करैं प्रहार
ताकौं मारै न काहू विधि
जाके पास नाहिं हथियार।"

रणभूमि में आक्रमण करने के लिए उतावला नहीं होना चाहिए। सामने वाले प्रति द्वंद्वी की तरफ से पहला प्रहार होने देना चाहिए। यह रणभूमि के नैतिक नियमों में सबसे प्रमुख है। यदि सामने वाले पक्ष पहले प्रहार नहीं करता है, तब युद्ध टल जाने की सम्भावना हो सकती है। युद्ध का विकल्प तलाशा जा सकता है। इसलिए पहले प्रहार का इंतजार करना चाहिए। निर्बलों पर कभी प्रहार नहीं करना चाहिए। वैसे लोगों पर भी प्रहार नहीं करना चाहिए जो निहत्था है। इस तरह से देखा जाए तो जगनिक ने सिरसा के द्वितीय युद्ध के हवाले से रणभूमि में युद्ध लड़ने की नीति और नैतिक नियमों का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ किया है। आल्हखंड की ख्याति वीर रस के कारण है लेकिन इस कृति में नीति संबंधी विचारों का उल्लेख भी खूब मिलता है। इस कृति में एक ओर वीर रस के रौद्र, भयानक और वीभत्स रसों का वर्णन बड़ी खूबसूरती के साथ किया गया है तो दूसरी तरफ रणभूमि की कुशलता और नैतिकता का हवाला भी दिया गया है।

4.4.3 माधव शुक्ल 'मनोज'

बुंदेली कविता का इतिहास समृद्ध है और गौरवशाली भी। आल्हखंड जैसी विख्यात काव्य विद्या का आधार बुंदेली भाषा ही है। बुंदेली भाषा के कवि मूलतः लोक–जीवन से जुड़े संस्कार, संस्कृति और लोक कला के प्रति प्रतिबद्ध दिखते हैं। बुंदेली कविताओं में वीर रस की प्रधानता मिलती है क्योंकि यह राष्ट्र के बलिदान करने वालों की भूमि रही है। ग्रामीण जीवन में रचे–बसे लोगों का जीवन उत्सवधर्मी होता है। अभाव और तनाव में जीते हुए भी चेहरे पर एक हँसी बचाए रखने की जिद्द ही ग्रामीण समाज को दीर्घायु बनाती है। लोक कभी हारता नहीं है। इतिहास जहां विवश होता है लोक वहां से शुरू होता है।

माधव शुक्ल 'मनोज' आधुनिक बुंदेली कविता के वरिष्ठ कवि हैं। साहित्यकार और संपादक के रूप में उनकी ख्याति है। उनकी कविताओं में बुंदेलखंड की ग्रामीण संस्कृति का जीवंत चित्रण मिलता है। बड़ा रचनाकार वही होता है जो अपने समाज की संवेदना को अभिव्यक्त करने में सफल हो पाता है। माधव की साहित्यिक यात्रा कई काव्य रंगों से भरी हुई है। बुंदेल की लोक संस्कृति के प्रति विशेष आस्था रखने वाले माधव शुक्ल 'मनोज' की कविताओं में जीवन के प्रति जो आस्था का भाव है वही उनकी कविता का सबसे मजबूत पक्ष है।

कवि 'मनोज' की कविताओं के भाव पक्ष की बात करें तो ग्रामीण जीवन का यथार्थ अपनी पूरी संवेदना के साथ उपस्थित है। उपेक्षा और अभाव में जीने वाला समाज अपनी पारंपरिक जीवन–शैली के प्रति अनुराग रखता है। उनका यही अनुराग उनके अंदर के मनुष्य को बचाए रखता है। मनोज शुक्ल 'मनोज' की कविताओं में बुंदेली जीवन की चेतना पूरी तरह से रची–बसी है। उन्होंने अपनी एक कविता में लिखा है–

"सूरज सोना सो बरसाये, धरती बिरछा पात हो,
हंसे दूधिया चाँद चंदनियाँ, गोरी–गोरी रात में।"

ग्रामीण जीवन का प्राकृतिक सौंदर्य जब कविता में उतरता है, तो कविता का भाव पक्ष सुंदर हो जाता है। गांधी ने सच ही कहा था–असली भारत गांव में बसता है। माधव शुक्ल 'मनोज' की कविताओं में खेत–खलिहान और वहां मिट्टी की खुशबू लिपटी हुई है। बुंदेली गांवों का सौंदर्य उतरता है। मनुष्य से दूर होते ताल, तालाब, नदी और नाव 'मनोज' की कविता में उनके सहयात्री बनकर चलते हैं। गांव की बहती प्रदूषण मुक्त हवा, आम के पेड़ों से उठती महक कवि को आकर्षित करते हैं। कवि ने अपनी एक कविता में लिखा है–

गली–गली गाँवन में, नदियाँ पहारन में
पतली सी पुरवैया घूम रही हो
अमवा की डारों को चूम रही हो
पतली सी पुरवैया घूम रही है।

कवि यह जानता है कि ग्रामीण जीवन उतना आसान नहीं है जितना समझा जाता है। व्यवस्था की उदासीनता और ग्रामीण समाज के प्रति उपेक्षा का भाव हमेशा से समाज में रहा है। माधव शुक्ल 'मनोज' केवल गांव की कविता नहीं लिखते हैं बल्कि गांव से गहरे जुड़े हुए हैं। गांव की मिट्टी उनके वजूद का हिस्सा थी। उसकी सोंधी महक से कवि का जुड़ाव है। ग्रामीण जीवन की जटिलता को कवि बेहद शिद्दत से महसूस करते हैं–

टेढ़ी–सी गलियों में जीवन भर चलते हैं
अंधियारी दुनिया में दीपक सो जलते हैं
दर्दीले मौसम में होत दुख दूना है
फिर भी इन हाथों से अंगारे छूना है।

समकालीन बुंदेली कविता की सबसे मजबूत नींव हैं। माधव शुक्ल 'मनोज'। कवि का लोक आस्था में अटूट विश्वास है। वे बुंदेली लोक कलाओं के प्रति बेहद संवेदनशील रहे हैं। उनके मन में बुंदेली कला के लिए भी विशेष श्रद्धा का भाव है। कवि ने बुंदेली समाज के सुख–दुख को अपनी कविता का मूल विषय बनाया है। गांव की पीड़ा उन्हें

अपनी निजी पीड़ा लगती है। इस कारण उनकी कविताओं में बुंदेलखंड के ग्रामीण जीवन का यथार्थ ठोस रूप में अभिव्यक्त हुआ। ग्रामीण संवेदना का भदेस रूप पूरी जीवंतता के साथ उकेरने वाले माधव शुक्ल 'मनोज' ग्रामीण संघर्ष और यातना को भी गहरे रूप से अभिव्यक्त करते हैं–

"दुख–तकलीफें
खतियों सी फिदकीं
खाज सी खुजानी
और हम....
फोड़ा–फुंसियों से रिसे
जिन्दगानी भर चकिया से चले....
गेहूँ से पिसे।"

'मनोज' की कविताओं में कृत्रिम भावों के लिए कोई जगह नहीं है। वे बिल्कुल मौलिक तरीके से बुंदेली समाज में होने वाली हलचलों की तस्वीर उभारते हैं। उनके संदर्भ में हिन्दी के प्रख्यात कवि त्रिलोचन शास्त्री ने लिखा है–

"वे बुंदेली के मौलिक कवि हैं। यह और प्रसन्नता की बात है कि वे बुंदेली कविता में आधुनिक हिन्दी के भावों से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करते हैं। वस्तुतः कविता में शुक्ल की यही वह जगह है जहां उनको अंतिम रूप से होना है। आधुनिक हिन्दी की कविताओं के समकक्ष जहां बुंदेली कविता को स्थापित करते हैं। वहीं अपने जनपद के प्रतिनिधि कवि के रूप में उभरते हैं।" कवि के विषय में कही गई त्रिलोचन की बातें अक्षरशः सही है।

ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह किसी भी देश की बुनियाद की सबसे मजबूत कड़ी होता है लेकिन देश को मजबूती प्रदान करने वाले ग्रामीण कृषक–मजदूरों का योगदान हर किसी की दृष्टि से ओझल हो जाता है। कवि 'मनोज' इस तथ्य को भली–भांति समझते हैं। वे जानते हैं कि किसान और मजदूर बुंदेलखंड को बचाए हुए है। यही वजह है कि उनकी कविताओं में किसानी समाज और मजदूर वर्ग के प्रति विशेष लगाव रेखांकित होता है। स्वयं किसानी जीवन जीने वाले कवि 'मनोज' की कविता में आम जीवन की तमाम विडम्बनाओं को देखा जा सकता है। कवि अपनी बात कहने के लिए किसी पौराणिक मिथकों या ऐतिहासिक पात्रों का सहारा नहीं लेता है। वे अपने समाज के किसान और मजदूर को अपनी कविता का नायक बनाता है। इस संदर्भ में कवि की एक कविता की मार्मिक अभिव्यक्ति को देखें–

तुम मेड़ मड़ैया के राजा
तुम दुपहर सांझ सकरे हो
तुम ही माटी के सोना
तुम पानी हो बदरारे हो
तुम सोन चिरैया बिरछा के
कहो फूले फलै समैया
तुम चंदा के भैया
तुम सूरज के भैया।

इस कविता में बेहद मुखरता के साथ कवि किसान के आत्म सम्मान की बातें कर रहे हैं। उन्हें चांद और सूरज की उपमा देकर उनकी सामाजिक उपयोगिता का पक्ष ले रहे हैं। किसानों के प्रति कवि की कोमल भावनाएं इस कविता में देखी जा सकती हैं।

माधव शुक्ल 'मनोज' का भाव पक्ष जितना कोमल है। कला पक्ष उतना ही सुदृढ़ है। लोक साहित्य के प्रति साहित्यकारों का झुकाव अपेक्षाकृत कम होता है। ऐसे कई कवि हैं जो ग्रामीण समाज को केन्द्र में रखकर कविताएं लिखते हैं लेकिन अपने पारंपरिक शब्दों को भूल जाते हैं। वहीं 'मनोज' बुंदेली भाषा के शब्दों की अस्मिता को अपनी कविता में दर्ज करते हैं–

फागुन आ गऔ
नवरंग छा गऔ
हो गई जा धूरा गुलाल पिया।

बुंदेली के कई ऐसे शब्द हैं जो युवा पीढ़ी के जेहन से उतरते गए हैं, लेकिन माधव की कविताओं में वे शब्द पूरी जीवंतता के साथ उभरते हैं–

"जाता चक्की, ओखल मूसल
सीके टंगे मियार है
चिथड़ों से वह लदी अरगनी
बेड़ा भीतर द्वार हैं।"

बुंदेली के देशज शब्दों का प्रयोग माधव की कविताओं का प्राण तत्त्व है। जब कवि यश प्राप्त कर लेता है। वह शहर की ओर रुख कर लेता है। उनकी रचना में ग्रामीण शब्द घटते चले जाते हैं। लेकिन मनोज के यहां ठीक इसके उल्ट है। वे अपने समाज के प्रति इस कदर प्रतिबद्ध हैं कि ग्रामीण समाज के शब्दों को बिसरा नहीं पाते हैं। उनकी कविताओं में बुंदेली समाज के भूले बिसरे शब्द अपने पूरे ठाठ के साथ प्रस्तुत होते हैं–

"मन में उमंग भरे चैता के ढोल बजे
ढपला रमतूला संग बांसुरिया कूक उठी
टिमक उठी टिमकी रे, मैया के मंदिर में
मन में उमंग भरे चैता के ढोल बजे।"

मनोज की कविताओं में बुंदेली भाषा की ताजगी स्पष्ट रूप से उभरती है। भाषा शैली, शब्द चयन अलंकर योजना के साथ उनके यहां छंद के कई प्रयोग मिलते हैं। पारंपरिक छंदों के अलावा भी वे नए छंदों का प्रयोग अपनी कविताओं में बखूबी करते हैं। मनोज की एक विशेषता यह भी है कि वे अपनी भाषा के प्रति सजग हैं। बेहद कम शब्दों में अपनी बात कहने का सामर्थ्य कवि को विशिष्ट बनाता है। निश्चित रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि माधव शुक्ल 'मनोज' की काव्य–यात्रा बुंदेली समाज और संस्कृति की पक्षधर है। उनकी कविता में किसान राजा की तरह आते हैं। वही उनकी कविताओं के नायक हैं। बुंदेली भाषा–बोली, शब्द संस्कार, आदि कवि की कविताओं का श्रृंगार हैं।

4.4.4 संतोष सिंह बुंदेला

बुंदेली साहित्य और संस्कृति का अतीत अत्यंत समृद्ध रहा है। यहां की धरती में जन्मे अनेक साहित्यकारों ने देशभर में ख्याति अर्जित की है। इन साहित्यकारों की प्रसिद्धि

का आकलन इसी से लगाया जा सकता है कि हिन्दू धर्म एवं समाज के सबसे लोकप्रिय ग्रंथ रामचरित मानस की रचना बुंदेलखंड की धरती पर की गई है। गोस्वामी तुलसीदास ने चित्रकूट में इस प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी। कालपी में महर्षि वेदव्यास ने महाभारत की रचना कर भारतीय जनमानस को एक ऐसा आख्यान दिया जो सदियों से प्रेरणा स्रोत बना हुआ है। इसी बुंदेल खंड की धरती पर मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि ने जन्म लिया, जिन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि प्राप्त हुई। आधुनिक कवियों में संतोष सिंह बुंदेला का नाम उल्लेखनीय है।

बुंदेला के काव्य में बुंदेली समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है। लोकजीवन की वास्तविक छवि कवि बुंदेला की कविता में ग्रामीण संवेदना जीवंतता के साथ उद्घाटित होती है। ग्रामीण समाज की दिनचर्या, जीवन जीने के तरीके ग्रामीण जीवन को खास बनाते हैं। आपस में घुल–मिलकर रहने के आदी बुंदेली समाज में एक अनूठी सामूहिकता है जिसे कवि अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। चौपालों और पेड़ की छाया में बैठकर मस्त मौला जीवन जीने वाले ग्रामीण समाज के लोगों की मनोवृत्ति को संतोष सिंह बुंदेला अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं–

"मिटाले तनिक घाम की पीर,
ओ पानी पीले गैलारे।
तनिक बैठकें तुम सुस्ताले,
जा नै फिर जा रे।।"

इस कविता में बुंदेली समाज के सामाजिक सरोकार को अभिव्यक्ति मिली है। गांव के लोग अपने घर के पास से गुजरने वाले यात्रियों को रोककर उन्हें पानी पिलाना और गुड़ खिलाना मानवीयता का धर्म समझते हैं। बुंदेली ग्रामीण समाज की स्त्रियों की मनोदशा को अभिव्यक्त करती कवि की इस कविता को भी देखिए–

हमतौ है ग्वालन की बेटी,
हार पहारन रइए।
गइयन बछियन से बाबू,
मन की बातें कर लइये।।
हमारे गुइयाँ छेवल सगौन,
करें बातें हम, बे रए मौन।
दुक्ख मन कौ जानत है कौन,
रहै मन ऐईसें समझारे।
आज जानें का मन में आई,
और तुमसें इतनी बतराई।।

इस कविता में राही को रोककर उनसे दो बातें करने का आग्रह मार्मिकता के साथ अंकित हुआ है। वहां की स्त्री कहती है कि वे तो ग्वालिन हैं। अपनी गाय से ही बात कर लेगी लेकिन किसी राही से बातचीत कर लेने का जो सुख है, वह इस कविता का मूल भाव है और स्त्री मन की इच्छा का सम्मान भी है।

बुंदेला अपनी कविताओं में बुंदेली समाज में रिश्तों की अहमियत को यत्र–तत्र उजागर करते हैं। बुंदेली समाज पारिवारिक–सामाजिक रिश्तों से गहरे जुड़ा हुआ है। समूचे गांव की एक–दूसरे से रिश्तेदारी है। सभी एक–दूसरे के रिश्तों की गरिमा से

भली–भांति परिचित हैं। अक्सर ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसा होता है कि जब घर बहुएं, पत्नी और भाभी के रूप में परिवार का हिस्सा बनती हैं और मां की भूमिका में आकर पूरे परिवार को संभाल लेती हैं। देवरों का अपनी भाभी के प्रति सम्मान का भाव कवि ने इस तरह से व्यक्त किया है–

"मोरी उमर तुम्हें लग जाबै,
भाभी रहे सुहागन।
दूधन पूतन फलौ खेल है,
चंदा सूरज आँगन।।
लौट आई घर भैया दौज,
मनाहौं अब मैं सावन रोज।
कौ मोरी जनम जनम की खोज,
करी तुम मइया रे।"

इस कविता में देवर भाभी के बीच के प्रेम को आधार बनाकर उनके सामाजिक संबंध को दिखाने का प्रयास किया गया है। संतोष सिंह बुंदेला बुंदेली लोक के ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में लोक, संस्कृति, संबंध और प्रकृति जीवंत रूप में सामने आते हैं। सावन के महीने में जब खेत खलिहान, जमीन पानी से भर जाते हैं, तो सोंधी मिट्टी की गंध बिखरती है। इस गंध में एक आकर्षण भी है जो ग्रामीणों के भीतर ऊर्जा का संचार करता है। ऐसे दृश्य का सचित्र वर्णन इस कविता में देखिए–

"गाँव लगें रमनीक इतै के
नदिया ताल भरे हैं
गेर–गेर पर्वत मालाएँ
मानो कोट फिर हैं।"

अपनी नदियों के प्रति जो आस्था का भाव है। वह भाव बुंदेला की कविता की इन पंक्तियों में देख सकते हैं–

''चंबल केन नरबदा जमुना
जनमन के सब पीरा हरे।''

तीज त्योहार का वर्णन बुंदेला की कविताओं में खूब हुआ है। बुंदेला की कविताओं में बुंदेलखंड की संस्कृति झाँकती हैं। बुंदेलखंड का लोक जीवन हर्षोल्लास का पर्याय है। वहां हर छोटे–बड़े त्योहारों को धूमधाम के साथ मनाए जाने का रिवाज है। नाचना, गाना, संगीत, ढोल, नगाड़े वहां की संस्कृति का हिस्सा हैं और हर तीज त्योहारों में इन सभी वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल भी खूब किया जाता है। कवि बुंदेला ने इन सभी अनुभूतियों को अपनी कविता के माध्यम से बेजोड़ तरीके से अभिव्यक्त किया है। एक कविता के माध्यम से कवि की इन अनुभूतियों को समझा जा सकता है–

"सावन और कन्हैया, आठे, दसरव और दिवाली
भूलै नहीं तिलैया बुड़की, बा होली की लाली
खेरौं गौंड़ तिलैया मैया, बरां नीम की छैयां
श्री बजरंगवली के दरसन, करौ परौ दोई पैयाँ
हर पत्थर भगवान इतै के, हर पत्थर हीरा है
हर बेटी झाँसी की रानी, अथवा फिर मीरा है।"

बुंदेलखंड के लोग बेहद परिश्रमी होते हैं। वे मेहनत के बल पर अपना घर–परिवार चलाने में यकीन रखते हैं। खेती–मजदूरी भी वे ईमानदारी से करते हैं। कामचोरी उनके रक्त में नहीं है। अपना काम पूरा करने के लिए जी तोड़ मेहनत करते हैं। वे हमेशा अपने कामों में लगे रहते हैं। दिन रात मेहनत कर अपनी जमीन को उर्वरा बनाने का उपक्रम करते रहते हैं। कभी वे खाली बैठना पसंद नहीं करते हैं। बुंदेला अपनी कविताओं के माध्यम से बुंदेल खण्डियों की व्यस्त जीवन–शैली को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं–

"दोई जोर की पसर चरावे और सब दिन हर हांके।
बिना कलेवा दिन लौटे लौ, निकरी आबे आँखें
भारी परे क्वार के धान, केवला बरके हो गई चाम
बैठवो होगओ मोय हराम, तऊँ पै तौरौ मनखारौ
कछू न बोलत हँसत बतात, है उसी खिसियानी सी रात
काऊ सै लर आई, कछू कओ कै बाई।"

संतोष सिंह बुंदेला ग्रामीण जीवन को अपना सब कुछ मानते हैं। वे यहीं अपना समस्त न्यौछावर करने के लिए लालयित भी रहते हैं। गांव के प्रति उनका समर्पण उनकी कविताओं में स्पष्ट झलकता है। बुंदेला की कविताओं में बुंदेली समाज की विभिन्न छवियां देखने को मिलती हैं। अपनी धरती से प्रेम, प्रकृति से लगाव, संस्कृति के प्रति अटूट आस्था कवि की कविताओं का मूल स्वर है। एक कविता में कवि के इस भाव की अभिव्यक्ति देखिए–

"जोन गाँव के पंचतत्त्व से,
बनी जा अपनी काया
माँ से पहला जी धरती ने
हम खाँ गरै लगाया।"

इस प्रकार देखें तो संतोष सिंह बुंदेला के यहां बुंदेली जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। उनकी रचनात्मक यात्रा की सह–यात्री ग्रामीण भाव बोध है। यह सह–यात्री बुंदेला के साथ–साथ हमेशा साथ चलता है और कवि को प्रेरित भी करता है। बुंदेली जीवन की तमाम छवियां उनके काव्य का जीवंत हिस्सा हैं। कवि की कविताओं में लोक आस्था का भाव अद्‌भुत तरीके से अभिव्यक्त होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. किस कवि के फागों का गायन बुंदेली समाज अपने हर उत्सव, त्योहारों, रीति–रिवाजों में करता है?

(क) ईसुरी (ख) जगनिक

(ग) माधव शुक्ल 'मनोज' (घ) संतोष सिंह बुंदेला

8. वीररस प्रधान काव्य 'आल्हखंड' के रचयिता आदिकवि का नाम क्या है?

(क) ईसुरी (ख) जगनिक

(ग) माधव शुक्ल 'मनोज' (घ) संतोष सिंह बुंदेला

9. माधव शुक्ल 'मनोज' को राष्ट्रपति पुरस्कार कब प्राप्त हुआ था?

(क) 1975 (ख) 1980

(ग) 1984 (घ) 1990

10. निम्न में से किस कवि ने फिल्मों में भी अपनी किस्मत आजमाई?

(क) ईसुरी (ख) जगनिक

(ग) माधव शुक्ल 'मनोज' (घ) संतोष सिंह बुंदेला

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख) 2. (घ)
3. (ख) 4. (ग)
5. (क) 6. (घ)
7. (क) 8. (ख)
9. (ग) 10. (घ)

4.6 सारांश

बुंदेली भाषा के उद्भव को लेकर विभिन्न विद्वानों में हमेशा से मतवैविध्य रहा है। किसी ने बुंदेली को बोली माना, किसी ने इसे 'भाषा' या 'विभाषा' माना, किसी ने इसे उप बोली के रूप में स्वीकार किया है। धीरेन्द्र वर्मा ने बुंदेली भाषा के उद्गम को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– "बुंदेली को ब्रज का दक्षिणी रूप कहा जा सकता है। दोनों में अंतर शब्द रचना की अपेक्षा ध्वनियों में अधिक है। वास्तव में बुंदेली को हिन्दी की अलग बोली न मानकर ब्रज की दक्षिणी उपबोली कहा जा सकता है।" इसी तरह प्रख्यात भाषाविद् हरदेव बाहरी ने माना है कि प्राकृत के उत्तरवर्ती रूप से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्भव हुआ है। पश्चिमी हिन्दी का विकास उत्तर मध्यकालीन शौरसेनी प्राकृति माना है और आमीरी, टक्क और पैशासी भाषा के प्रभाव को स्वीकार किया है।

बुंदेली भाषा का समृद्ध इतिहास है। यह भाषा शौरसेनी अपभ्रंश के 'मध्यदेशीय' से विकसित पश्चिमी हिन्दी की एक प्रमुख बोली है। यह तथ्य सर्वविदित है कि हिन्दी की लोकभाषाओं का उदय मध्यदेशीय शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। शौरसेनी अपभ्रंश से अनेक लोकभाषाओं का जन्म हुआ। ब्रजभाषा, खड़ी बोली और बुंदेली का मूल आधार शौरसेनी अपभ्रंश को ही माना गया है। दसवीं सदी से बुंदेली भाषा का साहित्य प्रकाश में आया। इसी के आसपास बुंदेली का उद्भव हुआ था। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि "बुंदेली का उद्भव अन्य लोक भाषाओं के उदय के डेढ़–दो सौ वर्ष पहले ही हो चुका था, इसलिए चंदेल काल में बुंदेली लोक–काव्य की रचना निरंतर होती रही। बुंदेली के संदर्भ में यह तथ्य भी विदित है कि बुंदेली भाषा अपनी स्थानीय बोलियों के साथ 11वीं–12वीं सदी में विकसित होने लगी थी। स्थानीय बोलियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप मध्यदेशीय भाषा ने बुंदेली भाषा का रूप ग्रहण करना शुरू किया था।

मध्यभारत का प्राचीन विन्ध्यावही क्षेत्र आज बुंदेलखंड के नाम से जाना है। बुंदेली भाषा केवल इसी क्षेत्र में नहीं वरन इसके आसपास के अनेक इलाकों में बुंदेली भाषा

का आम बोलचाल की भाषा में प्रयोग होता है। यही वजह है कि इस प्राचीन भाषा का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। मोटे तौर पर देखें तो झांसी, सागर, महोबा, दोहम, जालौन, ग्वालियर, मुरैना, विदिशा, जबलपुर, गुना, सिवनी, सागर, छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़, दतिया, ललितपुर, हमीरपुर, सिवनी, छिन्दवाडा, बैतूल, भिण्ड, शिवपुरी क्षेत्र की भाषा को बुंदेली भाषा स्वीकार किया गया है। 'इंडिया : एक रीजनल ज्याग्रफी' पुस्तक में बुंदेलखंड की सीमा को रेखांकित करते हुए बताया गया है कि "वह क्षेत्र जो उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य प्लेटो की श्रेणियों, उत्तर–पश्चिम में चम्बल और दक्षिण–पूर्व में पन्ना–अजयगढ़ श्रेणियों से घिरा हुआ है, बुंदेलखंड के नाम से जाना जाता है। उसमें उत्तर प्रदेश के चार जिले– जालौन, झांसी, हमीरपुर और बांदा तथा मध्य प्रदेश के चार जिले दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर और पन्ना के अलावा उत्तर–पश्चिम में भिण्ड जिले की लहर और ग्वालियर जिले की भाण्डेर तहसीलें भी सम्मिलित हैं।"

विख्यात लोक कलाकार ईसुरी का जन्म सन् 1841 में उत्तर प्रदेश के झांसी जिले में हुआ था। उनके गांव का नाम मऊरानीपुर मेंढ़की था। बचपन से ईसुरी का मन लोक जीवन को समझने में लगा था, संभवतः इसी कारण उनके परिवार के लाख चाहने के बावजूद ईसुरी का पढ़ने में मन नहीं लगा। ईसुरी के बारे में यह बात प्रचलित है कि वे आशु कवि थे, अपनी काव्य प्रतिभा से दृश्य को तत्काल काव्य के रूप में प्रस्तुत कर देते थे।

जगनिक की दो रचनाएं उपलब्ध हैं। 'आल्हखंड' और 'विजयपाल रासो' के रचयिता जगनिक की कीर्ति आज तक विद्यमान है। 1865 में फर्रूखाबाद के कलक्टर सर चार्ल्स इलियट ने 'आल्हखंड' को प्रकाशित करवाया तथा श्याम बिहारी श्रीवास्तव ने विजयपाल रासो की खोज की थी। 'आल्हखंड' वीर रस प्रधान प्रबंध काव्य है। इस रचना में बावन युद्धों का वर्णन है। इस कृति को समूची भारतीय भाषाओं में सम्मान हासिल हुआ है। 'आल्हखंड' में अपने देश के लिए बलिदान होने वाले आल्हा–उदल की वीरता की कथा मिलती है। 'आल्हखंड' मौखिक परंपरा से विकसित काव्य है। इस काव्य में वीरता का वर्णन तो है ही, साथ ही उसमें बुंदेली संस्कृति, भाषा और समाज का गहरा असर भी विद्यमान है। जगनिक की कविता बुंदेलखंड के जन–जन का कंठाहार बना है। इस कृति की प्रसिद्धि केवल बुंदेलखंड की सीमा तक ही सीमित नहीं रही है। भारतीय समाज में 'आल्हखंड' की पंक्तियां खूब प्रसिद्ध हुई।

माधव शुक्ल 'मनोज' एक कृषक परिवार में जन्मे थे। उनका परिवार आर्थिक रूप से बेहद कमजोर था, इस कारण उनकी परंपरागत शिक्षा में कई अवसरों में व्यवधान भी आया। आर्थिक दिक्कतों ने उन्हें जल्द ही ठोस आय के स्रोत खोजने के लिए बाध्य किया था। वे उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे लेकिन आर्थिक आधार मजबूत न होने के कारण उन्हें अध्यापन की ओर जाना पड़ा। तात्कालीन समस्याओं ने उन्हें यह निर्णय लेने के लिए बाध्य अवश्य किया था लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अपना विशिष्ट योगदान दिया। इसी योगदान के कारण उन्हें 1984 में राष्ट्रपति शिक्षक पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उनका जीवन संघर्ष उनकी कविताओं का मुख्य आधार बना।

बुंदेलखंड के लोकप्रिय कवि संतोष सिंह बुंदेला का जन्म 18 मई, 1930 को छतरपुर जिले के पहाड़गांव जागीर में हुआ था। इनके पिता का नाम दीवान दिल्लीपत सिंह था। इनके पिता की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी। जल्दी ही घर–परिवार को चलाने का जिम्मा बुंदेला के कंधों पर आ गया था। 1954 में इनका विवाह प्रेमकुंवरि के साथ संपन्न हुआ था। युवा अवस्था में बुंदेला काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए। उसी

दौरान फिल्मों में भी अपनी किस्मत आजामाई लेकिन किस्मत को कुछ और मंजूर था। फिल्मी दुनिया को बुंदेला ने बहुत जल्दी अलविदा कह दिया और काव्य लिखने लगे। मंच पर जब संतोष सिंह बुंदेला ने कविता पढ़ना शुरू किया तब उनकी ख्याति परवान चढ़ने लगी। देखते ही देखते बुंदेला मंच की शान हो गए। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी बुंदेला मंच पर सस्वर कविता का वाचन करते थे। उनके नाम से श्रोताओं की भीड़ उमड़ पड़ती थी। महज तिरसठ वर्ष की आयु में 20 जून, 1993 को उनकी मृत्यु हो गई।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **सुमरन** : स्मरण।
- **परमेसुर** : परमेश्वर।
- **कारज** : कार्य।
- **स्वारथ** : स्वार्थ।
- **कमती** : कम।
- **दारुन** : भयंकर।
- **सरवर** : तालाब।
- **गाँजौ** : गांजा।
- **कनउज** : कन्नौज।
- **पिथौरा राय** : पृथ्वीराज।
- **असवार** : सवार होना।
- **भूप** : राजा।
- **हौदा** : हाथी के ऊपर बैठने की जीन।
- **पिछार** : पीछा करना।
- **कनौजीराय** : कन्नौज के राजा।
- **फिरतई** : फिरना।
- **ढुलकिया** : ढोलक।
- **बूँटन** : पौधे।
- **बाट** : राह।
- **कुइया** : कुंआ।
- **जिठनियाँ** : जेठानी।
- **दूबरी** : दुबली।
- **रमनीक** : सुंदर।
- **नरबदा** : नर्मदा।
- **घाम** : धूप।
- **मुस्क्यानी** : मुस्काई।
- **सारे** : सहारे।
- **ससुरार** : ससुराल।
- **रमटेरा** : एक वाद्य यंत्र।

- **दिबारी** : दिवाली।
- **निरयन** : स्त्रियां।
- **तरइयाँ** : तारे।
- **चिरइयाँ** : चिड़ियां।

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. बुंदेली भाशा की बनाफरी एवं कुन्द्री उपबोलियों का परिचय दीजिए।
2. ईसुरी का साहित्यिक परिचय स्पष्ट कीजिए।
3. जगनिक की काव्यगत विशेषताएं बताइए।
4. माधव शुक्ल 'मनोज' की कविताओं की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
5. आधुनिक बुंदेली कविता–धारा में संतोष सिंह बुंदेला का विशेष स्थान है। कैसे? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बुंदेली भाषा साहित्य की उपबोलियों के इतिहास एवं सीमा–क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
2. ईसुरी के काव्य विषय में सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।
3. जगनिक के काव्य 'आल्हखंड' का मूल्यांकन आलोचनात्मक दृष्टि से कीजिए।
4. माधव शुक्ल 'मनोज' का बुंदेली भाषा के विकास में क्या योगदान है? समीक्षात्मक आलोचना कीजिए।
5. संतोष सिंह बुंदेला की भाषा–शैली का वर्णन करते हुए काव्यगत प्रतिभा का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. डॉ. दुर्गेश दीक्षित, 'बुंदेली गाथा : बुंदेली गाथाओं का अनुशीलन'।
2. 'आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास, प्रकाशक– अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद।
3. प्रो. नर्मदा प्रसाद गुप्त, 'बुंदेली का लोक साहित्य, परंपरा और इतिहास', प्रकाशक– मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय।

इकाई 5 द्रुत पाठ

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 लक्ष्मीनारायण मिश्र
5.3 डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
5.4 मोहन राकेश
5.5 भारतेंदु हरिश्चंद्र
5.6 सुरेश शुक्ल 'चंद्र'
5.7 बाबू गुलाब राय
5.8 महादेवी वर्मा
5.9 बुंदेली भाषा के रचनाकार
  5.9.1 गोरेलाल
  5.9.2 गंगाधर व्यास
  5.9.3 पं. भैयालाल व्यास
  5.9.4 डॉ. दुर्गेश दीक्षित
5.10 बघेली भाषा के रचनाकार
  5.10.1 रामनाथ प्रधान
  5.10.2 बाबूलाल दाहिया
  5.10.3 मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली"
  5.10.4 सुदामा शरद
5.11 मालवी भाषा के रचनाकार
  5.11.1 मदनमोहन व्यास
  5.11.2 हरीश निगम
  5.11.3 मोहन सोनी
  5.11.4 शिव चौरसिया
  5.11.5 श्रीनिवास जोशी
5.12 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.13 सारांश
5.14 मुख्य शब्दावली
5.15 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.16 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य लिखा गया। आधुनिक युग में गद्य लेखन की कई पद्धतियां विकसित हुईं। नाटक, एकांकी, निबंध, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, यात्रा–वृत्तांत आदि अनेक विधाओं के माध्यम से साहित्य लिखा गया।

हिंदी गद्य साहित्य में अनेक लेखक–लेखिकाओं का उदय एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में हुआ। लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, भारतेंदु हरिश्चंद्र, सुरेश शुक्ल 'चंद्र', बाबू गुलाब राय, महादेवी वर्मा आदि रचनाकारों ने हिंदी

गद्य साहित्य में अपनी पहचान बनाई। साथ ही बुंदेली, बघेली एवं मालवी भाषाओं के रचनाकारों ने भी अपनी विशेष पहचान बनाई है।

टिप्पणी

इस इकाई में हम द्रुत पाठ के अंतर्गत उपरोक्त रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करेंगे साथ ही बुंदेली भाषा के मुख्य रचनाकारों– गोरेलाल, गंगाधर व्यास, पं. भैयालाल व्यास एवं डॉ. दुर्गेश दीक्षित, बघेली भाषा के रामनाथ प्रधान, बाबूलाल दहिया, मैथिलीशरण शुक्ल 'मैथिली' एवं सुदामा शरद तथा मालवी भाषा के मदनमोहन व्यास, मोहन सोनी, शिव चौरसिया, हरीश निगम एवं श्रीनिवास जोशी आदि रचनाकारों के विषय में जानेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल एवं मोहन राकेश जैसे रचनाकारों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- भारतेंदु हरिश्चंद्र, सुरेश शुक्ल 'चंद्र', बाबू गुलाब राय, महादेवी वर्मा आदि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- बुंदेली भाषा के प्रमुख साहित्यकारों के बारे में जान पाएंगे;
- बघेली भाषा के मुख्य कवियों का परिचय प्राप्त कर पाएंगे;
- मालवी भाषा के प्रसिद्ध रचनाकारों का जीवन परिचय एवं साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन कर पाएंगे।

5.2 लक्ष्मीनारायण मिश्र

लक्ष्मीनारायण मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश में आजमगढ़ जिले के बस्ती नामक ग्राम में वशिष्ट गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में पौष शुक्ल प्रतिपदा संवत् 1960 वि. को हुआ। उनके पिता का नाम कमला प्रसाद मिश्र था।

मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके गांव की पाठशाला में हुई। उन्होंने संवत् 1985 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। 10वीं कक्षा में पढ़ते हुए उन्होंने काव्य–रचना आरम्भ कर दी थी। उनकी 'अंतर्जगत' रचना इसी समय लिखी गई थी। इसके एक वर्ष बाद उन्होंने 'अशोक' नाटक की रचना की। इस पुस्तक को उस समय ही साहित्यिक दृष्टि से गौरव प्राप्त हो चुका था।

मिश्र जी हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् साहित्य–सेवा में अपना जीवन लगाया। उनके नाट्य साहित्य को उनके नाटकों ने अधिक गौरवान्वित किया।

मिश्रजी देशभक्त थे। उनकी रचनाओं और दैनिक कार्यों में यह देशभक्ति समय–समय पर प्रकट होती रही है। सन् 1942 के आन्दोलन में उन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ी। भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठावान होने के कारण उन्होंने अपनी रचनाओं

के द्वारा भारतीय संस्कृति के मौलिक रंग पर कथन किया। 'चक्रव्यूह' नाटक की कथावस्तु का संयोजन इसी दृष्टि से हुआ। मिश्रजी सं. 2007 में हैदराबाद–साहित्य–सम्मेलन के साहित्य–परिषद् के अध्यक्ष भी रहे। 19 अगस्त सन् 1987 ई. (संवत् 2044 वि.) को उनका निधन हो गया।

टिप्पणी

साहित्यिक परिचय

लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी साहित्य के मान्य नाटककार थे। उन्होंने मौलिक और अनूदित कई नाटकों की रचना की। उनके मौलिक नाटकों की विषय–वस्तु की दृष्टि से कई श्रेणियों में बांटा गया है। श्रेणी विभाजन के आधार पर उनके नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और जीवन–चरित्र संबंधी हैं। यथा–

1. पौराणिक नाटक–चक्रव्यूह, नारद की वीणा, जय हनुमान
2. ऐतिहासिक–अशोक, वत्सराज, दशाश्वमेध, वितस्ता की लहरें
3. सामाजिक–संन्यासी, राक्षस का मंदिर, मुक्ति का रहस्य, राजयोग, सिन्दूर की होली, आधी रात।
4. जीवन चरित–कवि भारतेन्दु, जगद गुरु शंकराचार्य, मृत्युंजय।

प्राचीन रूढ़ियों के प्रति आस्था रखने वाले नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र एक बुद्धिवादी साहित्यकार थे। उन्होंने यथार्थ को चुना, उसके सत्यासत्य की परीक्षा की और उसे स्वीकार किया और उससे सम्बन्धित आदर्श को प्रतिष्ठित किया। बुद्धिवाद का समर्थन करते हुए उन्होंने उसे पूर्णतः भारतीय माना है। वे जीवन के लिए जीवन का चित्र प्रस्तुत करना उचित मानते हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र मूलतः समस्यामूलक नाटकों की रचना करते थे। उनके नाटकों में सामाजिक चित्रण समस्या के रूप में हुआ है। वास्तविक रूप में नहीं।

पाश्चात्य नाट्य कला का अनुकरण करते हुए उसे हिन्दी के रंगमंच के अनुकूल बना देना मिश्र जी की नाट्य कला की विशेषता थी। उनके अधिकांश नाटकों की कथावस्तु अंकों में विभक्त है। उनके नाटकों की दुखान्त स्थिति उन्हें पाश्चात्य नाटकों के निकट ला देती है।

भाषा की दृष्टि से मिश्र जी ने दो प्रकार की भाषाओं का व्यवहार किया है। उनके सामाजिक नाटकों की भाषा व्यवहारिक है। उसमें कहीं–कहीं अंग्रेजी के वाक्य भी प्रयुक्त हैं।

मिश्रजी के पौराणिक–सांस्कृतिक नाटकों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। इन नाटकों की भाषा में आलंकारिता और कवित्व ममता अधिक है।

वर्ण, विवेचना, और भावुकता के आधार पर परिचयात्मक, विवेचनात्मक, भावात्मक, और व्यंग्यात्मक शैलियों का मिश्र–जी ने प्रयोग किया है। स्पष्टतः मिश्र जी समस्या नाटक लेखकों में श्रेष्ठ है।

5.3 डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

टिप्पणी

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का स्थान महत्वपूर्ण है। हिंदी नाटक को विषय–वस्तु तथा शिल्प की दृष्टि नवीन, चेतना की दृष्टि तथा कलात्मकता प्रदान करने का श्रेय डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल को ही जाता है। इन्होंने अपने नाटकों द्वारा जीवन और रंगमंच को जोड़ने का प्रयास किया। डॉ. लाल का जन्म 4 मार्च, 1925 को बस्ती जनपद के ग्राम जलालपुर में हुआ। इन्होंने बहादुरपुर प्राइमरी स्कूल से आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। बस्ती के सक्सेरिया कॉलेज से इन्होंने सन् 1946 में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में ये इलाहाबाद विश्वविद्यालय पढ़ने चले गए। आर्थिक अभावों को दूर करने हेतु वे प्रूफ रीडिंग तथा लेखन कार्य करके विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे। शीघ्र ही वे रेडियो के लिए लिखने लगे। इनका पहला एकांकी 'ताजमहल के आंसू' विश्वविद्यालय की पत्रिका में छपा तथा दीक्षांत समारोह में उसका मंचन भी हुआ। डी. फिल करने के बाद ये एम. एस. कॉलेज चंदौसी में हिंदी के प्राध यापक बन गए। इलाहाबाद में सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज में डॉ. लाल हिंदी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। बाद में लखनऊ आकाशवाणी केंद्र पर इनको ड्रामा प्रोड्यूसर का पद मिल गया। सन् 1964 ई. में डॉ. लाल दिल्ली विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादक नियुक्त हो गए। अंत में नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन द्वारा अपनी आजीविका चलाने लगे। हिंदी नाट्य जगत में उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किए, वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

कृतित्व

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रमुख नाटककारों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी नाट्य–साहित्य की उस परंपरा को आगे बढ़ाया, जो आधुनिक काल में भारतेंदु युग में शुरू हुई थी तथा जिसका प्रसाद युग में प्रवर्तन हुआ। उन्होंने लगभग 16–17 नाटकों की रचना की है। उनके प्रमुख नाटकों का परिचय इस प्रकार हैं–

- मादा कैक्टस
- अंधा कुआं
- दर्पण
- कलकी
- मिस्टर अभिमन्यु
- सूर्यमुख
- कर्फ्यू
- सुंदर रस
- रक्त कमल
- अब्दुल्ला दीवाना

रचनागत वैशिष्ट्य

टिप्पणी

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने साहित्य जीवन में अनेक नाटकों का सृजन करके हिंदी नाट्य–साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान दिया। इन्हें रंगमंच का गहरा ज्ञान था। उनके प्रायः सभी नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल नाटक हैं और प्रायः सभी सफलता के साथ रंगमंच पर अभिनीत हो चुके हैं। इनके नाटक अधिक लंबे न होने के कारण दर्शकों को बांधे रखने में सफल हैं। रंगमंच की सफलता के लिए नाटकों में पात्रों की संख्या सीमित होना भी आवश्यक माना गया है क्योंकि इससे न केवल रंगमंच के व्यवस्थापकों सुविधा रहती है, अपितु दर्शक भी असुविधा का सामना नहीं करते। इस दृष्टि से भी इनके नाटक सफल नाटक हैं क्योंकि इनके नाटकों मे पात्रों की संख्या सीमित है। इनके नाटकों में पात्रों की सीमित संख्या के साथ ही संवाद भी छोटे–छोटे तथा रोचक हैं। संवादों का छोटा व रोचक होना भी इनके नाटकों की रंगमंचीय सफलता का द्योतक है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के सभी नाटकों में भाषा का सार्थक प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने पात्रों के हृदयगत राग–द्वेष, हर्ष–विषाद, संतोष–असंतोष आदि की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही की है। उन्होंने प्रायः पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है। इनकी भाषा आम बोलचाल की खड़ी बोली है। इनकी भाषा में तत्सम, तद्भव तथा विदेशी (अंग्रेजी और उर्दू) शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के पात्र उनके नाटकों में अविभाज्य अंग लगते हैं। पात्रों का चरित्र–चित्रण करने के लिए उनके कार्यों तथा गतिविधियों का भी लेखक ने समुचित परिचय दिया है। अपने नाटकों में डॉ. लाल पात्रों के परस्पर वार्तालाप (संवाद) उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र का निम्न में से पौराणिक नाटक कौन–सा है?

   (क) राक्षस का मंदिर (ख) चक्रव्यूह

   (ग) अशोक (घ) मृत्युंजय

2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म कब हुआ था?

   (क) 4 मार्च, 1925 (ख) 5 अप्रैल, 1920

   (ग) 4 मई, 1923 (घ) इनमें से कोई नहीं

5.4 मोहन राकेश

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, सन् 1925 को हुआ था। वे कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार और अनुवादक भी थे। इनकी लेखन क्षमता, विविधता और समग्रता, अपने समय, समाज, परिवेश और इनके ताप–तनाव को बड़ी ही प्रामाणिकता से रेखांकित करती रही। देखा जाये तो नाटक के क्षेत्र में इनका अवदान सर्वाधिक रहा।

टिप्पणी

इनके नाटक हैं–आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे–अधूरे। अपनी रंगधर्मिता, गुणवत्ता और गुणात्मकता की दृष्टि से ये नाटक सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। 'आधे–अधूरे' नाटक ने इन्हें अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया। इनके कहानी–संग्रहों के प्रकाशन सन् 1950 से शुरु होकर लगातार सन् 1960 तक प्रकाशित होते रहे। इनके कुल 16 कहानी संग्रह, 3 उपन्यास, 4 नाटक, एकांकी, यात्रा–संस्मरण, आलेख, डायरी आदि भी प्रकाशित हुए। मोहन राकेश के कहानी संग्रह हैं– इंसान के खंडहर, जानवर और जानवर, एक और जिन्दगी, नये बादल, फौलाद का आकाश, आज के साये, रोयें–रेशे, एक–एक दुनिया, मिले–जुले चेहरे, क्वार्टर वारिस, मेरी प्रिय कहानियां, पहचान, सुहागिनें, सम्पूर्ण कहानी संग्रह और पांच लम्बी कहानियां भी।

मोहन राकेश की भाषा शैली सहज और सरल थी। वे जहां नाटकों को लेकर खासे नामवर रहे, वहीं उनकी कहानियां भी अपनी छाप पाठकों में छोड़ने में पूर्ण रूपेण सफल रहीं।

मोहन राकेश का देहान्त 3 दिसम्बर, सन् 1972 को हुआ था।

5.5 भारतेंदु हरिश्चंद्र

हिंदी नाटक का विकास आधुनिक युग में भारतेंदु के समय से माना जाता है। यह वह समय था जब लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की जाने लगी। इससे पूर्व जो नाटक लिखे गए वह मुख्यतः काव्य अथवा संस्कृत नाटकों के अनुवाद थे। भारतेंदु ने हिंदी नाटक के विकास को दिशा दी और उनके परवर्ती नाटककारों जैसे उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, शंकर शेष आदि ने इस दिशा में विकास कार्य किया।

व्यक्तित्व

हिंदी साहित्य के पितामह भारतेंदु का जन्म 9 सितंबर 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपाल चंद्र स्वयं एक कवि थे जो गिरधर दास के नाम से कविता लिखते थे। बाल्यकाल में ही उनके माता–पिता की मृत्यु हो गई। हिंदी के आधुनिक साहित्य के प्रथम रचनाकार भारतेंदु ही थे। भारतेंदु का मूल नाम 'हरिश्चंद्र' था। भारतेंदु उनकी उपाधि थी। भारतेंदु ने रीतिकाल की विकृत संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़ नवीन परंपरा को आरंभ किया। भारतेंदु नवजागरण के अग्रदूत थे। उन्होंने गरीबी, पराधीनता शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण किया। हिंदी को राष्ट्रभाषा की दिशा में उन्होंने ही बढ़ाया। भारतेंदु का देहावसान 7 जनवरी 1885 को 35 वर्ष की अल्पायु में हुआ।

कृतित्व

हिंदी नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु से ही माना जाता है। 1857 से लेकर 1900 तक का समय भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु ने पांच वर्ष की आयु में ही दोहा कहा था। करीब पंद्रह वर्ष की आयु में उन्होंने साहित्य लेखन आरंभ किया। उन्होंने विभिन्न पत्रिकाएं निकालीं जिनमें कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन और बाल बोध

नामक पत्रिकाएं प्रमुख हैं। उन्होंने काव्य तथा नाट्य रचनाएं कीं। उन्होंने काव्य नाटकों का अनुभव भी किया। भारतेंदु के नाट्य लेखन की शुरुआत बांग्ला के विद्यासुंदर नाटक के अनुवाद से होती है। भारतेंदु ने ही खड़ी बोली में हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। भारतेंदु ने सन् 1868 ई. से 1885 ई तक अनेक नाटकों का सृजन किया और अनेक में तो अभिनय भी किया। भारतेंदु ने विभिन्न लेखकों और रंगकर्मियों को नाट्य सृजन के लिए प्रेरित किया और कई रंगशालाओं का आयोजन भी किया। उनकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
- सत्य हरिश्चंद्र
- श्री चंद्रावली
- विषस्य विषमौषधम
- भारत दुर्दशा
- नीलदेवी

अंधेर नगरी, प्रेममालिका, प्रेममाधुरी, प्रेम तरंग– ये इनकी प्रमुख काव्य कृतियां हैं। भारतेन्दु ग्रंथावली के तीसरे संग्रह और नाटक शीर्षक ग्रंथावली में उनके निबंध संकलित हैं।

रचनागत वैशिष्ट्य

भारतेंदु ने अपने नाटकों में समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम जैसे विषयों को अपनाया। उनके काव्य में विभिन्न रसों– श्रृंगार, भक्ति, सामाजिक सभी का उपयोग किया गया, किंतु सभी में राष्ट्र प्रेम ही प्रधान रहा। उनकी रचनाओं में संस्कृत, ब्रज, खड़ी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का प्रयोग किया गया है। रसपूर्ण, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, उद्‌बोधन आदि उनके द्वारा प्रयुक्त की गई प्रमुख शैलियां हैं। उन्होंने संस्कृत के छंदों के साथ–साथ चौपाई, छप्प, रोला, आदि छंदों का प्रयोग किया। उनकी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग भी सफल रूप में हुआ। भारतेंदु की उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों में रुचि रही है। भारतेंदु की रंगमंचीयता का गहन ज्ञान सीमित पक्षों में उन्होंने अत्यंत सरल संवादों के साथ दृश्य विधान किया है। उनके नाटकों में रंग–निर्देश स्पष्ट मिलते हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. मोहन राकेश के किस नाटक ने उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया?

   (क) आषाढ़ का एक दिन (ख) लहरों के राजहंस

   (ग) आधे–अधूरे (घ) इनमें से कोई नहीं

4. भारतेंदु युग कब से कब तक माना जाता है?

   (क) 1901 से 1947 (ख) 1857 से 1900

   (ग) 1778 से 1856 (घ) 1851 से 1940

5.6 सुरेश शुक्ल 'चंद्र'

टिप्पणी

छत्तीसगढ़ साहित्यिक संसार के प्रसिद्ध रंगकर्मी सुरेश शुक्ल 'चंद्र' का जन्म फरवरी 1936 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में हुआ था। एकांकी नाटक लेखन में सुरेश शुक्ल को सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई थी। हालांकि इन्होंने अपनी रचनात्मक यात्रा की शुरुआत काव्य विधा से की थी। सन् 1950 से लेकर 1960 तक सुरेश चंद्र ने कविता के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सन् साठ के उपरांत ये एकांकी लेखन विधा की ओर उन्मुख हुए। छत्तीसगढ़ की साहित्यिक दुनिया में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करवाने वाले सुरेश शुक्ल ने अपना पहला ऐतिहासिक नाटक 'समवेत' शीर्षक से लिखा। इस नाटक के दर्जनों प्रदर्शन हुए। इस नाटक की मूल प्रेरणा देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना है।

दूसरा नाटक 'प्रेरणा' शीर्षक से लिखा। यह नाटक भी ऐतिहासिक नाटक है लेकिन इसमें मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम और नृत्यांगना मस्तानी के प्रेम के उदात्त रूप को चित्रित किया। 'समवेत' और 'प्रेरणा' का रचना वर्ष 1965 था। सन् 1966 में इनका तीसरा नाटक 'भावना के पीछे' प्रकाशित हुआ था। यह नाटक सामाजिक समस्या पर आधारित था। पारिवारिक विघटन की विडम्बना को सुरेश शुक्ल ने बेहद प्रभावी ढंग से उजागर किया है। चौथा नाटक 'शादी का चक्कर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह नाटक महज एक प्रहसन में लिखा गया था। शादी का विज्ञापन गलत तरीके से देकर ठगने वाले गिरोह पर तीखा व्यंग्य इस नाटक के मूल में है। 'भूमि की ओर', 'आकाश झुक गया' और 'भस्मासुर अभी जिंदा है' जैसे नाटकों के माध्यम से सुरेश शुक्ल 'चंद्र' ने सातवें–आठवें दशक के यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से उजागर किया है।

'मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी' में कुल चौदह सामाजिक एकांकी संगृहीत हैं। यह संग्रह 1994 में प्रकाशित हुआ था। सुरेश शुक्ल 'चंद्र' का एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'बिना पंख की सारिका' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रेम तथा स्त्री जीवन की विभिन्न परतों को इस उपन्यास में उभारने का प्रयास किया गया है। सुरेश शुक्ल ने स्त्री मनोविज्ञान को भी अपने इस उपन्यास के माध्यम से बखूबी उभारा है। सुरेश शुक्ल 'चन्द्र' के अब तक दो दर्जन नाटक तथा तीस एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं। दो काव्य–संग्रह के अतिरिक्त चार आलोचनात्मक पुस्तकें तथा 'कलम साक्षी है' शीर्षक से आत्म कथा भी प्रकाशित हुई है।

प्रयोगधर्मी तथा रंगन्वेषी सुरेश शुक्ल 'चंद्र' को साहित्य सेवा में अमूल्य योगदान के लिए उत्कल युवा सांस्कृतिक संघ ने नाट्य भूषण के पुरस्कार से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 'हरिकृष्ण प्रेमी पुरस्कार' से भी सम्मानित हुए हैं। साहित्य सेवा के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इन्हें पुरस्कृत किया है। 'चंद्र' विभिन्न देशों की यात्राएं कर चुके हैं। इन्होंने देश–विदेश सहित सैकड़ों व्याख्यान भी दिए हैं।

5.7 बाबू गुलाब राय

टिप्पणी

बाबू गुलाबराय भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार, निबंधकार और व्यंग्यकार थे। वे हमेशा सरल साहित्य को प्रमुखता देते थे, जिससे हिंदी भाषा जन–जन तक पहुंच सके। गुलाबराय जी ने दो प्रकार की रचनाएं की हैं– दार्शनिक और साहित्यिक। उनकी दार्शनिक रचनाएं उनके गंभीर अध्ययन और चिंतन का परिणाम हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में शुद्ध भाषा तथा परिष्कृत खड़ी बोली का प्रयोग अधिकता से किया है। आधुनिक काल के निबंध लेखकों और आलोचकों में बाबू गुलाबराय का स्थान बहुत ऊंचा है। उन्होंने आलोचना और निबंध दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और मौलिकता का परिचय दिया है।

जन्म तथा शिक्षा– बाबू गुलाबराय का जन्म 17 जनवरी, 1888 को इटावा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। उनके पिता भवानी प्रसाद धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी माता भी भगवान श्रीकृष्ण की उपासिका थीं। वे सूरदास और कबीर के पदों को तल्लीन होकर गाया करती थीं। माता–पिता की इस धार्मिक प्रवृत्ति का प्रभाव बाबू गुलाबराय पर भी पड़ा। गुलाबराय की प्रारंभिक शिक्षा मैनपुरी में हुई थी। अपनी स्कूली शिक्षा के बाद उन्हें अंग्रेजी शिक्षा के लिए जिले के विद्यालय में भेजा गया। गुलाबराय ने 'आगरा कॉलेज' से बी. ए. की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् 'दर्शनशास्त्र' में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करके गुलाबराय जी छतरपुर चले गए।

व्यावसायिक जीवन– छतरपुर में गुलाबराय की प्रथम नियुक्ति महाराजा विश्वनाथ सिंह जूदेव के दार्शनिक सलाहकार के रूप में हुई। कुछ समय बाद उन्हें महाराज का निजी सहायक बना दिया गया। बाबू गुलाबराय अपने राजकीय कर्तव्य के पालन में सदैव सचेत रहते थे। वह राज्य के धन को ऐसी सावधानी से व्यय करते थे, जैसे वह उनका निजी धन हो। इस संबंध में अनेक प्रसंग भरे पड़े हैं। राज्य में जितना सामान खरीदा जाता था, वह महाराज के सहायक द्वारा ही क्रय किया जाता था। एक बार एक बड़े सौदागर से गुलाबराय ने कई हजार रुपये का सामान खरीदा। सौदागर ने उनको कमीशन ले लेने का संकेत किया। गुलाबराय ने पूछा– 'कितना बनता है'। फिर उस सौदागर से कहा कि बिल में लिख दीजिए। उनकी इस मितव्ययिता तथा राजनिष्ठा से महाराज बड़े प्रभावित हुए। बाबू गुलाबराय ने छतरपुर दरबार में 18 वर्ष व्यतीत किए और राज दरबार के न्यायाधीश की भी भूमिका निभाई।

पशु–पक्षी प्रेमी– बाबू गुलाबराय को पशु–पक्षियों से भी बहुत प्रेम था। जब महाराज का निधन हुआ, तब वे छतरपुर राज्य की सेवा छोड़कर आगरा वापस आ गये और अपने पालित पशु–पक्षियों को भी साथ लेकर आए। जो भी उनके संपर्क में आया, वही उनके परिवार का सदस्य और उनकी लेखनी का विषय बन गया।

लेखन विषय– रचना दृष्टि से गुलाबराय जी ने दो प्रकार की रचनाएं की हैं–

1. दार्शनिक
2. साहित्यिक।

टिप्पणी

बाबू गुलाबराय की दार्शनिक रचनाएं उनके गंभीर अध्ययन और चिंतन का परिणाम हैं। उन्होंने सर्व प्रथम हिंदी को अपने दार्शनिक विचारों का दान दिया। उनसे पूर्व हिंदी में इस विषय का सर्वथा अभाव था। गुलाबराय की साहित्यिक रचनाओं के अंतर्गत उनके आलोचनात्मक निबंध आते हैं। ये आलोचनात्मक निबंध सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के हैं। उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि विविध विषयों पर भी अपनी लेखनी चलाकर हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि की है।

भाषा– बाबू गुलाबराय की भाषा शुद्ध तथा परिष्कृत खड़ी बोली है। उसके मुख्यतः दो रूप देखने को मिलते हैं– क्लिष्ट तथा सरल। विचारात्मक निबंधों की भाषा क्लिष्ट और परिष्कृत हैं। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रधानता है, भावात्मक निबंधों की भाषा सरल है। उसमें हिंदी के प्रचलित शब्दों की प्रधानता है साथ उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। कहावतों और मुहावरों को भी अपनाया है। गुलाबराय जी की भाषा आडंबर शून्य है। संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी गुलाबराय जी ने अपनी भाषा में कहीं भी पांडित्य–प्रदर्शन का प्रयत्न नहीं किया। संक्षेप में गुलाब राय जी की भाषा संयत, गंभीर और प्रवाहपूर्ण है।

शैली– गुलाब राय जी की रचनाओं में हमें निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं–

विवेचनात्मक शैली : यह शैली बाबू गुलाबराय के आलोचनात्मक तथा विचारात्मक निबंधों में मिलती है। इस शैली में साहित्यिक तथा दार्शनिक विषयों पर गंभीरता से विचार करते समय वाक्य अपेक्षाकृत लंबे और दुरुह हो जाते हैं, किंतु जहां वर्तमान समस्याएं, प्राचीन सिद्धांतों की व्याख्याएं अथवा कवियों की व्याख्यात्मक आलोचनाएं प्रस्तुत की गई हैं, वहाँ वाक्य सरल और भावपूर्ण हैं। इस शैली का एक उदाहरण– 'राष्ट्रीय पर्व' का मनाना कोरी भावुकता नहीं है। इस भावुकता का मूल्य है। भावुकता में संक्रामकता होती है और फिर शक्ति का संचार करती है। विचार हमारी दशा का निदर्शन कर सकते हैं किंतु कार्य संपादन की प्रबल प्रेरणा और शक्ति भावों में ही निहित रहती है।

भावात्मक शैली : बाबू गुलाबराय की इस शैली में विचारों और भावों का सुंदर समन्वय है। यह शैली प्रभावशालीन है और इसमें गद्य काव्य का सा आनंद आता है। इसकी भाषा अत्यंत सरल है। वाक्य छोटे–छोटे हैं और कहीं–कहीं उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। 'नर से नारायण' नामक निबंध से इस शैली का एक उदाहरण– 'सितंबर के महीने में आगरे में पानी की त्राहि–त्राहि मची थी। मैंने भी वैश्य धर्म के पालने के लिए पास के एक खेत में चरी 'बो' रखी थी। ज्वार की पत्तियां ऐंठ–ऐंठ कर बत्तियां बन गई थीं।'

हास्य और विनोदपूर्ण शैली : बाबू गुलाबराय ने अपने निबंधों की नीरसता को दूर करने के लिए गंभीर विषयों के वर्णन में हास्य और व्यंग्य का पुट भी दिया है। इस विषय में उन्होंने लिखा है– 'अब मैं प्रायः गंभीर विषयों में भी हास्य का समावेश करने लगा हूं। जहां हास्य के कारण अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो अथवा अत्यंत करुण प्रसंग हो तो हास्य से बचूंगा अन्यथा मैं प्रसंगगत हास्य का उतना ही स्वागत करता हूं जितना कि कृपण या कोई भी अनायास आए हुए धन का।' इस शैली में हास्य

का समावेश करने के लिए गुबाब राय जी या तो मुहावरों का सहारा लेते हैं या श्लेष का। इस शैली के वाक्य कुछ बड़े हैं। इसमें उर्दू, फारसी के शब्दों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

टिप्पणी

रचनाएं

'ठलुआ क्लब', 'कुछ उथले–कुछ गहरे', 'फिर निराश क्यों' उनकी चर्चित रचनाएं हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'मेरी असफलताएँ' नाम से लिखी। आनंदप्रियता बाबू गुलाबराय के परिवार की एक खास विशेषता रही थी। वह सभी त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाते थे। उम्र के साठ वर्ष बीतने पर उन्होंने इन उत्सवों में अपना जन्मदिन मनाने का एक उत्सव और जोड़ लिया था। इस दिन आगरा में उनके घर 'गोमती निवास' पर एक साहित्यिक गोष्ठी होती थी। इसमें अनेक साहित्यकार आते थे। बाबू गुलाबराय ने मौलिक ग्रंथों की रचना के साथ–साथ अनेक ग्रंथों का संपादन भी किया है। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं–

आलोचनात्मक रचनाएं

- नवरस
- हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास हिंदी
- नाट्य विमर्श
- आलोचना कुसुमांजलि
- काव्य के रूप
- सिद्धांत
- अध्ययन

दर्शनसंबंधी

- कर्तव्य
- शास्त्र
- तर्क शास्त्र
- बौद्ध धर्म पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास
- भारतीय संस्कृति की रूपरेखा

बाल साहित्य

- विज्ञान वार्ता
- बाल प्रबोध

निबंध संग्रह

- प्रकार प्रभाकर
- जीवन–पशु–ठलुआ क्लब
- मेरी असफलताएं
- मेरे मानसिक उपादान

टिप्पणी

संपादन ग्रंथ

- सत्य हरिश्चंद्र
- भाषा–भूषण
- कादंबरी कथा–सार

सम्मान और पुरस्कार

बाबू गुलाबराय को साहित्यिक सेवाओं के फलस्वरूप 'आगरा विश्वविद्यालय' ने उन्हें 'डी. लिट.' की उपाधि से सम्मानित किया था। उनके सम्मान में भारतीय डाकतार विभाग ने 22 जून, 2002 को एक डाक टिकट जारी किया जिसका मूल्य 5 रुपये था और जिस पर बाबू गुलाबराय के चित्र के साथ उनकी तीन प्रमुख पुस्तकों को भी प्रदर्शित किया गया था।

निधन

बाबू गुलाबराय ने अपने जीवन के अंतिम काल तक साहित्य की सेवा की। सन् 1963 में आगरा में उनका स्वर्गवास हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

5. सुरेश शुक्ल 'चंद्र' को किस विधा में सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई?

   (क) उपन्यास लेखन (ख) कहानी लेखन

   (ग) एकांकी नाटक लेखन (घ) नाटक लेखन

6. बाबू गुलाब राय ने अपनी आत्मकथा किस नाम से लिखी?

   (क) ठलुआ क्लब (ख) मेरी असफलताएं

   (ग) फिर निराश क्यों (घ) नवरस

5.8 महादेवी वर्मा

हिंदी की सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवयित्रियों में से एक महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च, 1907 को उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। उनके परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद पहली बार पुत्री का जन्म हुआ था। अतः बाबा बाबू बांके बिहारी जी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी–महादेवी मानते हुए पुत्री का नाम महादेवी रखा। अपना जीवन इंदौर और नरसिंहगढ़ की रियासतों में बिताने वाले इनके पिता श्री गोविन्द प्रसाद बड़े विद्वान् व्यक्ति थे। वे इंदौर के डेली कॉलेज में अध्यापन करते थे। उनकी माता का नाम हेमरानी देवी था। हेमरानी देवी बड़ी धर्मपरायण, कर्मनिष्ठ, भावुक एवं शाकाहारी महिला थीं। वे प्रतिदिन कई घंटे पूजा–पाठ तथा रामायण, गीता एवं विनय पत्रिका का पारायण करती थीं और संगीत में भी उनकी अत्यधिक रुचि थी। महादेवी वर्मा के मानस बंधुओं में सुमित्रानंदन पन्त एवं निराला का नाम लिया जा सकता है, जो उनसे जीवन पर्यन्त राखी बंधवाते रहे।

टिप्पणी

हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक महादेवी आधुनिक मीरा के नाम से भी जानी जाती हैं। महाकवि निराला ने उन्हें हिंदी के विशाल मन्दिर की सरस्वती भी कहा है। महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा–परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। उनका काव्य ही नहीं बल्कि उनके समाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन–जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।

उन्होंने खड़ी बोली हिंदी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल ब्रजभाषा में संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बंगला के कोमल शब्दों को चुनकर हिंदी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद–सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरुआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य बनी रहीं। उनका बाल–विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन–यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ–साथ कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिंदी साहित्य के सभी महत्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं।

महादेवी जी की शिक्षा इंदौर के मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई। साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने 1919 में क्रास्टवेथ गर्ल्स कॉलेज, इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। 1921 में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहीं पर उन्होंने अपने काव्य जीवन की शुरुआत की। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं और 1925 तक जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की, वे एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। कालेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गई। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़कर सखियों के बीच में ले जातीं और कहतीं– *''सुनो, ये कविता भी लिखती हैं।''* 1932 में जब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. पास किया तब तक उनके दो कविता संग्रह 'नीहार' तथा 'रश्मि' प्रकाशित हो चुके थे।

महादेवी का कार्यक्षेत्र लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य अपने

टिप्पणी

समय में महिला–शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम था। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चांद' का कार्यभार संभाला। 1930 में नीहार, 1932 में रश्मि, 1934 में नीरजा, तथा 1936 में सांध्यगीत नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। 1939 में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उन्होंने काव्य, गद्य, शिक्षा एवं चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किए। इसके अतिरिक्त उनकी 18 काव्य और गद्य कृतियां हैं जिनमें मेरा परिवार, स्मृति की रेखाएं, पथ के साथी, शृंखला की कड़ियां, अतीत के चलचित्र प्रमुख हैं। सन 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की और पं. इलाचंद्र जोशी के सहयोग से साहित्यकार का संपादन संभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर में बिताया। 11 सितम्बर, 1987 को इलाहाबाद में रात 9 बजकर 30 मिनट पर उनका देहांत हो गया।

महादेवी वर्मा की प्रमुख रचनाएं

कविता संग्रह

1. नीहार (1930)
2. रश्मि (1932)
3. नीरजा (1934)
4. सांध्यगीत (1936)
5. दीपशिखा (1942)
6. सप्तपर्णा (अनूदित–1959)
7. प्रथम आयाम (1974)
8. अग्निरेखा (1990)

महादेवी वर्मा के अन्य अनेक काव्य संकलन भी प्रकाशित हैं, जिनमें उपर्युक्त रचनाओं में से चुने हुए गीत संकलित किये गये हैं, जैसे आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी, यामा, गीतपर्व, स्मारिका, नीलाम्बरा आदि।

गद्य साहित्य

- रेखाचित्र : अतीत के चलचित्र (1941) और स्मृति की रेखाएं (1943),
- संस्मरण : पथ के साथी (1956) मेरा परिवार (1972) और संस्मरण (1983)
- चुने हुए भाषणों का संकलन : संभाषण (1974)
- निबंध : शृंखला की कड़ियां (1942), विवेचनात्मक गद्य (1942), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962), संकल्पिता (1969)
- ललित निबंध : क्षणदा (1956)

- कहानियां : गिल्लू
- संस्मरण, रेखाचित्र और निबंधों का संग्रह : हिमालय (1963)

वे अपने समय की लोकप्रिय पत्रिका 'चांद' तथा 'साहित्यकार' मासिक की भी संपादक रहीं।

टिप्पणी

बाल साहित्य

- ठाकुरजी भोले हैं
- आज खरीदेंगे हम ज्वाला

महादेवी वर्मा जी रेखाचित्र लेखन की सिद्धहस्त थीं। अपने लेखन से चित्र स्वरूप प्रस्तुति उनकी विशेषता थी।

प्रमुख सम्मान

काव्य संग्रह **'यामा'** के लिये 1982 में ज्ञानपीठ सम्मान, मंगलाप्रसाद पारितोषिक, पद्मभूषण, सक्सेरिया पुरस्कार, द्विवेदी पदक, भारत भारती (1943), पद्म विभूषण (1988, मरणोपरांत) आदि अनेक सम्मानों से सम्मानित।

अपनी प्रगति जांचिए

7. महादेवी को किस नाम से जाना जाता है?

   (क) आधुनिक राधा (ख) आधुनिक मीरा

   (ग) लक्ष्मीबाई (घ) उमा

8. महादेवी वर्मा को किस रचना के लिए 1982 में ज्ञानपीठ सम्मान से सम्मानित किया गया?

   (क) नीहार (ख) रश्मि

   (ग) नीरजा (घ) भामा

5.9 बुंदेली भाषा के रचनाकार

बुंदेली भाषा के प्रमुख रचनाकारों गोरेलाल, गंगाधर व्यास, पं. भैयालाल व्यास एवं डॉ. दुर्गेश दीक्षित आदि के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं साहित्यिक परिचय के बारे में क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

5.9.1 गोरेलाल

महाराज छत्रसाल के राज्याश्रित कवि गोरेलाल का जन्म सन् 1618 में हुआ था। वीर काव्य लेखन की परंपरा में लाल कवि का प्रमुख स्थान है। इनके पूर्वजों का संबंध आंध्र प्रदेश था। बाद में इनका परिवार मध्य प्रदेश में आकर बस गया। गोरेलाल का एक और उपनाम लाल कवि भी है।

टिप्पणी

'छत्रप्रकाश' ग्रंथ इनकी प्रसिद्धि का प्रमुख आधार है। यह ग्रंथ महाराज छत्रसाल की प्रशस्ति में लिखा गया है। गोरेलाल महाराज छत्रसाल के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। इन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में उन्हें चरित्रनायक के रूप में स्थापित किया है। इनकी ज्यादातर रचनाएं अनुपलब्ध अथवा खंडित अवस्था में प्राप्त होती हैं। लेकिन 'छत्रप्रकाश' को वीर काव्य का एक प्रमुख ग्रंथ स्वीकार किया गया है। इस ग्रंथ में तथ्यों तथा वर्ष आदि का जिक्र विश्वसनीय है। इस कारण इस ग्रंथ को प्रामाणिक माना गया है। 26 अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में कवि ने छत्रसाल के नायकत्व को स्थापित करने का प्रयास किया है। इस ग्रंथ में बुंदेलवंश के उदय से लेकर छत्रसाल के वात्सल्य वर्णन, उनके द्वारा लड़े गए अनेक युद्ध, विजयगाथा का बखान तथा शिवाजी और जयसिंह से मुलाकात का वर्णन भी शामिल है। छत्रसाल जब शिवाजी से मिलते हैं, तब शिवाजी उन्हें सलाह देते हैं–

करौ देश कौ राज छतारे। हम तुम तै कबहूँ नहीं न्यारे।।

दैरि देश मुगलन को मारौ। दर्बार दिल्ली के दल संहारौ।।

तुरकन की प्रतीति न मानौ। तुम केहरि तुरकन गज मानौ।।

गोरेलाल ने कई ग्रंथों की रचना की थी। 'छत्रप्रकाश' के अतिरिक्त, 'छत्र प्रशस्ति', 'छत्र छाया', 'छत्र कीर्ति', 'छत्र–छंद', 'छत्रसाल–शतक', 'छत्र हजारा', 'छत्र–दंड' और 'राज–विनोद', गोरेलाल कवि की रचनाएं ही मानी जाती हैं लेकिन उनकी ज्यादातर रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। 'बरवै' और 'विष्णु विलास' भी कवि लाल की रचनाएं हैं लेकिन ये दोनों रचनाएं खंडित अवस्था में प्राप्त हुई हैं। पूर्ण रूप से प्रामाणिक रचना 'छत्र–प्रकाश' ही उपलब्ध है। इस रचना के सन् 1710 तक की घटनाएं मिलती हैं। उसके बाद की घटनाओं का जिक्र नहीं है। इसलिए यही वर्ष उनकी मृत्यु का भी स्वीकार कर लिया गया।

5.9.2 गंगाधर व्यास

गंगाधर व्यास का बुंदेली साहित्य में अप्रतिम योगदान है। रीतिकालीन काव्य परंपरा का निर्वहन करने वाले गंगाधर व्यास का जन्म सन् 1842 में हुआ था। महज सोलह वर्ष की अल्पायु में काव्य रचना की ओर प्रवृत्त होने वाले व्यास बुंदेली भाषा के प्रमुख कवि ईसुरी के समकालीन थे। इनकी रचनाओं में ईसुरी का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। व्यास ने 'फागों' की रचना की और यही इनकी प्रसिद्धि का आधार भी रहा है।

गंगाधर व्यास का छतरपुर के राजा विश्वनाथ सिंह जूदेव व्यास के दरबार में कवि के रूप में बहुत सम्मान था। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में उन्होंने 'विश्वनाथ पताका' की रचना की थी। व्यास जी को अपने आश्रयदाता का विशेष स्नेह प्राप्त था। राजा विश्वनाथ सिंह जूदेव व्यास से उनका संबंध दोस्ताना था। दोनों एक–दूसरे का बेहद सम्मान करते थे। राजा के मनोरंजन के लिए भी व्यास जी ने खूब सारी रचनाएं लिखी थीं। इन्होंने मनोरंजन के लिए हास्यविनोद प्रधान रचनाएं भी रचीं।

गंगाधर व्यास ने फागें, सैर, कविता, सवैया, ख्याल, लावनी आदि विधाओं में रचनाएं की थीं लेकिन सबसे अधिक प्रचलित इनकी 'फागें' हुईं। बुंदेली साहित्य को

'फाग' रचनाओं के माध्यम से एक नई पहचान दिलाने में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनकी रचित 'फागें' इतनी लोकप्रिय हैं कि आज भी बुंदेलखण्डियों को जुबानी याद रहती है। इन्होंने 'सैर' साहित्य की रचना नए सिरे से की थी। इस विधा के वास्तविक प्रवर्तक व्यास ही माने जाते हैं।

टिप्पणी

लोक भाषा बुंदेली में इन्होंने देशी और विदेशी गायकी की दोनों शैली को अपनाया था। 'फाग' की रचना इन्होंने देशी शैली में की थी तथा विदेशी शैली में तुर्रामत संबंधित अनूठे 'ख्याल' की रचना की थी। व्यास की प्रमुख रचनाओं में 'नीति मंजरी', 'विश्वनाथ पताका', 'व्यंग्य पचासा', 'गो माहात्म्य', 'भर्तृहरि चरित', 'रामाश्वमेघ कथा', 'कलियुग पच्चीसी' और 'उद्धव गोपी संवाद' को माना जाता है। व्यास जी का देहांत सन् 1972 में हो गया।

5.9.3 पं. भैयालाल व्यास

'विंध्य कोकिल' के नाम से प्रसिद्ध बुंदेलखंड के सुप्रसिद्ध कवि भैयालाल व्यास का जन्म भाद्रपद शुक्ल द्वितीया वि. संवत् 1975 को दतिया में हुआ था। भैयालाल व्यास ने आधुनिक बुंदेली साहित्य को एक नया मुकाम दिया और बुंदेली काव्य को एक नया फलक प्रदान किया। इनके गीतों ने बुंदेली समाज और संस्कृति को एक नई पहचान दिलाई। इनके सुरीले कंठ से निकले गीतों ने बुंदेली काव्य को अजर अमर कर दिया। इनके मीठे सुरीले गीतों के कारण विद्यानिवास मिश्र ने इनके संदर्भ में कहा था–"भैयालाल व्यास विंध्य के कोकिल कहे जाते हैं, कुछ तो कंठ के कारण पर सबसे अधिक अपने मधुमय जीवन स्वर के कारण। मैंने अनेक बार उनके कंठ से उनकी कविताएं सुनी हैं। बुंदेली में उन्होंने इतिहास के कुछ मर्मस्पर्शी प्रसंगों को लेकर लंबे आख्यान गीत लिखे हैं और वे गीत इतने कंठों में रम चुके हैं कि उनकी अजरता में कोई संदेह ही नहीं है।"

भैयालाल व्यास की रचनात्मक यात्रा की शुरुआत सन् 1938 से हो गई थी। प्रारंभ में उन्होंने समस्या पूर्ति के लिए छंद लिखना आरंभ किया था। बाद में उनकी रचनाओं में बुंदेलखंड का जीवन प्रतिबिंबित होने लगा। भैयालाल व्यास की रचनाओं में बुंदेली संस्कृति, वहां की समृद्ध परंपरा, सुख–दुख–संघर्ष का चित्रण बखूबी होता रहा है। उनके गीतों में इतनी मधुरता थी कि उन्हें 'विंध्य कोकिल' की उपाधि से नवाजा गया। भैयालाल व्यास ने लगभग 95 वर्ष की आयु पाई। इस लम्बी आयु में उनकी अनेक कृतियां प्रकाशित हुईं और उन्हें अनेक सम्मानों से नवाजा गया। 'विजय दशमी', 'जीवन के क्रम', 'आग–पानी', 'सांझ–सकारे', 'पुण्यभूमि बुंदेलखंड', 'देश के देवता', 'जागा मेरा देश', 'तुम मत रोना', 'रस वृंदावन', 'सीता सत्यम', 'छोर के छंद', 'महाबली छत्रसाल', 'ओनामासी', 'रघुवंशम', 'चिंतन का क्षण' और 'अपना देश अपना संगीत' शीर्षक से पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। साहित्य सेवा के लिए भैयालाल व्यास को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के द्वारा मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, बुंदेलखंड अकादमी सम्मान, मध्य प्रदेश आंचलिक साहित्यकार परिषद सम्मान, अक्षर आदित्य सम्मान जैसे अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया है।

टिप्पणी

5.9.4 डॉ. दुर्गेश दीक्षित

बुंदेली भाषा और साहित्य के चर्चित रचनाकार डॉ. दुर्गेश दीक्षित का जन्म 12 जून, 1936 को टीकमगढ़ जिले के कुण्डेश्वर, मध्य प्रदेश में हुआ। साधारण कृषक परिवार में जन्मे दीक्षित का साहित्य के प्रति झुकाव बचपन से था। इन्हें पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के परिवार का सान्निध्य मिला था, जिस कारण इनके साहित्यिक रूझान में वृद्धि हुई। इनके पिता महादेव प्रसाद दीक्षित साधारण किसान थे। लेकिन घर पर पढ़ने–लिखने का अच्छा माहौल था। इस वजह से इनके लिए शुरुआती शिक्षा–दीक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। प्रखर मेधा के धनी डॉ. दीक्षित ने बुंदेली लोक गाथाओं में डॉ. लिट् की उपाधि प्राप्त की है।

दुर्गेश दीक्षित ने सवैया, दोहे, कुंडलियां और चौकड़ियों की रचना विपुल मात्रा में की है। बुंदेली साहित्यिक संसार में इनका बेहद सम्मान है। मंचीय कविता लिखकर दुर्गेश दीक्षित ने खूब शोहरत भी कमाई है। बुंदेली जनपद में इनके लिखे दोहे खूब चर्चित हैं। दीक्षित के लिखे दोहे का एक नमूना देखिए–

मुरक मुरक हेरत हँसत, लसत नबेली बाल।
मंद मंद पग धरत मग, हथिनी कैसी चाल।।

उपर्युक्त दोहे में स्त्री की विभिन्न क्रियाओं का उल्लेख मिलता है। दुर्गेश के साहित्य में बुंदेली लोक–जीवन की अद्‌भुत छटा देखने को मिलती है। इनकी रचना में एक ओर श्रृंगार, प्रेम, नायिका–भेद, विरह वर्णन और मिलन का सुख है, तो दूसरी तरफ आदर्श और नैतिकता का भी बखान है। इनकी रची एक चौकड़ी देखिए–

नाहक नॉय माँय तुम हेरत, साजौ बुरओ नबेरत।
सब कँऊ समजौ बसत एकसी, का है ढको उगेरत।।

कड़ने करिया सेत तिली में, तेल एक सौ पेरत।
ठिया जमा 'दुर्गेश' लेव नई, दिन कड़ जाने गेरत।।

दीक्षित ने विपुल साहित्य की रचना की है। इनकी कृतियों में प्रमुख हैं–बुंदेली काव्य, बलिदान (खण्ड काव्य), ऋतु संहार (बुंदेली काव्यानुवाद) गाँधी गौरव, ज्ञान की गुरिया, गाँव की गलियाँ, अध्यापको जागो, खुली किवरिया, तकी तकाई गैले, बुंदेली का ठाठ (काव्य संग्रह)। इन्होंने बुंदेली गाथाओं पर आधारित 'बुंदेली गाथा' शीर्षक से पुस्तक लिखी है। डॉ. दीक्षित ने बुंदेली 'कहावतें और मुहावरे' शीर्षक से भी एक संकलन तैयार किया है। साहित्य सेवा में अमूल्य योगदान देने के लिए दुर्गेश दीक्षित को कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. गोरेलाल की प्रसिद्धि का प्रमुख आधार कौन–सा ग्रंथ है?

(क) विष्णु विलास (ख) बरवै

(ग) छत्रप्रकाश (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

10. गंगाधर व्यास किस बुंदेली कवि के समकालीन थे?
    (क) जगनिक (ख) ईसुरी
    (ग) संतोष सिंह बुंदेला (घ) डॉ. दुर्गेश दीक्षित
11. भैयालाल व्यास को किस उपाधि से नवाजा गया था?
    (क) महाबली छत्रसाल (ख) बुंदेलखंड का गौरव
    (ग) विश्वनाथ (घ) विंध्य कोकिल
12. डॉ. दुर्गेश दीक्षित का जन्म किस राज्य में हुआ था?
    (क) उत्तर प्रदेश (ख) मध्य प्रदेश
    (ग) हिमाचल प्रदेश (घ) अरुणाचल प्रदेश

5.10 बघेली भाषा के रचनाकार

बघेली भाषा के प्रमुख रचनाकारों, रामनाथ प्रधान, बाबूलाल दाहिया, मैथिलीशरण शुक्ल एवं सुदामा शरद आदि के जीवन परिचय एवं साहित्य को क्रमशः इस प्रकार समझा जा सकता है–

5.10.1 रामनाथ प्रधान

जन्म : चैत्र रामनवमी, संवत 1857 (1800 ई.) में

जन्म स्थान : रीवा नगर (मध्य प्रदेश) का उपरहती मोहल्ला

पिता : ठाकुरराम प्रधान

मृत्यु : विक्रम संवत 1917 चैत्र वदी द्वितीया

बघेली भाषा के दरबारी समाज के कवि रामनाथ प्रधान बाल्यकाल से साधु संगत में रमने वाले व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। घुमक्कड़ी स्वभाव के कारण विद्यालयीन शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। बचपन से ही पठन–पाठन में रुचि नहीं थी। घुमक्कड़ी स्वभाव के होने के कारण लोक का व्यापक ज्ञान व अनुभव अर्जित किया था। रामनाथ प्रधान के पितामह 'निन्दाराम' रीवा महाराज जयसिंह के दरबारी कवि थे। महाराजा जयसिंह द्वारा इन्हें 'प्रधान' की पदवी प्रदान की गई थी, जो उपनाम के रूप में प्रयुक्त होने लगी। रामनाथ प्रधान वणिज कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता ठाकुरराम ने भी काव्य प्रतिभा से युक्त होने के कारण राजदरबार में स्थान प्राप्त किया था। इस प्रकार रामनाथ प्रधान को काव्य सृजन का संस्कार पूर्वजों से प्राप्त हुआ था। पूर्वजों की परम्परा का निर्वहन करते हुए रामनाथ प्रधान ने भी रीवा राजदरबार में आश्रय प्राप्त कर सम्मान प्राप्त किया। दरबारी कवियों की श्रेणी में स्वयं को शामिल कर राज्याश्रय प्राप्त किया। राम भक्ति में अगाध श्रद्धा होने के कारण व रीवा महाराज रघुनाथ सिंह के आर्थिक सहयोग से चित्रकूट, प्रयाग, अयोध्या आदि तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया। सत्संगों का लाभ प्राप्त किया।

रामनाथ प्रधान ने द्विवेदी युगीन प्रचलित साहित्यिक भाषा को साहित्य सृजन का माध्यम बनाया। द्विवेदी युग में अवधी भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। अब तक अवधी भाषा में प्रचुर साहित्य रचा जा चुका था व रचा जा रहा था। रामनाथ प्रधान ने भी काव्य सृजन की भाषा अवधी को चुना।

टिप्पणी

जिस अवधी भाषा में रामनाथ प्रधान रचना कर रहे थे, वह अवधी से साम्यता रखती थी। लेकिन उसमें उनकी मातृबोली बघेली का प्रभाव ज्यादा था। जिससे कालान्तर में भाषा वैज्ञानिकों ने रामनाथ प्रधान की काव्य भाषा को अवधी न मानकर बघेली स्वीकार किया। रामनाथ प्रधान को बघेली काव्य के उत्थान की कड़ी का एक महत्त्वपूर्ण नाम स्वीकार किया। रामनाथ प्रधान रामभक्ति में अगाध श्रद्धावान थे। उन्होंने राम के जीवन से संबंधित काव्य ग्रंथ की रचनाएं कीं। रामनाथ प्रधान का खंड काव्य "राम कलेवा" रामभक्ति का बघेली साहित्य का अनूठा ग्रंथ है। इसको बघेली साहित्य का प्रथम खंड काव्य कहा जा सकता है। क्योंकि बघेली काव्य परंपरा में खंड काव्य व महाकाव्यों की संख्या न के बराबर है। केवल फुटकल रचनाएं या प्रगीत, गीत की रचनाएं की गई हैं। रामहोरी रहस्य, टीका काव्य, नीति पदावली आदि ग्रंथ आपके प्रमुख ग्रंथ हैं। नीति पदावली की नीतिपरक कविताएं रहीम व वृन्द की कविताओं के समान प्रतिष्ठित हैं। नीतिपरक कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"बाते न सुनावै करतूति कै देखाबै, सत्रु आप जो सताबै तो बचाबै राखि पानी सो।
औगुन को गोडे गुन चारिउ ओर माडे ताहि सौकरे न छाडै सोक आडै बुद्धिमानी सो।
भाषत प्रधान सान राखे परमारथ की भाषै न जथारथ की भाषै राव रानी सो।
चाहै चतुराई गुरुअहिं जो बड़ाई बड़ी करिये मिताई बल्कि अइसन परसी सो।"

रामनाथ प्रधान की भाषा बघेली का प्राचीन स्वरूप है, जिसमें अवधी के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है क्योंकि बघेली को अवधी की उपबोली कहा जाता है। आपने दोहा, सवैया आदि छंदों का प्रयोग किया है। बघेली साहित्य के उत्थान को गति देने वाले रचनाकार के रूप में रामनाथ प्रधान का योगदान अद्वितीय है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

5.10.2 बाबूलाल दाहिया

जन्म : 10 फरवरी, 1944

जन्म स्थान : उचेहरा के समीप ग्राम–पिथौराबाद जिला सतना (मध्य प्रदेश)

पिता : कालूराम दाहिया

परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व के कवि बाबूलाल दाहिया का जीवन ग्रामीण परिवेश को आत्मसात् करते हुए बीता। प्रारंभिक शिक्षा गांव पिथौराबाद से प्राप्त कर स्वाध्यायी माध्यम से स्नातक की उपाधि अर्जित की। कुछ वर्षों तक भारतीय डाक विभाग में सेवाएं प्रदान कीं। स्वयं दाहिया जी के अनुसार उनके अंदर काव्य बीज का अंकुरण सन् 1977 के आसपास हुआ। आकाशवाणी के प्रोत्साहन ने आपकी लेखनी को गति प्रदान की। दाहिया जी ने काव्य सृजन हिन्दी व बघेली भाषा में किया है। हिन्दी की अपेक्षा बघेली भाषा पर आपका झुकाव ज्यादा रहा। क्योंकि आपकी

टिप्पणी

मातृबोली होने के कारण आप उसे ज्यादा करीब महसूस करते रहे हैं। आपका पहला बघेली कविता संग्रह–'विंध्य केर माटी' सन् 1984 में प्रकाशित हुआ। बघेली लोक संस्कृति और विरासत को सहेजने के लिए सघन श्रम किया। कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के संपादन में सहयोग प्रदान किया व स्वयं भी संपादन किया। जिनमें आपके संपादन में जैव विविधता से संबंधित बघेली मुहावरों और लोकोक्तियों का ग्रंथ "सयायन के भाती" प्रकाशित है। आपके सहयोग से संपादित– जनपदीय आख्यान, जनपदीय संस्कार गीत, जनपदीय मुहावरे एवं लोकोक्तियां, जनपदीय पहेलियां, जनपदीय लोककथाएं और जनपदीय खेलगीत आदि का प्रकाशन हुआ है। आपने बघेली भाषा की विरासत को सहजने में अथक योगदान दिया है। आपका संपादित ग्रंथ–बघेली शब्दकोश प्रकाशाधीन है। आपका दूसरा कविता संग्रह –"पसीना हमरे बद है" सन् 2017 में प्रकाशित हुआ है। आपके द्वारा बघेली कविता का काव्य पाठ मंचों द्वारा निरतंर किया जा रहा है। आपको बघेली साहित्य के अनेक सम्मानों से सम्मानित किया गया है–विन्ध्य शिखर सम्मान, बैजू सम्मान, शम्भू काकू सम्मान आदि सम्मानों से सम्मानित किया गया है। फसलों की पुरानी किस्मों को सहेजने में आप प्रयासरत हैं। आप पेशे से किसान हैं। आपके किसान जीवन के योगदान पर पद्मश्री जैसे सम्मानित राष्ट्रीय सम्मान से नवाजा गया है।

बाबूलाल दाहिया स्वयं एक ग्रामीण किसान हैं। आपका परिवेश ग्रामीण रहा है जिससे संवेदना का आपके काव्य में अभिव्यंजित होना स्वाभाविक है। समाज के हर तबके के लोगों, किसानों, मजदूरों आदि की पीड़ा, संत्रास व विसंगतियों का अभिव्यंजन दाहिया जी की कविता में हुआ है। बाबूलाल दाहिया की कविता के संबंध में प्रो. सेवाराम त्रिपाठी का कथन है कि–"बाबूलाल दाहिया की कविता सिंघाड़ा जैसी लगती है। साथ ही कई बार कविता के साथ दाहिया ऐसे दिखाई देते हैं, जैसे धूसर रंग के भीतर जतवा के नीचे से झरता पिसान हो।" दाहिया जी की कविता में सैफू व बैजू जी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। साथ ही समय के दबाव और बदलाव का पूरी वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अंकन मिलता है। समाज व देश में व्याप्त विसंगतियों पर बेझिझक और निर्भीकतापूर्वक अपनी बात कहते हैं। जैसे–

"अब हमी उनहूँ निता सोचै क चाही।
भार धाई जिन्दगी ढ़ोये हमै जे।।

सेत क काहे भला आमा चखै उँय।
बेसरम चारिउ कइल बोये हमैं जे।।

खीर क वादा न परसिन जै महेरी।
योजनै अपने निता नोये हमै जे।।

बाँह अब झिगझोरि के उनहीं जगाई।
कुम्भकरनी नींद म सोये हमैं जे।।"

दाहिया जी की कविता में बघेली भाषा का ठेठ रूप प्राप्त होता है। निरंलकृत, अप्रभावित बघेली भाषा का मुहावरों, लोकोक्तियों से युक्त रूप व्यक्त होता है। ठेठ शब्दों के साथ पुराने विलुप्त प्राप्य शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। दाहिया जी की

काव्य शैली वैविध्यपूर्ण है– आपने दोहा, गीत, गजल, प्रगीत, सवैया, धनाक्षरी, कुण्डलिया आदि छंदों का प्रयोग किया है। दाहिया जी का बघेली भाषा साहित्य के विकास में महत्व योगदान रहा है। इसे समृद्ध बनाने अभी भी प्रयासरत हैं।

टिप्पणी

5.10.3 मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली"

जन्म : 1 जून, 1949

जन्म स्थान : ग्राम पिपरवार, तहसील–मनगवां, जिला–रीवा (मध्य प्रदेश) (ननिहाल)

माता व पिता : स्व. रामकली शुक्ला, स्व. रामसुंदर शुक्ल

ग्रामीण भावबोध के कवि मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली" जी का जन्म ननिहाल में हुआ था। आपका पैतृक निवास ग्राम पलिया (सरई) तहसील–मउगंज जिला–रीवा मध्य प्रदेश है। आपकी प्रारंभिक शिक्षा आपके ननिहाल में हुई। "मैथिली" जी ने त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम में हायर सेकंडरी परीक्षा उत्तीर्ण कर तकनीकी शिक्षा अर्जित की। तकनीकी शिक्षा प्राप्त होने के कारण आप मध्य प्रदेश विद्युत मंडल की 36 वर्ष सेवा पूर्ण कर सेवानिवृत्त हैं। आपका स्वभाव अत्यंत सरल, सहज किंतु अनुभव से संपृक्त है। आपका जीवन ग्रामीण जीवन से जुड़ा रहा है। मजलूमों, गरीबों, किसानों और मजदूरों के अभावग्रस्त जीवन का गहरा अनुभव रहा है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण आपने परंपरा व आडम्बरों को करीब से महसूस किया है। आपकी कविता में पारिवारिक जीवन व रिश्तों की कड़वाहट व अहमियत का बखूबी अंकन किया गया है, जैसे–

"जेखा दिखे से बोखारि चदइतन ताप बढ़इ अउ आँखि पिराई।
तेई कुरइ ससुरे अपने भइया, भउजी करि खूब बड़ाई।।

खरचा दस–पाँचि मिलइ कबहूँ, झट लेती हमइ अचरा गठियाई।
पउती न चारिउ आना तबउ कठइँ भइया दिहिन हबई राखी बधाई।।"

मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली" की कविता में ग्रामीण जनजीवन व ग्रामीण जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है। भ्रष्टाचार, अभाव, देश की स्थिति और समसामयिक परिवेश का संवेदनात्मक रूप चित्रित हुआ है। किसान व मजदूर की दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। अकाल, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न त्रासदी से जूझ रहे लोगों के मनोभावों का चित्रण उनकी कविता में प्राप्त होता है।

उदाहरण दृष्टव्य है–

"अंगरेजन के नेति करि, गठरी पुनि छोर दिहिन।
परेम के लोटा मा, माहुर फेरि छोर दिहिन।।
भगवान भगउतें जो, भारथ में इया भरी।।"

मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली" का कोई स्वतंत्र प्रकाशित काव्य संग्रह प्राप्त नहीं होता है। इनकी कविताओं का प्रकाशन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से होता रहा है, जिससे इनकी कविताएं इधर–उधर बिखरी पड़ी हैं। कुछ संपादित संग्रहों में आपकी कुछ कविताएं संगृहीत हैं। आपने हिन्दी व बघेली दोनों भाषाओं में काव्य सृजन किया है। आपकी हिन्दी व बघेली कविताएं–जागरण, बाल विहान, अभिव्यक्ति, विन्ध्यिका

और संपदा आदि पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित हैं। कुछ कविताएं आकाशवाणी रीवा द्वारा प्रसारित हैं। आपने मंचों के माध्यम से काव्य पाठ करते हुए अपनी कविता को लोगों तक पहुंचाया है। मंचीय कविता होने के कारण आपकी कविता लयात्मक व तुकबंदी के घेरे में बंधी हुई है। आपने दोहा, सवैया, गजल या गीत के रूप में काव्य सृजन की शैली को अपनाया है। आपकी भाषा में तत्सम हिंदी के शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिससे कविता की सरसता में कमी आती है।

टिप्पणी

मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली" बघेली कविता के प्रतिष्ठित कवि हैं। इन्हें बघेली भाषा का प्रमुख सम्मान बैजू सम्मान–2001 में प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी ग्रामोदय महाविद्यालय चित्रकूट द्वारा सम्मानित किया गया है। आपको अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत किया गया है। आप बघेली कविता के विकास में प्रयासरत हैं।

5.10.4 सुदामा शरद

जन्म : 22 मार्च, 1957

जन्म स्थान : ग्राम कोनिया कला, तहसील–त्योंथर, जिला–रीवा (मध्य प्रदेश)

पिता : सूर्य प्रताप दुबे

ग्रामीण जीवन दर्शन के कवि सुदामा शरद जी मूलतः हिन्दी के कवि व कहानीकार हैं। आपने साहित्यिक प्रतिभा का प्रादुर्भाव बचपन में ही हो गया था। आप काव्य सृजन में 10 से 12 वर्ष की बाल्यावस्था में रत हो गए थे। आपकी प्रारंभिक शिक्षा ग्राम कोनिया कला व उच्चतर शिक्षा त्योंथर में हुई। आपने अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा से भूगोल विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि अर्जित की। आप पेशे से पत्रकार हैं। वर्तमान में दैनिक जागरण में कार्यरत हैं। आपकी प्रथम प्रकाशित रचना सन् 1971–72 में दसवीं कक्षा में अध्ययन के दौरान प्रतियोगिता के लिए लिखी कहानी "रुक्की" है। जिसका सारिका पत्रिका में प्रकाशन हुआ व प्रदेश स्तर पर पुरस्कृत किया गया। जो हिन्दी भाषा में लिखी गई। आपका प्रारंभिक लेखन आपके गुरु जगदीश प्रसाद के निर्देशन से प्रारंभ हुआ। आपकी प्रारंभिक कविताओं का प्रकाशन सन् 1971–72 में जागरण पत्र व 73–74 में बनारस से प्रकाशित प्रतिष्ठित पत्र "आज" में हुआ। आज पत्र में आपके कई गीतों का प्रकाशन हुआ है। आपका हिन्दी प्रकाशाधीन काव्य संग्रह–"इस दोपहर के बाद" है। जो आपका प्रथम काव्य संग्रह होगा। आपका बघेली काव्य संग्रह भी प्रकाशाधीन है। आपका एक गीत 1977 में काकी चर्चित रहा है। 'खोलो' फीचर फिल्म जो अधूरी थी के लिए गीत लिखा था। गीत– "राजा हे जब चोर सिपाही क्या कर लेगा" प्रसारित व प्रसंशित हुआ।

सुदामा शरद जी ने बघेली भाषा में गीत, गजल व दोहों की रचना की जो केवल पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। आपकी कहानियां हैं– धर्मशाला भाग–1, 2, 3 व नदी का घाट हैं, जो हिंदी में रची गई हैं।

सुदामा शरद की कविता हिंदी के नवगीत आंदोलन से व्यापक रूप से जुड़ती है। ग्रामीण जीवन की संकीर्णता और अभाव के साथ वर्तमान के प्रति जवाबदेही उनकी

टिप्पणी

कविता की प्रमुख विशेषता रही है। आपके संवेदनशील मन और चिंतनशील परिपक्व विचारों के योग से जो रचनाएं प्रकाशित होती हैं, वे लोक के मध्य से जन्म लेकर लोक व समाज तक अपनी ऊष्मा का संचार करती हैं। सुदामा शरद की कविता में छल–प्रपंच से मुक्त वातावरण की कुंठा से त्रस्त मानवता के प्रति कारुणिक संवेदना व्यक्त होती है–

"जागर करइ बेगारि बिचारा, पेट होइ न राजी,
उमिर समन्सो पोरख सुलगई, जइसन गोमत कण्डी।
जिनगी जुध्य महाभारत कस, छल बल लड़डू सिखंडी,
बाढ़ति रहति साधि, अएरानक जरसन रकम बिआणी।।
फिरइ पैसरम मारे मारे को ओकर सुनबइरया।
कोइ केर भतीज न लागइ, न काहू के भइया।।
बखत सुआदिन मनई पउलय व ललहा कस भाजी।।"

सुदामा शरद की कविता में ठेठ देशज प्रतीकों का स्वभावगत प्रयोग हुआ है। अंतर्विरोधों को पकड़ने का और उनके चित्रण का उम्दा कौशल व्यक्त हुआ है। आपने गीत, गजल, दोहा, सवैया आदि विविध छंदों का प्रयोग करते हुए गेयात्मक प्रवाहपूर्ण शैली का निर्वहन किया है। आपकी कविता संभावनाओं का नवीन संसार निर्मित करते हुए भविष्य की उम्मीद जगाने का सतत् प्रयास करती है। देशज शब्दों का प्रयोग व नवीन उपमानों ने अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सहज मार्ग प्रस्तुत किया है।

सुदामा शरद की कविता सामाजिक अनियमितताओं के प्रति आक्रोश और ग्रामीण जीवन दर्शन के भाव बोध से संपृक्त सरल, सहज, देशज शब्दों से सजी गेयात्मक छंदों से गठित ग्रामीण यथार्थ बोध की कविता है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. रामनाथ प्रधान किस राजा के आश्रित कवि थे?
    (क) राजा जयसिंह (ख) महाराज रघुनाथ सिंह
    (ग) राजा प्रताप सिंह (घ) इनमें से कोई नहीं
14. बाबूराम दाहिया किस सरकारी सेवा में थे?
    (क) भारतीय डाक सेवा (ख) भारतीय रेलवे
    (ग) बैंकिंग सेवा (घ) पुलिस सेवा
15. मैथिलीशरण शुक्ल 'मैथिली' को बैजू सम्मान कब प्राप्त हुआ?
    (क) 1990 में (ख) 1992 में
    (ग) 2001 में (घ) 2005 में
16. सुदामा शरद के पिता का क्या नाम था?
    (क) सूर्यनारायण दुबे (ख) सूर्य प्रताप दुबे
    (ग) रामनारायण दुबे (घ) विश्वनाथ दुबे

5.11 मालवी भाषा के रचनाकार

टिप्पणी

मालवी भाषा के कवियों मदनमोहन व्यास, मोहन सोनी, शिव चौरसिया, हरीश निगम और श्रीनिवास जोशी के जीवन परिचय और साहित्यिक रचनाओं का क्रमशः विवरण इस प्रकार है–

5.11.1 मदनमोहन व्यास

मदनमोहन व्यास का जन्म 3 जुलाई, 1927 को तराना, जिला उज्जैन के एक पंडित परिवार में हुआ। बचपन से ही ये कुशाग्र बुद्धि के थे। इनका कंठ–स्वर मधुर था और भजन अच्छे गाते थे। उस समय कथावाचकों में श्री सखाराम बुआ कानिटकर की भारी धूम थी। वे नारदगादी के कीर्तनकार थे। बचपन में ही मदनमोहन व्यास उनके शिष्य और सहयोगी के रुप में देश के दूर–दूर नगरों– गांवों में कथावाचन के लिए जाने लगे। यह क्रम अनेक वर्षों तक चलता रहा। इन्होंने हाईस्कूल के उपरांत साहित्य रत्न परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ समय तक ये शिक्षक रहे। उसके बाद सन् 1951 से 1966 तक पंचायत विभाग के अंतर्गत केंद्र पंचायत देवास में मंत्री पद पर सेवारत रहे। 1966 में शासकीय सेवा छोड़ कर देवास में बसे और स्वतंत्र रूप से पत्रकारिता करने लगे। कुछ समय तक ये 'दैनिक विश्व भ्रमण' इंदौर के उपसंपादक रहे। इनकी दैनिक अवंतिका से संबद्धता है। इन्होंने "दैनिक देवास विकास" का संपादन एवं प्रकाशन भी किया।

व्यास जी मालवी की दूसरी पीढ़ी के महत्वपूर्ण कवि हैं। व्यास जी का एक काव्य संकलन "मालवा की जातरा" सन् 1987 में प्रकाशित हुआ है। इन्होंने मालवी में कहानियां और आलेख भी लिखे हैं। व्यास जी ने हिंदी रचनाएं भी लिखी हैं। यद्यपि ये स्वतंत्रता के पूर्व से ही कविता लिख रहे हैं, लेकिन गति स्वतंत्रता के बाद ही आई। सन् 1952 में आरंभ हुए मालवी आंदोलन से प्रेरित होकर इन्होंने जन–जागरण, कृषि–विकास, योजना–प्रचार, शिक्षा और ग्रामोत्थान जैसे विषयों पर खूब लिखा। लोक जीवन के साथ ही गांवों में व्याप्त निर्धनता और रूढ़ियां भी इनकी कविताओं की विषयवस्तु बनीं और राजनीति में फैली बुराइयों पर इनका आक्रोश हास्य–व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त हुआ है। म्हारो नाम बाल्यो है, मालवा की जातरा, दीवाली, ट्रांजिस्टर,मेंगई,रल्वो, चली सवारी लाड़ी की आदि इनकी लोकप्रिय कविताएं हैं।

मालवा के ग्राम जीवन की सहज परंपरा और रीति–रिवाजों, पर्व–त्योहारों और मेले–ठेलों का सजीव चित्रण व्यास जी की कविताओं की महती विशेषता है। लोक संस्कारों के मोहक वर्णनों के साथ ही मानव–मन की भावनाएं इनकी कविताओं में मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट हुई हैं। पं. माखनलाल चतुर्वेदी के मतानुसार, "मदनमोहन व्यास की कविता में ग्राम्य जीवन और कृषि–विकास का सच्चा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।" इनकी भाषा आरंभ में तो ठेठ मालवी रही, लेकिन बाद में उस पर नगरीय प्रभाव पड़ने लगा।

निष्कर्षतः मदनमोहन व्यास मालवी लोक जीवन के विभिन्न चित्रों को उकेरने वाले समर्थ रचनाकार हैं।

टिप्पणी

5.11.2 हरीश निगम

हरीश निगम का जन्म 3 मई, 1928 को आलोट, रतलाम में हुआ, लेकिन इनका बचपन उन्हेल, जिला– उज्जैन में बीता। मिडिल परीक्षा पास करने के बाद सन् 1944 में ग्राम–तालोद में शिक्षक बने। सन् 1949 में इनका स्थानांतरण नागदा हुआ। वहीं मालवी–हिंदी– राजस्थानी के सुकवि गिरिवरसिंह भंवर से इनकी भेंट हुई। भंवरजी के सान्निध्य में निगम मालवी में कविता लिखने लगे। इन्होंने हिंदी साहित्य में एम.ए. और बी.एड. की उपाधियां प्राप्त कीं और व्याख्याता बने और स्थाई रूप से उज्जैन में रहने लगे। सन् 1988 में सेवा–निवृत होकर मालवी साहित्य की सेवा करते रहे। इनका निधन 17 फरवरी, 2003 को हुआ।

हरीश निगम मालवी के लोकप्रिय कवि रहे हैं। कुसुम कुंज, हरियालो आंचल और हिरना सांवली इनके तीन काव्य संकलन हैं। इन्होंने पूंजी (कहानी संग्रह), लोक साहित्य के आयाम (निबंध संग्रह), नानी की कहानी (लोक कथाएं) पुस्तकों और सांक्षी पत्रिका का संपादन भी किया है। इन्होंने 'स्वप्न वासवदत्ता' एवं 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाटकों का तथा रामचरितमानस का मालवी में नाट्य रूपांतरण भी किया है। ये नाट्य रूपांतर मंचित और प्रशंसित हुए हैं। इनकी काव्यकृति 'हरियाली आंचल' पर भारत सरकार द्वारा वृत चित्र बना है तथा भारतीय डेयरी बोर्ड, आणंद के लिए मालवी टेलीफिल्म 'संकल्प' का निर्माण और निर्देशन भी निगमजी ने किया है।

हरीश जी राष्ट्रीय भावना, नवनिर्माण और जनमानस की इच्छाओं–आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के साथ ही समाज में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। इन्होंने हास्य–व्यंग्य के माध्यम से विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। 'तीतर पे तोप', 'अबे कदी मरे तो टेंगड़ी कड़ब खाए', 'माल मलँगा खाय' आदि इसी रंग की कविताएं हैं।

वस्तुतः हरीश निगम आधुनिक मालवी कविता धारा के उन्नयनकर्ता हैं। मालवी में वे पाती परंपरा के प्रवर्तक होने के कारण महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उनकी भाषा बोलचाल की सरल नगरीय मालवी है। उनकी कविताओं में सहजता, सरलता और लोकजीवन की धड़कन को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

5.11.3 मोहन सोनी

मोहन सोनी का जन्म 23 मई, 1938 को उज्जैन के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। इनके पिता स्वर्ण–आभूषणों के कुशल कारीगर थे। इनकी शिक्षा यहीं हुई। ये पढ़ाई के साथ अपना पैतृक व्यवसाय भी सीखते रहे, लेकिन उसमें इनका मन नहीं लगता था। हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने शिक्षकीय–प्रशिक्षण प्राप्त किया और सन् 1962 में शिक्षक पद पर नियुक्त हो गए। अपनी शिक्षकीय सेवा की अवधि में लगभग 18 वर्ष ये ग्रामीण अंचल के विद्यालयों में ही रहे। ग्राम्य जीवन, वहां के लोकाचार और प्रकृति को इन्होंने गहराई से देखा और समझा।यद्यपि सोनी जी ने कविता लेखन सत्रह वर्ष की आयु से ही आरंभ कर दिया था, लेकिन उसका विकास शिक्षक बनने के बाद ही हुआ। इसी बीच इन्होंने स्वाध्यायी रुप से बी .ए. की उपाधि भी प्राप्त की। सन् 1998 में सेवानिवृत्त होकर अब ये साहित्य–साधना में लगे हुए हैं।

सोनी जी जनप्रिय कवि हैं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनकी शताधिक कविताएं प्रकाशित हुई हैं और 'माटी की सोरम" काव्य संकलन में इनकी नौ कविताएं संकलित हैं। इनके संपादन में उज्जैन नगर के कवियों की भिन्न–भिन्न विषयों की कविताओं के तीन काव्य संकलन प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने मालवी के साथ हिंदी और उर्दू में भी रचनाएं लिखी हैं, लेकिन प्रसिद्धि का कारण मालवी कविताएं ही हैं। ये मूल रूप से गीतकार हैं। यद्यपि इन्होंने हास्य, व्यंग्य और इतर विषयों पर भी लिखा है, तथापि इन्हें अधिक सफलता श्रृंगार रस में प्राप्त हुई है। ये देशप्रेम और नवनिर्माण के गीत भी गाते रहे हैं। भीलनी, संजा को रथ, बिरहण की पाँती, चंपा को फूल, हाथ, शिवाजी आदि इनकी लोकप्रिय कविताएं हैं।

टिप्पणी

निष्कर्ष रूप में मोहन सोनी मालवी कविता के मर्ममधुर कवि हैं।

5.11.4 शिव चौरसिया

शिव चौरसिया का जन्म 23 दिसंबर, 1940 को ग्राम बेरछा, जिला शाजापुर मध्य प्रदेश में हुआ। इनका परिवार अत्यंत निर्धन था। इनके पिता के पास न कोई पूंजी थी, न साधन। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण 11– 12 वर्ष की आयु से ही इन्हें अपनी पढ़ाई के साथ कोई ना कोई काम करना पड़ा। इन्होंने स्वाध्यायी रूप से सन 1960 में हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्होंने शिक्षकीय प्रशिक्षण प्राप्त किया और सन 1962 में शिक्षक के रूप में एक ग्रामीण विद्यालय में पदस्थ हुए। लगभग 13 वर्षों तक ये उज्जैन जिले के कई गांवों में स्थानांतरित होते हुए सेवा करते रहे। इसी अवधि में इन्होंने स्वाध्यायी रूप से बी.ए.,एम.ए. (हिंदी) परीक्षा उत्तीर्ण की। सन 1974 में इन्होंने पी–एच.डी की उपाधि भी प्राप्त की। सन् 1984 से1998 तक उज्जैन के सांदीपनि महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे। अब स्वतंत्र रूप से लेखनरत हैं।

शिव चौरसिया ने कविता लेखन सन 1961 में आरंभ किया। इन्हें राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर के काव्य से प्रेरणा मिली। ये मूलतः मालवी के कवि हैं। गांव में जन्म, गांवों में लंबे समय तक रहने के अवसर और लोक–संस्कार से युक्त पारिवारिक वातावरण ने इन्हें इस ओर प्रेरित किया। 'माटी की सोरम' काव्य संकलन में इनकी चौदह मालवी कविताएं संकलित हैं तथा बहुत सारी रचनाएं पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। इन्होंने मालवी के साथ ही हिंदी में कविता, कहानी, निबंध आदि लिखे हैं। ये मालवी गीत प्रतियोगिता में मध्यप्रदेश पंचायत संचालनालय से पुरस्कृत हुए हैं तथा दिल्ली में व्यास सम्मान प्राप्त हुआ है। इनकी हिंदी कहानियां हरियाणा भाषा विभाग तथा हिमाचल प्रदेश जनसंपर्क विभाग से पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग की ओर से श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में इन्हें राज्य स्तरीय पुरस्कार भी मिला है। एक स्मृति ग्रंथ, एक अभिनंदन ग्रंथ और कई स्मारिकाओं का संपादन भी इन्होंने किया है। मालवी लोक संस्कृति और लोक साहित्य पर इनके अनेक आलेख प्रकाशित और प्रसारित हुए हैं। चौरसिया जी की मालवी कविताओं की विषयवस्तु ग्राम्य–जीवन, लोक संस्कार और प्रकृति चित्रण से जुड़ी है। इनके काव्य में राष्ट्र की भावना भी व्यक्त हुई है।

निष्कर्षतः शिव चौरसिया मालवी लोक जीवन के समर्थ उद्‌गाता हैं। इनकी कविताओं में मालवा के सहज सौंदर्य के साथ विचार और चिंतन भी दृष्टिगोचर होते हैं। विषय और शैली की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट स्थान है।

टिप्पणी

5.11.5 श्रीनिवास जोशी

श्री निवास जोशी का जन्म 7 अप्रैल, 1920 को हुआ था। श्रीनिवास जी हास्य करते हुए कहते थे कि यदि एक ज्योतिषी की बात पर यक़ीन करूं तो यदि मैं अपने जन्म समय से आधा घंटा पहले पैदा होता तो किसी नगर का राजकुमार होता लेकिन सच मानिए वे मां सरस्वती के वरदपुत्र और माय–मालवी (मायःमाँ) के राजकुमार तो थे ही।श्रीनिवासजी ने अल्पायु में ही क़लम से दोस्ती कर ली थी।

सन 1947–48 में उनकी मालवी रचना हिंदी की अस्सी बरस पुरानी पत्रिका वीणा में छपी थी। जोशी जी ने कहानी, कविता, निबंध और हास्य प्रसंगों को आधार बनाकर रचनाओं में प्रशस्ति पाई। 1948 में श्रीनिवासजी प्रभात फिल्म कंपनी, पुणे से संवाद और पटकथा लेखक के रूप में जुड़ गए और यहां उनके हिंदी लेखन का जादू सर चढ़ कर बोला।

श्रीनिवास जोशी ने गोकुल, मेरे लाल, अहिल्या, सुहाग, सजनी, सीधा रास्ता, सीता हरण, माया बाज़ार, मैं अबला नहीं हूं, आदि फिल्मों के लिए अपनी क़लम का जलवा दिखाया। जिस फ़िल्म ने उन्हें बहुत यश दिया वह थी बलराज साहनी – मीना कुमारी अभिनीत 'भाभी की चूडियाँ'।

श्रीनिवास जी ने इस चर्चित फिल्म के संवाद लिखे थे। आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए भी जोशीजी ने एकाधिक रूपकों और प्रहसनों का लेखन किया। लोक जीवन की झांकी को समेटते हुए उन्होंने किस्सागोई के अंदाज में कई निबंध लिखे जिनमें हास्य का लाजवाब पुट था। मालवी में 'वारे पठ्‌ठा भारी करी' और 'सासुजी रिसाएगा' उनकी प्रतिनिधि रचनाएं हैं। इनमें मालवी जनजीवन की अदभुत छटा है। श्रीनिवास जोशी को बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, कुसुमाग्रज जैसे कई साहित्य–मनीषियों का स्नेहपूर्ण संग–साथ मिला।

चालीस और पचास के दशक में वे अपना वतन मालवा छोड़ कर पुणे और मुंबई की ओर गए और नौकरी कर सुरक्षित जीवन–यापन के मोह को छोड़ कर ताजिन्दगी फ्रीलांसर बने रहे। जीवन का सबसे बड़ा जोखिमपूर्ण कार्य उन्होंने फिल्म मालती माधव के निर्माण के रूप में किया और लाखों का घाटा उठाया। 24 फ़रवरी 2006 को मुंबई में इस मालवी कवि का निर्वाण हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

17. मदनमोहन व्यास जी मालवी की कौन–सी पीढ़ी के कवि हैं?

(क) दूसरी (ख) तीसरी

(ग) चौथी (घ) इनमें से कोई नहीं

टिप्पणी

18. मोहन सोनी जी का पैतृक व्यवसाय क्या था?

(क) बर्तन बनाना (ख) स्वर्ण–आभूषण बनाना

(ग) खेती करना (घ) गाय चराना

19. हरीश निगम की किस काव्यकृति पर भारत सरकार द्वारा वृत्त चित्र बना है?

(क) कुसुम कुंज (ख) हिरना सांवली

(ग) हरियाली आंचल (घ) इनमें से कोई नहीं

20. शिव चौरसिया को किस कवि के काव्य से प्रेरणा मिली?

(क) राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर (ख) सुमित्रानंदन पंत

(ग) मैथिलीशरण गुप्त (घ) महादेवी वर्मा

21. 1947–48 में श्रीनिवास जोशी की मालवी रचना किस पत्रिका में छपी थी?

(क) कादंबरी (ख) वीणा

(ग) गृहशोभा (घ) सरिस सलिल

5.12 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (ग)
6. (ख)
7. (ख)
8. (घ)
9. (ग)
10. (ख)
11. (घ)
12. (ख)
13. (ख)
14. (क)
15. (क)
16. (ख)
17. (क)

18. (ख)
19. (ग)
20. (क)
21. (ख)

टिप्पणी

5.13 सारांश

प्राचीन रूढ़ियों के प्रति आस्था रखने वाले नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र एक बुद्धिवादी साहित्यकार थे। उन्होंने यथार्थ को चुना, उसके सत्यासत्य की परीक्षा की और उसे स्वीकार किया और उससे सम्बन्धित आदर्श को प्रतिष्ठित किया। बुद्धिवाद का समर्थन करते हुए उन्होंने उसे पूर्णतः भारतीय माना है। वे जीवन के लिए जीवन का चित्र प्रस्तुत करना उचित मानते हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र मूलतः समस्यामूलक नाटकों की रचना करते थे। उनके नाटकों में सामाजिक चित्रण समस्या के रूप में हुआ है। वास्तविक रूप में नहीं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रमुख नाटककारों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी नाट्य–साहित्य की उस परंपरा को आगे बढ़ाया, जो आधुनिक काल में भारतेंदु युग में शुरू हुई थी तथा जिसका प्रसाद युग में प्रवर्तन हुआ। उन्होंने लगभग 16–17 नाटकों की रचना की है।

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, सन् 1925 को हुआ था। वे कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार और अनुवादक भी थे। इनकी लेखन क्षमता, विविधता और समग्रता, अपने समय, समाज, परिवेश और इनके ताप–तनाव को बड़ी ही प्रामाणिकता से रेखांकित करती रही। देखा जाये तो नाटक के क्षेत्र में इनका अवदान सर्वाधिक रहा। इनके नाटक हैं–आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे–अधूरे। अपनी रंगधर्मिता, गुणवत्ता और गुणात्मकता की दृष्टि से ये नाटक सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। 'आधे–अधूरे' नाटक ने इन्हें अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया।

हिंदी नाटक का विकास आधुनिक युग में भारतेंदु के समय से माना जाता है। यह वह समय था जब लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की जाने लगी। इससे पूर्व जो नाटक लिखे गए वह मुख्यतः काव्य अथवा संस्कृत नाटकों के अनुवाद थे। भारतेंदु ने हिंदी नाटक के विकास को दिशा दी और उनके परवर्ती नाटककारों जैसे उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल, शंकर शेष आदि ने इस दिशा में विकास कार्य किया।

छत्तीसगढ़ साहित्यिक संसार के प्रसिद्ध रंगकर्मी सुरेश शुक्ल 'चंद्र' का जन्म फरवरी 1936 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में हुआ था। एकांकी नाटक लेखन में सुरेश शुक्ल को सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई थी। हालांकि इन्होंने अपनी रचनात्मक

यात्रा की शुरुआत काव्य विधा से की थी। सन् 1950 से लेकर 1960 तक सुरेश चंद्र ने कविता के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

टिप्पणी

बाबू गुलाबराय भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार, निबंधकार और व्यंग्यकार थे। वे हमेशा सरल साहित्य को प्रमुखता देते थे, जिससे हिंदी भाषा जन–जन तक पहुंच सके। गुलाबराय जी ने दो प्रकार की रचनाएं की हैं– दार्शनिक और साहित्यिक। उनकी दार्शनिक रचनाएं उनके गंभीर अध्ययन और चिंतन का परिणाम हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में शुद्ध भाषा तथा परिष्कृत खड़ी बोली का प्रयोग अधिकता से किया है। आधुनिक काल के निबंध लेखकों और आलोचकों में बाबू गुलाबराय का स्थान बहुत ऊंचा है। उन्होंने आलोचना और निबंध दोनों ही क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा और मौलिकता का परिचय दिया है।

महादेवी का कार्यक्षेत्र लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य अपने समय में महिला–शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम था। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चांद' का कार्यभार संभाला। 1930 में नीहार, 1932 में रश्मि, 1934 में नीरजा, तथा 1936 में सांध्यगीत नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। 1939 में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उन्होंने काव्य, गद्य, शिक्षा एवं चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किए।

महाराज छत्रसाल के राज्याश्रित कवि गोरेलाल का जन्म सन् 1618 में हुआ था। वीर काव्य लेखन की परंपरा में लाल कवि का प्रमुख स्थान है। इनके पूर्वजों का संबंध आंध्र प्रदेश था। बाद में इनका परिवार मध्य प्रदेश में आकर बस गया। गोरेलाल का एक और उपनाम लाल कवि भी है।

गंगाधर व्यास का छतरपुर के राजा विश्वनाथ सिंह जूदेव व्यास के दरबार में कवि के रूप में बहुत सम्मान था। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में उन्होंने 'विश्वनाथ पताका' की रचना की थी। व्यास जी को अपने आश्रयदाता का विशेष स्नेह प्राप्त था। राजा विश्वनाथ सिंह जूदेव व्यास से उनका संबंध दोस्ताना था। दोनों एक–दूसरे का बेहद सम्मान करते थे। राजा के मनोरंजन के लिए भी व्यास जी ने खूब सारी रचनाएं लिखी थीं। इन्होंने मनोरंजन के लिए हास्यविनोद प्रधान रचनाएं भी रचीं।

दीक्षित ने विपुल साहित्य की रचना की है। इनकी कृतियों में प्रमुख हैं–बुंदेली काव्य, बलिदान (खण्ड काव्य), ऋतु संहार (बुंदेली काव्यानुवाद) गाँधी गौरव, ज्ञान की गुरिया, गाँव की गलियाँ, अध्यापको जागो, खुली किवरिया, तकी तकाई गैले, बुंदेली का ठाठ (काव्य संग्रह)। इन्होंने बुंदेली गाथाओं पर आधारित 'बुंदेली गाथा' शीर्षक से पुस्तक लिखी है। डॉ. दीक्षित ने बुंदेली 'कहावतें और मुहावरे' शीर्षक से भी एक संकलन तैयार किया है। साहित्य सेवा में अमूल्य योगदान देने के लिए दुर्गेश दीक्षित को कई पुरस्कारों से सम्मानित भी किया गया है।

टिप्पणी

रामनाथ प्रधान ने द्विवेदी युगीन प्रचलित साहित्यिक भाषा को साहित्य सृजन का माध्यम बनाया। द्विवेदी युग में अवधी भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। अब तक अवधी भाषा में प्रचुर साहित्य रचा जा चुका था व रचा जा रहा था। रामनाथ प्रधान ने भी काव्य सृजन की भाषा अवधी को चुना।

दाहिया जी की कविता में बघेली भाषा का ठेठ रूप प्राप्त होता है। निरंलकृत, अप्रभावित बघेली भाषा का मुहावरों, लोकोक्तियों से युक्त रूप व्यक्त होता है। ठेठ शब्दों के साथ पुराने विलुप्त प्राप्य शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। दाहिया जी की काव्य शैली वैविध्यपूर्ण है– आपने दोहा, गीत, गजल, प्रगीत, सवैया, धनाक्षरी, कुण्डलिया आदि छंदों का प्रयोग किया है। दाहिया जी का बघेली भाषा साहित्य के विकास में महत्व योगदान रहा है। इसे समृद्ध बनाने अभी भी प्रयासरत हैं।

मैथिलीशरण शुक्ल "मैथिली" की कविता में ग्रामीण जनजीवन व ग्रामीण जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है। भ्रष्टाचार, अभाव, देश की स्थिति और समसामयिक परिवेश का संवेदनात्मक रूप चित्रित हुआ है। किसान व मजदूर की दशा का मार्मिक वर्णन मिलता है। अकाल, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न त्रासदी से जूझ रहे लोगों के मनोभावों का चित्रण उनकी कविता में प्राप्त होता है।

सुदामा शरद की कविता हिंदी के नवगीत आंदोलन से व्यापक रूप से जुड़ती है। ग्रामीण जीवन की संकीर्णता और अभाव के साथ वर्तमान के प्रति जवाबदेही उनकी कविता की प्रमुख विशेषता रही है। आपके संवेदनशील मन और चिंतनशील परिपक्व विचारों के योग से जो रचनाएं प्रकाशित होती हैं, वे लोक के मध्य से जन्म लेकर लोक व समाज तक अपनी ऊष्मा का संचार करती हैं।

मालवा के ग्राम जीवन की सहज परंपरा और रीति–रिवाजों, पर्व–त्योहारों और मेले–ठेलों का सजीव चित्रण व्यास जी की कविताओं की महती विशेषता है। लोक संस्कारों के मोहक वर्णनों के साथ ही मानव–मन की भावनाएं इनकी कविताओं में मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट हुई हैं। पं. माखनलाल चतुर्वेदी के मतानुसार, "मदनमोहन व्यास की कविता में ग्राम्य जीवन और कृषि–विकास का सच्चा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।" इनकी भाषा आरंभ में तो ठेठ मालवी रही, लेकिन बाद में उस पर नगरीय प्रभाव पड़ने लगा।

हरीश जी राष्ट्रीय भावना, नवनिर्माण और जनमानस की इच्छाओं–आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के साथ ही समाज में व्याप्त कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। इन्होंने हास्य –व्यंग्य के माध्यम से विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। 'तीतर पे तोप', 'अबे कदी मरे तो टेंगड़ी कड़ब खाए', 'माल मलँगा खाय' आदि इसी रंग की कविताएं हैं।

सोनी जी जनप्रिय कवि हैं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनकी शताधिक कविताएं प्रकाशित हुई हैं और 'माटी की सोरम" काव्य संकलन में इनकी नौ कविताएं संकलित हैं। इनके संपादन में उज्जैन नगर के कवियों की भिन्न–भिन्न विषयों की कविताओं के तीन काव्य संकलन प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने मालवी के साथ हिंदी और उर्दू में भी रचनाएं लिखी हैं, लेकिन प्रसिद्धि का कारण मालवी कविताएं ही हैं।

शिव चौरसिया मालवी लोक जीवन के समर्थ उद्‌गाता हैं। इनकी कविताओं में मालवा के सहज सौंदर्य के साथ विचार और चिंतन भी दृष्टिगोचर होते हैं। विषय और शैली की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट स्थान है।

टिप्पणी

5.14 मुख्य शब्दावली

- **उत्तीर्ण** : पास।
- **पौराणिक** : पुराण संबंधी, प्राचीन।
- **यथार्थ** : सच्चाई।
- **कीर्तिमान** : सफलता।
- **एकांकी** : एक अंक का।
- **सार्थक** : अर्थ सहित।
- **परिवेश** : वातावरण।
- **वार्तालाप** : बातचीत, संवाद।
- **उपाधि** : पदवी।
- **मजलूम** : अत्याचार से पीड़ित।
- **ग्रामोत्थान** : गांवों का उत्थान।
- **प्रयुक्त** : प्रयोग करना।
- **पारायण** : किसी ग्रंथ का शुरू से अंत तक नियमित पाठ।
- **सिद्धहस्त** : निपुण, कार्यकुशल।
- **अन्यत्र** : दूसरी जगह।
- **गत** : बीता हुआ।
- **व्यतीत** : बिताना।
- **प्रवर्तक** : जनक, प्रारंभ करने वाला।
- **वणिज** : व्यापार करने वाला, बनिया।
- **सृजन** : रचना करना, बनाना।
- **सेवानिवृत्त** : सेवा से मुक्ति।

5.15 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र के व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के कृतित्व का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी

3. मोहन राकेश की प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं सुरेश शुक्ल के जीवन–परिचय का वर्णन कीजिए।
5. बाबू गुलाब राय एवं महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व की विशेषताएं बताइए।
6. बुंदेली भाषा के रचनाकार गोरेलाल एवं गंगाधर व्यास के व्यक्तित्व के बारे में समझाइए।
7. बघेली भाषा के रचनाकार मैथिलीशरण शुक्ल की कविता में हिंदी के किस कवि का प्रभाव दिखाई देता है?
8. सुदामा शरद और सुरेश शुक्ल 'चंद्र' की रचनाओं के नाम लिखिए।
9. रामनाथ प्रधान एवं बाबूलाल दाहिया की मुख्य रचनाओं के नाम लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बुंदेली भाषा के प्रमुख रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण कीजिए।
2. मालवी भाषा के प्रमुख रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण कीजिए।
2. बघेली भाषा के प्रमुख रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण कीजिए।
4. बुंदेली, बघेली और मालवी की रचनाओं की तुलना अपने शब्दों में कीजिए।

5.16 सहायक पाठ्य सामग्री

1. गिरीश रस्तोगी, मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पंचम संस्करणः 2015
2. जयशंकर प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, भारती–भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
3. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एंड संस, वसंत 1958, भूमिका।
4. सं–डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी नाटक और रंगमंच, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का लेख–हिंदी नाटक और रंगमंच का विकास, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृ. 32
5. डॉ. गिरीश रस्तोगी, बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, संस्करण 2018
6. डॉ. गिरीश रस्तोगी : समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष–चेतना, हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़, संस्करण 1990
7. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन', सरस्वती मंदिर, वाराणसी, 1960.
8. जयनाथ 'नलिन', 'हिंदी निबंध के आलोक शिखर', मनीषा प्रकाशन, दिल्ली, 1987.

टिप्पणी

9. लक्ष्मणदत्त गौतम, 'महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार', कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली।
10. डॉ. श्याम परमार, 'मालवी लोक साहित्य', हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1969 ई.
11. संप. डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा, डॉ. दिलीपकुमार चौहान, डॉ. अजय गौतम, मालवी भाषा और साहित्य, मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2010 ई.
12. ब्रजमोहन टाक, 'संत शिरोमणि पीपा : जीवन दर्शन, अ.भा. पीपा क्षत्रिय महासभा, पुष्करराज (अजमेर), 2012 ई.
13. हरीश निगम, 'हिरना साँवली', निकुंज प्रकाशन, उज्जैन, 1982 ई.
14. नरहरि पटेल, 'मत रो माता', सुखद साहित्य सेवा, इंदौर, 168
15. नरहरि पटेल, 'सिपरा के किनारे', दिशा कम्यूनिकेशन, इंदौर, 1996
16. नरहरि पटेल, 'गुलमोरी धरती', दिशा कम्यूनिकेशन, इंदौर, 1999
17. डॉ. डी. सत्यलता, 'बालकवि बैरागी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', श्री पब्लिकेशन, विशाखापट्टनम, 2008